वैष्णवधर्मरत्नाकर।

भा. टी.

Duplicate

लक्ष्मीवेङ्कटेश्वराय नमः ॥

वैष्णवधर्मरत्नाकर ।

भाषाटीकासहित.

बावलीग्रामनिवासी श्रीमान् गोपालदासजीकृत.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

मालिक-"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस,

कल्याण-बंबई.

संवत् १९८९, शके १८५४.

मुद्रक और प्रकाशक–

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

मालिक–"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्–प्रेस, कल्याण–बंबई.

सन् १८६७ के आक्ट २५ के मुजब रजिष्टरी सब हक्क
प्रकाशकने अपने आधीन रक्खा है.

श्री रामचंद्रजी.

सुदर्शनचक्र.

ऊर्ध्वपुण्ड्र.

पाञ्चजन्यशङ्ख.

गरुड.

शार्ङ्गधनुष.
नंदकखड्ग.
कौमोदकी गदा.

मारुति

श्री रामानुज मुनि ।

प्रस्तावना.

श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

श्रीराघवं दशरथात्मजमप्रमेयं
सीतापतिं रघुकुलान्वयरत्नदीपम् ।
आजानुबाहुमरविन्ददलायताक्षं
रामं निशाचरविनाशकरं नमामि ॥

पूर्व कालमें मनु याज्ञवल्क्य व्यास पराशर आदि महर्षिलोगोंने परापर तत्त्वको अच्छीतरह विचार कर परतत्त्वसाधनभूत वेदोंके विस्तृततात्पर्यको संग्रहकर जीवोंके हितकेवास्ते अनेक स्मृति पुराण इतिहास आदि अनेक धर्म शास्त्रोंको प्रकट करदिये हैं.उन धर्म शास्त्रोंमें प्रतिपादित धर्मोंका अनुष्ठान करना कृत त्रेता द्वापर युगोंमें ही सुगम था. वर्तमान समयमें तो यज्ञयागादि नाममात्रही रहगये. वर्णाश्रमाचारादि धर्म भी प्रभातचंद्रसा प्रतीत होरहा है. उनके स्थानमें अधर्म अनाचारादि शुक्लचन्द्रमाकी कांतिको पारहा है. भव्य पुरुषोंने ठीक ही कहा है कि" कालो हि दुरतिक्रमः " इस प्रमाणसे समयका अतिक्रम कौन करसकताहै.

पूर्वकालमें जो आस्तिक जन श्रुति स्मृतियोंमें प्रतिपादित यज्ञ याग कृच्छ्र चांद्रायणादि अनेक तपस्याद्वारा जिस उत्तम पुरुषार्थको अत्यन्त परिश्रमसे साधते थे उस उत्तम मोक्षफलको इस कलियुगमें भी विना परिश्रम विनासहाय एक लघु उपायसे ही साधन करसकते हैं । वह उपाय यह है कि–

हे मर्त्याः परमं हितं शृणुत वो वक्ष्यामि संक्षेपतः
संसारार्णवमापदूर्मिबहुलं सम्यक् प्रविश्य स्थिताः ।
नानाज्ञानमपास्य चेतसि नमो नारायणायेत्यमुं
मंत्रं सप्रणवं प्रणामसहितं प्रावर्तयध्वं मुहुः ॥

हे लोगो ! इस श्लोकमें कहे हुए अभिप्रायको विचारकर अपने मनमें रहते हुए नानाविध अज्ञानोंको और संसारके अनिवार्य झंझालको भी छोड अष्टाक्षररूप नारायण मंत्रको मनमें स्मरण कर तथा वाणीसे भी उच्चारण कर निरतिशयानन्द मोक्षरूप महासाम्राज्यमें स्वराज्यपदवी पाकर राजभोगका अनुभव कर सकते हो ॥

इसलिये विचार करना चाहिये कि, जैसे राज्य भोगनेवाले राजालोगोंको राजलक्षण आवश्यकहै वैसेही राजांगमें उत्तम पदवी चाहनेवालेको राजनामांकित लक्षणका धारणकरना आवश्यकहै. क्योंकि, राजनामांकित चिह्नको देखते ही इस प्रपंचमें रहनेवाले सब मनुष्य उसको राजपुरुष जानकर आदर सत्कार करते हैं; ऐसेही मोक्षसाम्राज्यकी नौकरी चाहनेवाले जीवोंको भी चपडासीकी तरह राजाके चिह्न धारण करना चाहिये. वह चिह्न वैष्णव लक्षण है. क्योंकि मोक्षका अधिकारी विष्णुही है. इस कारण वैष्णव लक्षणही धारण करना सिद्ध होताहै. उन लक्षणोंको धारणकरनेवाले वैष्णव कहेजाते हैं. ये वैष्णव आजकल आचार्य भेदसे भिन्न भिन्न प्रतीत होतेहैं. उनमें—श्रीसंप्रदायका प्रथमाचार्य भगवान् लक्ष्मीनाथ है इसलिये ऊपर कहे हुए नारायण अष्टाक्षरमंत्रका ही आचार्यलोग शिष्योंको उपदेश करते हैं और प्रधान उपास्यमंत्र मानते हैं तथा उसीको सर्वस्व समझते हैं। पञ्चसंस्कारोंमें समान होते हुए भी मालासंस्काररूप कंठीको नहीं बांधते हैं. केवल तुलसीमाला और नलिनाक्षादि मालाओंको जप होम भगवदर्चनादिसमयमें कंठसे नाभिपर्यंत लंबायमान मालाकी तरह धारण करते हैं और मालासंस्कारके स्थानमें " मंत्रो यागश्च पंचमः " इस प्रमाणबलसे भगवदाराधनकोही मुख्य मानते हैं. इसका प्रमाणादिक २९९ पृष्ठमें यथामति लिखाहुआहै. श्रीवैष्णवसंप्रदायके रहस्यग्रंथोंमें प्रायः अष्टाक्षर नारायणमंत्रकाही माहात्म्य और उपदेश पायाजाता है। तथापि श्रीरामभी नारायण ही है. इसलिये हमारे भी श्री रामानंदस्वामीने रामानन्दमताब्जभास्करग्रन्थमें राममंत्रका माहात्म्य और उपदेश आदिक लिखते हैं, इसलिये वर्तमान समयमें रामानन्दमताब्जभास्कर ग्रंथानुसार आचरण करनेवाले वैष्णवलोग रामानंदी कहेजातेहैं. रामानन्दीगुरुपरंपराके पीठ भी श्रीसंप्रदायवाले आचार्योंसे एकमात्र संबंधरखते हुए श्रीमन्नारायणसे वरवर मुनितक १६ गुरु पीठ अभिन्नहै. पीछे पुरुषोत्तम दाससे भिन्नरीतिसे प्रतीत होते हैं.

इससे यह प्रतीत होता है कि श्रीसंप्रदायका गुरुपीठ श्रीमहालक्ष्मीसे लेकर वरवरमुनि तक एकमुख होकर पीछे आचार्यलोग भी बहुत प्रकार होगये हैं. इस कारणसे श्रीवैष्णवसंप्रदायकी पद्धति भी आजकल भिन्नभिन्न होगई है. और कालमहिमासे सबकीसब अन्यथा ही होती जाती है.

इसलिये इस कालिकालके श्रीवैष्णवोंको करनेयोग्य धर्म आदि इस ग्रंथमें धर्म शास्त्रोंके सार लेकर यह "वैष्णवधर्मरत्नाकर" ग्रन्थ लिखागया है। इसके—

प्रथम अध्यायमें–कृतयुगादिधर्मविवेचन, द्वितीयाध्यायमें–पूर्वाचार्योंका अवतारादिनिरूपण, तृतीयाध्यायमें–मायावादिमतखंडन और विशिष्टाद्वैतमतसमर्थन, चतुर्थ अध्यायमें–शिष्यकृत नौ प्रश्न, तथा उनका उत्तर, पंचमाध्यायमें–तत्त्वत्रय निरूपण, षष्ठ अध्यायमें–राममंत्रका व्याख्यान, सप्तमाध्यायमें–द्वयमंत्रका व्याख्यान, अष्टमाध्यायमें–चरम मंत्रका व्याख्यान, नवम अध्यायमें–तप्तशंखचक्रादिधारणनिरूपण, दशमाध्यायमें–द्वादशोर्ध्वपुंड्रधारणविधि, एकादशाध्यायमें–भगवद्दास्यनामधारणनिरूपण, द्वादशाध्यायमें–राममंत्रादि उपदेशविधि और गुरुपरंपरा, त्रयोदशाध्यायमें–तुलसीमालाधारणनिरूपण, चतुर्दशाध्यायमें–परापरादि भक्तिनिरूपण, पंचदशाध्यायमें–विष्णुपञ्चकव्रतनिरूपण, षोडशाध्यायमें–नरकको देनेवाले १२ व्यसनोंका निरूपण, सप्तदशाध्यायमें–पुण्यकर्म, तथा कर्मोंका भगवत्समर्पण और अर्चावतारप्रकारनिरूपण, अष्टादशाध्यायमें–श्रीवैष्णवभेद, तथा वैष्णवोंका माहात्म्य और आचार तथा निवासकरने योग्य स्थान आदि निरूपण, एकोनविंशाध्यायमें–प्राप्यवस्तु (श्रीराम) स्वरूपनिरूपण, इतने विषय विशदरीतिसे वर्णित हैं.

यह ग्रंथ केवल वैष्णवोंको ही मात्र नहीं, किंतु अन्यमतावलंबी सर्व साधारण पुरुषोंकोभी सदा अपने पास रखने योग्यहै. क्योंकि, कलियुगमें अनुष्ठानकरने योग्य धर्म, परापरादि भक्तिका लक्षण, नरकमें न जानेका उपाय, पुण्यकर्मोंका संपादन इत्यादिको जानना जीवमात्रके लिये आवश्यक है.

इस ग्रंथको संपूर्ण रचकर बंबई–कल्याण नगरस्थ लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर मुद्रणालयाध्यक्ष–परम भागवत सेठ गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासजीको पुनर्मुद्रणादि सर्वाधिकारसहित समर्पण करादिया है।

आशाहै कि, राम भक्त, श्रीवैष्णव और सज्जनपुरुष इस ग्रंथको संपादनकर हमारे परिश्रमको सफल करें ॥ इति

श्रीवैष्णवदासः–

गोपालदासः ॥

॥ श्रीः ॥

वैष्णवधर्मरत्नाकर विषयानुक्रमणिका ।

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
प्रथमोऽध्यायः ।	
मङ्गलाचरणम्	१
भाषाटीकाका कारण	२
युगधर्मविषयक प्रश्न	”
शिष्यप्रश्नका उत्तर	”
कृतयुगादिधर्म	४
प्रतियुगायुर्बलादिह्रास	५
कृतादियुगोत्पन्नावतार	”
त्रेतायुगमें अवतार	६
द्वापरयुगमें अवतार	”
कलियुगधर्मादि	७
मरणसमयमें दान	८
चौवीस अवतारोंका विवरण	९
कलिमें वर्ज्य धर्म	१०
औरसादि पुत्र	”
कलिमें पापभागी	१३
कृतयुगादिमें पुण्यतीर्थ	१४
गंगामाहात्म्य	”
द्वितीयोऽध्यायः ।	
कलियुगमें मोक्षोपायका प्रश्न	१५
प्रश्नका उत्तर	१६
पंचरात्र प्रामाण्य	१९
मायावादीका प्रश्न और उत्तर	२०
आत्मैकत्ववाद खंडन	२४
पाखंडशास्त्र बनानेकी भगवदाज्ञा	२५
तामसपुराण	२६
राजस-तामस पुराणोंकी अनादरता	२८
सात्विकादिपुराणोंका नामनिर्देश	”
सात्विकादि स्मृति	२९
सात्विक आदि त्रिविध देव	३०
वेदोंमें स्वोपयोगिमात्रका ग्रहण	”
शिवसहस्रनामपाठफल	३१
विष्णुसहस्रनामपाठफल	”
रामानुजमुनिद्वारा श्रीवैष्णवधर्मका स्थापन	३२
सेनेशका शठकोपरूपमें प्रादुर्भाव	३४
श्रीसंप्रदायकी उत्पत्ति	३५
श्रीसंप्रदायके आचार्य	”
दश दिव्यसूरि	३६
रामानुजमुनिके जन्मसमय	३७
गोदादेवीका अवतार वैभव	३८
द्विव्यसूरियाकों जन्मस्थान	३९
तृतीयोऽध्यायः ।	
विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तका समर्थन	४०
मायावाद खंडन	४३
जीव ब्रह्मैक्यवाद खण्डन	४८
जीवका अणुत्वप्रतिपादन	५०
मायावादीके प्रश्न	५५
असत्प्रतीतिखंडन	५७
निर्गुणज्ञानीकी निन्दा	६४
रामानुजमुनिका अवतारमें प्रमाण	६८

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
चतुर्थोऽध्यायः ।	
शिष्यका ९ प्रश्न	६९
गुरुशिष्य लक्षण	७१
द्वितीय–तृतीय प्रश्नोत्तर	७४
चतुर्थ–पञ्चम–षष्ठ प्रश्नोत्तर	७८
सप्तम प्रश्नोत्तर	७९
अष्टम प्रश्नका उत्तर	८०
नवम प्रश्नका उत्तर	८२
पंचमोऽध्यायः ।	
रामानंदीसंप्रदायका वृत्तान्त	८३
एकदण्डीकी निंदा	८४
वैष्णवोंका नामधारण	८६
त्रिदंडी स्वरूप	८७
शंकराचार्यका संक्षिप्त वृत्तान्त	,,
यादवप्रकाशका अपराधक्षापण	८९
यादवप्रकाशका उद्धार	९०
गोविन्दभट्ट (एंबार स्वामी)-का वृत्तान्त ।	,,
भक्तिसारका संक्षिप्त वृत्तान्त	९३
अष्टांगयोगविवरण	९८
षट्चक्रकोष्ठक	१००
सुरसुरानन्दके प्रश्न	१०१
मूलप्रकृतिनिरूपण	,,
जीवस्वरूपनिरूपण	१०३
ईश्वरस्वरूपनिरूपण	१०६
अविद्या	११०
अस्मिता–राग–द्वेष	१११
अभिनिवेश	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
षष्ठोऽध्यायः ।	
मुमुक्षुओंको जापनेयोग्य मंत्र	११७
राममंत्रप्रशंसा	११९
रामशब्दका नारायणपदार्थसे निरूपण	१२०
रामप्रशंसा	१२३
रामशब्दका नानाविध अर्थ निरूपण	१२६
मन्त्र माहात्म्यादि रामरहस्य-निरूपण	१२८
आनुषङ्गिक फल निरूपण	१३२
रामबीज मन्त्रार्थ	१३५
पश्न (सूर्यमंडल विषयमें)	१३६
गायत्रीका अर्थ (श्रीरामपरमें)	१३७
नामव्याप्ति	१५५
रूपव्याप्ति	१५८
परमात्माके अवतारोंमें प्रमाण	१५९
निराकारब्रह्मवादखण्डन	१६३
गुणव्याप्ति	१६६
स्वरूपव्याप्ति	१६८
विभूतिव्याप्ति	१७१
आश्रितव्याप्ति	१७२
भगवच्छब्दार्थ	१७५
निमित्तकारण	१७८
उपादानकारण	,,
सहकारिकारण	,,
नवविधसंबन्ध	१८०
जीवस्वरूप	१८१
श्रीशब्दका अर्थ	१८३
अर्थपञ्चक	१८६

विषयाः	पृष्ठाङ्काः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
सप्तमोऽध्यायः।		५–मालासंस्कार	२२४
द्वितीय रहस्य	१८७	तापसंस्कारमें वैदिक प्रमाण	२२५
द्वयमन्त्रविवरण	,,	तप्तचक्रसंस्कारविधि	२३४
वात्सल्य	१८९	श्रीमद्भागवतकी श्रीधरीटीकाका खण्डन	२४५
स्वामित्व	१९०		
सौशील्य–सौलभ्य	१९१	तापसंस्कारमें प्रमाण ग्रंथोंकी नामावली	२४९
सर्वज्ञत्व	१९२		
सर्वशक्तिमत्त्व	१९५	दशमोऽध्यायः।	
अवाप्तसमस्तकामत्व	,,	पुंड्रसंस्कारविधि	२५२
दया	१९६	द्वादशतिलकविधि	२५६
कृपा–अनुकंपा–करुणा	१९७	तिलकोंके परिमाण	२५७
सौन्दर्य–सौहार्द	१९८	ऊर्ध्वपुण्ड्रशब्दका अर्थ	२५८
मुक्तिनिर्णय	२००	त्रिपुंड्रधारण निषेध	२६०
द्वयमन्त्रमहिमा	२०५	अनर्थकारी तिलक	२६२
रामायण करके द्वयमंत्रप्रतिपादन	२०९	ऊर्ध्वपुण्ड्रधारककी प्रशंसा	२६३
अष्टमोऽध्यायः।		ऊर्ध्व पुण्ड्रमें त्रिपुंड्रका निषेध	२६४
चरम मंत्र	२११	श्रीचूर्णधारणविधि	२७१
छः प्रकारकी शरणागति	२१५	नासिकामूलनिर्णय	२७५
कायिकी प्रपत्ति	,,	तिलक धारणका प्रयोजन	२७६
वाचिकी प्रपत्ति	२१६	एकादशोऽध्यायः।	
मानसी प्रपत्ति	,,	दास्यनाममाहात्म्य	२७८
नवमोऽध्यायः।		दास्यनामरहितोंकी निन्दा	२७९
ध्यानस्वरूप	२१८	दास्यनामसे मुक्ति	२८०
रामस्वरूपध्यान	२१९	आत्मापहारी	२८४
पंचसंस्कार	२२०	द्वादशोऽध्यायः।	
१–तापसंस्कार	२२१	मंत्रसंस्कारविधि	२९०
२–पुण्ड्र संस्कार	२२३	राममंत्रमाहात्म्यविवरण	,,
३ नामसंस्कार	,,	मन्त्रराज	२९१
४–मन्त्र संस्कार	,,	गुरुपरंपरा	२९३

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
अष्टाक्षरादि मंत्रजापककी प्रशंसा	२९७
त्रयोदशोऽध्यायः ।	
मालासंस्कारविधि	२९८
तुलसीमालाधारणाविधि	,,
मालाप्रार्थना	,,
तुलसीमालाधारीकी प्रशंसा	२९९
तुलसीमाहात्म्य	३००
मालाशब्दार्थ	३०१
तुलसीमालाके अधिकारी	,,
पहरीहुई मालाका निषेध	३०३
कण्ठीधारण	३०४
कण्ठीधारणमंत्र	३०५
पंच संस्कारका फल	,,
चतुर्दशोऽध्यायः ।	
विष्णुभाक्ति तत्त्व	३०६
ज्ञानयोगादिके अधिकारी	३०८
भक्तिलक्षण	,,
मानसी भक्ति	३०९
कायिकी भक्ति	,,
वाचिकी भक्ति	३१०
षोडशप्रकारकी भक्ति	,,
पराभक्ति	३१२
पराभक्तिके भेद	,,
सिद्धाभक्ति	,,
प्रेमा भक्ति	३१३
निष्कामा भक्ति	,,
दुर्लभा भक्ति	,,
अनन्योपासना भक्ति	३१४
निर्गुणा भक्ति	,,
भक्तिद्रोहीकी गति	३१८
दुर्वासाकी संक्षिप्त कथा	,,
अनाथरक्षक	३२०
भक्तिकी कथा	,,
रघुनाथाष्टक	३२२
पञ्चदशोऽध्यायः ।	
विष्णुपंचकमहाव्रत	३२४
एकादशीनिर्णय	,,
दोप्रकारकी एकादशी	३२५
अरुणोदयादिलक्षण	,,
अरुणोदयवेधादि लक्षण	३२६
त्याज्य एकादशी	,,
ग्राह्य एकदशी	३२७
एकादशीकी उत्पत्ति	,,
एकादशी विवरण	३२९
आठ प्रकारकी द्वादशी	३३२
उन्मीलिनी	,,
वंजुलिनी	,,
त्रिस्पर्शा	३३३
पक्षवर्धनी	,,
जया	,,
विजया	,,
जयंती	,,
पापनाशिनी	,,
उपवास करनेयोग्य द्वादशी	३३४
श्रीरामनवमीनिर्णय	,,
नृसिंहचतुर्दशीनिर्णय	३३५
कृष्णाष्टमीनिर्णय	,,
वामनद्वादशीनिर्णय	३३६

विषयाः	पृष्ठाङ्काः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
षोडशोऽध्यायः ।		मुक्तलक्षण	३७०
धर्मतत्त्व	३३८	दो प्रकारके नित्यमुक्त	३७१
सनातन धर्मोपदेश	,,	दोप्रकारके कादाचित्कमुक्त	,,
जूआ आदि सात व्यसन	३४१	दोप्रकारके भागवत	,,
तमाखु आदिकी निन्दा	३५०	दोप्रकारके केवल	३७२
तमाखुका इतिहास	३५१	एक चेतनको दो प्रकार	,,
सप्तमोऽध्यायः ।		वैष्णवलक्षण	,,
वैष्णवधर्म	३५३	वैष्णवोंका माहात्य	३७४
भगवत्प्रसादमाहात्स्य	३६१	वैष्णवोंके कर्तव्य कृत्य	३७५
अर्चावतार	३६२	वैष्णवोंके वासकरने योग्य स्थान	३७७
स्वयंव्यक्त दिव्यदेश	,,	कालक्षेपविधि	३७८
गृहार्चा	३६३	**एकोनविंशोऽध्यायः ।**	
पातिष्ठाधिकारी	३६४	पाप्यवस्तु निरूपण	३८१
भगवदाराधनाविधि	३६५	मुक्तिका अर्चिरादिमार्ग	३८३
साष्टाङ्गप्रणाम	३६६	देवयानादिके अर्थ	३९२
प्रणाममन्त्र	,,	इस ग्रंथके अनधिकारी	३९३
अष्टादशोऽध्यायः ।		इस ग्रंथके अधिकारी	३९४
वैष्णवभेद	३६७	रामानंद शब्दार्थ	,,
दो पकारके चेतन	३६८	सुरासुरानन्द शब्दार्थ	३९५
बद्ध चेतनका लक्षण	,,	फलश्रुति	,,
मुमुक्षु लक्षण	,,	ग्रन्थकारकी प्रशंसा	३९६
बुभुक्षुलक्षण	३६९	ग्रंथकर्तुर्नाम्नोर्थाः	३९७
प्रपन्नलक्षण	,,	हरिद्रोहीके इतिहास	३९८
		श्रीगुरु अष्टक	३९९

इति विषयानुक्रमणिका ॥

Dupl

श्रीः ॥

श्री वैष्णवधर्मरत्नाकरः ।

॥ श्रीमते नारायणाय नमः ॥ श्रियै नमः ॥

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

मङ्गलाचरणम् ।

दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे तु जनकात्मजा ।
पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम् ॥ १ ॥

अर्थ—जिनके दक्षिण भागमें लक्ष्मणजी वाम भागमें जनकपुत्री श्रीजानकीजी विराजमान हैं और जिनके सन्मुखमें पवनपुत्र मारुति हाथ जोडकर खडे हैं ऐसे रघुनंदन श्रीरामचंद्र भगवानको मैं वंदना करता हूं ॥ १ ॥

अस्मद्देशिकमस्मदीयपरमाचार्यानशेषान्गुरून्
श्रीमँल्लक्ष्मणयोगिपुङ्गवमहापूर्णौ मुनिं यामुनम् ।
रामं पद्मविलोचनं मुनिवरं नाथं शठद्वेषिणं
सेनेशं श्रियमिन्दिरासहचरं नारायणं संश्रये ॥ २ ॥

अर्थ—श्रीमन्नारायण, महालक्ष्मी, विष्वक्सेन, शठकोप, नाथमुनि, पद्माक्षमुनि, राममिश्र, यामुनाचार्य, पूर्णाचार्य, रामानुजमुनि, इत्यादिक हमारे आचार्य्य और परम आचार्य इन समस्त गुरुओंको मैं भजन करता हूं ॥२॥

रामानुजमहं वन्दे सहस्रास्यं जगद्गुरुम् ।
तद्भक्तियान्वितः कुर्वे स्वसिद्धान्तविनिश्चयम् ॥ ३ ॥

अर्थ—जगत्के गुरु और हजार मुखवाले, शेषजीका अवतार ऐसे रामानुज मुनिके चरणकमलमें भक्ति करके मैं अपने श्रीवैष्णवधर्मके सिद्धान्तका निश्चय करता हूं ॥ ३ ॥

श्रीघनश्यामदासाख्यं नत्वा ज्ञाननिधिं गुरुम् ।
श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकरो हि लिख्यते मया ॥ ४ ॥

अर्थ–ज्ञानके भंडाररूप और श्रीघनश्यामदासजी नामवाले हमारे साक्षात् गुरु महाराजको नमस्कार करके मैं श्रीमत्पंडित गोपालदास, इस श्रीवैष्णवधर्म-रत्नाकर ग्रंथको लिखता हूं ॥ ४ ॥

यहां ग्रंथके आरंभमें जो हमने मगंल किया है सो तीन प्रकारका है, एक तो नमस्कार रूप, दूसरा वस्तुनिर्देश रूप और तीसरा आशीर्वाद रूप है। ग्रंथके आरंभ अपने इष्ट देवताओं तथा गुरुओंको नमस्कार करके जो ग्रन्थका आरम्भ करे उसको नमस्काररूप मंगल कहते हैं १। जिस कार्यके आरंभमें परमात्माका कीर्तन करके आरंभ करे उसको वस्तुनिर्देशरूप मंगल कहते हैं २। अपना अथवा शिष्यका मनोवांछित वस्तुकी जो ईश्वरसे प्रार्थना करनी, सो आशीर्वादरूप मंगल कहाजाता है ३। इस ग्रंथके आरंभमें हमने नमस्काररूप मंगल किया है।यदि ग्रंथके आरंभमें मंगल नहीं किया जावे तो विघ्न करके ग्रंथकी समाप्ति नहीं होती है, इस कारण विघ्नका नाश करने वास्ते ग्रंथके आरंभमें मंगल अवश्य करना चाहिये, क्योंकि पापरूपकी विघ्न निवृत्ति मंगलाचरणसे होती है, और पापरहित पुरुषभी ग्रंथके आरंभमें मंगल नहीं किया हो तो ग्रंथकर्तामें सब पुरुषोंको नास्तिकपनेकी भ्रांति होती है और नास्तिक ग्रंथके पढनेमें प्रवृत्तिभी नहीं होती इस लिये विघ्न और नास्तिकभ्रांति इन दो दोषोंकी निवृत्तिकेवास्ते सर्व कार्योंमें मंगल करनेका प्रजोजन है। इति मंगलाचरणम् ॥

नानाशास्त्रेभ्य उद्धृत्य विचार्य च पुनः पुनः ।
प्राचीनबहुग्रन्थानां सारः संगृह्यते मया ॥ ५ ॥

अर्थ–नाना प्रकारके शास्त्रोंमेंसे वीन कर उन शास्त्रोंका वारंवार विचार करके प्राचीन बहुत ग्रंथोंके सार मैंने इस ग्रंथमें ग्रहण किया है । जैस हंस एक पात्रमें भरे हुए जलयुक्त दूधको अपनी विचार शक्तिसे असाररूप जलका त्याग करके साररूप दुग्धका ग्रहण करता है तैसे मैंनेभी शास्त्रोंमें असार रूप श्लोकोंका त्याग करके सार सार श्लोंकोका इस ग्रंथमें संग्रह किया है ॥ ५ ॥

भाषाटीकाका कारण।

श्रीमद्गोपालदासेन बावलीग्रामवासिना।
टीका लोकोपकाराय कृता मानवभाषया ॥ ६ ॥

बावली ग्रामके निवासी पं० गोपालदास नाम मैंने (लोकोपकाराय) व्याकरण ज्ञानाभ्याससे रहित वैष्णव लोगोंके उपकारार्थ सुगमार्थदीपिका नासकी भाषाटीकाभी की है॥ ६॥

अब हम गुरु और शिष्यके संवाद करके इस ग्रंथका आरंभ करते हैं, क्योंकि श्रुति, स्मृति, संहिता, पुराण, महाभारत, रामायण इत्यादिक हजारों ग्रंथ हैं वे सब ग्रन्थ, गुरु और शिष्यके संवाद करके अथवा श्रोता वक्ताके संवाद करके रचे हुए हैं, इससे हमभी गुरु शिष्यके संवाद करके इस श्रीवैष्णव धर्मरत्नाकर ग्रंथका आरंभ करते हैं॥

युगधर्मविषयकप्रश्न।

शिष्य उवाच–

भगवन् श्रोतुमिच्छामि युगधर्मान्पृथक् पृथक्।
न ज्ञाने त्वत्समं पश्ये पृथिव्यां विचरन्प्रभो ॥ ७ ॥
कलिजानां सुखोपायं कथयस्व दयानिधे।
शाधि मां कृपया नाथ दीनं त्वच्छरणागतम् ॥ ८ ॥

अर्थ–अब शिष्य पूछता है कि, हे भगवन्! सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन चार युगोंके अलग २ धर्मोंको मैं सुनने चाहता हूं, हे प्रभो! इस पृथ्वीमें विचरता हुआ मैं अनेक देशोंमें गया, परंतु आपके समान ज्ञानी मैं नहीं देखता हूं हे दयानिधे! कलिके जीवोंका कल्याण सहजमें जिस उपाय करके होवे, उस उपायको आप मेरे प्रति कथन करो। हे नाथ! मैं दीन हूं, और आपके शरण आया हूं, आप मेरेको कृपाकरके शिक्षा करो॥ ८॥

शिष्यप्रश्नका उत्तर।

श्रीगुरुरुवाच–

श्रुता मे मानवा धर्मा वैदिकाश्च श्रुतास्त्वया।
कलौ युगे न शक्यन्ते ते वै कर्तुं महामते ॥ ९ ॥

सुखोपायं चाल्पधनमक्लेशं च महाफलम् ।
पुराणानां च सर्वेषां सारभूतं वदामि ते ॥ १० ॥

अर्थ–शिष्यके प्रति गुरु बोले कि, हे महामते ! स्वायंभु आदिक मनुओंनें धर्मशास्त्रमें कहे हुए धर्म, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद आदिक वेदोंमें कहे हुए धर्मभी तैंने मेरे मुखसे सुने हैं, उन मानव और वैदिक धर्मोंको इस कलिके जीव करनेके लिये समर्थ नहीं हो सकते हैं। इससे हे शिष्य ! जिसमें थोडा धन खर्च होवे क्लेश नहीं पडे और जिसका मोक्षरूपी महाफल भी हो तथा सर्वपुराणों और सर्वशास्त्रोंका साररूप ऐसा कलिके जीवोंके सुख (कल्याण) का उपाय मैं तेरेको कहता हूं, सो तू मन लगाकर सुन ॥ ९ ॥ १० ॥

हे शिष्य ! पराशर स्मृतिके सप्तमाध्यायमें कहा है कि–

कृतयुगादिधर्म ।

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे ।
अन्ये कलियुगे धर्मा युगह्रासानुरूपतः ॥ ११ ॥
कृते तु मानवा धर्मास्त्रेतायां गौतमाः स्मृताः ।
द्वापरे शंखलिखिताः कलौ पाराशराः स्मृताः ॥ १२ ॥

अर्थ–सतयुग आदिक युगोंका ह्रास अर्थात् घटनेके अनुसार जैसे सतयुगका प्रमाण १७२८००० वर्षका तथा त्रेतायुगका प्रमाण १२९६००० वर्षका है और द्वापर युगका प्रमाण ८६४००० वर्षका तथा कलियुगका प्रमाण ४३२००० वर्षका है. इस रीतिसे एक युगके पीछे दूसरा युग घट जानेसे चारों युग एक सरीखे नहीं है। इससे इन युगोंका धर्मभी भिन्नभिन्न हैं क्योंकि सतयुगमें स्वायंभु मनुके धर्म, त्रेतामें गौतम ऋषिके धर्म और द्वापरमें शंखलिखित ऋषिके धर्म चलते रहे तथा इस कलियुगमें पराशर मुनिके धर्म चलते हैं. इन चार युगोंकी ये चार स्मृतियां धर्मके निर्णयमें मुख्य हैं. क्योंकि स्वयंभु मनुने कहा है कि, कोई शूद्रादिक जातिवाला मनुष्य किसी साधु ब्राह्मणके आसनपर बैठ जावे तो उसके कूले काटनेसे वह दोष मिटेगा और पराशर मुनिने ऐसा कहा है कि, आसनपर बैठनेवालेके कूलेपर अग्निका दाग देनेसे वह दोष मिट जायगा, इस रीतिसे आसनपर बैठनेवाले शूद्रादिकोंके उस पापकी निवृत्तिके अर्थ सतयुगकी मुख्य मनुस्मृतिमें मनुने कूले काटनेकी जो आज्ञा

दी है सो कूले काटनेका प्रायश्चित्त इस कलियुगके जीवोंसे बन सके नहीं-इसलिये कलियुगकी मुख्य पराशरस्मृतिमें उस दोषकी निवृत्तिके वास्ते पराशर मुनिने (डाम) अग्निसे दग्धकरनेको फरमाया है, तातें धर्मादिककी प्राप्तिके अर्थ और पापादिककी निवृत्तिके अर्थ चारों युगोंके धर्म एक नहीं हैं किंतु न्यारे न्यारेही हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

प्रतियुगायुर्बलादिह्रास।

आयुर्वीर्यमथो बुद्धिर्बलं तेजश्च पुत्रक।
मनुष्याणामनुयुगं ह्रसतीति निबोध मे ॥ १३ ॥
भूमिर्नद्यो नगाः शैलाः सिद्धा देवा महर्षयः।
कालं समनुवर्त्तंते यथा भावा युगे युगे ॥ १४ ॥

अर्थ–हे पुत्र! मनुष्योंके आयुष्य, वीर्य, बुद्धि, बल और तेज ये सबभी युगयुगके प्रति कमती होते हैं ऐसा तू मेरेसे निश्चय करके जान। क्योंकि सतयुगके मनुष्योंका आयुष्य लक्ष वर्षका रहा. त्रेतामें दश हजार वर्षका और द्वापरमें हजार वर्षका तथा कलियुगमें मनुष्योंका आयुष्य शत वर्षका है, इस रीतिसे चारों युगोंके मनुष्योंका आयुष्य जुदा जुदा कहा है और चारों युगोंके मनुष्योंका सामर्थ्य, बुद्धि, बल और तेज येभी जुदे जुदेही हैं, क्योंकि दूसरे युगोंमें युद्धमें (योद्धा,) युद्ध करनेवाले वृक्ष और पर्वतोंको उखाड २ कर परस्पर मारते रहे और इस कलियुगमें तो दांतूनभी नहीं तोडसकते हैं। हे शिष्य! जैसे युग युगमें उत्पन्न भये जो सकल पदार्थ हैं वे पदार्थ और भूमि, नदी, वृक्ष, पर्वत, सिद्ध, देव, ऋषि इत्यादिकभी सर्व युग युगके कालको अनुसरते हैं॥

कृतादियुगोत्पन्नावतार।

कृतं नाम युगं तात यत्र धर्मः सनातनः।
कृतमेव न कर्त्तव्यं तस्मिन्काले युगोत्तमे ॥ १५ ॥
चैत्रस्य शुक्लपञ्चम्यां भगवान्मीनरूपधृक्।
ज्येष्ठे तु शुक्लद्वादश्यां कूर्मरूपधरो हरिः ॥ १६ ॥
चैत्रकृष्णनवम्यां तु हरिर्वाराहरूपधृक्।
नरसिंहश्चतुर्दश्यां वैशाखे शुक्लपक्षके ॥ १७ ॥

अर्थ–हे तात ! कार्तिक शुक्ल नवमी और शुक्रवारके दिन सतयुगका आरंभ हुआ, जिस कृतयुगमें सनातन धर्म चार पादसहित वर्तताथा. सर्व युगोंमें उत्तम उस कृतयुगकालमें सब किया हुआही था और कुछभी करनेका नहीं था अर्थात् उस युगकी सर्व प्रजा कृतकृत्यही होती थी । उस कृतयुगमें विष्णुभगवान्के चार अवतार हुआ है । उनमें–चैत्र शुक्ल पंचमीके दिन भगवान् मत्स्यावतार धारण किये १ । ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशीके दिन कूर्म अवतार हुए २ । चैत्र कृष्ण नवमीके दिन वराह अवतार हुए ३ । वैशाखशुक्ल चतुर्दशीके दिन नरसिंह अवतार हुए ४ । इन चारों अवतारोंका शुक्ल वर्ण था ॥ १५--१७॥

त्रेतायुगमें अवतार ।

त्रेतामपि निबोध त्वं यस्मिन्सत्रं प्रवर्तते ।
पादेन ह्रसते धर्मो रक्ततां याति चाच्युतः ॥ १८ ॥
मासि भाद्रपदे शुक्लद्वादश्यां वामनो हरिः ।
राधशुद्धतृतीयायां रामो भार्गवरूपधृक् ।
चैत्रशुक्लनवम्यां तु रामो दशरथात्मजः ॥ १९ ॥

अर्थ--हे शिष्य ! वैशाख शुद्ध तृतीया और शुक्रवारके दिन त्रेतायुगका आरम्भ हुआ था । जिस त्रेतायुगमें यज्ञ होतारहा और धर्मका एक पाद कमती हा तीन पादही शेष रहते हैं । और त्रेतायुगमें भगवान् (रक्त) लाल वर्ण था उस त्रेतायुगमें भगवान्के तीन अवतार हुए । भाद्रपद शुक्ल द्वादशीके दिन वामन अवतार, वैशाख शुक्ल तीजके दिन परशुराम अवतार और चैत्र शुक्ल नवमीके दिन दशरथके पुत्रभाव करके श्रीरामावतार हुए ॥१८॥ १९॥

द्वापरयुगमें अवतार ।

द्वापरे च युगे धर्मो द्विभागो नः प्रवर्त्तते ।
विष्णुर्वै पीततां याति चतुर्धा वेद एव च ।
श्रावणे बहुलेऽष्टम्यां कृष्णोभूल्लोकरक्षकः ॥ २० ॥

अर्थ--हे शिष्य ! कार्तिक कृष्ण अमावास्या और शुक्रवारके दिन द्वापरयुगका आरंभ हुआ । उस द्वापरयुगमें द्विपाद करके धर्म वर्त्तता है । द्वापरयुगमें भगवान् पीतवर्णको प्राप्त हुए तथा व्यासजीने वेदको ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद

और अथर्वणवेद करके चार भाग किये और उस द्वापरयुगमें श्रावण कृष्ण अष्टमीके दिन लोकका रक्षण करनेवाले कृष्ण भगवान् प्रगट हुए ॥ २० ॥

कलियुगधर्मादि ।

पादेनैकेन भो तात धर्मः कलियुगे स्थितः ।
तामसं युगमासाद्य कृष्णो भवति केशवः ।
ज्येष्ठशुक्लद्वितीयायां बौद्धः कल्किर्भविष्यति ॥ २१ ॥

अर्थ--हे तात ! भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी और शुक्रवारके दिन केवल तमोगुणी कलियुगका आरम्भ हुआ । इस कलियुगमें एक पाद करके धर्म स्थित है और इस तामसी कलियुगमें भगवान् कृष्णवर्ण है और इस कलियुगमें ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीयाके दिन बौद्ध हुये और कल्कि अवतार होवेंगे ॥ २१ ॥

प्रश्न--हे स्वामिन् ! आपने चारों युगोंके जुदे जुदे दश अवतार मेरेको सुनाये परंतु वे दश अवतार कौन कौनसे समयमें भये हैं सो कृपा करके कहो ॥

उत्तर--अह्नो मध्ये वामनो रामरामौ मत्स्यः क्रोडश्चापराह्ले
विभागे । कूर्मः सिंहो बौद्धकल्की च सायं कृष्णो
रात्रौ कालसाम्ये च पूर्वे ॥ २२ ॥

अर्थ--हे शिष्य ! दिवसके मध्याह्न समयमें वामन १ परशुराम २ श्रीरामचन्द्र ३ ये तीन अवतार हुये हैं । मत्स्य और वराह ये दो अवतार मध्याह्नके पीछे तीसरे प्रहरमें हुये हैं । कूर्म, नरसिंह, बौद्ध, कल्कि ये चार अवतार सायंकालमें हुए हैं । और मध्यरात्रिमें कृष्णावतार हुआ है ॥ २३ ॥

हे शिष्य ! इन दश अवतारोंको स्मरणकरनेसे महान् फल होता है सो गरुडपुराणमें कहा है कि--

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहश्च वामनः ।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्किस्तथैव च ॥ २३ ॥
एतानि दश नामानि स्मर्तव्यानि सदा बुधैः ।
समीपे रोगिणो ब्रयुर्बांधवास्ते प्रकीर्तिताः ॥ २४ ॥

हरेर्नाम्नश्च या शक्तिः पापनिर्हरणे द्विज ।
तावत्कर्तुं समर्थो न पातकं पातकी जनः ॥ २५ ॥

अर्थ–मत्स्य १, कूर्म २, वराह ३, नरसिंह ४, वामन ५, परशुराम ६, रामचंद्र ७, कृष्ण ८, बुद्ध ९, कल्कि १० ये दश अवतारोंके नाम बुध जनोंको सदा स्मरण करने चाहिये । क्योंकि रोगीके मरण कालमें इन दश नामोंका जो पुरुष समीप रहकर उच्चारण करते हैं वेही बांधव कहेजाते हैं । भगवान् गरुडके प्रति कहते हैं कि, हे गरुड ! पापोंके नाश करनेमें हरिके नामकी जितनी शक्ति है उतने पाप करनेको पातकी समर्थ नहीं होता है अर्थात् जितने पाप हरिके नामसे नाश होते हैं उतने पापोंको पापी जन करभी नहीं सकता है । जैसे अग्नि जितने काष्ठोंको जलानेमें समर्थ है उतने काष्ठोंको मनुष्य ला भी नहीं सकता है. जैसे–एक वर्ष तक संचय किये हुए काष्ठोंको एक घडीमें अग्नि जला देती है ऐसे अनेक जन्मोंके संचित पापकर्मोंको क्षणमात्रमें हरिका नाम अंतकालमें नाश कर देता है २३–२५ ॥

प्रश्न–हे गुरुजी ! अंतकालमें कौनसे पदार्थ मुक्तिके देनेवाले हैं ?

एकादशीव्रतं गीता गङ्गाम्बु तुलसीदलम् ।
विष्णोः पादांबु नामानि मरणे मुक्तिदानि च ॥ २६ ॥

अर्थ–एकादशीका व्रत १, गीताका पाठ २, गंगाजल ३, तुलसीदल ४, विष्णुका चरणामृत ५, विष्णुसहस्रनामोंका पाठ ६ यह षट् पदार्थ मरणकालमें मुक्तिके दाता हैं अर्थात् ये छः कार्य नित्य अवश्य कर्तव्य हैं ॥ २६ ॥

प्रश्न–हे गुरुजी! मरण कालमें धनी पुरुषोंको कौन कौनसे दान करने चाहिहे ?

मरणसमयमें दान ।

उत्तर–तिला लोहं हिरण्यं च कार्पासो लवणं तथा ।
सप्तधान्यं क्षितिर्गाव एकैकं पावनं स्मृतम् ॥ २७ ॥

१–व्रीहयो यवगोधूमा मुद्गा माषाः प्रियंगवः ।
चणकाः सप्तमा ज्ञेयाः सप्तधान्यमुदाहृतम् ॥

अर्थ–व्रीहि १, यव २, गेहूं ३, मूंग ४, उडद ५, प्रियंगु ६, चणा ७ ये सात मिलकर सप्तधान्य कहा जाता है.

अर्थ–तिल १, लोह २. सुवर्ण ३, सूतवस्त्र ४, लवण ५, सप्तधान्य ६, भूमी ७, गौ ८ इन अष्ट महादानमें एक एक दानभी अंतकालमें महापातकोंके नाश करनेवाले हैं, आठों दान करनेवालेको कहनाही क्या है ? ॥२७॥

प्रश्न–हे गुरुजी ! चारों युगोंमें विष्णुके चौवीस अवतार मेरे सुननेमें आये हैं और आपने तो दश अवतार मेरेको सुनाये हैं, हे कृपानिधे! चौवीस अवतार कौन कौन है?और विष्णु भगवानने किस कारण धारण किये हैं. सो कृपा करके कहो ।

चौवीस अवतारका विवरण ।

उत्तर–शंखासुर दैत्यका वध करके वेदोंका उद्धार करन वास्ते मत्स्यावतार हुआ १ । कूर्मने अपने भक्त देवोंको अमृत पान करानेवास्ते समुद्रके मन्थन समयमें मन्दराचलकी रईको अपने पृष्ठ पर धारण किया २ । वराहने हिरण्याक्ष दैत्यका वध और पृथ्वीका उद्धार किया ३ । नरसिंहजीने हिण्यकशिपु दैत्यका वध और प्रह्लादका रक्षण किया ४ । वामनने बलिराजाको छल कर इन्द्रको राज्य दिया ५ । परशुरामने दुष्ट क्षत्रियोंका नाश किया ६ । रामचन्द्रजीने रावण कुंभकर्णादि राक्षसोंका वध करके देवादिकोंको सुखी किये ७ । कृष्णजीने शिशुपाल दंतवक्त्रादिकोंको मारके पृथ्वीका भार उतारा ८ । बौद्धने असुरोंको मोह करनेवास्ते वेदविरुद्ध मार्ग चलाकर मौन धारण किया ९ । कल्कि वेदोक्त धर्मका पुनः स्थापन करेंगे १० । सनकादिकोंने ब्रह्मचर्यादिक धर्मोंका मार्ग चलाया ११ । योगसृष्टिके ज्ञानकेवास्ते यज्ञावतार हुआ १२ । दत्तात्रेयने अत्रिऋषिका मनोरथ सफल कर वेद वेदांतके ज्ञानकांडपरसें गुरुज्ञान चलाया १३ । कपिलने अपनी माताको सांख्य ज्ञानका उपदेश कर मोक्ष दिया १४ । सृष्टिके क्षेमके अर्थ नर नारायण हुए हैं १५ । हरिने गजेन्द्रको ग्राहसे रक्षणकर मोक्षदिया १६ । पृथुराजने पृथ्वीको सरल कर पृथ्वीरूपगौका दोहन किया १७ । ऋषभने आत्मज्ञान और परमहंस धर्म चलाया १८ । हयग्रीवने हयमुख दैत्यका वध किया १९ । हंसावतारने ब्रह्माको ज्ञानका उपदेश किया । २० धन्वंतरीने दिव्य औषधियोंका शोधन करके आयुर्वेद प्रगट किया २१ । नारदने ब्रह्मासे उपदेश लेकर सृष्टिमें उपासना मार्ग चलाया २२ । दैत्योंको मोहित करके अपने भक्त देवोंका अमृत पान करानेके लिये मोहिनी अवतार धारण किया २३ । व्यासने कलिके जीवोंकी मंद बुद्धि देखकर एक वेदको चार वेद और अठारह पुराण भारतादि इतिहास ग्रंथ रचे २४ ।

"परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगेयुगे ॥ "

इस प्रकार साधुओंका रक्षण करने और दुष्टोंका विनाश करने तथा धर्मका स्थापन करनेके लिये-युग युग विष्णु भगवान् अवतारोंका धारण करते हैं। अवतारोंमें कोई २ पूर्ण अवतार हैं और कोई कोई अंश अवतार हैं तथा कोई आवेश अवतार हैं ॥ इति ॥

प्रश्न-हे गुरुजी ! सतयुग, त्रेता और द्वापर इन तीन युगोंके धर्मोमेंसे इस कलियुगमें कौनसे धर्म वर्जित हैं ?

कलिमें वर्ज्य धर्म ।

उत्तर-अग्निहोत्रं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम् ।
देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पंच विवर्जयेत् ॥ २९ ॥

अर्थ-हे शिष्य!अग्निहोत्र, गौको मारकर यज्ञादिक करना, संन्यास, मांससे श्राद्ध करना तथा देवरसे पुत्रोत्पत्ति ये पंच कर्म कलियुगमें वर्जित हैं॥२९॥

और हेमाद्रि ग्रंथमें ऐसा कहा है कि-

संसर्गदोषास्तेयान्यमहापातकनिष्कृतिः ।
दत्तौरसेतरेषां तु पुत्रत्वे न परिग्रहः ॥ ३० ॥

अर्थ-और कलियुगमें संसर्ग दोष मानना नहीं तथा चोरी आदिक अन्य महापातकोंका प्रायश्चित्त कलियुगमें करना नहीं अर्थात् सुवर्णकी चोरी करनेवालेको मुसलके भारसे राजा मारडालै तथा मातागामीका लिंगच्छेदन करै तथा मदिरा पीनेवालेके मुखमें गरम तेल डालकर उसको मार डाले तथा ब्रह्महत्यारेको राजा उसके गाममेंसे निकाल देवे इत्यादि प्रायश्चित्त जो पापियोंके पाप निवारणके लिये लिखा है ऐसे प्रायश्चित्त कलियुगमें राजाने नहा देवे तथा दत्तपुत्र और औरसपुत्र इन दो पुत्रोंके विना दूसरे पुत्रोंको पुत्र भावसे अंगीकार न करें ॥ ३० ॥

प्रश्न-दत्तपुत्र और औरसपुत्र किसको कहते हैं ? और दूसरे कितने प्रकारके पुत्र हैं ?

औरसादि पुत्र ।

उत्तर-औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च ।
गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च दायादा बान्धवाश्च षट् ॥ ३१ ॥

कानीनश्च सहोढश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा ।
स्वयं दत्तश्च शौद्रश्च षडदायादबान्धवाः ॥ ३२ ॥

अर्थ–औरस १ क्षेत्रज २ दत्त ३ कृत्रिम ४ गूढोत्पन्न ५ अपविद्ध ६ ये षट् पुत्र पिताके धनके भागदार होते हैं, और कानीन १ सहोढ २ क्रीत ३ पौनर्भव ४ स्वयंदत्त ५ शौद्र ६ ये षट् पुत्र पिताके भागदार नहीं होते हैं. अपनी अपनी सजातीय कन्यामें विवाह संस्कार करके उत्पन्न किया हुआ जो पुत्र है सो औरस पुत्र कहा जाता है१। मरेहुएकी, नपुंसककी वा संतति-रोकनेवाले रोग करके युक्त पुरुषकी स्त्रीमें घृत लगान आदि नियोगके धर्मसे गुरुकी आज्ञासे उत्पन्न किये हुए पुत्रको क्षेत्रज कहते हैं २। जिस पुरुषके पुत्र नहीं होताहोवै उस पुरुषको अपनी जातिका माता पिताने प्रसन्नतासे जल ले संकल्प करके जो पुत्र दिया है सो दत्तपुत्र कहा जाता है ३। और माता पिताके परलोकके करने न करनेके गुण दोषके जाननेवाले माता पिताकी तरह सेवा आदि करे वह कृत्रिम पुत्र जानना ४। जिसके घरमें स्थित भार्या-से जो पुत्र उत्पन्न होय तो वह सजातिका है यह ज्ञान होनेपर किसका है ऐसा ज्ञान न हो तो वह घरमें गुप्त उत्पन्न हुआ पुत्र उस भार्यावालेकाही है उसका नाम गूढोत्पन्न है ५। माता पिता करके त्याग किया हुआ अथवा उनमेंसे एक करके त्याग किया हुआको जो अंगीकार करता है उसका अपविद्ध पुत्र कहाजाता है ६। पिताके घरमें कन्या जिस पुत्रको छिपा हुआ उत्पन्न करे उस कन्याके व्याहनेवालेके पुत्रको कानीन कहते हैं ७। जो गर्भिणी ज्ञातगर्भा वा अज्ञातगर्भा व्याही जाय उसमें उत्पन्न हुआ पुत्र व्याहनेवालेका है वह सहोढ कहा जाता है ८। माता पितासे मोल लियाको क्रीत पुत्र कहते हैं ९ भर्तीने त्यागी हुई अथवा विधवा फिर दूसरेकी भार्या होकर पुत्र उत्पन्न करे वह उत्पन्न करने-वालेका पौनर्भव पुत्र कहा जाता है १०। और जिसके माता पिता मरगये होंय अथवा द्वेषसे त्याग किया हुआ पुत्रही जिसको अपना आत्मा देता है वह पुत्र उसका स्वयंदत्त पुत्र कहा जाता है ११। और व्याही हुई शूद्रामें ब्राह्मण जिस पुत्रको उत्पन्न करे उसका नाम शौद्र है वा पारशव है १२। ये द्वादश पुत्र कहे, और दूसरेभी कुंड और गोलक ये दो प्रकारके पुत्र हैं। जो पतिके जीते हुए जारसे उत्पन्न हुआ हो सो कुंड पुत्र और पतिके मर-नेसे पीछे जो जारसे उत्पन्न हुआ हो सो गोलक पुत्र कहा जाताहै. इस प्रकार मनुस्मृतिमें ये चौदह प्रकारके पुत्र कहे हैं. उनमें औरस और दत्त

ये दो पुत्र कलियुगमें पुत्रभावसे मानने योग्यहैं दूसरे नहीं। और बहुत भाइयोंमें एक भाई पुत्रवाला हो तो सब भाई पुत्रवाले हैं । और बहुत स्त्रियोंमें एक स्त्री पुत्रवाली हो तो सब सतियां पुत्रवाली हैं. इन पुत्रोंमें प्रथम प्रथमके न होनेपर अगले अगले पिताके धनक भागदार होते हैं । इति ॥ ३१ ॥३२॥

फिर आदित्यपुराणमें ऐसा कहा है कि–

कन्यानामसवर्णानां विवाहश्च द्विजन्मभिः ।
बालायाः क्षतयोन्यास्तु वरेणान्येन संस्कृतिः॥ ३ ३॥
सौत्रामण्यामपि सुराग्रहणस्य च संग्रहः ।
आततायिद्विजाग्र्याणां धर्मयुद्धे न हिंसनम् ॥ ३४॥

अर्थ–दूसरे वर्णकी कन्याओंका विवाह ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन द्विजोंने करना नहीं । और जिसकी योनि क्षत हुई जो विधवा बाला है उसका फिर दूसरे वरके साथ विवाह संस्कार नहीं करना । तथा सौत्रामणियज्ञमेंभी मदिरा पीनी नहीं । और अग्नि लगानेवाला १ जहर देनेवाला २ शस्त्र लेके मारने आनेवाला ३ धनका अपहरण करनेवाला ४ क्षेत्रका अपहरण करनेवाला ५ स्त्रीका हरण करनेवाला ६ ये षट् प्रकारके आततायी कहे जाते हैं. ऐसे आततायी जो ब्राह्मण हैं उनको धर्म युद्धमेंभी मारने नहीं ॥ ३४ ॥ ३४ ॥फिर पृथिवीचंद्रोदय ग्रंथमें कहा है कि–

यतेश्च सर्ववर्णेषु भिक्षाचर्या विधानतः ।
नवोदके दशाहं च दक्षिणा गुरुचोदिता ॥ ३५ ॥
ब्राह्मणादिषु शूद्रस्य पचनादिक्रियापि च ।
पितापुत्रविरोधेषु साक्षिणां दंडकल्पनम् ॥ ३६ ॥

अर्थ–कलियुगमें संन्यासियोंको सर्व वर्णोंमे भिक्षा नहीं करनी । और वृष्टिके नवीन जलमें दश दिन तक नाहाने धोनेकी वाट नहीं देखनी । तथा इस कलियुगमें गुरुने मांगी हुई दाक्षिणा नहीं देनी। क्योंकि सांदीपिनि गुरुसे कृष्ण भगवान् बोले कि, हे गुरुजी ! आपके समीपमें हमने संपूर्ण विद्या पढ चुके, अब आप मनइच्छित दक्षिणा मांगलो. गुरु बोले कि, हमारे जो पुत्र मरगये हैं उनको ला देओ ऐसा सुनतेही कृष्णजीने मरेहुए पुत्रोंको ला दिये।

ऐसा कलियुगमें किससे वन सके? इससे कलियुगमें मांगले, ऐसा गुरुसे कहना नहीं। और ब्राह्मण-क्षत्रिय और वश्य इन तीन वर्णोंमें शूद्रकी की हुई रसोई नहीं लेना तथा पितापुत्रकी लडाईमें साक्षी देनेवालेको दंड नहीं देना ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ और बृहन्नारदीय पुराणमें ऐसा कहा है कि–

समुद्रयातुः स्वीकारः कमंडलुविधारणम् ।
देवराच्च सुतोत्पत्तिर्मधुपर्के पशोर्वधः ॥ ३७ ॥
मांसदानं तथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा ।
दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं नरमेधाश्वमेधकौ ॥ ३८ ॥
महाप्रस्थानगमनं गोमेधश्च तथा मखः ।
इमान् धर्मान्कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः ॥ ३९ ॥

अर्थ--इस कलियुगमें जहाजमें बैठकर समुद्रमें जानेवाले पुरुषको फिर अपनी जात नातमें लेना, कमंडलु धारण करना, देवरसे पुत्रकी उत्पात्ति कराना, मधुपर्कमें पशुका वध करना, श्राद्धमें मांस दान करना, वानप्रस्थ आश्रम लेना, वहुत दिन तक ब्रह्मचारी व्रत धारण करना, नरमेध और अश्वमेध यज्ञ करना, महाप्रस्थान गमन करना, गोमेध यज्ञ करना इत्यादि धर्मोंको सर्वथा त्याग देना चाहिये और दूसरे युगोंमें नरमेध-गोमेध अश्वमेधादिक ये सब धर्म जुदे जुदे हैं एक सरीखे नहीं हैं ॥३७--३९ ॥ तथा अन्य स्मृतिमेंभी ऐसा कहा है कि–

कलिमें पापभागी ।

देशकालकुलानि स्युर्भागभाञ्जि कृतादिषु ।
कलौ तु केवलं कर्त्ता फलभुक् पुण्यपापयोः ॥ ४० ॥

अर्थ–सतयुग, त्रेता और द्वापर इन तीन युगोंमें एक जनके किये पुण्य-पापोंके भोगनेमें देश, गाम और कुल ये तीनों भागी होते हैं और इस कलियुगमें तो जो कर्मोंको करनेवाला है सो केवल कर्ताही भोगता है, दूसरा कोईभी भोगता नहीं । जैसे त्रेतायुगमें एक सूर्यवंशी राजाका वडा पुत्र तप करने वनमें चला गया और उस राजाने अपने छोटे पुत्रको राजगादीपर बठा दिया, उस अन्यायसे राजाके राज्यमें बारहवर्षतक वृष्टि नहीं हुई,

वृष्टिके न होनेसे देश गाम और कुलको दुःख भोगना पडा, ऐसा कलियुगमें नहीं होता है, इसलिये चारों युगोंमें धर्म अधर्मकी मर्यादा जुदी जुदीही है॥४

कृतयुगादिमें पुण्यतीर्थ।

सर्वं कृतयुगे पुण्यं त्रेतायां पुष्करं स्मृतम्।
द्वापरेऽपि कुरुक्षेत्रं गंगा कलियुगे स्मृता॥ ४१॥

अर्थ--सतयुगमें सब तीर्थोंका पुण्य होता रहा और त्रेतायुगमें पुष्कर मुख्य तीर्थ कहा है उस त्रेतायुगमें पुष्करकी यात्राको ही सर्व लोक मुख्य करके करते रहे। तथा द्वापर युगमें कुरुक्षेत्र मुख्य तीर्थ रहा। उस कुरुक्षेत्रकी यात्राकोही मुख्य करके सर्व लोक करते रहे। और इस कलियुगमें तो भागीरथी गंगा मुख्य तीर्थ है और पापी जीवोंका उद्धार करने वास्तेही गंगाजी इस लोकमें वैकुंठ लोकसे आई हैं। जब सगर राजाके मरे हुए साठ हजार पुत्रोंका उद्धार गंगाजीने किया, तब भक्तिभावसे गंगाजीमें स्नान करनेवाले मनुष्योंकी मुक्तिको गंगाजी जीवद्दशामें देवे तो क्या आश्चर्य है?क्योंकि दूसरे सब तीर्थ इस पृथ्वीमें उत्पन्न भये हैं और गंगाजी ता जीवोंका कल्याण करने वास्तेही वैकुंठसे आई हैं।इस जगत्‌में साढे तीन करोड तीर्थ हैं उन सब तीर्थोंमें गंगाजी श्रेष्ठ हैं॥ ४१॥ फिर महाभारतमेंभी गंगाजीका माहात्म्य ऐसा कहा है कि--

गंगामाहात्म्य।

दृष्ट्वा जन्मशतं पापं पीत्वा जन्म शतद्वयम्।
स्नात्वा जन्मसहस्राणां हंति गङ्गा कलौ युगे॥ ४२॥

अर्थ–इस कलियुगमें गंगाजीके दर्शन करनेसे सौ जन्मोंके पापोंका नाश, जलको पीनेसे दोसौ जन्मके पापोंका नाश और स्नान करनेसे हजार जन्मोंके पापोंका नाश कर देती हैं। कैसा महान् प्रभाव गंगाजीका है?सो हे शिष्य! हम नहीं कह सकते हैं॥ ४२॥ हे शिष्य! नीतिशास्त्रमें ऐसा कहा है कि–

कलौ दशसहस्रेषु हरिस्त्यजति मेदिनीम्।
तदर्धं जाह्नवीतोयं तदर्धं ग्रामदेवताः॥ ४३॥

इति प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

अर्थ–कलियुगके दश हजार वर्षके पीछे इस पृथ्वीको भगवान् त्याग देंगे, पांच हजार वर्षके पीछे गंगाजी त्याग देगी और अढाई हजार वर्षके पीछे ग्रामोंकी रक्षा करनेवाले ग्रामदेवता इस पृथ्वीको त्याग करेंगे। अनन्तर महाघोर कलि व्यापेगा उस कलिमें सब मनुष्य अपने २ वर्णाश्रमके धर्मोंसे रहित होकर पाखंडी बन जांयगे और वेद शास्त्र, स्मृति, पुराण आदिकोंको नहीं मानेंगे ॥ ४३ ॥ हे शिष्य! इस प्रकारसे चारों युगोंके धर्म मैंने तुमको संक्षेपसे सुनाये, उसका इतनाही प्रयोजन है कि, चारों युगोंमें मुक्तिके उपायभी अलग अलगहा हैं सतयुग आदि तीन युगोंमें जिन उपायोंसे मुक्ति होती रही, उन उपायोंका कलियुगमें निषेध किया है। जैसे कि, कलियुगमें ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी ये चार आश्रमभी शास्त्रकी रीतिसे हैं नहीं, किंतु नाममात्रही हैं इसलिये कलियुगमें मुक्तिका अलगही मार्ग है ॥

इति श्रीमद्रामानुजचरणकमलद्विरेफेण श्रीमत्पंडितगोपालदासेन विरचिते श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकरे कृतादियुगधर्मविवेचनोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः।

श्रियः कांताय नमः। श्रियै नमः । विष्वक्सेनाय नमः । शठकोपाय नमः। नाथमुनये नमः। पद्माक्षाय नमः । राममिश्राय नमः । यामुनाय नमः। पूर्णाय नमः। श्रीमते रामानुजाय नमः॥

कलियुगमें मोक्षोपायका प्रश्न।

शिष्य उवाच–

ऋणानि त्रीण्यथपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्।
अनपाकृत्य मोक्षं तु सेव्यमानो व्रजत्यधः ॥ १ ॥

अर्थ–हे गुरुजी! मनुस्मृतिमें लिखा है कि, ब्राह्मणादि तीन वर्ण, देवऋण, पितृऋण और ऋषिऋण इन तीन ऋणोंको चुकाय मनको मोक्षमें रखना अर्थात् मोक्षचिन्तन करना चाहिये। यदि इन ऋणोंको न चुकाय जो मोक्षकी सेवा करता है वह अधोगतिको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

तात्पर्य यह है कि, ब्राह्मणादिक वर्ण प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रम धारण करके ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इन चार वेदोंको षट् अंगों सहित बारह वर्ष तक पढैं तो ऋषिऋणसे छूटते हैं । पीछे ब्रह्मचर्यव्रतको समाप्त करके कुलवान्‌की शुभ लक्षणवाली कन्याको विवाह करके जब पुत्र उत्पन्न करता है तब पितृऋणसे छूटता है । जब यज्ञ करके देवोंको तृप्त करता है तब देवऋणसे छूटता है । इन तीन ऋणोंसे जब मुक्त होजावे तबही मोक्षके वास्ते यत्न करे । सो इस कलियुगमें इन तीन ऋणोंसे छूटना कठिन है क्योंकि, ब्रह्मचर्यादिक आश्रमोंका धारण करनेसे ये तीन ऋण छूटते हैं और उन ब्रह्मचर्यादिक आश्रमोंके धारण करनेका तो कलियुगमें निषेध किया है । इस लिये हे स्वामिन् ! इस कलियुगमें जीवोंका मोक्ष कौनसे धर्म करनेसे होवेगा ? सो कृपा करके कहो ।

प्रश्नका उत्तर ।

गुरुरुवाच–

द्वापरांते कलेरादौ पाखंडप्रचुरे जने ।
रामानुजेति भविता विष्णुधर्मप्रवर्त्तकः ॥ २ ॥
पाखंडबहुले लोके कुदृष्टिजनसंकुले ।
कलौ वैष्णवसिद्धांतैः पुनरुद्धार्यते यतिः ॥ ३ ॥

अर्थ–गुरु उत्तर देते हैं–हे शिष्य ! तुमने पूछा कि, इस कलियुगमें कौनसा धर्म मोक्षका देनेवाला है. सो ब्रह्मसंहितामें तथा पद्मपुराणके पूर्वखण्डमें कहा है कि द्वापरयुगके अंत और कलियुगके आदिमें जब जैन, बौद्ध, चार्वाक आदिक वेदोंको खंडन करनेवाले बहुत पाखंडी लोक हो जाँयगे तब कलिमलदूषित जीवोंका उद्धार करनेके वास्ते श्रीशेष भगवान् विष्णुधर्मके चलानेवाले श्रीरामानुजस्वामीरूपसे प्रगट हो अपने श्रीवैष्णवधर्मके सिद्धांतो करके उन पाखंड मिश्रित जनोंको उद्धार करैंगे ॥ २ ॥ ३ ॥ हे शिष्य ! फिर भार्गव पुराणमें ऐसा कहा है कि–

एवं शेषांशसंभूतं रामानुजमुनिं विना ।
नान्यः पुमान् समर्थः स्यात्तज्जन्मेदं निवारितुम् ॥ ४ ॥

अर्थ-शेषका अवतार इस रामानुज मुनिके विना जन्म मरणके निवारण करनेको दूसरा कोई भी पुरुष समर्थ नहीं है, इस कलिकालमें पापी जीवोंका मोक्ष करनेमें रामानुजही समर्थ है दूसरा कोई पुरुष समर्थ नहीं ॥ ४ ॥ हे शिष्य ! इस रीतिसे कलियुगमें जीवोंको मोक्ष पद देनेवाला श्रीवैष्णवधर्मही निश्चय किया है, सो चार आश्रमोंसे (संमिलित) अभिन्न पांचवां आश्रम है और उस वैष्णव धर्मका आचारभी चार आश्रमोंसे विलक्षणही है, जैसे मनु आदिक धर्मशास्त्रके कर्ताओंने वेदानुसार वर्ण और आश्रमोंके धर्म चलाये हैं वैसे रामानुज मुनिनेभी वैष्णव धर्म कलियुगमें चलाया है ॥

प्रश्न-हे गुरुजी ! चार आश्रमोंसे पांचवां वैष्णवाश्रम जुदा है और उसके धर्मभी चार आश्रमोंसे जुदे हैं, ऐसा कौन शास्त्रमें कहा है, क्योंकि जिस धर्मका और धर्मको चलानेवालेका नाम शास्त्रोंमें नहीं मिले तौ वह धर्म और धर्मका चलानेवाला नानक पंथी कबीर पंथियोंकी तरह पाखंडी कहा जाता है । इसलिये हे स्वामिन् ! पांचवां वैष्णवाश्रम चार आश्रमोंसे भिन्न है, ऐसा कौन शास्त्रमें कहा है ॥

उत्तर-हे शिष्य ! नारदपंचरात्र ग्रंथमें ऐसा कहा है कि—

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ।
चत्वारो ह्याश्रमा ह्येते पंचमो वैष्णवाश्रमः ॥ ५ ॥
वर्णाश्रमाभिमानेन श्रुतेर्दासो भवेन्नरः ।
वर्णाश्रमविहीनाश्च तिष्ठंति श्रुतिमूर्द्धनि ॥ ६ ॥

अर्थ-ब्रह्मचारी १ गृहस्थ २ वानप्रस्थ ३ संन्यासी ४ ये चारही आश्रम हैं और इनसे पांचवां वैष्णवाश्रम है ॥ ५ ॥ हे शिष्य ! उन चार वर्ण और चार आश्रमोंके अभिमान करके मनुष्य श्रुतिका दास होता है । जैसे स्वामीके हुकममें सेवक रहता है, वैसे मैं ब्राह्मणादिक वर्ण हूं और मैं ब्रह्मचारी हूं संन्यासी हूं ऐसा अभिमान करनेवाला मनुष्यभी वेदके हुकममें रहता है, अर्थात् जैसा हुकम वेद फरमावे, वैसेही इनको हुकममें चलना पडता है । और इन वर्ण आश्रमों करके विलक्षण जो वैष्णव हैं व श्रुतिके मस्तकमें रहते

---

१ जैसा महाभारतको " भारतः पञ्चमो वेदः " करके वेदसाम्य माना है ऐसेही यह वैष्णवाश्रमभी ब्रह्मचर्य्यादि आश्रमोंसे मिलते हुए वैशिष्ट्यपाता है अर्थात् उनसे भिन्न नहीं॥

हैं अर्थात् वे वैष्णव वेदके शिरोमणि हैं और वे वैष्णव केवल भगवान्‌की आज्ञामेंही वर्तते हैं इस कारण वे भगवान्‌केही दास हैं श्रुतिके नहीं ॥ ६ ॥

हे शिष्य ! देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण ये तीन ऋण वैष्णवोंको नहीं हैं ऐसा श्रीभागवतमें कहा है कि–

देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां न किंकरो नायमृणी च राजन् ।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कृत्यम् ॥ ७ ॥

अर्थ–जो पुरुष सर्व कृत्योंको त्याग करके अर्थात् करने योग्य जो वर्णाश्रमोंके धर्म हैं उनका परित्याग करके सर्व प्रकारसे अर्थात् मन वचन और काया करके मुकुंद भगवान्‌के शरणको प्राप्त हुआ है, सो पुरुष देव, ऋषि, भूत, कुटुंब, मनुष्य, पितृ आदिकोंका किंकर और देवादार नहीं होता है। क्योंकि भगवतके शरणमें जो पुरुष आता है उसपर किसीकाभी हक नहीं रहता है ॥ ७ ॥

प्रश्न–हे ज्ञाननिधे ! सर्व धर्मोंका त्याग करके भगवतके शरण होना, ऐसा किसने कहा है--

उत्तर–गीताशास्त्रमें भगवानने ऐसा आज्ञा दी है कि–

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ ८ ॥

अर्थ–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी, इन वर्ण और आश्रमोंके सर्व धर्मोंका त्याग करके एक मेरे शरणको प्राप्त हो, मैं तुमको सब पापोंसे निवृत्तकर मोक्षकोभी देताहूँ तू शोक मत करो । ऐसा अर्जुनको भगवानने कहा है । इसालिये हे शिष्य ! वैष्णवाश्रममें सबधर्मोंसे शरणागति धर्म मुख्य है, और उस शरणागतिमें सर्व धमाका त्याग करके एक भगवतका कैंकर्य करना ही मुख्य कर्तव्य है और यहही कलियुगमें जीवोंके मोक्षका सुख उपाय है ॥ ८ ॥

प्रश्न--हे स्वामिन् ! यह श्रीवैष्णव धर्म इस कलियुगमें रामानुज स्वामीने चलाया है ऐसा आपने कहा.. सो रामानुज स्वामीने कौनसे प्रामाणिक ग्रंथके मतको लेकर वैष्णव धर्म चलाया है: और यह श्रीवैष्णत्र धर्म इस जगतमें

अनादि कालसे है या रामानुज स्वामीनेही प्रगट किया है ? और जो अनादि कालसे है तौ इस धर्मको प्रथम किसने प्रगट किया है. और इस वैष्णवधर्मको प्रतिपादन करनेवाला कौनसा मुख्य ग्रंथ है.और उस ग्रंथका कर्ता कौन है?

उत्तर--हे शिष्य ! यह श्रीवैष्णव धर्म इस जगतमें अनादि कालसेही चला आता है परंतु द्वापरके अंतमें और कलियुगकें आदिमें बौद्ध जैनादिक पाखंडियोंकी वृद्धि होनेसे यह धर्म मलिन होगया था, पीछे शेषावतार रामानुज महाराजने उन पाखंडियोंको जीतकर इस धर्मको फिर यथावत् स्थापन किया, इसलिये इस अध्यायके द्वितीय श्लोकमें "विष्णुधर्मप्रवर्त्तकः" ऐसा रामानुज मुनिका विशेषण दिया है, और इस धर्मको नारदपंचरात्र ग्रंथद्वारा नारायणने प्रतिपादन किया है सो हे शिष्य ! महाभारतमें मोक्ष धर्मके नारायणीय आख्यानमें कहा है कि--

पंचरात्र प्रामाण्य।

सांख्यं योगं पंचरात्रं वेदारण्यकमेव च।
परस्परांगान्येतानि पंचरात्रं च कथ्यते ॥ ९ ॥
पंचरात्रस्य कृत्स्नस्य वक्ता नारायणः स्वयम्।
तत्रैष धर्मः कथितः स्वयं नारायणेन हि ॥ १० ॥
नूनमेकांतधर्मोऽयं श्रेष्ठो नारायणप्रियः।
एवमेष महान् धर्म आद्यो राजन्सनातनः ॥ ११ ॥

अर्थ--सांख्य १ योग २ पंचरात्र ३ वेद ४ उपनिषद् ५ ये पांच अंग परस्पर मिलकर पंचरात्र ऐसा नाम कहा है। और समग्र पंचरात्र ग्रंथके कर्ता साक्षात् नारायण हैं। उस पंचरात्र ग्रंथमें आप नारायणनेही निश्चय करके यह श्रीवैष्णव धर्म कहा है। और हे राजन् ! निश्चय करके अत्यंत श्रेष्ठ ऐसा यह एकांत धर्म है। सो यह धर्म नारायणको बहुत प्रिय है। इस प्रकारसे यह धर्म सब धर्मोंसे (महान्) वडा है। और सब धर्मोंसे आदि है, तथा सनातन है अर्थात् निरंतर ही है. किसी वखत नहीं रहा ऐसा नहीं है। इस धर्मका प्रतिपादन इस पंचरात्र ग्रंथमें अत्यंत विस्तारसे किया है ॥ जैसे वेद नारायणके श्वाससे प्रगट हुये हैं, तैसे यह पंचरात्रभी "पञ्चरात्रस्य कृत्स्नस्य वक्ता नारायणः स्वयम्" इसप्रमाणसे नारायणकी वाणीसे उत्पन्न भया है।

और जैसे नारायणने प्रथम ब्रह्माको वेद पढाये वैसे यह पंचरात्रभी नारायणने " सार्धकोटिप्रमाणेन ब्रह्मणा केशवाच्छ्रुतम् " प्रथम ब्रह्माकोही पढाया फिर क्रमसे नारदादिकोंको पढाया है, इसलिये यह पंचरात्र खुद नारायणका किया हुआ है, यह पंचरात्र वेदके तुल्य हैं. और अतिउत्तम है, तथा स्वतंत्र है और वेदके सदृश प्रबल प्रमाणरूप है ॥ ९–११॥

मायावादीका प्रश्न–

हे वैष्णवधर्मसिद्धांतिन् ! तुम्हारे वैष्णव धर्मको सब धर्मोंसे आदि और सनातन जो तुम कहते हो, सो नहीं बनसकता । क्योंकि धर्मशास्त्रोंके आदि ग्रंथ मनुस्मृति है, उस मनुस्मृतिमें स्वायंभु मनुने तुम्हारे धर्मका वर्णन नहीं किया है।

उत्तर--किया है, परंतु द्वेषबुद्धिके कारण तुम नहीं देखते हो । मनुने मनुस्मृतिके आरंभमेंही प्रथम पंचरात्रके कर्ताकाही वर्णन कियाहै, सो यह श्लोक है कि--"आपो नारा इतिप्रोक्ता०"पीछे मनुस्मृतिके समाप्तिमेंभी इसीही देवका वर्णन किया है कि--"प्रशासितारं सर्वेषाम्" और मनुभी जिन जिन धर्मोंका उपदेश करते हैं वे सब धर्म पंचरात्र ग्रन्थसेही कहते हैं, सो यह श्लोक है कि– " तस्मात्प्रवक्ष्यते धर्मान् मनुःस्वायंभुवःस्वयम् । " इसलिये मनुस्मृतिकाभी यह पंचरात्र मूल रूप है। और हे वादी ! उस मनुस्मृतिमें तुम्हारा शैव धर्म तो बिलकुल नहीं दीखता है।तुम्हारे धर्ममें, पंच देहका पूजन१पार्थिवपूजन २ पंचाक्षरी मंत्रका जाप ३ भस्म चुपडना ४ रुद्राक्षका धारण ५ ये धर्म मुख्य हैं, इनके निरूपणका तो एक अक्षरभी मनुने लिखा नहीं, इसलिये तुम्हारा धर्मही अप्रमाणिक है । हे वादी ! जैसे समुद्रका मंथन करके भगवानने अमृत निकाला था, तैसे सर्व वेदादिकोंका सार निकालकर नारायणने पंचरात्र सार्धकोटि (१॥ क्रोड) ग्रंथ ब्रह्माको उपदेश किया फिर ब्रह्माने सौ हजार श्लोकोंकरके रचकर नारदको कही है । सो कहा है कि--"कृतं शतसहस्रं हि श्लोकानामिदमुत्तमम्" पंचरात्र ग्रंथ है, सो वैष्णवोंका मुख्य शास्त्र है। और इसी पंचरात्रके धर्मका उपदेश गीतामें अर्जुनके प्रति.श्रीकृष्णजीनेभी किया है कि–" इमं विवस्वते योगं " हे अर्जुन ! यह योग मैंने सूर्यको कहा था और सूर्यने मनुको और मनुने इक्ष्वाकुको और " इक्ष्वाकुणा च कथितो व्याप्य लोकानवस्थितः " इक्ष्वाकुने कहा हुआ यह पंचरात्रधर्म इस लोकमें व्याप करके रहा है, " एवं परंपराप्राप्तम् " इस रीति परंपरासे प्राप्त हुआ जो यह पंचरात्र धर्म है उसको फिर रामानुज मुनिने कलियुगमें "सर्वं विष्णुमयं जगत्"इस वचनको सच्चा करनेके

वास्ते अपने श्रीभाष्यादि ग्रन्थोंद्वारा जगतको विष्णुधर्ममय कर दिया है ॥ इस प्रकारसे, हे वादी ! परम पवित्र और सर्व ग्रंथोंमें अत्यंत श्रेष्ठ ऐसा श्रीपंचरात्र ग्रंथ है उसमें पांच भेदोंका निरूपण किया है। पहिला जीव और ईश्वरका भेद १, दूसरा जीवोंका परस्पर भेद २, तीसरा जीव और जडका भेद ३, चौथा ईश्वर और जडका भेद ४, पांचवां जडोंका परस्पर भेद ५। ईश्वर सेव्य है और जीव सेवक हैं। ईश्वर शेषी है और जीव शेष हैं, ईश्वर एक है और जीव अनंत हैं। ईश्वर उपास्य है और जीव उपासक हैं इस प्रकारके भेदज्ञानसे मोक्ष कहा है ॥

वादीप्रश्न--हे विशिष्टाद्वैतमतबोधक ! हमारा जो निर्विशेषाद्वैत मत है, उस मतमें इन पंचभेदोंको नहीं माने हैं। किंतु जीव और ईश्वरका अभेदकोही सिद्ध किया है, इसहेतु तुम्हारे पंचरात्र मतके पांच भेदोंको हम नहीं मानते हैं ॥

उत्तर–हे मायावादी ! इन पंच भेदोंको तुमही नहीं मानते हो, कि दूसरे षट् शास्त्रोंके कर्ताभी नहीं मानते हैं ? क्योंकि जिस मतको बहुत मतवाले मानते हैं वही मत प्रामाणिक और सच्चा कहा जाता है और अपने मनसे आपही अकेला जिस मतको खडा करता है सो मत पंचके प्रमाणोंसे रहित होनेसे अप्रामाणिक तुच्छ कहा जाता है। सो मीमांसामें कहा है कि–"भूयसां स्याद्बलीयस्त्वम्" अर्थात् बहुत मत बलवान् होता है। इससे हमारे विशिष्टाद्वैतमतमें इन षट् शास्त्रके कर्ताओंका प्रमाण है कि–न्यायशास्त्रके कर्ता गौतम १, वैशेषिक शास्त्रके कर्ता कणाद २, सांख्यशास्त्रके कर्ता कपिल ३, योगशास्त्रके कर्ता शेषावतार पतंजलि ४, पूर्वमीमांसा शास्त्रके कर्ता जैमिनि ५ उत्तरमीमांसा शास्त्रके कर्ता व्यासजी हैं ६ इन षट् शास्त्रोंके कर्ताओंने जीव और ईश्वरका भेदही माना है, तथा भेदज्ञानसेही मोक्षभी माना है ॥

मायावादी प्रश्न–हे विशिष्टतत्त्वरते ! तुमने जीव चैतन्य बहुत माने हैं और ईश्वर एक माना है, तुम्हारे मतमें स्थावर जंगमरूप शरीरोंमें आत्मा जुदे जुदे हैं सब शरीरोंमें एक आत्मा नहीं है, और इन अनंत जीवोंका पालन पोषण कर्ता जो ईश्वर है सो एक है, ऐसा जो तुम्हारा मत है, सो वेदांतकर्ता व्यासजीके सिद्धांतसे मिलता है या विरुद्ध है ? ।

उत्तर–व्यास मुनिके सिद्धांतसे मिलता हुआही हमारा सिद्धांत है किंचित् मात्रभी विरुद्ध नहीं ॥ जैसे हमारे सिद्धांतमें जीव अनंत हैं और ईश्वर एक है व्यासजीनेभी 'जीव बहुत हैं और ईश्वर एक है' ऐसा जीव ईश्वरका भेदज्ञान महाभारतके मोक्षपर्वमें लिख दिया है सो सुन–

बहवः पुरुषा ब्रह्मन्नुताहो एक एव वा ।
को ह्यत्र पुरुषः श्रेष्ठः को वा योनिरिहोच्यते॥ १२॥

अर्थ–वैशंपायनके प्रति जन्मेजयने ऐसा प्रश्न किया कि, हे ब्रह्मन् ! जीव बहुत हैं या एकही है । अर्थात् प्रति शरीर जीव न्यारे न्यारे हैं या सब शरीरोंमें एकही जीव चैतन्य है । और इन जीवोंके मध्यमें सब जीवोंसे न्यारा श्रेष्ठ पुरुष कौन है, और पुरुषके श्रेष्ठपनेमें कौन कारण है ॥ १२ ॥ इस प्रकारका प्रश्न जब जन्मेजय राजाने किया तब वैशंपायनने ऐसा उत्तर दिया कि–

बहवः पुरुषा लोके सांख्ययोगविचारणे ।
नैतदिच्छान्ति पुरुषमेकं कुरुकुलोद्वह ॥ १३ ॥

अर्थ–हे कुरुकुलोद्वह ! सांख्यशास्त्रका और योगशास्त्रका विचार करनेसे मालूम पडता है कि, लोकमें पुरुष तो बहुत हैं और वे सांख्यमतवाले एक पुरुषको नहीं इच्छा करते हैं ॥ १३ ॥ इस रीतिसे एकात्मवादका तिरस्कार करके पुरुष बहुत हैं ऐसा उत्तर दिया । अब दूसरे प्रश्नके उत्तर देते हैं–

बहूनां पुरुषाणां च यथैको योनिरुच्यते ।
तथा तं पुरुषं विश्वमाख्यास्यामि गुणाधिकम् ॥ १४॥

अर्थ–बहुत जीवोंके मध्यमें जैसे एक पुरुषको उन सब जीवोंका कारण कहा है, वैसेही गुणोंकरके अधिक अर्थात् अनंत कल्याण गुणोंवाला ऐसा विश्व (व्यापक) जो पुरुष है उसको मैं कथन करताहूं ॥ १४ ॥ सो अनंत कल्याण गुणोंवाला जो एक पुरुष है उसको कहते हैं कि–

स हि नारायणो ज्ञेयः सर्वात्मा पुरुषो हि सः ।
न लिप्यते फलैश्चापि पद्मपत्रमिवांभसा ॥ १५ ॥

अर्थ–उसको ही नारायण जानना, वह नारायण सर्वका आत्मा है और पुरुषभी वह ही है । जैसे कमलका पत्र जलसे लिपायमान नहीं होता है, तैसे कर्मके सुख दुःख फलों करके नारायण लिपायमान नहीं होते हैं ॥१५॥ इस रीतिसे कर्मजालके बन्धसे रहित नारायण हैं और नारायणसे भिन्न दूसरा जो जीव है, सो कर्मजालमें बन्धा हुआ है । सो कहते हैं कि,–

कर्मात्मा त्वपरो योऽसौ मोक्षबंधैः स युज्यते।
स सप्तदशकेनापि राशिना च स युज्यते ॥ १६ ॥

अर्थ--परमात्मासे भिन्न दूसरा कर्मात्मा है यह कर्मात्मा जो है सो संसारके बन्ध मोक्ष करके जुडा हुआ तथा जन्ममरणवाला है और वह कर्मात्मा जो जीव है सो सप्तदशतत्त्वोंका समूह करके जुडा हुआ है । अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान ये पंच प्राण, मन, बुद्धि ये दो अन्तः--करण तथा श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण ये पंच ज्ञान इन्द्रिय और वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ ये पंच कर्म इन्द्रिय इन सतरह तत्त्वोंसहित इस लिंगशरीर करके जीव जुडा हुआ है । इस रीतिसे एक कर्मात्मा और दूसरा परमात्मा है। ये दोनों अलग' अलग हैं. ऐसा महाभारतमें कहा है ॥ १६ ॥ फिर सर्व उपनिषदोंका साररूप गीता शास्त्र है. उसमेंभी जीवोंका और परमात्माका भेदही सिद्ध किया है कि--

क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ।
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ॥ १७ ॥
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ।
यस्मात् क्षरमतीतोहमक्षरादपि चोत्तमः ॥
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥
न त्वं वाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ १९ ॥

अर्थ--भगवान् अर्जुनको कहते हैं कि--हे अर्जुन ! (क्षर) ये सर्व संसारी चेतन और (अक्षर) मुक्त चेतन इन दोनोंसे भिन्न पुरुषको परमात्मा कहा है। इस रीतिसे गीताशास्त्रमें एक तो बद्ध जीव और दूसरे मुक्त जीव, तथा तीसरा परमात्मा, ये तीनों अलग २ कहे हैं ॥ और इन तीनोंके मध्यमें जो परमात्मा हैं सो तीनों लोकमें प्रवेश करके अंतर्यामिपनसे सबको धारण करता है, ऐसा अव्ययरूप ईश्वर है । अर्थात् जड लोक १ बद्ध चेतन लोक २ मुक्त चेतन लोक ३ ये तीन लोक हैं । इन तीनों लोकोंसे परमात्मा अर्थांतरभूत

है, इससे परमात्मा अव्यय और ईश्वर है । हे अर्जुन ! ऐसे स्वभाव और हेतु करके मैं बद्ध जीवोंसे भी उत्तम हूं । इस कारणसेही स्मृतिमें और वेदमें पुरुषोत्तमनाम करके मैं प्रसिद्ध हूं. हे अर्जुन ! तू और मैं तथा ये सब राजालोग पूर्व कालमेंभी थे और अबभी हैं तथा आगेभी होंगे । इस रीतिसे गीतामें भूत, भविष्यत् और वर्तमान इन तीनों कालमें क्षेत्रज्ञोंका और ईश्वरका भेदही कहा है, किसीभी कालमें अभेद नहीं कहा । हे अर्जुन ! जैसे सर्वेश्वर परमात्मा मैं नित्य हूं, इसमें संशय नहीं, तैसेही तुम क्षेत्रज्ञ आत्माभी नित्यही हैं ऐसा मानना चाहिये । हे वादी ! इस प्रकारसे सर्वेश्वर भगवान्से सर्व आत्माओंका परस्पर भेद पारमार्थिक है ॥ १७–१९ ॥ हे वादी ! ईश्वर एक है और जीव बहुत हैं ऐसा सिद्ध हुआ, अब क्या पूछते हो ?

वादी प्रश्न–आत्मा बहुत हैं कि एक है, ऐसे प्रश्नके प्रकरणमें उपाधि करके आत्माका बहुत्व कहा है और स्वाभाविक जो आत्माका बहुतपना बताते हैं वे निरीश्वर सांख्यादिक भ्रांत हैं । इस रीतिसे हमारे मतवाले नीलकंठ पंडितने महाभारतमें व्याख्यान किया है। इससे आत्माका बहुत्व सत्य नहीं है।

उत्तर–उपाधि करके आत्माका बहुतपना है, ऐसा प्रतिपादन करनेवाला कोईभी शब्द उस प्रकरणमें नहीं है, परंतु नीलकंठनेही ऐसा वर्णन किया है, इसलिये नीलकंठकाही भ्रांतपना सिद्ध होताहै । क्योंकि उपसंहार प्रकरणमें वहांसे आगे ब्रह्माजीने महादेवको कहा है कि–

एतत्ते कथितं पुत्र यथावदनुपूर्वशः ।
सांख्यज्ञाने तथा योगे यथावदनुवर्णितम् ॥ २० ॥

अर्थ–ब्रह्मा कहते हैं कि, हे महादेव पुत्र ! सांख्यशास्त्रके ज्ञानमें तथा योगशास्त्रमें जैसा कथन किया है, तैसा यथार्थही है । और मैंनेभी तुमको जैसा सांख्य और योगमें कहा है वैसाही अनुक्रमसे यथार्थ वर्णन किया है। इस रीतिसे ब्रह्माने सांख्य योग मतकाही अंगीकार पूर्वक उपसंहारभी किया है. और उसीही सांख्य–योगमें आत्माका बहुतपनाही सिद्ध किया है इसलिये सांख्यादिकको भ्रांत कहनेवाला नीलकंठही भ्रांतिवाला है क्योंकि– "सांख्यं च योगं च सनातने द्वे" अर्थात् सांख्य और योग ये दोनों सनातन हैं । इस श्लोककी व्याख्यामें नीलकंठने सनातनशब्दका ऐसा अर्थ किया है कि, सांख्य और योग ये दोनों श्रुतिप्रतिपादित हैं । इस लिये ये दोनों आदि

अंतकरके रहित हैं, अर्थात् नित्य हैं । और उसही सांख्ययोगको वही नीलकंठ भ्रांत कहता है, इससे नीलकंठही भ्रांत है, सांख्ययोग भ्रांत नहीं हैं, क्योंकि वेदप्रतिपादित जो सांख्ययोग हैं, उनमें भ्रांतपना नहीं होसकता है इस कारण विद्वान् सज्जन पुरुषोंको नीलकंठकृत व्याख्यामें विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ २० ॥ इस प्रकारसे जीव ईश्वर और जड, इनके परस्पर स्वरूपका भेद गुणोंका भेद और स्वभावका भेद गीता भारतादिक सकल ग्रंथोंमें प्रतिपादन किये हैं । हे वादी ! पंचरात्र शास्त्रमें साक्षात् नारायणने प्रतिपादन किया हुआ ऐसा जो श्रीवैष्णव सिद्धांत है, सो व्यास, कपिल, पतंजलि, गौतम, जैमिनि आदिक बहुत आचार्योंके प्रमाणों करकेभी सिद्ध किया हुआ होनेसे प्रामाणिक अति उत्तम और सनातन है, सो कलियुगमें विशिष्टाद्वैतमतके आचार्य रामानुजमुनि महाराजने कलिके जीवोंको मुक्तिदान करनेके वास्ते पुनः प्रचलित किया है ॥

वादी प्रश्न–हे विशिष्टवादी ! जैसे तुम्हारे वैष्णवधर्मको नारायणने पंचरात्र शास्त्रमें कहा है, वैसे हमारे शैवधर्मकोभी शिवजीने पाशुपतादिक शास्त्रोंमें कहा है । और जैसे तुम्हारे वैष्णव संप्रदायको कलियुगमें रामानुजमुनिने चलाया है तैसे हमारे शिवधर्मकोभी कलियुगमें शंकरस्वामीने चलाया है। इसलिये हमारे धर्ममें क्या न्यून (कमती) है किंतु कुछभी कमती नहीं है।

उत्तर–हे वादी ! बहुत कमती है, क्योंकि जैसे हमारा धर्म कलिके जीवोंको मुक्तिप्रदान करनेके लिये रामानुज शेषने चलायाहै, वैसे तुम्हारा शैवधर्मभी कलिके जीवोंको नरकदान करने और सन्मार्गसे भ्रष्ट करनेके लिये शंकरने चलाया है । हे शैव ! तुमही विचार करके देखो कि–मुक्तिफल उत्तम है कि नरकफल उत्तम है ? ।

वादी प्रश्न–हे सिद्धांति ! तुम कहते हो कि कलिके जीवोंको नरक देने और सन्मार्गसे भ्रष्ट करनेके वास्ते शंकर मत प्रगट. हुआ है. भला, ऐसा तुम्हारा निंदावचन है कि, किस शास्त्रका वचन है ?

उत्तर–हे प्रमाणाभिक्षुक ! यह निंदावचन नहीं है किंतु पद्मपुराणके उत्तर खंडमें भगवानने ऐसा है कि—

पाखंडशास्त्र बनानेकी भगवदाज्ञा।

त्वं च रुद्र महाबाहो मोहनार्थं सुरद्विषाम् ।
पाखंडाचरणं धर्मं कुरुष्व सुरसत्तम ॥ २१ ॥

तथा पाशुपतं शास्त्रं त्वमेव कुरु सत्तम ।
कङ्कालशैवपाखण्डमहाशैवादिभेदतः ॥ २२ ॥
अवलम्ब्य मतं सम्यक् वेदबाह्या द्विजाधमाः ।
भस्मास्थिधारिणः सर्वे भविष्यन्ति न संशयः ॥ २३ ॥

अर्थ--जब दैत्य और दानव महा बलिष्ठ हो देवोंको बहुत दुःख देने लगे, तब भगवान् उन देवोंके दुःखको जानकर, सिद्धवडके नीचे समाधिमें बैठे हुये शिवको भगवान् बोले कि, हे रुद्र ! हे महाबाहो ! सुरसत्तम ! देवोंके साथ द्वेष करनेवाले दैत्योंको मोह करनेके वास्ते, तू पाखंड धर्मका आचरण कर, अर्थात् पृथ्वीमें तू पाखंड धर्म चलाओ तथा हे सत्तम ! कंकाल, शैव, पाखंड, महाशैव इत्यादिक भेद करके पाशुपत शास्त्रको तूही प्रकट कर, क्योंकि जो कोई ब्राह्मणादिक वर्ण हैं वे सब इस पाशुपतादिक शास्त्रोंके मतको आश्रय कर वेदसे बाह्य और द्विजोंमें अधम तथा भस्म और अस्थि (हाड) इनको धारण करनेवाले होजाँयगे,इसमें संशय नहीं । इस प्रकारसे भगवत्की आज्ञा पाकर जीवोंको सन्मार्गसे भ्रष्ट करनेके वास्ते शिवने पाशुपतादिक शास्त्र रचे हैं। इससे हे वादी ! श्रीनारदपंचरात्र और पाशुपततन्त्र ये दोनों एक सरीखे नहीं हैं किंतु उत्तमाधम हैं ॥ २१--२३ ॥ फिर पद्मपुराणमें आप शिवनेभी पार्वतीको कहा है कि–

तामसपुराण ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि तामसानि यथाक्रमम् ।
येषां श्रवणमात्रेण पातित्यं ज्ञानिनामपि ।
प्रथमं हि मयैवोक्तं शैवं पाशुपतादिकम् ॥ २४ ॥
मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते ।
मयैव कथितं देवि कलौ ब्राह्मणरूपिणा ॥ २५ ॥
अपार्थं श्रुतिवाक्यानां दर्शयँल्लोकगर्हितम् ।
कर्मस्वरूपत्याज्यत्वमत्रैव प्रतिपाद्यते ॥ २६ ॥

सर्वकर्मपरिभ्रंशान्नैष्कर्म्यं तत्र चोच्यते।
परात्मजीवयोरैक्यं मयात्र प्रतिपाद्यते ॥ २७ ॥
ब्रह्मणोऽत्र परं रूपं निर्गुणं दर्शितं मया।
सर्वस्य जगतो ह्यत्र नाशनार्थं कलौ युगे ॥ २८ ॥

अर्थ–हे देवी ! मैं तेरे प्रति अनुक्रमसे तामसोंका वर्णन करता हूं सो तू श्रवण कर। जिनके सुननेसे ज्ञानी पुरुषभी पतित अर्थात् अपने धर्मसे भ्रष्ट हो जाते हैं। और हे देवि ! उन तामसोंमें पाशुपतादिक शैव शास्त्र निश्चय करके प्रथम मैंनेही कहा है। और कलियुगमें मैंने ब्राह्मणका रूप धारण करके मायावाद, (जिसको प्रच्छन्न बौद्ध कहते हैं) ऐसा असत् शास्त्र मैंनेही कहा है और लोकनिंदित श्रुतिवाक्योंका उलटे अर्थको दिखाकर कर्मोंको स्वरूपसे छोड-देना, अर्थात् पुण्यकर्मोंको त्याग देना, ऐसा इन असत् शास्त्रोंमें प्रतिपादन किया है ॥ और सर्व कर्मासें भ्रष्ट होना इसकाही नाम निष्कर्मपना कहा है। तथा परमात्मा और जीवका एकपना इस शास्त्रमें प्रतिपादन किया है ॥ और कलि-युगमें सर्व जगत्के नाश (अकल्याण) के वास्ते ब्रह्मका स्वरूप निर्गुण बताया है ॥ इस प्रकार सांख्यभाष्यमें विज्ञानभिक्षुक पंडितने उदाहरणमें ऊपर लिखे हुये सब पद्मपुराणके वचन लिखकर फिर लिखता है कि " अधिकं तु ब्रह्ममीमांसाभाष्ये प्रपंचितमस्माभिः " अर्थात् इस विषयमें अधिक तो ब्रह्म-मीमांसाके भाष्यमें हमने विवेचन किया है, ऐसा विज्ञानभिक्षुक पंडितने कहा है। इसलिये जीवोंको सन्मार्गसे भ्रष्ट करनेवालाही तुम्हारा मायावादीका मत कलियुगमें प्रगट हुआ है. क्योंकि वेद गुरु और ईश्वर ये तीनों मायाकल्पित हैं ऐसा कहना, कर्मोंका त्याग करना, जीव और ईश्वरकी एकताका बोध करना, ब्राह्मणके घरमें शिवका अवतार होना, श्रुतिवाक्योंका उलटा अर्थ करना, ब्रह्मके स्वरूपको निर्गुण बताना, ऐसे सब कथन, हे वादी ! तुम्हारे मतमेंही दीखते हैं, दूसरे किसीभी मतमें ऐसा कथन नहीं है। इसलिये तुम्हारा धर्म और शास्त्र तथा तुम्हारे देव ये सब तामसी होनेसे त्यागने योग्य हैं ॥ २४-२८ ॥

फिर ऐसेही वराहपुराणमेंभी विष्णुने रुद्रके प्रति कहा है। और शिवनेभी पार्वतीके प्रति कहा है कि–जिस दिनसे विष्णुने मेरेको मोहशास्त्र करनेकी आज्ञा दी उस दिनसे जितने शास्त्र हमने किये हैं वे सब शास्त्र जीवोंको मोह करनेवाले तथा वेदमार्गसे भ्रष्ट करनेवालेही किये हैं। और शिवधर्मको भृगुने

तथा गौतमने शाप दिया है सो आगे लिखेंगे । भृगु और गौतमके शापसेभी शिवधर्म त्याग करने योग्य है । क्योंकि शिव तामसी देव है और उसने ग्रंथभी तामसीही रचे हैं तथा उस शिवका जो शैव धर्म है सोभी तामसी है इसलिये शिव आदिक तामसी राजसियोंका त्याग करके सात्विक जो पंच-रात्रादिक हैं उनकाही ग्रहण करना उचित है ॥

वादिप्रश्न—राजसी तामसी देवोंको तथा शास्त्रोंको मानना नहीं, ऐसा कौन शास्त्रमें कहा है ?

उत्तर—हे वादिन् ! भारद्वाजसंहितामें न्यासोपदेशके चौथे अध्यायमें ऐसा कहा है कि—

राजस-तामस पुराणोंकी अनादरता ।

नाद्रियेत पुराणादीन् राजसांस्तामसांस्तथा ।
अनीशानां परेशत्वं वृथा यत्रोपवर्ण्यते ॥ २९ ॥

अर्थ—जिन ग्रन्थोंमें अनीशोंका परेशपना अर्थात् जिन राजस तामस पुराण तथा शास्त्रोंमें शिव, शक्ति, गणपति आदिक जीवोंका परमेश्वरपना वर्णन किया है जैसे कि शिव परमेश्वर है । शक्ति परमेश्वर है । गणपति परमेश्वर है। इस रीतिसे इन जीवोंको जिन ग्रन्थोंमें ईश्वर बताये हैं, उन राजस तामस पुराण शास्त्रोंको मानना नहीं चाहिये ॥ २९ ॥

वादिप्रश्न—कौन कौनसे पुराण और शास्त्र राजसी, तामसी हैं तथा कौन कौनसे सात्त्विक हैं ।

सिद्धांती उत्तर—हे वादिन् ! पद्मपुराणके उत्तर खंडमें ऐसा कहा है कि—

सात्विकादिपुराणोंका नामनिर्देश ।

वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम् ।
गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शने ।
षडेतानि पुराणानि सात्विकानि मतानि मे ॥ ३० ॥
ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्त्तं मार्कंडेयं तथैव च ।
भविष्यं वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोध मे ॥ ३१ ॥
मात्स्यं कौर्म्यं तथा लैंगं शैवं स्कांदं तथैव च ।
आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोध मे ॥ ३२ ॥

अर्थ–विष्णु पुराण १ नारद पुराण २ भागवत पुराण ३ गरुड पुराण ४ पद्म पुराण ५ वराह पुराण ६ ये षट् पुराण सात्विक हैं ॥३०॥ ब्रह्मांड पुराण १ ब्रह्मवैवर्त पुराण २ मार्कंडेय पुराण ३ भविष्य पुराण ४ वामन पुराण ५ ब्रह्म पुराण ३ ए षट् पुराण राजस हैं ॥ ३१ ॥ मत्स्य पुराण १ कूर्म पुराण २ लिंग पुराण ३ शिव पुराण ४ स्कंद पुराण ५ अग्नि पुराण ६ ए षट् पुराण तामस हैं ॥ ३२ ॥ इस प्रकार अष्टादश पुराणोंके सात्विक, राजस और तामस ये तीन प्रकारके भेद हैं, और ऐसेही धर्मशास्त्रकी स्मृतियोंकेभी सात्विक, राजस और तामस ए तीन भेद पद्मपुराणमें कहे हैं कि–

सात्विकादि स्मृति।

वासिष्ठं चैव हारीतं व्यासं पाराशरं तथा।
भारद्वाजं काश्यपं च सात्विका मोक्षदाः शुभाः॥३३॥
वामनं याज्ञवल्क्यं च आत्रेयं दाक्ष्यमेव च।
कात्यायनं वैष्णवं च राजसाः स्वर्गदाः शुभाः॥३४॥
गौतमं बार्हस्पत्यं च सांवर्तं च यमः स्मृतम्।
सांख्यं चौशनसं देवि तामसा निरयप्रदाः॥ ३५ ॥

अर्थ–वशिष्ठ स्मृति १ हारीत स्मृति २ व्यास स्मृति ३ पराशर स्मृति ४ ४ भारद्वाज स्मृति ५ कश्यप स्मृति ६ ये सात्विक स्मृति मोक्ष देनेवाली हैं ॥ वामन स्मृति १ याज्ञवल्क्य स्मृति २ आत्रि स्मृति ३ दक्ष स्मृति ४ कात्यायन स्मृति ५ विष्णुस्मृति ६ ये राजस स्मृति स्वर्ग देनेवाली हैं ॥ गौतम स्मृति १ बृहस्पति स्मृति २ संवर्त स्मृति ३ यम स्मृति ४ शंख स्मृति ५ और उशना स्मृति ६ ये तामस स्मृति नरकको देनेवाली हैं॥ इस रीतिसे सात्विक, राजस और तामस इन तीनोंके भेद और फल अलग अलग कहे हैं। इसलिये मुमुक्षुओंको राजस और तामस ये दोनों त्यागने योग्य है और सात्विककाही ग्रहण करना उचित है॥ ३३–३५ ॥

वादिप्रश्न–हे सिद्धांतिन्! आपने पुराण, स्मृति और ऋषि तथा धर्म और आचार्य इत्यादिकोंके सात्विक राजस और तामस ये तीन प्रकारके भेद कहे, परंतु देवोंमें कौन देव सात्त्विक कौनसे राजस और तामस हैं?

उत्तर–लिंगपुराणमें कहा है कि–

सात्विक आदि त्रिविधदेव ।

बौद्धो रुद्रस्तथा वायुर्दुर्गागणपभैरवाः ।
यमः स्कंदो नैर्ऋतश्च तामसा देवताः स्मृताः ॥ ३६ ॥
हिरण्यगर्भो रजसा तमसा शंकरः स्वयम् ।
सत्त्वेन सर्वगो विष्णुः सर्वात्मा सदसन्मयः ॥ ३७ ॥
सात्त्विकैः सेव्यते विष्णुस्तामसैरेव शंकरः ।
राजसैः सेव्यते ब्रह्मा संकीर्णैस्तु सरस्वती ॥ ३८ ॥

अर्थ--बौद्ध १ रुद्र २ वायु ३ दुर्गा ४ गणपति ५ भैरव ६ यम ७ स्कंद ८ नैर्ऋत ९ ये तामसी देव हैं ॥ ब्रह्मा रजोगुणी और शंकर तमोगुणी तथा जड चेतनमय सर्वके आत्मा और सर्वव्यापी जो विष्णु है सो शुद्ध सत्त्व मूर्ति हैं ॥ इसलिये ब्राह्मणादि सात्विकोंको विष्णु, शूद्रादिक तामसी लोगोंको शंकर तथा क्षत्रियादिक राजस लोगोंको ब्रह्मा सेव्य हैं, और संकीर्णों करके सरस्वती सेवने योग्य हैं ॥३६–३८॥ हे वादि! तुम्हारे शास्त्र, धर्म, आचार्य और देव ये सब तामसी होनेसे त्याज्य हैं, क्योंकि गीताजीमें भगवानने कहा है कि--"अधो गच्छंति तामसाः" हे अर्जुन ! अत्यंत अधम तमोगुणमें स्थित मनुष्य चांडाल, पशु, पक्षी, कृमि, कीट, वृक्ष, गुल्म, लता, शिला, काष्ठ, लोष्ठ, तृण, इत्यादिक नीच योनियोंको प्राप्त होते हैं, इसलिये तमोगुण अत्यंत त्यागने योग्य है ॥

वादि प्रश्न--हे सिद्धांति ! "त्रैगुण्यविषया वेदाः" पुरुषोंके हितको बोध करनेवाले वेद तीन गुणमय हैं इसकारण वेद पुराण शास्त्र आदिक तीन गुणवाले होनेसे सात्विकी मुमुक्षुको कैसा करना चाहिये ?

वेदोंमें स्वोपयोगिमात्रका ग्रहण ।

उत्तर–यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ।
तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ ३९ ॥

अर्थ–भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जस जलसे भरे हुए तालावमेंसे पिपासावाले पुरुषको जल पीने मात्र जितना प्रयोजन है उतनाही लेलेता है, तैसे मुक्तिकी इच्छावाला मुमुक्षुभी सर्व वेदोंमें जितना मोक्षका साधनरूप

प्रयोजन है उतनाही ग्रहण करलेता है, कुछ दूसरे अर्थको ग्रहण नहीं करता है ॥३९॥ हे वादी ! इस भगवतके वचनसे ऐसा अचल सिद्धांत हुआ कि, रजोगुण तमोगुणवाले जितने शास्त्र देव गुरु और धर्माचार्य तथा जितने खान पान देशादिक पदार्थ हैं, उन सबका त्याग और जितने सत्वगुणी शास्त्र देव गुरु और जितने खान पान आदिक पदार्थ हैं उनकाही ग्रहण करना योग्य है॥

वादिप्रश्न–हे सिद्धांति ! हमारे देव हमारे आचार्य और हमारे शास्त्र इन सबको तुमने तामसी और अधोगतिको देनेवाले सिद्ध किये, परंतु विष्णुसहस्रनाम और शिवसहस्रनाम ये दोनों व्यासजीनेही किये हैं, और महाभारतमेंभी लिखे हैं । जैसे विष्णुसहस्रनामसे मुक्ति होनी तुम मानते हो, तैसे शिवसहस्रनामसे मुक्ति होती या नहीं ?

उत्तर--विष्णुसहस्रनामसे तो मुक्ति होती है परंतु शिवसहस्रनामसे मुक्ति नहीं होती है, ऐसा व्यासजीनेही इन दोनोंका फल जुदा जुदा लिख दिया है कि–

शिवसहस्रनामपाठफल ।

यशोराज्यसुखैश्वर्यकामार्थसुखकांक्षिभिः । श्रोतव्यम् ।
मृतश्च स्वर्गमाप्नोति तिर्यक्षु च न जायते ॥ ४० ॥

अर्थ–यश, राज्य, सुख, ऐश्वर्य, काम, अर्थ, सुख इत्यादिकोंकी इच्छावाला पुरुष, शिवसहस्रनामके पाठ सुने और पढे, और शिवसहस्रनामके पाठको करनेवाला जब मरता है तब वह स्वर्गको प्राप्त हो पुण्यफल क्षीण होते ही पशु, पक्षीकी योनिमें जन्म नहीं लेता अर्थात् उत्तम जन्म लेता है ॥ ४० ॥ इस रीतिसे शिवसहस्रनामके पाठसे मोक्षके विना दूसरेही फल मिलते हैं, ऐसा व्यासभगवान्का वचन है । और विष्णुसहस्रनामके पाठका तो ऐसा फल लिखा है कि–

विष्णुसहस्रनामपाठ फल ।

' किं जपन् मुच्यते जंतुर्जन्मसंसारबंधनात् । '
'नाशुभं प्राप्नुयात्किंचित्सोमुत्रेह च मानवः ।
वेदान्तगो ब्राह्मणः स्यात् श्रेयः प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ४१ ॥
वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ॥ ४२ ॥'

अर्थ–' यह जीव क्या जप करके जन्मरूपी संसारके बंधनतेसे मुक्त होता है' ? ऐसा प्रश्न जब युधिष्ठिर राजाने किया तब उसके उत्तरमें भीष्मजीने ऐसा कहा है कि–विष्णुसहस्रनामके पाठको करनेवाला मनुष्य इस लोकमें और परलोकमें अशुभको प्राप्त नहीं होता किंतु उत्तमसेभी उत्तम कल्याणको प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥ और वासुदेवके शरणमें जाकर वासुदेवके आश्रयमें रहनेवाला मनुष्य सर्वपापोंसे शुद्ध होके सनातन ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ इस प्रकारसे विष्णुसहस्रनामके पढनेसे और नित्य पाठ करनेमें ब्रह्मप्राप्तिरूपी मुक्ति कही है. हे वादि ! विष्णु सहस्रनामके जापसे ब्रह्मकी प्राप्तिरूप फल मिलता है ऐसा मत समझना किंतु, विद्या, राज्य, विजय, धन, सुख, धर्म, स्त्री, पुत्र, यश, आरोग्य, कांति, बल, रूप, गुण, वीर्य, तेज, क्षांति, धृति, स्मृति आदिक दूसरे मनोवांछित पदार्थोंकी प्राप्ति और भय, रोग, बंधन, आपत्, दुःख, जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, क्रोध, लोभ, मात्सर्य आदिक दुःखोंकी निवृत्तिभी होती है, ऐसा विष्णुसहस्रनामके पाठका महान् फल है । और शिवसहस्रनामके पढने सुननेसे नाशवान् फलोंकी प्राप्ति होती है मोक्ष नहीं मिलता है.इसकारण विष्णुसहस्रनाम और शिवसहस्रनाम ये दोनों एकसरीखे नहीं हैं किंतु इन दोनोंमें विष्णुसहस्रनामही अति उत्तम है और मुमुक्षु पुरुषोंको पढने सुनने और पाठ करने योग्य है । और शिवसहस्रनाम, दुर्गासहस्रनाम, गणपतिसहस्रनाम इत्यादिक सब सहस्रनाम तामसी होनेसे त्याग करने योग्य हैं ।

वादिप्रश्न–हे सिद्धांति ! तुम्हारे आचार्योंने जीवोंका कल्याण करनेके वास्ते पृथ्वीमें अवतार लिये हैं इसमें कौन शास्त्रका प्रमाण है ।

उत्तर–हमारे श्रीवैष्णवधर्ममें शठकोप आदिक जितने आचार्य भये हैं वे सब वैकुंठसे जीवोंका कल्याण करने वास्तेही पृथ्वीमें आये हैं. ऐसा बृहद्ब्रह्मसंहिता ग्रंथमें लक्ष्मीकेप्रति नारायणने कहा है कि–

रामानुजमुनिद्वारा वैष्णवधर्मस्थापन ।

कालेनाच्छादितो धर्मो मदीयोऽयं वरानने ।
तदा मया प्रवर्तोऽयं तत्कालोचितमूर्तिना ॥ ४३ ॥
विष्वक्सेनादिभिर्भक्तैः शठारिप्रमुखैर्द्विजैः ।
रामानुजेन मुनिना कलौ संस्थामुपैष्यति ॥ ४४ ॥

अर्थ–नारायण बोले कि–हे वरानने ! अर्थात् हे श्रेष्ठमुखि लक्ष्मि ! जब मेरा श्रीवैष्णवधर्म कलिकाल करके आच्छादित अर्थात् अप्रकाशित हुआ तब उस कालमें उचित मूर्ति धारण करके मेरा धर्म मैंने प्रवर्त किया ॥ ४३॥ विष्वक्सेन आदि मेरे भक्तों करके तथा शठकोप आदि द्विजों करके तथा रामानुज मुनि करके यह मेरा श्रीवैष्णवधर्म कलियुगमें अच्छी स्थितिको प्राप्त होवेगा ॥ ४४ ॥ हे वादि ! इस प्रकारसे कलियुगमें हमारे आचार्योंके अवतार जीवोंके कल्याणके वास्ते भगवान्ने अपने मुखसे लक्ष्मीके प्रति कहे हैं । और ब्रह्मांडपुराणमेंभी ब्रह्माके प्रति भगवान्ने ऐसा कहा है कि–हे ब्रह्मन् ! तेरे इस द्वितीय परार्द्धमें श्वेतवराहकल्पके वैवस्वत मन्वंतरके अठाईसवें कलियुगमें वेदको द्राविडभाषामें प्रकटकरनेकेलिये मैं मेरा भक्तका रूप करके प्रगट होऊंगा. अर्थात् वेदको द्राविडभाषामें करने वास्ते शठकोपकी मूर्तिको धारण करूंगा । इस रीतिसे शठकोपस्वामीका अवतार भगवानने कहा है ॥ फिर इसही पुराणमें आगे मोक्षधर्मसंबंधी प्रकरणमें ब्रह्माने मार्कंडेयऋषिके प्रति कहा है कि–नास्तिकलोकों करके दूषित क्रूर कलियुग जब आवेगा तब विष्णुके अंशोंके अंशसे प्रगट होकर वेदोंके सार अर्थको जाननेवाले और द्राविडभाषामें वेदमय ग्रन्थोंको लोकके हितवास्ते करनेको सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ ऐसे शठकोपनामसे अवतार धारण करेंगे ॥ इस रीतिसे ब्रह्मांडपुराणके पूर्वार्द्धमें ताम्रपर्णीनदीके माहात्म्य संबंधी प्रकरणमें तथा उत्तरार्धमें मोक्षसंबंधीप्रकरणमें ये सब वचन स्पष्ट लिखे हुये हैं ॥ और श्रीमद्भागवतके एकादश स्कंधमेंभी हमारे आदिआचार्य श्रीशठकोप स्वामीका अवतार बताया हुआ है कि–

कलौ खलु भविष्यंति नारायणपरायणाः ।
ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ॥ ४५ ॥

अर्थ–कलियुगमें नारायणपरायण ऐसे महान् पुरुष निश्चय करके प्रगट होवेंगे (कौनसे स्थलमें प्रगट होंयगे) कि जहां ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी आदिक नदियां हैं तहां प्रगट होवेंगे ॥ ४५ ॥ यद्यपि इन भागवतके वचनोंमें शठकोपस्वामीका नाम स्पष्ट नहीं दीखता है, तथापि "ताम्रपर्णी नदी यत्र" इस वचन करके शठकोपस्वामीकाही असाधारण अवतार स्थल बताया है. और नारायणपरायणपनेका जो धर्म है सोभी इस कलियुगमें प्रथम शठकोपसेही प्रकाशित हुआ है । इसलियेहे मायावादि ! "ताम्रपर्णी नदी यत्र" इस श्लोकमें प्रथम शठकोप स्वामीकें अवतारकाही स्थल

बताया है । पीछे कृतमाला आदि स्थल कहागया है उन सब स्थलोंमें हमारेही सब आचार्य प्रगट हुए हैं. क्योंकि " भूरिशः " इस शब्द करके बहुत्व जो बताया है सो हमारे संप्रदायके आचार्योंकाही बहुतपना बताया है ॥ तथा हमार आचार्योंके अवतारमें स्कंदपुराणके सौराष्ट्र खंडके आरंभमें बताई हुई पुराणोंकी व्यवस्थामें अष्टादश पुराण और अष्टादश उपपुराण हैं, तिनमें उपपुराण करके गिना हुआ जो भार्गवपुराण है, उस पुराणमें होनेवाले योगीश्वरोंके भविष्य चरित्रसंबंधी, श्रीनरनारायणके संवादरूप चौदहवां पंदरहवां ये दो अध्याय संपूर्णही प्रमाणरूप हैं ॥ उन अध्यायोंके वचन ऐसे हैं कि–

सेनेशका शठकोपरूपमें प्रादुर्भाव ।

ततो भगवतादिष्टः सेनेशो भगवत्प्रियः ।
उदरं नाथनायक्याः प्रविवेश महाद्युतिः ॥ ४६ ॥
ततः संवत्सरे पूर्णे सादरा नाथनायकी ।
वैशाखे मासि सुभगे विशाखायां कवेर्दिने ।
लग्नेऽपि कर्कटे श्रेष्ठे सुषुवे पुत्रमुत्तमम् ॥ ४७ ॥

अर्थ–उसके पीछ भगवानको प्रिय और महाकांतिवाले श्रीविष्वक्सेनजी भगवानकी आज्ञा पाय नाथनायकीके उदरमें प्रवेश किये ॥ ४६ ॥ पीछे एक वर्ष पूराहोनेपर आदरसहित नाथनायकी, वैशाख मास, विशाखा नक्षत्र, शुक्रवार, कर्क लग्न योगमें उत्तम पुत्र शठकोपको जन्म देती भई ॥ ४७ ॥ ऐसेही ब्रह्मांडपुराण, ब्रह्मपुराण, वृद्ध पाद्म, भविष्यत्पुराण, और भार्गवपुराण इत्यादि पुराणोंमें हमारे आचार्योंके अवतार अत्यंत विस्तारसे वर्णन किये हुये हैं, सो तहां देख लेना । इति ॥

शिष्यप्रश्न–हे गुरुजी ! अपने आदि आचार्य श्रीशठकोपस्वामी कौन देशमें कौन नगरीमें कौन पिताके घरमें कौन तिथिमें और कौनसे युगमें अवतार लिया है सो विस्तारसे कृपाकरके कहो ॥

उत्तर–हे शिष्य ! पांडयदेशमें ताम्रपर्णी नदीके किनारे, एक कुरुका नगरी है अर्थात द्वापर युगमें कौरव राजाने उस नगरीका पालन करनेसे उसका नाम कुरुका कहलाता है । उस नगरीमें कलियुगका एक मासके पीछे प्रमादी नाम संवत्सर, वैशाखशुक्लपक्षकी चतुर्दशी, शुक्रवार, विशाखा नक्षत्र, कर्क

लग्न इत्यादिक शुभयोगमें वैकुंठवासी विष्वक्सेनजी शठकोपके अवतारको धारण करते भये । शठकोपस्वामीके पिताका नाम कारि और माताका नाम नाथनायकी है । और जिस वर्षमें गंगाजी वैकुंठमें पधारेंगी, उस वर्षमें शठ-कोपस्वामीके अवतारको पांच हजार वर्ष पुरे हो जाँयगे ॥

श्रीसंप्रदायकी उत्पत्ति ।

हे शिष्य ! अपने श्रीसंप्रदायकी ऐसे उत्पत्ति हुई है कि एक दिन वैकुंठमें लक्ष्मीजी, पृथिवीमें बहुत दुःख पाते हुये जीवोंको देखकर वैकुंठ वासी भगवानसे कहने लगी कि–हे भगवन् ! इन पापी जीवोंके कल्याणका सहज उपाय बताओ । भगवान्‌ने लक्ष्मीको अष्टाक्षरमंत्र रामतारक महामंत्र द्वयमंत्र आदि जितने श्रीवैष्णवधर्ममें मोक्षदायक उपाय हैं उन सब उपायोंका उपदेश किया अनंतर लक्ष्मीजीने विष्वक्सेन आदि पार्षदोंको वैसाही उपदेश दिया । पीछे भगवानकी आज्ञा पाकर विष्वक्सेनजी बोले कि–

भूम्यां कृतावतारोऽहं सर्वानेताञ्जनान् दृढम् ।
प्रापयिष्यामि वैकुण्ठं नात्र कार्या विचारणा ॥४८॥
एवं कृतप्रतिज्ञोऽथ कुरुकानगरे भुवि ।
शठकोप इति ख्यातो जज्ञे कारिसुतो महान् ॥ ४९॥

अर्थ–हे भगवन् ! आपकी आज्ञासे मैं पृथ्वीमें अवतार लेके सब जीवोंको निश्चय करके वैकुंठको प्राप्त करूंगा, इसमें कुछभी संशय नहीं । विष्व-क्सेनजी इस प्रकार प्रतिज्ञा करके कुरुका नगरमें शठकोप नामसे कारिके बडे पुत्र हुए ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

शिष्यप्रश्न–हे स्वामिन् ! इस कलियुगमें कुदृष्टि जनों और वेदबाह्य जनों तथा नास्तिक पाखंडियों करके श्रीवैष्णवधर्म जब चलने नहीं पाया, तब शठकोपस्वामीके पीछे कौन कौनसे आचार्योंने अवतार लिया और कौन कौनसे दिव्य योगियोंने इस पृथ्वीमें श्रीवैष्णवधर्मको परिपूर्ण करके स्थापन किया सो कहो ।

श्रीसंप्रदायके आचार्य ।

उत्तर–नाथार्यः पंकजाक्षश्च राममिश्रश्च यामुनः ।
गोष्ठीपूर्णो महापूर्णो मालाधरगुरुस्तथा ॥

भूरिश्रीशैलपूर्णश्च वररंगस्तथैव च ।
कांचिपूर्णादयश्चैते पूर्वाचार्याः प्रकीर्तिताः ॥ ५० ॥

अर्थ--नाथार्य १ पंकजाक्ष २ राममिश्र ३ यामुन ४ गोष्ठीपूर्ण ५ महापूर्ण ६ मालाधरगुरु ७ भूरिश्रीशैलपूर्ण ८ वररंग ९ कांचिपूर्ण १० इतने रामानुजसे प्रथम हुये हैं । ये दश पूर्वाचार्य कहे जाते हैं ॥ ५० ॥

दश दिव्यसूरि ।

कासारभूतमहदाह्वयभक्तिसाराः
श्रीमच्छठारिकुलशेखरविष्णुचित्ताः ।
भक्तांघ्रिरेणुमुनिवाहचतुष्कवीन्द्राः
ते दिव्यसूरय इति प्रथिता दशोर्व्याम् ॥ ५१ ॥

अर्थ--कासार १ भूत २ महत् ३ भक्तिसार ४ श्रीमत् शठारि ५ कुलशेखर ६ विष्णुचित्त ७ भक्तांघ्रिरेणु ८ मुनिवाह ९ चतुष्कवीन्द्र १० ये दश दिव्यसूरि इस पृथिवीमें विख्यात हैं ॥ ५१ ॥ इन दशोंमें गोदादेवी और रामानुजमुनिकोभी मिलानेसे द्वादश दिव्यसूरि विद्वान्‌लोग कहते हैं । तथा गोदादेवीको छोडकर मधुरकविको मिलानेसेभी द्वादश दिव्यसूरि कहेजाते हैं। और इन पूर्वाचार्यों तथा दिव्यसूरियोंके विस्तार चरित्र,परमतका खंडन तथा श्रीवैष्णवधर्मका स्थापन, इनके रचे हुए ग्रंथ और दिग्विजय इत्यादिक संपूर्ण कथा प्रपन्नामृतग्रन्थमें देख लेना ॥ हे शिष्य ! इस कलियुगके चार हजार वर्षोंके अंतमें आदिशेपका अवतार श्रीरामानुज प्रगट हुए । श्रीरामानुजस्वामीके अवतार विपयमें पद्मपुराणके पूर्वखंडमें लिखा है कि, कलियुगमें जब इस लोकमें पाखंड वहुत चलेगा और कुदृष्टिजनों करके यह लोक भर जायगा, तव जीवोंके जन्ममरणादि धर्मको निवारण करनेमें समर्थ और आदिशेषावतार रामानुज यति, अपने वैष्णवसिद्धांतों करके फिर इस लोकका उद्धार करेंगे, अर्थात् पाखंडी और कुदृष्टिजनोंके फंदमेंसे निकालकर सबको विष्णुभक्त वनावेंगे ।

प्रश्न–श्रीरामानुजस्वामीके माता पिताका क्या नाम है और कौनसी नगरीमें कौन समयमें आदिशेपका अवतार रामानुजस्वामी हुये हैं ?

रामानुजमुनिके जन्मसमय ।

उत्तर–चैत्रे मेषे शुक्लपक्षे पंचम्यां गुरुवासरे ।
मध्याह्ने कर्कटे लग्ने नक्षत्रे रुद्रदैवते ॥ ५२ ॥
कौसल्यायां यथा रामो यथाऽदित्यां च वामनः ।
देवक्यां तु यथा कृष्णो रोहिण्यां तु यथा हली॥५३॥
तथाऽयं सुमहातेजाः फणिराजो महाबलः ।
आविरासीत् कान्तिमत्यां विष्णुतेजोपबृंहितः ॥
पुत्रं दृष्ट्वा कांतिमती प्रोद्यन्तमिव भास्करम् ॥ ५४ ॥
हर्षेणोत्फुल्लनयना मुमोद सह बन्धुभिः ।
यज्वा तु केशवस्तत्र पुत्रं दृष्ट्वा तु सुन्दरम् ॥ ५५ ॥
ततः केशवदेवोपि ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम् ।
श्रीभूतपुरवासिभ्यः पुत्राभ्युदयहेतवे ॥ ५६ ॥

अर्थ–मेषसंक्रांति चैत्रमास, शुक्लपक्ष, पंचमीतिथि, गुरुवार, आर्द्रा नक्षत्र मध्याह्नसमय कर्कलग्न और इत्यादिक शुभ योगमें कांतिमतीके गर्भसे जैसे कौसल्यामें श्रीराम, अदितिमें वामन, देवकीमें श्रीकृष्ण, तथा रोहिणीमें बलदेव प्रगट हुए, वैसे महातेजस्वी और महाबलवान् फणिराज आदिशेष प्रगट हुए । पश्चात् कान्तिमती देवी प्रातःकाल सूर्यसमान तेजस्वी पुत्रको देख हर्षसे फूले हुए नेत्रोंवाली हो अपने बंधुजनोंसहित आनंदको प्राप्त हुई । केशव यज्वा भी अपने सुंदर पुत्रको देखकर, वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको प्रीति करके बहुत धन और धान्य आदि दिया ॥ ५२–५६ ॥ पीछे. श्रीभूतपुरीके निवासी जन उस बालकके जन्मनक्षत्रके दिन घर घरमें सुंदर तैल और सुगंधी चूर्णों करके उत्सवको करते भये । अनंतर बारहवां दिन स्वामी श्रीशैलपूर्ण आकर अपनी बहिनके पुत्रका रूप लावण्यादि देख उस पुत्रके दोनों भुजाओंके ऊपर शंख चक्रसे अंकित कर रामानुज ऐसा नामकरण संस्कार किये । हे शिष्य ! जिस समय इस पृथ्वीमें रामानुज अवतार हुए, उसही क्षणमें कलियुग एकांत देशमें जा छुपा, पापभी भगनेलगा तथा पृथ्वीमें धर्मभी चार पगोंसे संपूर्ण होने लगा । और श्रीरामानुजरूपी सूर्यके प्रकाशसे पापरूपी

अंधकारके दूर होनेसे महात्मा जनोंके मनरूपी कमल प्रफुल्लित होगया ॥ उसके पीछे पिता केशव, रामानुजका अन्नप्राशन संस्कार कर यथाक्रमसे चौल विद्याभ्यासादि संस्कारकरके गर्भसे आठवें वर्ष अर्थात् सातवाँ ऊमर मंगल दिनमें यज्ञोपवीत संस्कार किये । पीछे रामानुज सर्व विद्याओंको पढकर जब षोडश वर्षके हुये तब पिता केशव रामानुजका विवाहभी कर दिये फिर बहुत वर्षों पछि पिता केशवाचार्य अपने शरीरका त्याग करके श्रीवैकुंठको पधारे । अनन्तर रामानुजभी उस भूतपुरीमें कुछ कालपर्यन्त निवास, कर अपने कुटुंबसहित कांचीपुरीमें जाकर निवास करने लगे । इति रामानुजावतारः ॥

प्रश्न–हे स्वामिन् ! गोदादेवी कौन है और वह किसका अवतार है और उसके पिता और गामका नाम क्या है ? और गोदादेवीका जन्म कौन मासमें कौनसे तिथि वार, नक्षत्र और लग्नमें हुआ है ? सो सब कृपा करके कहो ॥

गोदादेवीका अवतार वैभव ।

उत्तर–अवतारं प्रवक्ष्यामि गोदायास्तन्महाद्भुतम् ।
श्रृणुष्वावहितः सम्यक् सीताया इव चोत्तमम् ॥ ५७ ॥
तथैव गोदा तुलसीवनभूमौ तदाऽजनि ।
तदा खनित्रवक्त्रेण विष्णुचित्ते महात्मनि ॥ ५८ ॥
तुलसीवृक्षमूलस्य खननं च प्रकुर्वति ।
आषाढ पूर्वपक्षे च चतुर्थ्यां भौमवासरे ॥ ५९ ॥
मध्याह्ने पूर्वफाल्गुन्यां तुलालग्ने शुभे दिने ।
लक्ष्म्यंशाल्लोकरक्षार्थं गोदा भूम्यां ततोऽजनि ॥ ६० ॥

अर्थ–हे शिष्य ! गोदादेवीके महा अद्भुत अवतारको मैं कथन करता हूं, सो तू सावधान हो सम्यक् प्रकारसे श्रवण कर।जैसे जनकपुरमें जनक राजाके हलाग्रसे सीताजीका उत्तम अवतार हुआ था वैसेही धन्विपुरमें रहनेवाले विष्णुचित्तनामक ब्राह्मणोत्तमका तुलसीवनभूमीमें गोदादेवीका अवतार हुआ। जिस कालमें विष्णुचित्त महात्मा, पुष्प लेनेको उपवनमें गये और वहां पुष्पोंको ले फिर किसी स्थानमें कुदालेसे तुलसी वृक्षके मूलको खोदने लगे, उस समय तुलसीके मूलमें आषाढमासका शुक्ल पक्ष, चतुर्थी तिथि, मंगलवार, पूर्वाफा-

ल्गुनी नक्षत्र, तुलालग्न ऐसे शुभादिनके मध्याह्न समयमें लोकोंका कल्याण करनेके लिये लक्ष्मीके अंशसे एक कन्या प्रगट हुई॥५७–६०॥ उस बालिकाको देखकर, विष्णुचित्त बहुत हर्षसे अपने घर ले आय अपने धन्विपुरके रहनेवाले श्रीवैष्णवोंको बुलाकर स्वस्तिवाचन कराय उस पुत्रीका गोदा ऐसा नामकरण-संस्कार किया इस रीतिसे लक्ष्मीमहाराणी गोदादेवीके रूपसे पृथ्वीमें प्रगट होकर अपने ज्ञान शील आचारादिसे दश पूर्वाचार्य और दश नित्यसूरि आदि सब लोकोंको पूज्य हो लक्ष्मीजीने जीवोंका कल्याण करने वास्ते भगवानसे प्रार्थना करके इस संप्रदायको चलाया है. इसकारण इस संप्रदायका नाम श्रीसंप्रदाय है। श्रीनाम लक्ष्मीका है।

इस रीतिसे इस दारुण कलिकालमें सर्वजीवोंका कल्याण करनेवास्ते लक्ष्मीजीने श्रीवैष्णवधर्म प्रगट किया है। "अस्येशाना जगतो विष्णुपत्नी" यद्भ्रूभङ्गाः प्रमाणं स्थिरचररचनातारतम्ये मुरारेः" "चुलकितभगवद्वैश्वरूप्यानुभावा" इत्यादि प्रकारसे इस जगतका पालन पोषण और कल्याण आदिकरनेमें लक्ष्मीकाही अधिकार होनेसे लक्ष्मीकोही भगवानने आज्ञादी कि तुम जगतका कल्याण करनेवास्ते पृथ्वीमें जाओ।पीछे भगवानकी आज्ञासे लक्ष्मीने वैजयंती, वनमाला, चक्र, शंख, गदा, खड्ग, धनुष, श्रीवत्स, कौस्तुभ, विष्वक्सेन, गरुड, शेष इत्यादिकोंको साथ ले गोदादेवीका रूप धारण किया॥ इति गोदावतारः॥

कांचीपुरीके उत्तर दिशामें सुवर्णके कमलोंवाला एक सरोवर था. उस सरोवरमें सुवर्णकमलके पुष्पसे पांचजन्य शंखके अंशकरके कासारयोगी प्रगट हुये। इस योगीका दूसरा नाम सरोयोगी है।पीछे माधवीलताके पुष्पमें भगवानकी कौमोदकी गदाके अंशसे मल्लीपुरमें भूतयोगी प्रगट हुये तदनन्तर मयूरपुरीमें लातिक नामवाले कूपमें रक्तकमलसे भगवानके नंदक खड्गके अंशसे महत् योगीने अवतार लिया इस योगीका दूसरा नाम भ्रांत योगी है। गोदादेवी, कासारयोगी, भूतयोगी महत्योगी इन चारों अवतारोंका किसी स्त्रीकी योनिसे जन्म नहीं है, इसलिये ये अवतार अयोनिज हैं। जब भागीरथी गंगा वैकुंठ पधारेंगी, तब इन चारों अवतारोंको नौ हजार वर्ष पूरे हो जायगें। हे शिष्य! गोदादेवीसे आदि लेकर रामानुज पर्यंत जितने पूर्वाचार्य और नित्यसूरि हुये हैं, उन सबने भगवत्के शरणमेंही मुक्ति मानी है और वह शरणागति और आत्मनिवेदन इन दोनोंका भिन्न अर्थ नहीं है किंतु इन दोनोंका एकही अर्थ है और ये दोनों "सकृदेव प्रपन्नाय" इति वचनसे एक-

वारही किये जाते हैं वारंवार नहीं। और भगवत् शरणागतिमें देवऋण, पितृ-ऋण और ऋषिऋण ये तीनों ऋण नहीं हैं अर्थात् भगवत्का आश्रित जन किसी-काभी ऋणी (देवादार) नहीं होता है ऐसा श्रीमद्भागवतमें लिखा हुआ है। इति।

इतिश्रीभगवद्रामानुजचरणनलिनचंचरीकेण श्रीमत्पंडितगोपालदासेन विरचिते गुरुशिष्यसंवादे श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकरे हेयोपादेयत्वेन सात्त्विकादिगुणविवेचनद्वारा सात्त्विकधर्मप्रवर्तकानां पूर्वाचार्यादीनामवतारादिनिरूपणो नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

तृतीयोऽध्यायः ।

विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तका समर्थन ।

श्रीमल्लक्ष्मणदेशिको गुणनिधिर्वादीभपंचाननः
संसारार्णवतारकश्च कृपया स्वाङ्घ्रिप्रपन्नान् जनान् ।
सद्विद्यापगजन्मभूमिशिखरी पाषण्डनैशोष्णगु-
र्मायावाददवाग्निरार्त्तशरणो वर्वर्ति सर्वोपरि ॥ १ ॥
नत्वा रामानुजाचार्यं विशिष्टाद्वैतबोधकम् ।
विशिष्टाद्वैतसिद्धांतः सत्प्रमाणैः समर्थ्यते ॥ २ ॥

अर्थ-श्रीमान् लक्ष्मण देशिक अर्थात् श्रीमान् रामानुज गुरु इस भारतखंडमें सर्व मतोंके उपरि वर्तते हैं। श्रीरामानुज कैसे हैं कि, सद्गुणोंके भंडार, विशिष्टाद्वैतसे विपरीत वादोंको करनेवाले सकल वादीरूप हस्तियोंको सिंहरूप अर्थात् जैसे हजारों हस्तियोंको जीतनेमें एकही पंचानन समर्थ होता है तैसे हजारों वादियोंको जीतनेमें समर्थ, अपने चरण कमलके शरण आये पुरुषोंको कृपा करके संसारसमुद्रके तारक, वेदांत विद्यारूपी नदीके जन्मभूमिरूप पर्वत अर्थात् जैसे सर्व नदियां पर्वतमेंसे निकली है, वैसे सकल वेदांत विद्याको श्रीभाष्यादि द्वारा प्रकट करनेवाले. पाखंडरूपी रात्रिको दूर करनेके लिये सूर्य अर्थात् जैसा सूर्य अपने किरणोंसे अंधकारको नाश करता है वैसे पाखंडियोंका नाश करनेवाले, तथा मायावादरूपी जो वन है उस

वनको दहन करनेमें दावाग्नि रूप और आर्त मुमुक्षुओंको शरण रूप है. हे शिष्य ! इत्यादिक अनेक विशेषणों करके युक्त ऐसे जो रामानुज गुरु है सो सर्वोपरि वर्तते हैं इति ॥ १ ॥

विशिष्टाद्वैत ईश्वरके स्वरूपका बोध करनेवाले ऐसे श्रीरामानुज आचार्यको मैं नमस्कार करके हमारा जो विशिष्टाद्वैत सिद्धांत है उसको श्रुति, स्मृति, पुराण इतिहासादिक अनेक सत्प्रमाणों करके समर्थन करते हैं ॥ २ ॥

यहां विशिष्टाद्वैततत्त्ववादियोंका ऐसा पंथ है कि–चित्[1] और अचित्[2] ये दो वस्तु सर्वत्र रहे हैं । इन दोनोंसे परमात्मा भिन्न है और परमात्मा चित् अचित्का आत्मा । चित्–अचित् ये दोनों परमात्माके शरीर हैं और परमात्मा शरीरी है । ऐसा असाधारण पुरुष नारायण, विष्णु, वासुदेव, नृसिंह भगवान् इत्यादिक शब्दोंका वाच्य और सकल प्रकृतिके हेयगुणोंका विरोधी और स्वाभाविक आनंदादिक अनंत कल्याणगुणोंका खानिरूप ऐसा परमात्मा है, सोही मुमुक्षुजनों करके ध्यान करने योग्य है । "कारणं तु ध्येयः" ऐसा श्रुतिमें भी कहा है । सूतजीने भी भागवतमें कहें हैं कि, जो मुमुक्षु पुरुष है वे भूतोंके पति और घोर रूप, ऐसे राजसी तामसी देवोंका त्याग करके नारायणकोही भजते हैं । और भारतके मोक्ष पर्वमें व्यासजीने भी कहा है कि, तत्त्वको जाननेकी इच्छावाले पुरुषोंको सर्व प्रकारके हेतुओं करके एक नारायणही तत्त्व हैं इसलिये सत्, ब्रह्म, ईश, आत्मा ये चार शब्दभी विष्णुकेही नाम है सो विष्णुही सर्वका आत्मा और सीमासे रहित आनंदका सिन्धु है । जगतके उत्पत्ति, प्रलय, पालनादिक करके अप्रतर्क्य महिमावाला विष्णु है–इस विष्णु परमात्माके भयसे "भीषास्माद्वातः पवते । भीषोदेति सूर्यः । भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च । मृत्युर्धावति पंचम इति" वायु, सूर्य, इंद्र, अग्नि, मृत्यु ये पंच देव अपने अपने अधिकारको करते हैं ॥

मायावादीका प्रश्न–"निष्कलं निष्क्रियम्" इस श्रुतिने परमात्मामें गुण और शरीरादिकोंका निषेध किया है और तुम तो परमात्मामें शरीर शरीरीभाव और अनंत गुणोंका वर्णन करते हो सो श्रुतिसे विरुद्ध है ॥

उत्तर–हे वादि ! यह जो श्रुतिने निषेध किया है सो प्रकृतिके हेय गुणोंका निषेध किया है कुछ सर्वज्ञ आनंद आदिक गुणोंका निषेध नहीं किया है॥

---

१ चित् नाम चेतनका है. २ अचित् नाम जडका है.

सत्त्वादयो न संतीशे यत्र च प्राकृता गुणाः ॥

अर्थ–जिस ईश्वरमें प्रकृतिके सत्व, रज और तम ये तीन गुण नहीं हैं, सोही ईश्वरोंका ईश्वर है, ऐसा इस श्रुतिमें कहा है इससे ईश्वर प्रकृतिके गुणोंसे रहित और प्राकृत शरीरसे रहित है, कुछ स्वाभाविक आनंदादिक गुणोंसे रहित उस श्रुतिका अर्थ नहीं है इति ॥

वादिप्रश्न–"सदेव सौम्येदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम्" प्रलय कालमें यह जगत् सजातीय, विजातीय स्वगत इन तीन प्रकारके भेदोंसे रहित सन्मात्रही हुआ इस श्रुति करके केवल अद्वैत सिद्ध होता है ॥

उत्तर–इस श्रुतिका अर्थ वैसा नहीं है किंतु ऐसा अर्थ है कि–यह जगत् प्रलयकालमें सत्ही अर्थात् सदात्मकही हुआ था और (एक एव) आधारसे रहित (अद्वितीयं) दूसरे निमित्त कारणसे रहित हुआ था । और हे वादि ! यह जो श्रुति है सो विशिष्टाद्वैतको प्रतिपादन करती है, केवल अद्वैतको प्रतिपादन नहीं करती है । क्योंकि–इस श्रुतिमें जो "इदं" यह शब्द है सो इस शब्दका अर्थ केवल जगत् ऐसा नहीं है, किंतु स्थूल अवस्थावाला जगत् करके विशिष्ट ब्रह्म, ऐसा अर्थ है और 'सत्' इस शब्दकाभी केवल ब्रह्म ऐसा अर्थ नहीं है किंतु सूक्ष्म अवस्थावाले जगत् करके विशिष्ट ब्रह्म ऐसा अर्थ है, क्योंकि--"तत्तेज ऐक्षत" सो तेज इच्छा करता भया इस श्रुतिमेंभी तेज विशिष्ट ब्रह्मने इच्छा की है. कुछ तेजने इच्छा नहीं की है। हे वादि! तुमने इस श्रुतिका अर्थ, सजातीय जीव, विजातीय माया, स्वगत आनंदादि गुण–इन तीन भेदोंसे रहित सन्मात्रही ब्रह्म प्रलय कालमें हुआ था ऐसा किया है तहां हम पूछते हैं कि–तीन भेदोंसे रहित वैसे ब्रह्मसे जगतकी उत्पत्ति आदिक व्यापार किस प्रकारसे होवेगा ? ॥

वादी कहताहै कि, मायाको अंगीकार करके जगत्का व्यापार होवेगा ।

सिद्धांती–वह निर्विशेष ब्रह्म, ऐसा जानता है कि, यह माया है और यह मायाही जगत्को उत्पन्न करता है कि ऐसा नहीं जानता है । कदाचित् कहोगे कि नहीं जानता है, तौ ब्रह्म अज्ञानी हुआ और " यः सर्वज्ञः सर्ववित् " इत्यादिक श्रुति ब्रह्मको सर्वज्ञ कहती हैं, सो इन श्रुतियोंमें विरोध आवेगा ॥ और कदाचित् कहोगे कि, मायाको ब्रह्म जानता है, तो ब्रह्ममें ज्ञातापनेकी प्राप्ति हुई । इस करके निर्विशेषपनेका भंग होवेगा ।

वादी कहताहै कि--सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर आदिक जो गुण हैं वे तो ईश्वरके हैं, निर्विशेष ब्रह्मके वे गुण नहीं हैं। और ईश्वर विषयमेंभी मायाकी उपाधि करके सर्वज्ञ आदिक गुण हैं, कुछ स्वाभाविक नहीं हैं। क्योंकि श्रुतिमें मायावाला ईश्वरमेंही सर्वेश्वर सर्वज्ञ आदिक गुण सिद्ध होते हैं, कुछ निर्विशेष ब्रह्ममें सर्वज्ञादिक गुण नहीं हैं।

सिद्धांती–ऐसे तुम्हारे वचनको सुनकर कान मूंदने चाहिये। इस तुम्हारे वचनको सुनकर हमारेको खेद उत्पन्न होता है, क्योंकि--"न तत्समश्चाभ्याधिकश्च दृश्यते" "न त्वत्समोस्त्यभ्याधिकः कुतोऽन्यः" अधिकभी दूसरा कोई नहीं है'। इस श्रुतिसे ऐसा सिद्ध हुआ कि सर्वज्ञ ईश्वरके समान और अधिक दूसरा कोईभी नहीं है और ऐसेही स्मृतिमेंभी कहा है कि–हे भगवन्! जब तुम्हारे समान कोई नहीं है तब दूसरा तुम्हारेसे अधिक तो कहांसे होवेगा। इन श्रुति स्मृतियोंके प्रमाणों करके प्रतिपादन करनेसे सर्वज्ञ ईश्वरसे भिन्नगुण दरिद्री निर्विशेष ब्रह्म तुमने कहांसे पाया। और ज्ञान जो है सो तो गुण है, जो गुण होता है सो द्रव्यका आश्रित होता है और वह द्रव्य आश्रय होता है, इस कारण ब्रह्म निर्विशेष हो तो ज्ञानगुणका आश्रय कौन है, सो कहो क्योंकि लोक और वेदमें अनाश्रितको नहीं देखाजाता है॥

वादी कहता है कि, सत् असत्से माया विलक्षण अर्थात् माया सत् नहीं है और असत् भी नहीं है किंतु सत् असत्से भिन्न अनिर्वचनीय माया है, इसलिये पूर्वोक्त दोषका प्रसंग नहीं आवेगा॥

सिद्धांती। "अजामेकां" "गौरनाद्यंतवती"। माया कैसी है, कि एक है और अजा है अर्थात् जन्मसे रहित है। और जिसका आदि और अंत नहीं है अर्थात् उत्पत्ति और विनाशसे रहित है। इस श्रुति करके मायाका निर्वचनीयत्व कहा है और लोकमें भी सर्व पदार्थोंकी सत्त्व अथवा असत्त्व करके प्रतीति होती है सत् असत्से विलक्षण किसीकीभी प्रतीति नहीं देखी जाती है॥ "माया वयुनं ज्ञानं" "मायया सततं वेत्ति"। इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे किसी स्थलमें मायाशब्द ज्ञानवाचकभी कहा है, और माया करके निरंतर जानता है, ऐसे श्रुतिमें मायाशब्दकरके जाननेका कहा है, इसलिये मायाशब्द ज्ञानका पर्यायशब्द है॥ जो मायाको मिथ्या कहोगे तो उस मिथ्या माया करके यथार्थ ज्ञानभी कैसे होवेगा?।

मायावादी बोला कि "नासदासीन्नो सदासीत्तदानीम्", इस श्रुति करके सत् असत्से अनिर्वचनीय अज्ञानकी प्रतीति होती है । क्योंकि इस श्रुतिमें कहा है कि--नहीं तो असत् और नहीं सत् हुआ, किंतु उस कालमें तमही हुआ इस श्रुतिकरके सत् असत्से विलक्षण अनिर्वचनीय तमही कहा है।

तत्त्ववादी बोले कि, हे वादि ! इस श्रुतिमें सत्शब्द करके चेतन और असत्शब्द करके अचेतन ये दोनोंका कथन किया है कुछ अनृतादिकका कथन नहीं किया है। क्योंकि जो सत् असत् शब्दको चेतन और जडका विषय नहीं माने तौ "तम आसीत्" इस उत्तर वाक्यके साथ विरोध होता है। क्योंकि-तमःशब्द सूक्ष्म अवस्थावाली प्रकृतिका वाचक है, सो प्रकृति परमात्माका शरीर है "यस्य तमः शरीरम्" जिस परमात्माका तम शरीर है इससे यहां सत् असत्से भिन्न अनिर्वचनीय ऐसा नाम मायाका लोक और वेदमें कहीं भी देखनेमें नहीं आता है। तुम मायावादियोंनेही अपने शिष्योंको समझानेके वास्ते अनिर्वचनीय माया है ऐसा नवीन नाम मायाका ठहराया है। इस कारण तुम्हारे मतमें जो अनिर्वचनीय ख्याति तुमने मानी है, वह ख्याती भी वेदादिक प्रमाणोंसे रहित होनेसे कपोलकल्पितही है। और हमारे विशिष्टाद्वैतमतमें सत्ख्याति विवेक ख्याति मानी है । इससे सत्ख्यातिकोही सत्पुरुष अंगीकार करते हैं और योगमतमें विवेक ख्याति मानी है सो भी हमारे मतसे विरुद्ध नहीं है "तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्तन्नामरूपाभ्यां व्याक्रियते"इस श्रुतिमें कार्य कारणकी एकता सिद्ध की है।प्रलयकालमें यह स्थूल चेतन और स्थूल जड इन दोनों करके सहित कार्य, सो नाम रूप विकारसे रहित हुआ है अर्थात् प्रलय कालमें सूक्ष्म जड और सूक्ष्म चेतन करके विशिष्ट परमात्मा हुआ है उसकोही कारण कहते हैं। और सोई जो कारण वस्तु ब्रह्म है, सो स्थूल चेतन और स्थूल अचेतन इन दोनों करके सहित नाम रूपवाला हुआ उसको कार्य कहते हैं। तब परमात्माही तो कार्य है और वही कारण है । ऐसा स्मृतिमेंभी कहा है कि "स एव सृज्यः स च सर्गकर्ता" 'आपही तो उत्पन्न होता है और आपही उत्पत्तिको करता है' । इस वास्ते कार्य कारणकी एकताही वेदांतका सिद्धांत है । हे मायावादी ! इससे इस सृष्टिका बीज सूक्ष्म अवस्थाही है, क्योंकि सब जीव अपने कर्मोंके संस्काररूप सूक्ष्म वासनाओं करके सहित अनादि अविद्याके वशमें नाम रूपसे रहित प्रलय कालमें रहते हैं। फिर वेही जीव सृष्टिकालमें पूर्ववासनाओं

करके उत्पन्न होते हैं। ऐसे घटीयंत्रकी सदृश उत्पत्ति प्रलयको प्राप्त होते हैं। इसलिये जीव, ईश्वर और माया, ये तीनों अनादि हैं। इन तीनोंमें किसीकाभी आदि अंत नहीं हैं क्योंकि प्रलयकालमें सूक्ष्मरूप करके सब चेतन, अचेतन रहते हैं। और वेही जड और चेतन सृष्टि कालमें फिर प्रगट होते हैं। इसलिये अनादि हैं। और जो वादी प्रलयकालमें इन जीवोंका नाश माने तो अकृताभ्यागमकृतविप्रनाश दोषकी प्राप्ति होवेगी अर्थात् नहीं किये हुए कर्मोंकी प्राप्ति और किये हुए कर्मोंका भोगसे विनाही नाश होवेगा॥

वादी बोले कि, ब्रह्म तो अद्वैत स्वयं प्रकाशही है, परन्तु उस ब्रह्ममें जो जगत्की उत्पत्ति प्रतीत होती है सो अध्यारोपापवादन्याय करके जगत दुत्पत्तिका संभव हो सकता है "रज्जौ सर्पाध्यारोपवत्" अर्थात् वस्तुमें अवस्तुका आरोपको अध्यारोप कहते हैं। वस्तु जो सच्चिदानंद स्वरूप ब्रह्म है उसमें मिथ्या देवादिक प्रपंच रूप अवस्तुका आरोप है। जैसे रज्जुमें सर्पका आरोप है॥

तत्ववादी बोले कि, इस तुम्हारे दृष्टांत करकेभी निर्विशेष ब्रह्मकी सिद्धि नहीं होती है। क्यों कि, दृष्टांत दार्ष्टांतमें वैरूप्यकी प्राप्ति होनेसे किस प्रकारसे वैरूप्यापात्ति है, सो मन लगाकर सुन। जैसे रज्जु अधिष्ठानमें अज्ञानसे कल्पित सर्प है, सो अज्ञानमूल भ्रमकरके भासता है, सो वह अज्ञान द्रष्टा पुरुषमें है। फिर सर्पका अपवादरूप करके उपदेश करनेवाला आप्त पुरुषभी होना चाहिये। जैसे यहां दृष्टांतमें रज्जु सर्प और रज्जु सर्पको देखनेवाला तथा यह रज्जु है, सर्प नहीं है ऐसे उपदेश करनेवाला पुरुष य चार हैं वैसे दार्ष्टांतमें चार हैं नहीं, क्योंकि ब्रह्ममें अज्ञान करके जगत् प्रतीत होता है, परंतु उस जगत्को देखनेवाला और उपदेश करनेवाला ये दो नहीं दीखते हैं। जो ऐसा कहै कि–ब्रह्ममें जगतको जीव देखता है, सो बने नहीं, क्यों कि ब्रह्मसे भिन्न दूसरा कोई तो सत्य है नहीं तौ जगत् किसको प्रतीत होता है। जो कहै कि जीवको जगत् भासता है तौ जीव जगत् ये सब रज्जूमें सर्पकी तरह ब्रह्ममें कल्पित हैं, इसलिये तेरा दृष्टांत दार्ष्टांत[1]से वैरूप्य दोषवाला है सो नहीं लग सकता है॥ इति॥

वादी–दृष्टांत और सिद्धांतमें सब प्रकारसे समता कहींभी देखनेमें नहीं

---

१ सिद्धांतसे.

आती है, किंतु दृष्टांत एकदेशी होता है सर्वदेशी नहीं । जैसे 'सिंहो देवदत्तः' यह एकदेशी दृष्टांत है ॥

सिद्धांती–वह एकदेश कौनसा है ? सो कहना चाहिये ।

वादी–जैसे रज्जुमें सर्पादिक कल्पित है, तैसे ब्रह्ममें भी देवादिक प्रपंच अनिर्वचनीय अज्ञान करके कल्पित है, यही एकदेश है । तहां यह सर्प नहीं किन्तु रज्जु है ऐसे अपवाद करके सर्पका मिथ्यापना और रज्जु स्वरूप अधिष्ठानका सत्यपना होता है वैसे ब्रह्ममें भी अज्ञानकल्पित प्रपंचका मिथ्यात्व और अधिष्ठान रूप ब्रह्मकाही सत्यता प्रतिपादन किया है ॥

सिद्धांती बोले कि, यदि वैसाभी मान लिया जाय तो यहां नहीं बनै, क्योंकि अज्ञानकल्पित प्रपंच है ऐसा तुमने कहा, सो अज्ञान जीवमें रहता है किंवा ब्रह्ममें रहता है यह दो विकल्प है. इसमें प्रथम जीवमें तो अज्ञानका रहना तो नहीं बने क्योंकि, जीवको अज्ञान कल्पित होने करके प्रपंचके मध्यमें पड़ा हुआ होनेसे । और ब्रह्ममें भी अज्ञानका रहना नहीं बनै, क्योंके–ब्रह्मको ज्ञान स्वरूप स्वप्रकाशता करके अज्ञानका विरोधी होनेसे । और तुमने भी अज्ञानको ज्ञानबाध्यही माना है ।

वादी बोले कि, अज्ञानकी दो शक्ति है । एक तो आवरणशक्ति है और दूसरी विक्षेप शक्ति है । आवरण शक्ति ब्रह्मस्वरूपको छिपाती है और विक्षेप शक्ति ब्रह्ममें देवादि प्रपंचबुद्धिको उत्पन्न करती है ॥ इति ॥

सिद्धांती बोले कि,वाहजी वाह ! ! तुमारे विद्वात्ताकी कुशलता–तुमने ऐसा ज्ञान कहांसे पाया है ? क्योंकि स्वप्रकाशस्वरूप ब्रह्म करके तो अज्ञानकी निवृत्ति होती है, उलटा अज्ञाननेही ब्रह्मको छिपाया है । जैसे सूर्यमें अंधकार नहीं है, तैसे ब्रह्ममें अज्ञान नहीं है, और जैसे सूर्य करके अधंकार निवृत्त होता है तैसे ब्रह्म स्वरूप करके अज्ञान निवृत्त होता है इति ॥

वादी बोले कि–सूर्यसे मेघ उत्पन्न होता है, मेघ तम रूप है, सो सूर्यको जैसा आच्छादन करता है तैसे अज्ञानभी ब्रह्मको आच्छादन करेगा ॥ इति ॥

सिद्धांती बोले कि– मेघ जो है सो सूर्यसे भिन्न दूसरे पुरुषोंकी दृष्टिको आच्छादन करता है कुछ सूर्यके स्वरूपको आच्छादन नहीं कर सकता है । क्योंकि–जब मेघमाला वर्षती है तब समस्त पृथ्वीतलमें नहीं वर्षतीहैं किंतु सूर्यके आस पास पचाश कोशमें वर्षती है, इससे यह दृष्टांत भी नहीं बनै ॥ इति ॥

फिरभी वादी बोले कि—जैसे दर्पणमें प्रतिबिंब, अर्थात् अपने मुखका आभास पडता है, तैसे मायामें ब्रह्मकाभी आभास पडता है, उस आभासके योग करके ब्रह्ममें सृष्टि करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है। सो वेदमें कहा है कि " तदैक्षत बहुस्याम् " सो ब्रह्म इच्छा करता भया—मैं बहुत प्रकारसे होजाऊं । इति ॥

सिद्धांती बोले कि—इस श्रुतिमें आभास ऐसा पद तो है नहीं, तो क्या श्रुतियोंके अर्थ तुम तुम्हारे मनसेही बना लेते हो ? हे मायावादि ! तुमने मायामें जो ब्रह्मका आभास माना है सो अत्यंत झूठा है, क्योंकि, रूपसे रहित चिन्मात्र ब्रह्मका आभास योग नहीं बन सकता है, क्योंकि अरूपी पदार्थका आभास, कहीं भी देखनेमें नहीं आता ह । इति ॥

वादी बोले कि—रूपरहित आकाशका आभास जलविषे देखनेमें आवा है।इति

तत्त्ववादी बोले कि " एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः " इस श्रुतिमें परमात्मासे आकाशकी उत्पत्ति कही है, इसलिये आकाश रूपवाला सिद्ध होता है, क्योंकि रूपवालेकाही जन्म होता है । अरूपीका जन्म होता नहीं. आकाशका नीलरूप सब किसीकी प्रतीत होता है, और आकाशका जन्मभी परमात्मासे श्रुतिने सिद्ध किया है, इस कारण आकाश रूपवाला है, अरूपी नहीं ह इति । और दूसराभी एक दोष है कि—परिच्छिन्न वस्तुकाही आभास होता है । जो ब्रह्मका आभास अंगीकार कराग तो देश, काल, वस्तु इन तीन परिच्छेदोंसे रहित ब्रह्मको परिछिन्नपनेकी प्राप्ति होवेगी । इस करके तुम्हारे सिद्धांतका समूलनाश हो जायगा जो तुमसे सत असतसे विलक्षण अनिर्वचनिय अज्ञानको कहा, सो अत्यंत तुच्छ है इस वास्ते माया नित्य है, अनित्य और अनिर्वचनीयभी नहीं है । क्योंकि—श्रुतिमें कहा है, माया अनादि है, एक है और निरंतर विक्रियावाली है, इसवास्ते मायाका नित्यत्वही अंगीकार करना चाहिये । ऐसी सत्ख्याति वेदके प्रमाणोंसे सिद्ध है इति ॥

वादी कहता है कि, शुक्ति रजतादिकमें अनिर्वचनीय अज्ञान प्रतीत होता है इति ॥

सिद्धांती बोले—हे वादि ! 'इदं रजतम्' यहां शुक्ति (छीप) में रजत (चांदी) अनिर्वचनीयता करके प्रतीत होता है या रजत रूप करके प्रतीत होती है ? इति ॥

वादी कहता कि, अनिर्वचनीयपनेसे प्रतीत होता है ॥

सिद्धांती बोले–तब पुरुषकी प्रवृत्ति नहीं बनेगी, क्योंकि पुरुषकी जो प्रवृत्ति होती है, सो रजत बुद्धि करके होती है, कुछ अनिर्वचनीय बुद्धि करके नहीं होती है ।। और जो कहे कि, शुक्ति, रजतरूप करके प्रतीत होती है, तो तुम अन्यथाख्यातिमें डूब मरे। क्योंकि शुक्तिको अन्यथा (अन्य प्रकार) रजत करके भान होना और कथन करना, इसका नाम अन्यथाख्याति है, सो न्याय और वैशेषिकशास्त्रके मतमें अन्यथाख्याति मानी है, उस मतमें तुम डूब गये इति ।। हे मायावादि ! पंचीकरणकी प्रक्रिया करके शुक्तिमें तेज अंशके विद्यमान होनेसे सत्ख्यातिकाही अंगीकार करना योग्य है। दुराग्रह करके तुच्छ ऐसी अनिर्वचनीय ख्यातिकी कल्पना करनेसे क्या फल होनेका है ? इति ।।

वादी बोले–हे विशिष्टाद्वैततत्त्ववादि ! उस शुक्ति रजतमें प्रवृत्ति और निवृत्ति किस प्रकारसे होवेगी ? ।

सिद्धांती० । शुक्तिका विशेषरूप जो त्रिकोणात्मक है, उसके अज्ञान करके रजत बुद्धिसे प्रवृत्ति होती है, और उस त्रिकोणात्मक छीपका जब ज्ञान होता है तब निवृत्ति होती है, यही दोष रहित अचल सिद्धांत है इति ।। और तुमने मायामें ब्रह्मका आभास (छाया) मानी है, सो तुम इस श्रुतिको कलंक लगाते हो । " अलोहितमच्छायम् " इस श्रुतिने ब्रह्ममें रक्त, पीत, श्याम, श्वेत, नीलादिक रंगोंका और छायाका निषेध किया है, और तुम कहते हो, मायामें ब्रह्मका आभास पडा है । इसलिये तुम इस वेदवचनके विरोधी हो ।। इति अनिर्वचनीय और आभास खण्डनम् ।।

जीव ब्रह्मैक्यवाद खण्डन ।

वादि प्रश्न–" तत्त्वमसि श्वेतकेतो " । उद्दालक ऋषि, अपने पुत्र श्वेतकेतुके प्रति इस सामवेदके वचनसे उपदेश करते हैं–' हे श्वेतकेतो तत् कहिये सो ब्रह्म, त्वं असि, तू है ' इस रीतिसे जीव और ब्रह्मकी एकता कही है, इसलिये जीव और ईश्वरका अभेदही अंगीकार करना योग्य है । ईश्वरसे जीवको भिन्न मानना अयोग्य है । " अहं ब्रह्मास्मि–ब्रह्मैवाहमस्मि " " मैं ब्रह्म हूं और ब्रह्मही मैं हूं " ऐसाही सब किसीको जानना चाहिये, ऐसे जाननेका नाम अपरोक्ष ज्ञान है । मैं ब्रह्म हूं, यह अपरोक्षज्ञान कहा जाता है, और ब्रह्म है, यह परोक्ष ज्ञान कहा जाता है इति ।।

सिद्धांति उत्तर । हे मायावादि ! यह तुम्हारा कहना कैसा है कि, किसीने कहा कि ' मैं वंध्याका पुत्र हूं ' अब यहां विचार करना चाहिये कि, जब माता वन्ध्या है तो उसके पुत्र कैसे उत्पन्न हुआ ? । तैसे तुम अपने शिष्योंको

प्रथम तो ऐसा उपदेश करते हो कि–गुरु झूठा और गुरुने उपदेश किया वेद झूठा और वेदसे उत्पन्न ज्ञान झूठा और वेदका कर्त्ता ईश्वरभी झूंठा। हे वादि ! जब गुरु वेद और ईश्वर ये सब झूंठे हैं, तब इस झूठेसे सच्ची पारमार्थिक स्वरूपकी प्राप्ति कैसे बनेगी ? जैसे तांबाका रुपैयाको लेकर कोई पुरुष बाजारमें कुछ पदार्थ लेने जावे, तब उस रुपैयासे कुछ वस्तुकी प्राप्ति होना तो बहुत दुर्घट है परंतु जूतियोंसे शिरके बाल उडाये जाते हैं इस बातमें किसीको भी सन्देह नहीं है। तैसे असत्य गुरु, ईश्वर और वेदको मानकर सच्ची वस्तु मोक्षकी प्राप्ति तो बहुत दुर्लभ है परंतु नरकरूपी चरणदासियोंकी मार तो अवश्य भोगनी पडेगी, इस विषयका खंडन हम इस ग्रन्थमें आगे करेंगे इति ॥ हे वादि ! " तत्त्वमसि श्वेतकेतो " यह श्रुति जीव ईश्वरकी एकताको नहीं कहती, किंतु उपासनाको कहती है । जैसे–(तत्) सो ब्रह्म, (त्वं असि) तू है । यहां जीवमें ब्रह्म बुद्धि रखकर उपासना करनी कही है ।जैसे पाषाण धातु आदिकी मूर्तियोंमें पाषाण और धातु बुद्धिको छोड उन मूर्तियोंमें विष्णुपनेकी बुद्धि रखकर उपासना करनेकी शास्त्रने कही है, तैसे जीवभी ब्रह्म नहीं है, परन्तु उस जीवमें ब्रह्म बुद्धि रखकर उपासना करनी, ऐसा तत्त्वमसि इस वेदवाक्यने कही है । जैसे यहां जीवको ब्रह्म मानकर उपासना करनी कही है, तैसेही–

" मनो ब्रह्मेत्युपासीत १ । अन्नमुपास्व २ । आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशः ३ । वायुर्वाव संसर्गः ४ । प्राणो वाव संसर्गः ५ । योषा वा गौतमाग्निः ६ । ओमित्यात्मानं ध्यायथ ७।सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत ८ । आत्मानमेव लोकमुपासीत ९ । ध्यात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः १० । कारणं तु ध्येयः ११ । "

---

१ विष्णोरर्चावतारेषु लोहभावं करोति यः।
यो गुरौ मानुषं भावमुभौ नरकपातिनौ ॥

अर्थ--विष्णुके अर्चावतार (मूर्तियों) में तांबा, चांदी आदिलोहकी बुद्धि करनेवाला और अपने गुरुमें मनुष्य बुद्धि करनेवाला ये दोनों नरकमें पडते हैं।

अर्थ–मन ब्रह्म है. । यहां मनको ब्रह्म मानकर उपासना करनी १ । अन्नको ब्रह्म मानकर उपासना करनी २ । आदित्य ब्रह्म है, ऐसे आदित्यको ब्रह्म मानकर उपासना करे ३ । वायुही ब्रह्म है, ऐसे वायुको ब्रह्म मानकर उपासना करे ४ । प्राण ब्रह्म है, ऐसे प्राणको ब्रह्म मानकर उपासना करे ५ । हे गौतम ! यह (योषा) स्त्री अग्नि है, ऐसे स्त्रीको अग्नि मानकर उपासना करे ६ । ओंकारका आत्मारूप करके ध्यान करै ७ । यह सर्व जगत् निश्चय करके ब्रह्म है, ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ है और ब्रह्ममें ही लय होता है, ऐसे कारण कार्यकी एकता करके शांत पुरुष उपासना करे ८ । लोकको आत्मा मानकर उपासना करे ९ । परमात्मा देवका ध्यान करके सर्व कर्मपाशोंसे मुक्त होवै है १० । कारण जा है सो ध्येय है ॥ ११ ॥

हे एकदंडिन् ! जैसे यहां मन, अन्न, आदित्य, वायु, प्राण, योषा आदिक कोईभी ब्रह्म नहीं हैं, परंतु इनकी ब्रह्मरूप करके उपासना कही है, वैसे ' तत्त्वमसि ' मेंभी जीव ब्रह्म नहीं है, परंतु उसकी ब्रह्मरूप करके उपासनाही कही है, इसलिये जीव और ईश्वरका भेदही इस तत्त्वमसि वेदवचन करके सिद्ध हुआ । इति । जो जीव ईश्वरके भेदकों तुम अंगीकार नहीं करो तो "अंतः प्रविष्टः शास्ता जनानाम्" इस श्रुतिके विरोधी होओगे. क्योंकि सर्वजीवोंके भीतर प्रवेश करके सर्वजीवोंका शास्ता ईश्वर है' इस प्रकार इस श्रुतिमें. जीव और ईश्वरका शास्य और शास्तृता कही है । जीव (शास्य) शिक्षा करने योग्य और ईश्वर (शास्ता) शिक्षा करनेवाला है । जैसे राजा शास्ता है और प्रजा शास्य है । जब शास्ता और शास्यका भेद अंगीकार नहीं करोगे, तब आपही शास्य और आपही शास्ता, आपही कर्म और आपही कर्ता, ऐसा दोष लगेगा इति ॥

वादी–हे विशिष्टतत्वज्ञानी ! अणुपरिमाण १, मध्यमपरिमाण २, महत्परिमाण ३ इन तीन परिमाणोंमें कौनसा परिमाणवाला जीवात्मा आपने माना है ? ।

सिद्धांती–हे असद्वादी ! हमारे श्रीवैष्णवसिद्धान्तमें जीवात्माको अणुपरिमाण माना है १ । अन्य मतमें जीवको मध्यमपरिमाण माना है सो ठीक नहीं. क्योंकि " मध्यमस्य च सावयवत्वेन घटादिवदनित्यत्वावश्यंभावात् " अर्थात् मध्यमपरिमाण जीवको अवयवों करके सहित होनेसे घट पट आदिक पदार्थोंके सदृश अवश्य नाशवान्पनेका संभव होवेगा । जैसे अवयववाले घट-

पटादिक पदार्थ हैं, वे निश्चयकरके नाशको प्राप्त होते हैं । ऐसे पारिच्छिन्न-परिमाण आत्माभी अनित्य होवेगा जो मध्यमपरिमाणवादी जीवात्माको संकोच विकासस्वभाववाला माने हैं सोभी ठीक नहीं. क्योंकि, संकोच विकासवाला जो पदार्थ है सो विकारी जन्म मरणवाला होता है, जलौकावत्। इससे मध्यमपरिमाणवादीका मत इन उपरोक्त दोषोंकरके दूषित है और "न जायते म्रियते" इत्यादिक श्रुतिस्मृतियोंसे विरुद्ध है इति २। महत्पारिमाण-वादीका मतभी समीचीन नहीं. क्योंकि, "विभ्वोश्च कालाकाशादेरिव तुल्यत्वेन मिथः शास्यशास्तृत्वायोगात्" अर्थात् विभुको काल आकाश आदिकोंकी तरह तुल्यता करके परस्पर शास्य शास्तापनेका अयोग होनेसे।जैसे जीवात्मा विभुहै और परमात्माभी विभु हैं तौ इन दोनोंको समान होनेसे इन दोनोंमें शास्य कौन है और शास्ता कौन है ऐसा शास्य शास्ताका भेद नहीं बनेगा। क्योंकि "सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः" इत्यादिक श्रुतियोंमें विरोध होनेसे जीवात्मा विभुपरिमाणवाला नहीं है और मध्यमपरिमाणभी नहीं है, किंतु अत्यंत सूक्ष्म प्रकाशरूप ज्ञानादिकका आश्रय ज्ञानस्वरूप और भगव-तका शेषभूत अणुपरिमाण जीवात्मा है इति।

वादी–हे अणुपरिमाणवादी! जीवात्माको अणु माननेमें कौन शास्त्र प्रमाणहै?

उत्तर–"एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः"यह वेदवचन प्रमाण है।

वादी–"अणूदरे शास्तुः प्रवेशायोगात्" अर्थात् अणुके उदरमें शास्ताके प्रवेशका अयोग होनेसे "अंतः प्रविष्टः शास्ता जनानाम्" 'जीवोंका अंत-र्यामी जीवोंके भीतर प्रवेश करके नियममें रखता है' इत्यादिक श्रुतियोंमें विरोध आवेगा।

सिद्धांती–"अणोरणीयान्" अणु जो जीव है उससेभी परमात्मा अत्यंत अणुतर हैं. इस प्रकार श्रुतिमें परमात्माका स्वरूप जीवसे अत्यंत सूक्ष्म कहा है और गीताजीके अष्टम अध्यायके नवम श्लोकमेंभी कहा है कि "अणोरणी-यांसमनुस्मरेद्यः"अणुरूप जीवसेभी परमात्मा अणीयान् है अर्थात अत्यंत सूक्ष्मतर है। इत्यादिक श्रुति स्मृतियोंके प्रमाणोंसे परमात्माकी अणुव्याप्ति सिद्ध की हुई है, इससे अणुपरिमाण जीवमें अंतर्यामी परमात्माका प्रवेश नहीं बनेगा ऐसी जो तुम्हारी शंका है सो भस्माहुतिवत् मिथ्या है इति॥

वादी बोला कि–जीव ईश्वरका जो औपाधिक भेद है, उस भेदको विषय-करनेवाली पूर्वोक्त श्रुति है॥

सिद्धांती बोले कि, जीव ईश्वरविषे जो उपाधिका संसर्ग तुम कहते हो, सो आपसेही है कि अन्यसे है? ऐसा हमारा विकल्प है । जो आपसे स्वाभाविक है, ऐसे कहै तो अनिर्मोक्ष प्रसंग होवेगा. क्योंकि, स्वाभाविक उपाधिका तो नाश नहीं है, तब तो उपाधिके नहीं मिटनेसे किसीकाभी मोक्ष नहीं होवेगा और जो कहै कि, उपाधि आपसे नहीं है किंतु अन्यसे है, तो वह अन्य कौन है, सो कहना चाहिये । कदाचित् कहै कि, अनादि अविद्याही उपाधिका कारण है, तब तो उस विषयमें प्रमाण कहना चाहिये यदि कहै कि "अजामेकां" "प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी" 'माया एक है और वह माया उत्पत्तिसे रहित अजा है तथा प्रकृति (माया) और पुरुष (जीव) ये दोनों अनादि जान' । इन श्रुति स्मृतियोंके प्रमाणसे माया अनादि है, उसही मायासे उपाधि होती है ऐसा कहोगे तो (आगतोसि सन्मार्गं सुखी भव) अर्थात् हे वादि ! अब तो तू हमारे विशिष्टाद्वैतरूपी सन्मार्गमें आगया इस वास्ते सुखी होओ । ऐसा तुमको हमारा आशीर्वाद है । उसके पीछे वह वादी वाद करना छोड दिया. और निरुत्तरमुख हो मौन व्रत धारणकर लिया ॥ इति ॥

यहां अद्वैतानंद नामके वादीको परास्त हुआ जानकर इसी मतवाला दूसरा केवलानंदवादी बोलने लगा कि–हे विशिष्टवादिन् !

" तत्त्वमसि श्वेतकेतो, अहं वै भगवंस्त्वमसि, त्वं वै भगवोहमस्मि, सर्वं खल्विदं ब्रह्म ॥"

हे श्वेतकेतो ! सो तू है । हे भगवन् ! मैं हूं सो तुम हो और तुम हो सो मैं हूं और यह सर्व जगत् ब्रह्मही है ' इत्यादिक श्रुतियां अभेदको कहती हैं, सो क्या असत् है ? इति ॥

सिद्धांती उत्तर । हे श्रुतिप्रकारानभिज्ञ ! श्रुति तीन प्रकारकी हैं एक तो अभेद श्रुति है, द्वितीया भेद श्रुति है, तृतीया घटक श्रुति है । उनमें घटक श्रुति ऐसे कहती है कि, जैसे–दो जनोंकी लडाईमें तीसरा जो घटक पुरुष है सो दोनोंकी लडाईमें जो सत्य अर्थ है, उस अर्थको दिखाय समझाकर दोनोंका समाधान करता है, तैसे समस्त चेतन और अचेतन ये दोनों परमात्माका शरीर है और परमात्मा शरीरी अर्थात् शरीरमें रहनेवाला है । इस अर्थको घटकश्रुति कहती है ॥ उससे स्वरूपकी एकता, जो कदाचित् अभेद श्रुतियोंका अर्थ होवे तो एक वस्तुमें शरीर शरीरीभाव नहीं बन सकता है ।

कदाचित् मायावादी कहै कि-अज्ञानसे जो जीव बना है उसको लेकर अंतर्यामिब्राह्मण, शरीर शरीरी भावको कहता है, सो वादीका कहना बनै नहीं; क्योंकि-स्वयंप्रकाश ब्रह्म स्वरूपमें अज्ञान नहीं रह सकता है, अज्ञान अंधकार रूप है और ब्रह्म प्रकाशरूप है, अंधकार और प्रकाश ये दोनों परस्पर विरुद्ध धर्मवाले होनेसे "सामानाधिकरण्यं हि तेजस्तिमिरयोः कुतः" इस न्यायसे एकत्र नहीं रह सकते हैं। जैसे सूर्य प्रकाशरूप है उसका और अंधकारका परस्पर विरोध है, इससे सूर्य और अंधकार एकत्र नहीं रह सकते हैं। हे वादि! प्रकाश अंधकारका वैरी है, और अंधकार प्रकाशका वैरी है, जहां अंधकार रहता है वहां प्रकाश नाश होजाता है। इस वास्ते तुम्हारे मतमें प्रकाश रूप ब्रह्ममें मायारूप अंधकारका अंगीकार करोगे तो वह अज्ञान रूप अंधकार, प्रकाशरूप ब्रह्मका विरोधी होनेसे नाश कर देगा, इसलिये अंतर्यामिब्राह्मण जो वेदका भाग है, उसने घटकपनेसे शरीर शरीरी भाव सिद्ध किया है. सोही हमारा निर्विवाद सिद्धांत है, उसमें ब्रह्म, नारायण विष्णु आदिक नामों करके विशिष्ट परमात्माही सिद्ध किया है। उस नारायणसे भिन्न निर्विशेष ब्रह्मकी जो तुम कल्पना करते हो, सो शशशृंगवत् मिथ्या है। अतः नारायणही ब्रह्म हैं, और नारायणही विष्णु हैं, नारायणसे अधिक और समान कोईभी नहीं है। ऐसा वेदका निश्चय है॥ जो निर्विशेष एकही ब्रह्म होय तो ब्रह्मसे भिन्न दूसरा तो कोई है नहीं तब अंतर्यामी किसका होवेगा! जो कदाचित् वादी कहै कि ब्रह्म आपही आपका नियंता आदिक है तो "अग्निरात्मानं दहतीतिवदसमंजसम्" अर्थात् जैसे अग्नि, अपने आत्माको आप दहन करता है ऐसा कहना अन्याय है तैसे ब्रह्म आपका नियंता आपही है ऐसा कहनाभी अन्याय है। और जैसे राजा अपना नियंता आप नहीं है किंतु सेना आदिक परिकरकाही नियंता है इति॥

वादी प्रश्न-जैसे राजा और सेनाका भेद है; तैसे ब्रह्म और जीवोंका भेद मानिये तो उस भेदज्ञानसे मोक्ष कैसे होवैगा और जो आपके विशिष्ट सिद्धांतमें जीव ईश्वरके भेदसे मुक्ति माने तो उसमें कौनसे शास्त्रका प्रमाण है. सो कहना चाहिये इति॥

सिद्धांति उत्तर-हे केवलानंद! सकल प्रमाणोंका शिरोमणि और परम कारुणिक और परम आप्त ऐसा जो वेद भगवान् है उसका ऐसा प्रबल प्रमाण है कि-

पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति ॥ तमात्मस्थं येनु पश्यंति धीरास्तेषां शांतिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा लीना ब्रह्मणि ॥

अर्थ–आत्माके और आत्माके प्रेरक परमात्माको भिन्न, अर्थात् 'आत्मा परमात्मासे न्यारा है' ऐसे मान कर, अनन्तर जिसके साथ प्रीति करता हुआ मोक्षको प्राप्त होता है। अपने आत्मामें रहे हुए उस परमात्माको जो धीर पुरुष देखते हैं, उन पुरुषोंको मोक्षरूपी शांति मिलती है दूसरेको नहीं। और ब्रह्मको जाननेवाले पुरुष, जीव और ब्रह्ममें अन्तर (भेद) को जानकर ब्रह्ममें लीन होते हैं। इस प्रकारसे जीव और ब्रह्मके भेदज्ञानसे ही मोक्ष होता है ऐसा वेद भगवान्का अनादि सिद्धांत है इति ॥

वादी कहता है कि, इस पूर्वोक्त श्रुतिका अर्थ हमारे मतमें ऐसा किया है कि, "आत्मानमेव नियन्तारं देहात्पृथक् मत्वेति" अर्थात् आत्माको ही नियन्ता देहसे भिन्न मानकर मोक्षको प्राप्त होता है इति ॥

सिद्धांती बोले कि–हे वेदविरोधि ! तुम्हारी गुरुपरंपरामें ऐसाही चला आता है कि, श्रुतियोंके मुख्य अर्थको छोडकर और ऊपरसे अध्याहार पदोंको लाकर अपने शिष्योंको समझाना। क्योंकि इस पूर्वोक्त श्रुतिमें (देहात्) ऐसा पद तो है नहीं, और तुम इस श्रुतिमें देहात् ऐसे पदको अध्याहार करते हो और श्रुतिके " प्रेरितारं च" इस पदमें जो चकार है उसको तुम छोडते हो, किंतु पुनः अर्थवाले चकारको पुनरर्थमें नहीं लेते हो ॥ और " जुष्टस्ततस्तेन" इस तृतीयांत तत्शब्दके अर्थ भी तुम्हारे अर्थमें लाभ नहीं होता है, क्योंकि देहसे विलक्षण स्वात्मज्ञान होनेके बाद त्याज्य देहके साथ जुष्टपनेकी असंगति अर्थात् देहसे भिन्न आत्माको जाने पीछे देहके साथ प्रीति नहीं होनेसे। और " अमृतत्वमेति" इस पदमें देहसहित मोक्षप्राप्तिका प्रतिपादन किया है. उसकाभी असंभव होवेगा। इस वास्ते हे मायावादि ! तुम लोक श्रुति अर्थोंके चोर हो, और विशिष्टाद्वैतवादी हमलोग चोरोंको पकडनेवाले हैं ॥ हे केवलानंद ! इसमें तुम्हारा दोष नहीं है किंतु तुम्हारे पूर्वाचार्योंकाही दोष है, क्योंकि–पद्मपुराणमें कहा है कि कलियुगमें ब्राह्मणके घरमें शंकर अवतार लेवेंगे, और श्रुतिके अर्थको विरुद्ध करेंगे और जीवको ब्रह्म ठहरावेंगे तथा कर्मोंका त्याग करावेंगे, इस रीतिसे जगतमें पाखंडधर्म शंकरही चलावें।

इस करके शंकरके किये हुये विरुद्ध अर्थोंको पढकर तुमभी मिथ्या अर्थोंको कहते हो, इस वास्ते तुम शिष्योंका दोष नहीं है ॥ हे वादि ! परमेश्वर सर्वका आत्मा, सर्वका पति और सर्वका ईशिता होनेसे जीवोंसे सदाही विलक्षण है इति ॥

मायावादीके प्रश्न।

"यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः।
नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि मायामनोमयम् ॥"

अथ–जो यह मन, वाणी, नेत्रों और श्रवण आदिकों करके ग्रहण करनेमें आता है सो माया मनोमय होनेसे सब नश्वर अर्थात् नाशवान् है इति ॥

इस श्लोक करके सर्व जगतका मिथ्यापना प्रतिपादन किया है इसकारण जगत् मिथ्या है और एक ब्रह्मही सत्य है इति ॥

सिद्धांती बोले–भला, तुम दृश्यत्वमात्रको मिथ्यात्वमें हेतु मानते हो वा दूसरा कोई विशेष मिथ्यापनेमें हेतु कहते हो ? प्रथम जो दृशत्वमात्रको मिथ्याका हेतु कहोगे तो सो बने नहीं, क्योंकि, यदि वैसा मानिये तो ब्रह्म-कोभी मिथ्यात्वका प्रसंग होवेगा। "दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या' 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः" 'तीक्ष्ण बुद्धि करके परमात्माको देखते हैं' तथा हे गार्गि ! आत्मा तुमसे देखने और सुनने योग्य है' इस श्रुति करके परमात्माका दृश्यपना सिद्ध होता है, इसलिये दृश्यत्वमात्र हेतु माननेसे ब्रह्मकाभी मिथ्याकी सदृश मिथ्यात्व प्राप्त होवेगा, इससे मिथ्यामें दृश्यत्वमात्र हेतु असंगत है इति। और द्वितीय हेतुभी नहीं बनता है। क्योंकि, रज्जु सर्पादिकमें दृश्यत्वके मिथ्यात्वको तुमने माना नहीं है। जैसे किसीने कहा कि मैंने तालावमें चांदी देखी है। ऐसा ह्रदमें उसने रजत देखनेका जब कहा तब कोईभी अच्छा मनुष्य उसके देखनेको मिथ्या नहीं कहता है इति। इससे तुम्हरा' दृश्यत्वमात्र मिथ्यापनेमें हेतु सर्वथा असंगत है ॥

वादी–मनैं जो पूर्वोक्त श्लोक कहा सो क्या मिथ्या है ?।

सिद्धांती–मिथ्या नहीं है परंतु इस श्लोकका अर्थ ऐसा है कि–

मन आदिभिर्गृह्यमाणं नश्वरं विद्धि। कुतः ? मायामनोमयं मायया मलिनमनोमयग्राह्यत्वादित्यर्थः। अन्यथा "मनसा तु विशुद्धेन" इत्यादिश्रुतिविरोधः ॥ इति॥

अर्थ–मन, वचन, नेत्र, श्रवण आदिकों करके ग्रहण कियाहुआ सब नाशवान् जानो । किस कारणसे कि, माया करके मलिन जो मन है उस मनोमात्र ग्राह्य होनेसे । जो मलिन मनोमात्र ग्राह्य नहीं माने तो शुद्ध मन करके परमात्मदर्शन श्रुतिने कहा है, उस श्रुतिमें विरोध आवेगा इति ॥

वादि प्रश्न–" यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सह, नेति नेतीति ॥ " ' मन सहित वाक् इंद्रिय परमात्माको नहीं प्राप्त होकर, जिस परमात्मासे निवृत्तिको प्राप्त होते हैं, परमात्माको नहीं जानते हैं नहीं जानते अर्थात् मन और वाणी आदिक सकल इंद्रियगण परमात्माको नहीं जानते हैं ' इस श्रुतिने मन वाणी करके परमात्माको नहीं जाननेका कहा है और तुम कहते हो कि, शुद्ध मन करके परमात्माको जानते हैं सो इस श्रुतिमें विरोध आवेगा । इति ॥

सिद्धांती बोले–" आनंदं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन ' ' ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति ' ' तरति शोकमात्मवित् " इत्यादि ' ब्रह्मके आनंदको जाननेवाला पुरुष किसीसेभी भयको नहीं प्राप्त होता है, ब्रह्मको जाननेवाला ब्रह्मही हो जाता है और आत्माको जाननेवाला जन्म मरणरूप शोकको तर जाता है ' इत्यादिक श्रुतियासे ब्रह्मको जाननेका सुना है, इसलिये तुम मायावादियोंका कथन सब लोकोंको भ्रम उत्पन्न करनेवाला और मोह करनेवाला है ॥ इति ॥

वादी–हमने ' यतो वाचो निवर्तन्ते ' यह जो श्रुति कही है सो क्या अप्रामाणिक है ?

सिद्धांती–श्रुति अप्रामाणिक नहीं है किंतु तुम श्रुतिका अर्थ जो उलटा करते हो सोही अप्रामाणिक है । क्योंकि " यतो वाचो निवर्तंते " इत्यादिक जो श्रुतियां हैं वे भगवतके गुणोंस निवृत्तिपनेका अर्थात् परमात्मामें इतनेही गुण है ऐसा कोई पार नहीं पा सकता है, ऐसे श्रुति कहती है कुछ परमात्माके स्वरूप ज्ञानसे निवृत्तिको नहीं कहती है । सोही अर्थ भागवतमेंभी कहा है कि– " यो वा अनन्तस्य गुणाननंताननुक्रमिष्यत्स तु बालबुद्धिः " ' भगवान् अनंत अर्थात् देशसे कालसे वस्तुसे जिनका अंत नहीं, ऐसे हैं । और उनके गुणभी अनंत हैं, उन गुणोंकी जो कोई पुरुष गिनती करे, सो पुरुष बालबुद्धि है अर्थात् अज्ञानी है । पृथ्वीकी रजोंको कोई गिन लेवै, परंतु भगवतके गुणोंको नहीं गिन सकते इति इस बातको हम आगे गुणव्याप्तिके प्रकरणमें विस्तारसे लिखेंगे । इति ॥

वादी–ब्रह्म सर्व प्रमाणमात्रका है अविषय अर्थात् कोईभी प्रमाण ब्रह्ममें नहीं लग सकते हैं।

सिद्धांती–तब तो ब्रह्म अप्रामाणिकपने करके अत्यंत तुच्छ अर्थात् ब्रह्ममें तुच्छत्वापत्ति दोष आगया।

वादी– ब्रह्ममें जगत्की असत्प्रतीति होती है।

सिद्धांती–असत् वस्तुकी प्रतीति बने नहीं क्योंकि 'शशश्रृंगवत्'। जैसे शशाके सींग नहीं होते हैं तो उसकी प्रतीतिभी नहीं होती है। अथवा 'नरश्रृंगवत्' जस मनुष्यके सींग नहीं होते हैं तो उसकी प्रतीतिभी नहीं होती है॥ अथवा 'आखुभुक्श्रृंगवत्' जैसे मंजारीके सींग नहीं होते हैं तो उनकी प्रतीतिभी नहीं होती है वैसे जगत् असत् है तो उसकी प्रतीत भी नहीं होनी चाहिये इति॥

वादी–ब्रह्मही जगत् आकार हुआ है, ब्रह्ममें कुछ जगत्की प्रतीति नहीं हुई है।

सिद्धांती–जगत्को चेतन अचेतनके मिश्रपने करके चित् अचित् रूप देखे-जानेसे ब्रह्ममें जडत्व दोषकी प्राप्ति होवेगी और असत् जड दुःख आदिक अनेक दोष ब्रह्ममें आ गिरेंगे॥

वादी–जैसे सुवर्णके कटक कुंडल मुद्रिका आदिक आभूषणोंके नाम कहने मात्र हैं, परंतु एक सुवर्णही सचा है तैसे जगत कहने मात्र है ब्रह्मही एक सत्य है।

सिद्धांती–ऐसाभी नहीं बनै, क्योंकि, जैसे सुवर्णही कटक कुण्डलादि रूप करके परिणामको प्राप्त हुआ है, वैसे ब्रह्मही जगतरूप करके परिणाम पानेसे ब्रह्ममें परिणामरूप दोषकी प्राप्ति होवेगी। कैसे कि, जैसे सुवर्णही आभूषणोंके आकार लंबा चौडा परिणाम करके रूपांतरको प्राप्त हुआ है, वैसे ब्रह्मभी देव, मनुष्य तिर्यक्, स्थावर रूप चार प्रकारके भेदको प्राप्त होकर लंबा चौडा छोटा बडा आदिक परिणामको पानेसे ब्रह्ममें परिणामविकाररूप दोषकी प्राप्ति होवैगी, इस करके कूटस्थपना (निर्विकारित्व) जड मूलसे नाश होवेगा और "निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यम्" इस श्रुतिमें विरोध आवेगा इति॥

वादी प्रश्न–"मायाभासेन जीवेशौ करोति" इति श्रुतेः॥ 'जो माया, है सो आभास करके जीव और ईश्वर इन दोनोंको करती है' इस श्रुतिसे जीव और ईश्वर ये दोनों माया करके कल्पित प्रतीत होते हैं इति॥

सिद्धांती–यहभी तेरा कहना अन्याय है, कैसे कि–

"न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः।"
"मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय" इति॥

अर्थ—इस ईश्वरका उत्पन्न करनेवाला कोई नहीं है और इस ईश्वरका अधिपतिभी नहीं है इति। भगवान्‌भी अर्जुनके प्रति कहते हैं कि, हे धनंजय! सर्वके कारणता करके और सर्वके शेषित्व करके मैंही सर्वसे अत्यंत पर हूं। मेरेसे अधिक दूसरा कोई भी परतर नहीं है॥

इत्यादिक श्रुति स्मृतियोंने ईश्वरको सर्व जगत्‌का कारण कहा है, परंतु किसीभी शास्त्रमें ईश्वरके पितृत्व अधिपतित्वोंका अत्यंताभाव प्रतिपादन करनेसे ईश्वरको कार्यपने करके सुननेमें आता नहीं, जो कदाचित् ऐसा नहीं माने तो "नित्यो नित्यानां' 'स ह्यनादिरनंतश्च द्वावजाविशानीशौ" इत्यादि श्रुतियोंने नित्यत्व और अनादित्व अनंतत्व करके कहे हुये जो जीव और ईश्वर हैं, उनका आदिमत्त्वकरके अनित्यत्वका प्रसंग होवैगा। इस करके जीव ईश्वरके नित्यत्वको प्रतिपादन करनेवाली श्रुति स्मृतियोंको जलांजलि देनी होगी। भला, हम और भी पूछते हैं कि, वह माया किसका आश्रय करके जीव ईश्वरको बनाती है?

वादी—जीव ईश्वर इन दोनोंको ही आश्रय करती है।

सिद्धांती—वे जीव ईश्वर तो उस मायाने कल्पित करके पीछे बनाये हैं। यह तो तुम्हारा कहना ऐसा हुआ कि मैं मेरे पिताकी बरातमें गया था। ऐसाभी कि, घूघू गीध ये दो पक्षी लडते लडते रामचंद्रजीकी सभामें जा कहनेलगे। घूघूने कहा कि, हे रामजी! इस गीधने मेरा घर छिना लिया और मेरेको विना अपराध मारा। रामजी बोले, क्यौंरे नीच गीध! गृध्र बोला, हे रामजी! उस वृक्ष पर मेराही घर है इसका नहीं है। रामजी बोले, तैंने उस वृक्षपर घर कबसे बनाया है?। गृध्र बोला, जब पृथ्वी आकाश कुछ भी नहीं रहा तबसे उस वृक्षपर मैं रहता हूं। रामजी बोले, हे गृध्र! जब पृथ्वी नहीं रही तब वृक्ष किसके आधार रहा? यह सुन गृध्रको जवाब नहीं आया। तब रामजी बोले; हे उलूक! तैंने उस वृक्षपर कबसे घर बनाया है? चार मास हुये मैंने घर बनाया है। रामजी बोले; सत्यं वदसि। ऐसा कहकर उस मिथ्यावादी गृध्रको दंड दिया और सत्यवादी उलूकको घर सौंप दिया इति॥ अब विचार करना चाहिये कि, पृथ्वीका आश्रय करके वृक्ष रहते हैं, या

पृथ्वी वृक्षोंके आश्रय रहती है। निश्चय यह हुआ कि, वृक्षही पृथ्वीका आश्रय करके रहते हैं परंतु वृक्षोंके आश्रयमें पृथ्वी नहीं रहती। वैसेही मायाभी जीव ईश्वरके आश्रयमें नहीं रह सकती है; इससे हे वादि ! जीव और ईश्वर दोनों चेतन हैं; और माया जड है इसलिये चेतनोंका कारण जड बने नहीं, और चेतनका भी बने नहीं इसकारणसे तुम्हारा आभासवाद अत्यंत मिथ्याहै। यदि तुम ईश्वरको मायाकल्पित कहोगे तो "मायावी वो वशीकृत्य तत्स्यात्सर्वज्ञ ईश्वरः" ईश्वर मायाको अपने वश करके सर्वज्ञ है' ऐसा जो श्रुतिवचन है; सो कैसा होवेगा कि "वंध्या मे जननीतिवद्व्याहतमेव" 'मेरी जननी वांझ है' इस वचनके सदृश कारणके वशी करनेका असंभव होनेसे कार्यको श्रुतिका वचनभी व्याघात दोषवाला होवेगा; जैसे शुक्तिमें कल्पित जो रजत है, सो द्रष्टाके अज्ञानको वश नहीं करता है, वैसे ईश्वरभी मायाको वश नहीं कर सकैंगे।

वादी–रजतको जड होनेसे उस रजतमें वशी करनेका अभाव है, और ईश्वरको तो चेतन होनेसे मायाको वशी करना होसकता है।

सिद्धांती–तब तो जीवकोभी मायाका वशीकरणत्व होवैगा अर्थात् जीवकोभी चेतनपना होनेसे जीवभी मायाको वशमें रक्खेगा, जैसे ईश्वर चेतन है, तैसे जीवभी चेतन है, और मायाका कल्पितपनाभी दोनोंको समानही है इति ॥

वादी–ब्रह्म तो निर्विशेष है; ब्रह्ममें किसी प्रकारका विशेषण नहीं दिया जाता है ॥

सिद्धांती–ब्रह्मके निर्विशेषपनेमें कोई प्रमाण है, या नहीं है ? जो कदाचित् कहोगे कि, ब्रह्ममें प्रमाण है तो ब्रह्मको प्रमेयता प्राप्त होवेगा और प्रमाण तथा प्रमेय इन दोनोंका नित्य संबंध होनेसे अद्वैत भंग होवेगा। यदि कहोगे कि ब्रह्ममें प्रमाण नहीं है, तो अप्रमाणपने करके अनुपादेयत्व अर्थात् ग्रहण करनेके अयोग्य होवेगा ॥

वादी–ब्रह्म स्वानुभव सिद्ध है।

सिद्धांती–ऐसी बात तो तुम्हारे चेलाओंकी सभामेंही कहना। क्योंकि इस वस्तुको मैं देखा हूं इस प्रकारसे आत्मा जिसका ऐसा कोई विशेषण करके विशिष्टकाही अनुभव किया हुआ होनेसे ॥

वादी–अन्तःकरणकी वृत्तिरूप जो ज्ञान है सो जीवगत अज्ञानको निवृत्तिको करके वह वृत्तिज्ञान क्षणिक होनेसे जैसे मलिन जलमें डाला हुआ

कतकरेणु जलगत मलिनपनेको दूर करके आपभी नाशको प्राप्त होता है वैसे आपभी नाशको प्राप्त होवेगा इति ॥

सिद्धांती–दृष्टांतकी असंगती होनेसे पूर्वोक्त युक्ति बने नहीं । क्योंकि जैसे कतकरेणु और जलका मल, ये दोनों घटमें हुआ जलके एक देशमें रहते हैं वैसे यहांभी ब्रह्ममें कोई एकदेशमें वृत्तिरूप ज्ञानके और अविद्याके रहनेसे चैतन्यमें सांकर्य होवेगा अर्थात् जैसे दुग्ध और जलको एकत्र करनेसे उनका संकरपना हाता है, तैसे होवैगा इति ॥

वादी–जो तुम ब्रह्मसे जीवको भिन्न मानोगे तो " एको देवः सर्वभूतेपु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतांतरात्मा " एकही देव सर्वभूतोंमें गूढ रहता है, वह देव सर्वव्यापी और सर्वका अंतर आत्मा है इत्यादिक श्रुतियोंमें विरोध आवेगा॥

सिद्धांती–उपाधिसे रहित यह जीव, स्वभावसेही हमसे अभिन्न है, इस प्रकारसे अपनेसे अभिन्न जीवको वह ब्रह्म जानता है कि नहीं ? ॥

वादी–हां ऐसे ब्रह्म नहीं जानता है ॥

सिद्धांती–तब तो सर्वज्ञत्वकी हानि होवेगी ॥

वादी–ऐसे जानता है ॥

सिद्धांती–अपनेसे अभिन्न जीवके दुःखको अपना दुःख करके जाननेवाले ब्रह्मको हितका अकरण आदिक दोषका प्रसंग होवेगा, सो किस प्रकारसे निवारण करोगे ! इति ॥

वादी–" ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति " अर्थात् ब्रह्मको जाननेवाला ब्रह्मही हो जाता है, इस श्रुतिके बलसे मोक्षमें जीव और ब्रह्मके स्वरूपका एकपना प्रतीत होता है ।

सिद्धांती–"तथा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति । " उसी प्रकारसे ब्रह्मको जाननेवाला पुरुष, पुण्य और पाप इन दोनोंको त्याग करके पीछे पुण्य पापरूप मलसे रहित वह पुरुष ब्रह्मके साम्यको प्राप्त होता है अर्थात् कीट भृंग न्याय करके ब्रह्म सरीखा होता है. भृंग अनेक कीडाओंको रुंधन करके आप समान बना लेता है । वह अनेक प्रकारके कीडा कुछ भृंग सरीखे प्रथम नहीं रहे, किंतु भृंगने रुंधन किये पीछे भृंगके ध्यान करके भृंग समान होते हैं । यहां विचार करो कि–वे अनेक प्रकारके कीडा भृंगरूपता हो जाते हैं । परंतु भृंगमें एकताको प्राप्त नहीं होते हैं, किंतु भृंगसे भिन्न ही भृंगसमान हो जाते हैं वैसे " ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" ब्रह्मको जाननेवाला

ब्रह्मही अर्थात् ब्रह्मके समान होता है, ऐसा अर्थ इस श्रुतिका है । कदाचित् इस श्रुतिका ऐसा अर्थ नहीं करे तो " साम्यमुपैति " इस श्रुतिमें ब्रह्मके समानत्वकी प्राप्ति कही है, उसमें विरोध उत्पन्न होवेगा ॥ और गीतामें भगवानने भी कहा है कि " मम साधर्म्यमागताः " भगवान् अर्जुनके प्रति कहते हैं कि–' ज्ञानी पुरुष मोक्षमें मेरी समानताको प्राप्त होवे हैं ' इस स्मृतिके प्रमाणसे भी सिद्ध होता है कि, मोक्षमें मुक्तपुरुष ईश्वरके समान हो जाता है, परंतु जैसे जलमें जल, दुग्धमें दुग्ध, तेजमें तेज मिल जाता है, ऐसी एकताको प्राप्त होता है इति ॥

वादी–जीवको मुक्तिमें ब्रह्मके साम्यकी प्राप्ति होती है, ऐसा तुम सिद्ध करते हो, सो ठीक है, परंतु उसी समानतामें पूज्य पूजकभाव और सेव्य सेवकभाव कैसे बनैगा । क्योंकि–जीव और ईश्वरको समानपनेकी प्राप्ति होनेसे, कौन पूज्य (पूजने योग्य) और कौन पूजक (पूजा करनेवाला) है तथा कौन सेव्य (सेवा करने योग्य) है और कौन सेवक (सेवा करनेवाला) है, ऐसी व्यवस्था नहीं बनैगी ॥

सिद्धांती–जैसे ' पितृनिभः पुत्रो मातृनिभा कन्या " अर्थात् पिताके सदृश पुत्र और माताके तुल्य कन्या है ऐसा कहनेसे क्या, पिता और पुत्रके पूज्य पूजकपनेमें बाध है, किंतु कुछभी बाध नहीं है । क्योंकि–पुत्र पिताके समान होनेसे भी जो पिता है सो पुत्रका सदा पूज्यही रहता है । और माताभी पुत्री करके सदा पूज्यही रहती है ॥ वैसे जीव और ब्रह्मका मुक्तिमें जो हमने समानत्व सिद्ध किया है सो गुणों करके किया है कुछ स्वरूप करके नहीं किया है । जैसे ' सिंहो देवदत्तः.' अर्थात् देवदत्त नामवाला जो पुरुष है, सो सिंह है । अब यहां स्वरूप करके तो देवदत्त पुरुष, सिंह नहीं है, परंतु गुणों करके सिंह है । उस देवदत्तका शरीर तो पुरुषाकार है कुछ सिंहके आकार नहीं है, परंतु उस देवदत्तमें क्रोधादिक सिंहके गुण रहे हैं, इससे सिंहो देवदत्तः ऐसा कहा है इति ॥ और वेदांतमें सूत्रकारने भी ऐसाही कहा है कि " भोगमात्र[2]साम्यलिंगाच्च" अर्थात् मुक्तिमें मुक्त पुरु-

---

१ समानो धर्मो ययोस्तौ सधर्माणौ सधर्मणोर्भावः साधर्म्यम् इति विग्रहेण तच्च सादृश्यमेव हि भवति ।

२ सूत्रमें जो मात्रशब्दहै उस करके सत्यसंकल्प–जगत् उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय आदिक धर्मोंका मुक्तजीवोंमें निषेध किया है और दूसरे सूत्रमेंभी कहा है कि–"जगद्व्यापारवर्जम् " इति ॥

षको भोग मात्रही ईश्वरके समान प्राप्त होते हैं। इस सूत्रमें भी समान भोगोंकीही प्राप्ति कही है। इसलिये हे मायावादिन्! इन श्रुति स्मृति और सूत्रोंके प्रमाण करके ऐसाही स्वारस्य अर्थ सिद्ध होता है कि, मुक्तिमें मुक्तपुरुषोंको ब्रह्मके समानत्वकी प्राप्ति भोग और गुणों करके होती है, मुक्तिमें जीव और ब्रह्मके स्वरूपकी एकता कुछ नहीं होती है इति॥

वादीका प्रश्न–सायुज्य मुक्तिमें "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" ब्रह्मको जाननेवाला ब्रह्मही हो जाता है। इस श्रुतिका स्वारस्य अर्थ सिद्ध होता है। ब्रह्मके स्वरूपमें मिल जानेका नाम सायुज्य मुक्ति है। इति॥

सिद्धांति उत्तर–कि, धातु अर्थकी निरुक्तिका विरोध होनेसे सायुज्य मुक्तिमें भी जीव और ब्रह्मके स्वरूपकी एकता नहीं बने। कैसा विरोध, कि जैसे–'सह युनक्तीति सयुक्–सयुजो भावः सायुज्यं इति शब्दोक्तेः' "सोऽश्नुते सर्वान्कामान्" अर्थात् सो मुक्तपुरुष ब्रह्मके साथ सर्व कामोंका भोग करता है। इस प्रकारसे भोगोंकी साम्यता इस श्रुतिमें कही है। कदाचित् इस भोगकी साम्यतारूपरीतिको अंगीकार नहीं करोगे तो "आदित्यस्य सायुज्यं गच्छति" एतासामेव देवतानां सायुज्यं गच्छति"। इत्यादिक श्रुतियों करके आदित्यादिक देवताओंके सायुज्यकी प्राप्ति उनके भक्तोंकोभी कही हुई है तो क्या वे आदित्यादिक देवोंके भक्त अपने इष्टदेवके स्वरूपमें मिलजाते हैं? किंतु नहीं मिलते हैं। जैसे आदित्यादिक देवोंके भक्त सात्युज्य मोक्षको प्राप्त होते हुयेभी उन देवोंके स्वरूपमें एक नहीं होजाते हैं वैसे ब्रह्मवेत्ता ज्ञानीभी सायुज्य मोक्षको प्राप्त होते हुयेभी ब्रह्मके स्वरूपमें एक नहीं होते किंतु ब्रह्मके सादृश्यको प्राप्त होकर ब्रह्मसे भिन्नही रहते हैं इति॥ और हे वादि! इस सायुज्य मोक्षमें सर्व मुक्तपुरुष भगवतके किंकर होकर रहते हैं, उसमें भगवत् वचनका ऐसा प्रमाण है कि–

"सायुज्यं प्रतिपन्ना ये तीव्रभक्तास्तपस्विनः।
किंकरा मम ते सर्वे भवन्ति निरुपद्रवाः॥

अर्थ–अनेक प्रकारके तपोंको करनेवाले, ज तीव्रभक्त सायुज्य भक्तको प्राप्त हुये हैं, वे सब उपद्रवसे रहित हुये मेरे किंकर (दास) होते हैं इति। इस भगवतके वचनने सायुज्यमोक्षमें भगवतके किंकर होकर भगवत्की सेवा करनी कही है, इससे सायुज्यमोक्षमें भी सेव्य सेवकभाव ही रहता है।

हे वादी ! ब्रह्मके स्वरूपमें एक होजाना, ऐसा सायुज्य मुक्तिका स्वरूपको मानोगे तो 'किंकरा मम ते सर्वे' इस भगवत् वचनके तुम विरोधी होवोगे। इस कारण सायुज्यमुक्तिमें भी जीव ब्रह्मकी एकता सिद्ध नहीं हो सकती है। देखो–वामदेव, शुकदेव, शठकोप आदिक सायुज्य मोक्षको प्राप्त हुये पीछे ही, परीक्षित् नाथमुनि आदिकोंको उपदेश किया है, सो प्रसिद्ध है। जैसे नारायण अप्राकृत शरीरवाले हैं वेसे विष्वक्सेनादिक मुक्त भी अप्राकृत शरीरवालेही हैं। इसमें जो संदेह करै सो मूर्ख है इति ॥ हे वादि ! जैसे घट शरावादिक सर्व मृदात्मक हैं अर्थात् मृत्तिका जिन घटादिकोंका आत्मा है, तैसे यह सब जगत्भी ब्रह्मात्म है इति ॥

वादी–जैसे घट शरावादिक मृत्तिकाही हैं वैसे यह जगत्भी ब्रह्मही है. ऐसा अर्थ हमने (सदेव) इस श्रुतिसे पाया है परंतु (सत् एव) सदात्मक और (ब्रह्म एव) ब्रह्मात्मक ऐसा अर्थ तुम विशिष्टाद्वैत वेदांतियोंने कहांसे पाया है, सा कहना चाहिये।

सिद्धांती–" यः पृथिव्यां तिष्ठन् । यस्य पृथिवी शरीरम् । य आत्मनि तिष्ठन् ! यस्यात्मा शरीरम् ॥ " 'परमात्मा पृथिवीमें रहता है, और जिस परमात्माका पृथिवी शरीर है। जो परमात्मा इस कर्मात्मा जीवमें रहता है, और जिस परमात्माका यह कर्मात्माजीव शरीर है इस श्रुति करके जीव जगत्का और ब्रह्मका शरीर शरीरी भाव सिद्ध होता है, इस करके ब्रह्मात्मकभी सिद्ध भया इति ॥ और श्रुतिकी टीका जो स्मृति है उसमेंभी कहा है कि–

" सर्वभूतात्मके तात जगन्नाथे जगन्मये ।
परमात्मनि गोविन्दे मित्रामित्रकथा कुतः ॥

अर्थ–हिरण्यकशिपुके प्रति प्रह्लाद कहते हैं–हे तात ! सर्वेश्वर परमात्मा सर्व भूतोंके आत्मा और जगन्मय हैं, ऐसे परमात्मामें मित्र और शत्रु इनकी कथा सब मिथ्या है । इस प्रह्लादजीके वचनमें 'सर्वभूतात्मके' इस शब्दसे ब्रह्मात्मक और सदात्मक शब्दभी हमारे विशिष्टाद्वैत मतमें सिद्ध होते हैं इति ॥

वादी– विशिष्टाद्वैत ऐसा स्पष्टशब्द कौनसे शास्त्रसे सिद्ध करते हो ।

सिद्धांती–"सदेव सौम्य" इस श्रुतिके विशिष्टाद्वैत अर्थको बतानेवाली और केवलाद्वैतवादीचोरोंको पकड़नेवाली इस स्मृतिसे विशिष्टशब्द सिद्ध होता है, सो सुन–

"आसीदग्रे सदेकस्तु स च नारायणः स्मृतः।
जीवैः सूक्ष्मप्रकृत्या च विशिष्टस्त्वं तु कारणम्॥

अर्थ–सृष्टिके प्रथम एक सत् हुआ सोही नारायण कहाजाता है। अनन्त जीव तथा सूक्ष्म प्रकृति (माया), उन जीवों और माया करके विशिष्ट ऐसे कारण रूप तुम हो॥

इस प्रकार वराह पुराणमें वेंकटाचल माहात्म्यके सोलहवां अध्यायमें भगवान्के प्रति साक्षात् ब्रह्माने कहा है, इस करके ऐसा सिद्धांत सिद्ध हुआ कि–प्रलयकालमें सूक्ष्म चेतन और अचेतन इन दोनों सहित कारणरूप परमात्मा रहते हैं, और सृष्टिकालमें स्थूल अचेतन इन दोनों सहित कार्यरूप परमात्मा रहते हैं। इससे कारण अवस्था और कार्य अवस्थामें परमात्माको सब श्रुति स्मृति सूत्र आदि प्रमाण, विशिष्टको ही सिद्ध करते हैं। हे वादि ! विशिष्टाद्वैतवेदांतका तुम श्रवण करो, इससे विशिष्टमें निर्विशिष्टपनेका भ्रम निवृत्त हो जावैगा इति॥

वादी प्रश्न–हमारे निर्गुणब्रह्मके ज्ञानकी निंदा किसी शास्त्रमें जो किया हो तो उस निर्गुण ज्ञानको दोषवाला जानकर हम त्यागें और निर्दोष विशिष्टाद्वैतको मानें, सो निंदा निर्गुण ज्ञानकी कहीं हम देखते नहीं है, होय तो बतावो इति॥

सिद्धांती–निर्गुण ज्ञानकी निंदा तो बहुत स्थलमें लिखी हुई है, परंतु तुम तुम्हारे मतमें आसक्त होनेसे मानोगे नहीं, जो मानो तो सुनो। पांचवां वेदरूप महाभारतके मोक्षधर्ममें निर्गुणज्ञानियोंको धिक्कार किया है कि–

शास्त्रं ह्यबुध्वा तत्त्वेन केचिद्वादबला जनाः।
कामद्वेषाभिभूतत्वादहंकारवशं गताः॥
याथातथ्यमविज्ञाय शास्त्राणां शास्त्रदस्यवः।
नैर्गुण्यमेव पश्यन्ति न गुणाननुयुंजते।
तेषां तमःशरीराणां तम एव परायणम्॥

अर्थ–कितने जन शास्त्रके तत्त्वसे न जान करके वादमें तो बहुत बलवंत हैं परंतु वे वादी काम और द्वेष करके पीडित होनेसे अहंकारके वशमें पडकर शास्त्रोंको यथार्थ अर्थको न जानकर शास्त्रोंके चोर अर्थात् शास्त्रोंके सत्य अर्थको

चुराकर मिथ्या अर्थको कहनेवाले होजाते हैं, वे शास्त्रोंके दस्यु हैं। दस्युशब्द चोर और शत्रु इन दोनोंका नाम है। इसलिये वे लोग कर्म उपासनादिप्रतिपादकशास्त्रोंके च्छेदन करनेवाले होनेसे शास्त्रोंके शत्रुभी हैं, ऐसे वे शास्त्रोंके चोर और शत्रु, परमेश्वरको निर्गुण देखते हैं, परंतु परमेश्वरमें सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमत्त्व, सत्यकामत्व, सत्यसंकल्पत्व, आनंदत्व, अमलत्व, सर्वेश्वरत्व आदिक अनंत कल्याण गुणोंको नहीं देखते हैं, ऐसे वे तमोगुण शरीरोंवाले और शास्त्रदस्यु हैं, उनका तमोगुणही परायण हैं ॥ इस प्रकारसे तुम निर्गुणवादियोंकी निंदा महाभारतमें साधारण रीतिसे की है। और अब असाधारण रीतिको सुनो—

द्वापरादियुगे भूत्वा कलया मानुषादिषु।
स्वागमैः कल्पितैस्त्वं च जनान्मद्विमुखान्कुरु।
मां च गोपय मे न स्यात्सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा ॥

अर्थ—भगवान् शिवको कहते हैं कि—हे शिव ! तू कलियुगमें अपनी कला करके मनुष्य देहको धारण करके अपनी कल्पनासे बनाये हुए शास्त्रों करके सर्वजनोंको हमसे विमुख कर, और हमको गुप्त अर्थात् कोई नहीं जान सके ऐसे कर, जिससे यह मेरी सृष्टि उत्तरोत्तर न होवै ॥

इस पाद्मोक्त भगवदाज्ञाको पालनेवाले शंकरने मायावाद असत् शास्त्रको प्रगटकर अपनी प्रिया और पार्वतीसे कहा कि—

मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते।
मयैव कथितं देवि कलौ ब्राह्मणरूपिणा ॥

अर्थ—हे देवि ! कलियुगमें ब्राह्मणका रूप धारण करके अर्थात् शंकराचार्य वनकर मायावाद असत् शास्त्रको मैंनेही कहा है इति ॥ और अध्यात्मरामायणमें तुम्हारे इष्टदेव शिवने भी ऐसा कहा है कि—

श्रीरामं ये च हित्वा खलमतिनिरता ब्रह्म जीवं वदन्ति
ते मूढा नास्तिकास्ते शुभगुणरहिताः सर्वबुद्ध्यातिरिक्ताः।
पापिष्ठा धर्महीना गुरुजनविमुखा वेदशास्त्रे विरुद्धाः
ते हित्वा गाङ्गमम्भो रविकिरणजलं पातुमिच्छंति त्रस्ताः ॥

अर्थ–जो मनुष्य खलोंकी बुद्धिमें आसक्त हैं; वे मनुष्य श्रीरामको त्याग करके यह जीव ब्रह्म है ऐसे जीवको ब्रह्म कहते हैं, वे जीवको ब्रह्म कहनेवाले मूढ लोग नास्तिक, शुभ गुणोंसे रहित, अत्यंत पापी, धर्मसे रहित, गुरुजनोंसे विमुख और वेद शास्त्रोंके विरोधी हैं तथा वे गंगाजलका त्याग करके मृगतृष्णाके जलको पीनेकी इच्छा करते हैं, अर्थात् गंगाजलरूप श्रीरामका त्याग करके मृगतृष्णाके जलरूप निर्गुण ब्रह्मको पकडने दौडते हैं इति ॥

और विष्णुपुराणमें भी कहा है कि–

सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्ति संप्राप्तौ तु कलौ युगे ।
सांसारिकसुखासक्तं ब्रह्मज्ञोऽस्मीति वादिनम् ।
ब्रह्मकर्मोभयभ्रष्टं तं त्यजेदन्त्यजं यथा ॥

अर्थ–जब कलियुग प्राप्त होवेगा तब सब जन ब्रह्मवाद करेंगे, अर्थात् ब्रह्म निर्गुण निराकार है, और मैं भी ब्रह्म हूं ऐसा वाद करेंगे, तथा सांसारिक सुख जो स्त्री पुत्र धनादिक हैं उनमें आसक्त हो कहता है कि, मैं ब्रह्मज्ञ हूं ऐसा मिथ्यावाद करता है, इसलिये मिथ्यावादी पुरुष, ब्रह्म और कर्म इन दोनोंसे भ्रष्ट होता है । जैसे चांडालको दूरसे त्याग करते हैं, वैसे उनको त्याग करना । इस प्रकारसे श्रुति स्मृतियोंने मायावादियोंको बहुत निन्दा की हैं इति ॥

वादी–हे विशिष्टवादी ! हमारे शंकरमतको तुमही निंदित बताते हो, परंतु मंडनमिश्र, नीलकंठ, श्रीधर आदिक प्रामाणिक पंडितोंने तो हमारे केवलाद्वैतमतकोही माने हैं । मंडनमिश्र-नीलकंठ-श्रीधर आदिकोंसे आदरण किया हुआ हमारा मत कैसे निंदित होवैगा ?

सिद्धांती–करभाणां विवाहे तु रासभास्तत्र गायनाः ।
परस्परं प्रशंसन्ति अहो रूपमहो ध्वनिः ॥

अर्थ–ऊंटोंका विवाह मंडपमें गधे गीत गानेको आये हैं । पीछे ऊंट और गधोंकी सभामें परस्पर व्याख्यान होने लगा । ऊंटोंको देखकर गधे बोले कि, अहो इस ऊंटका क्या अच्छा रूप है । पीछे ऊंटभी बहुत आनन्दसे बोले कि, अहो इन गधोंका क्या अच्छा गीतका शब्द निकलता है इति ॥

हे वादि! अब यहां, तुमही विचार करो गधेने ऊंटके रूपका वर्णन किया तो क्या ऊंटका रूप वर्णन करने योग्य है? कि नहीं है, और ऊंटने गधेके गायन

और स्वरका वर्णन किया तो क्या गधेका बहुत अच्छा स्वर है ? जैसे उष्ट्र और रासभोंका परस्परका वर्णन हास्यास्पद और मिथ्या है वैसे शंकरने मंडनमिश्र नीलकंठ श्रीधर आदिकोंका श्लाघा किया और उन्होंने शंकराचार्यका श्लाघ्य माना है । इसलिये परस्पर गुरु चेलाओंका वर्णन हास्यास्पद और मिथ्या है इति ॥

हे वादिन् ! मैं तुम्हारेको मिथ्या वर्णनमें और एक छोटासा इतिहासको कहता हूं सो तू श्रवण कर–

पश्य लक्ष्मण पंपायां बकः परमधार्मिकः ।
शनैर्मुंचति पादाग्रं प्राणिनां वधशंकया ॥

अर्थ–रामचंद्रजी लक्ष्मणके प्रति बोले कि, हे लक्ष्मण ! तू इस पंपा सरोवरमें देख, यह जो बक है सो बडा धर्मात्मा है, क्योंकि, कोई प्राणी मेरे पगके नीचे दबकर मर तो नहीं जावै, ऐसी शंका मनमें धरकर धीरे धीरे पग उठाकर धरता है । इस प्रकारसे लक्ष्मणको जब रामजीने कहा तब वहां एक मत्स्य बोलने लगा कि–

सहवासी विजानाति सहवासिविचेष्टितम् ।
बकं किं वर्ण्यसे राम येनाहं निष्कुलीकृतः ॥

अर्थ–हे रामचन्द्रजी ! पडोसीके चरित्रको पडोसीही जानता है, हे रामजी ! इस बगलेका आप क्या वर्णन करते हो ? क्योंकि हे राम ! ! इस बगलेने मेरे सब बचोंको खाकर हमको कुटुंबरहित कर दिया है ऐसा यह बक धर्मात्मा है इति ॥

हे दुराग्रहि ! जैसे रामचंद्रजीने बकके अधर्मको जानते हुए भी अन्योक्तिसे उस बकको धर्मात्मा कहा है वैसे तुम्हारे मतके दोषोंको नहीं जाननेवाले तुम्हारी श्लाघा करेंगे, परन्तु हमारे विशिष्टाद्वैतवादीने तो तुम्हारे मतको खण्डन करनेके लिये ही अवतार लिया है। तुम्हारे मतके गूढभावको अच्छी तरहसे जाननेवाले और खण्डन करनेवाले रामानुज मुनि है । जैसे बकके अधर्मको अनुभव

---

१ "तंवा एतं चतुर्हूतं सन्तं चतुर्होतेत्याचक्षते परोक्षेण परोक्षप्रिया इव हि देवाः" " परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम च प्रियम् " इस श्रुति और भगद्वचनके प्रमाण करके परोक्षवादसे कथन है ।

कर उस अनुभवबलसे धर्मत्वशंकाको खंडन कर " यह बक अधर्मी है " ऐसे सिद्धान्त करनेवाला मत्स्य रहा वैसे तुम्होर मततत्वके ज्ञाता और खंडनकर्ता रामानुज यति हैं ।

अब श्रीरामानुजके अवताराविषयमें सर्व प्रमाणोंका शिरोमणि ऐसा भगवत् वचनका प्रमाण अंतमें देता हूं सो सुन–

आदौ शेष इति प्रोक्तो द्वितीये लक्ष्मणस्तथा ।
तृतीये बलरामश्च कलौ कश्चिद्भविष्यति ॥
ब्रह्मन्कलियुगे प्राप्ते धर्मे नष्टे श्रुतेरपि ।
मद्भक्तः सर्वधर्मज्ञस्तव गोत्रसमुद्भवः ॥
शारीरकमहाभाष्यग्रंथकर्ता जितेन्द्रियः ।
वेदांतवित्तमः कश्चित् शर्मा च ब्राह्मणोत्तमः ।
अस्मिन्महाभूतपुरे भविष्यति न संशयः ॥ "

अर्थ–सतयुगमें शेष, त्रेतामें लक्ष्मण, द्वापरमें बलराम और कलियुगमें रामानुज । इस प्रकारसे चार युगोंमें चार नामों करके रामानुज प्रसिद्ध हैं । ' कलौ कश्चिद्भविष्यति ' इस पदमें रामानुजका नाम नहीं है सामान्यतासे कहा है। परंतु हारीत ऋषीके प्रति भगवानने कश्चित्शब्दका अर्थ रामानुजका ही सिद्ध कर कहते हैं कि हे ब्रह्मन् ! जब कलियुग प्राप्त होकर वेदका धर्म नष्ट होजायगा तब सर्व धर्मोंको जाननेवाला मेरा भक्त जो शेष है, सो तुम्हारे गोत्रमें जन्म लेवेगा । और वह वेदांतका जाननेवाला, जितेंद्रिय, ब्राह्मणोंके मध्य उत्तम कोई शर्मा, शारीरक वेदान्त शास्त्रके महाभाष्य ग्रंथका कर्ता इस महाभूतपुरमें अवतार लेवेगा, इस वातमें कुछभी संदेह नहीं है ।

इस भगवतके वचनसे हारीतगोत्रवाला और शारीरकमीमांसाभाष्यका कर्त्ता भूतपुरीमें रामानुजके विना दूसरा कोई भी सिद्ध नहीं हो सकता है, और रामानुज महाराजके चरित्रों करके भी निश्चय होता है कि–

" पाषण्डद्रुमषण्डदावदहनश्चार्वाकशैलाशनि-
बौद्धध्वान्तनिरासवासरपतिर्जैनेभकण्ठीरवः ।

मायावादिभुजंगभंगगरुडस्त्रैविद्यचूडामणिः
श्रीरंगेशजयध्वजो विजयते रामानुजोऽयं मुनिः ॥ "

अर्थ–रामानुज मुनि कैसे हैं कि, पाखंडरूपी वृक्षोंके वनको जलानेके लिये दावाग्निरूप, चार्वाकरूपी पर्वतके तोडनेमें वज्र रूप, बौद्धरूपी अंधकारको दूर करनेमें सूर्यके समान, जैनरूपी हस्तियोंको जीतनेमें सिंहके समान, मायावादिरूपी सर्पोंके नाश करनेमें गरुडके समान, त्रिवेद धर्मोंके शिरोमणि, और श्रीरंगेश भगवान्‌के जयध्वजारूपी रामानुज मुनि विराजते हैं इति ॥

इस प्रकारसे विष्णुके और विष्णुधर्मके विरोधी चार्वाक, बौद्ध, जैन और मायावादी इन चार मतोंका खंडन करनेकेवास्तेही रामानुजमुनि प्रगट हुये हैं। यद्यपि इन्होंने दूसरे अनेक पाखंडियोंका भी खंडन की है, परंतु इन चारोंको मुख्यकरके समूल खंडन किया है इति ॥

विशिष्टाद्वैतराद्धांतः प्रसिद्धः शिष्टसंमतः ।
श्रीमद्गोपालदासेन त्वनुभूतः सनातनः ॥

इति श्रीभगवद्रामानुजपदपंकजमधुपेन श्रीमत्पंडितगोपालदासेन विरचिते श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकरे मायावादिमतखंडनपुरःसरं विशिष्टाद्वैतमतसमर्थनो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ शिष्य प्रश्न ।

गुरुजी मैं प्रश्न पूछतहूं तोही, मेरा मोक्ष करन विधि होही, गुरुजी मैं प्रश्न पूछतहूं तोही ॥ टेक ॥

मैं कौन हूं जगत सो कितनें कहां जाउंगा अब मैं, चार खानिते निकल जानेका मार्ग बताओ मोही, गुरुजी मैं प्रश्न पूछत हूं तोही ॥ १ ॥

लंबा चौडा मैं कितना बडा हूं, कैसा स्वरूप है मेरा, श्याम वर्ण कि पीत वर्ण हूं, श्वेत वर्ण कि लोही, गुरुजी मैं प्रश्न पूछतहूँ तोही ॥ २ ॥

इच्छादिमान हूं कि इनसे न्यारों, देह विषे कैसे आयो, अंतर्यामी मोमें कहां वसत हैं, ढूंढ बतावो ओही, गुरुजी मैं प्रश्न पूछतहूँ तोही ॥ ३ ॥

गुरुजीके शरण जायकै, ऐसे प्रश्न पूछै शिष्य सोही, दास गोपाल इन नव प्रश्नोंका भेद बतावै गुरु सोही, गुरुजी मैं प्रश्न पूछत हूं तोही ॥ ४ ॥

अर्थ–हे गुरुजी ! हे दयासिंधु ! हे कृपानिधे ! संसाररूपी महासर्पसे भय पाकर आपके चरणकमलोंके मैं शरण आया हूं। हे दीनदयाल! मैं आपके चरणोंमें साष्टांग प्रणाम करके आपके प्रति आगे कहे हुये नव प्रश्नोंको पूछता हूं। हे स्वामिन् ! इस संसारमें मेरेको जन्म मरण होता है, उस जन्म मरणरूपी बन्धनसे मेरा मोक्ष कौनसे विधिसे होवेगा, अर्थात् तप करके कि व्रत करके कि, उपवास करके किंवा यज्ञदानादिक कर्मों करके कि, गायत्री आदिकके जप करके कि, तीर्थोंकी यात्रा करके कि ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी इन चार आश्रमोंकी दीक्षा करके कि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चार वर्णके धर्मों करके कि, अष्टांग योग करके किंवा न्याय शास्त्रोक्त षोडश पदार्थोंके ज्ञान करके कि, सांख्य शास्त्रोक्त प्रकृति पुरुषके ज्ञान करके किंवा स्वभाव, काल, कर्म इनके ज्ञान करके इत्यादिक विधियोंमेंसे कौनसे विधि करके मेरा संसारबंधनसे मोक्ष होवेगा ? इति प्रथम प्रश्नः १ ॥ हे गुरु महाराज ! मैं कौन हूं, अर्थात् यह स्थूल देह है सो मैं हूं, कि, पंच ज्ञान इंद्रिय हैं सो मैं हूं, कि, मन, अहंकार, बुद्धि ये मैं हूं कि, इन सबका समुदाय रूप मैं हूं. ? इति २ ॥ हे स्वामिन् ! यह जगत् जो है सो किंनसे है अर्थात् इस जगतका कर्ता कौन है, ईश्वर है कि, माया है कि, जीव है कि, विना किया हुआ है ३ ॥ हे भवतारक ! अब इस देहका नाश होने पीछे मैं कहां जाऊंगा, अर्थात् इस देहके साथही मैं भी नाश पाऊंगा कि, दूसरे लोकांतरमें देहांतरमें जाऊंगा ? इति ४ ॥ हे परोपकारिन् ! जरायुज, अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज, ये जीवोंके उत्पन्न होनेकी चार खानि हैं, इन एक एक खानिमें यह जीव इक्कीस इक्कीस लाख वार जन्म लेता है, और महादुःख पाता है, इससे इन चार खानियोंमेंसे निकल जानेका मार्ग कौनसा है, उसको बतावो इति ५ ॥ हे तत्वदर्शिन् ! मैं कितना लंबा हूं और कितना

चौड़ा हूं तथा कितना ऊंचा हूं अर्थात् मेरा. आकार कैसा है और हे सद्गुरो ! मेरा रूप कैसा है, अर्थात् मेरा रूप श्याम वा पीला अथवा श्वेत किंवा लाल कैसा रूपवाला मैं हूं इति ६ ॥ हे ज्ञाननिधे ! यह जो इच्छादिक हैं सोही मेरे चिन्ह हैं कि इनसे अलग मैं हूं इति ७ ॥ हे शरणागतवत्सल ! शरीरसे जो मैं न्यारा हूं तो इस शरीरमें किस प्रकारसे मेरा आना हुआ; काहेतें कि माताके उदरमें पिताका वीर्य और माताका ऋतु शोणित (रक्त) इन दोनोंसे यह शरीर उत्पन्न होकर माताके उदरमें रहता है, वहां मैं कहांसे आकर इस कायामें घुस बैठा अर्थात् माताके उदरमें गर्भरूप करके यह शरीर रहता है. उस शरीरमें यह जीव कहां आकर प्राप्त होता है इति ८ ॥ हे आविद्यारे ! सर्वका जो अंतर्यामी भगवान् है सो मेरेमें किस प्रकारसे निवास करता है, और वह मेरेमें कहां रहता है, उस अंतर्यामीको मेरेमेंही ढूंढ करके मेरेको आप बताओ ९ ॥ इति ॥

इस ग्रंथके कर्ता कहते हैं कि गुरुजीके शरण जाकर साष्टांग प्रणाम करके पूर्वोक्त रीतिसे प्रश्नोंको जो पूछता है सोही शिष्य कहा जाता है, और शिष्यने किये हुये प्रश्नोंके उत्तरको जो देता है सोही गुरु कहा जाता है, सो गीतामें अर्जुनके प्रति कृष्णजीने भी ऐसेही कहा है–

गुरुशिष्य लक्षण ।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

अर्थ– गुरुको साष्टांग प्रणाम करके उनलोगोंसे प्रतिबन्ध क्या, मोक्ष क्या, ज्ञान क्या, अज्ञान क्या, आत्मा कौन, परमात्मा कौन, माया कौन मैं परमात्माको किस प्रकारसे पाऊंगा ? इस प्रकारके प्रश्नों करके, गुरुओंकी सेवा करनी, उस सेवासे प्रसन्न हुए जो गुरु हैं सो तत्त्वदर्शीलोग तेरेको ईश्वरतत्त्व जीवतत्व मायातत्व इत्यादिक तत्त्वोंके ज्ञानका उपदेश करेंगे इति ॥

इस श्लोकमें गुरु और शिष्यके इन दोनोंके लक्षण भगवान्ने अर्जुनको कहे हैं इससे पूर्वोक्त रीतिसे गुरुके प्रति प्रश्नोंको जो पूछता है, सोही शिष्य कहा जाता है दूसरा नहीं । और जो शिष्यको श्रीवैष्णवधर्मके चिह्नोंको धारण कराय पीछे रहस्यत्रय, तत्त्वत्रय और अर्थपंचकका उपदेश करते हैं वेही गुरु कहे जाते है दूसरे नहीं । इन रहस्यत्रय आदिकोंका उपदेश श्रीवैष्णव संप्र-

दायमेंही किये जाते हैं, इस कारण श्रीवैष्णव दीक्षा लेनी चाहिये, ऐसा पद्म-पुराणके उत्तरखंडमें तथा गौतमीयतंत्रमें कहा है–

विना श्रीवैष्णवीं दीक्षां प्रसादं सद्गुरोर्विना ।
विना श्रीवैष्णवं धर्मं कथं भागवतो भवेत् ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणामालयः सांप्रदायकः ।
संप्रदायविहीना ये मंत्रास्ते निष्फला मताः ॥

अर्थ–श्रीवैष्णवी दीक्षाके विना और सद्गुरुके प्रसाद विना तथा श्रीवैष्णव धर्मके विना किस प्रकारसे भागवत होय ? किंतु नहीं होय और सांप्रदायक जो है सो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पदार्थोंका घर रूप है, और संप्र-दायके विना जो मंत्र हैं, वे मंत्र निष्फल माने हैं, इससे श्रीवैष्णव संप्रदायी गुरुकाही उपदेश लेना चाहिये ॥

और जो प्रथमके गुरुसे तत्वज्ञानकी प्राप्ति न हुई होय तो द्वितीय गुरुके शरण जावै, और द्वितीयसे भी संपूर्ण तत्त्व ज्ञान न मिला हो ता तृतीय, चतुर्थ, पंचम आदिक गुरुओंके शरण जाजाकरके संपूर्ण तत्त्व ज्ञानका संपादन करना चाहिये ॥

प्रश्न–जैसे स्त्रीके लिये एकही पति शास्त्रने कहा है वह स्त्री दूसरा पतिको करै तो पापिनी व्यभिचारिणी कही जाती है वैसे प्रथम गुरुको छोडकर द्वितीय चतुथ पंचम आदिक गुरुओंके शरण जानेसे कुछ पाप लगता है कि नहीं ?

उत्तर–स्त्रीमें तो व्यभिचारादि कमाक करनेसे वर्णसंकरपुत्रकी उत्पत्ति शास्त्रने कही है, और " संकरो नरकायैव" इस गीताजीके वचनसे वह वर्ण-संकरपुत्र अपने कुलको नरकमें ले जानेवाला सिद्ध होता है । इससे स्त्रीके दृष्टांतसे अनेक गुरु करनेका निषेध नहीं हो सकता है और कदाचित् अनेक गुरु करनेका शास्त्रने निषेध किया होता तो गीताचार्य कृष्ण भगवान् ऐसा क्यों कहते कि " उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः " इस श्लोकमें भगवान्ने (ज्ञानिनः) ऐसा बहुवचनका कथन किया है, तो बहुवचन करके बहुत गुरु करनेकीही आज्ञा दी है इति ॥ जसे–

मधुलुब्धो यथा भृंगः पुष्पात्पुष्पांतरं व्रजेत् ।
ज्ञानलुब्धस्तथा शिष्यो गुरोर्गुर्वन्तरं व्रजेत् ॥

अर्थ–जैसे मधुका लोभी भ्रमर है, सो एक पुष्पसे अनेक पुष्पांतरोंमें जाता है, वैसे ज्ञानका लोभी शिष्य भी एक गुरुसे अनेक गुरुओंमें ज्ञान लेने जाता है इति ॥ इति गुरुशिष्यलक्षणम् ॥

हे शिष्य ! तुमने कहा है कि "मेरा मोक्ष कवन विधि होई" इस प्रथम प्रश्नके उत्तरको श्रवण कर। जैसे रोगके कारण तथा रोगके रूपको जाने विना उस रोगोंको निवृत्त करनेका औषध नहीं हो सकता है वैसे बंधनके कारण तथा बंधनके रूपको जानेविना बंधनकी निवृत्तिका उपायभी नहीं बन सकता है। इसलिये प्रथम बंधनके रूप तथा मुक्तताके रूपको सुन ॥

"अहं ममेत्ययं बन्धो नाहं ममेति मुक्तता ॥"

अर्थ–अहं मम इन चार अक्षरों करके जीवोंको बंधन होता है अर्थात् अहं कहिये यह देह मैं हूं, और मम कहिये ये देह इन्द्रिय तथा स्त्री पुत्र धन पशु आदिक मेरे हैं, ऐसा जो जानना है सोही बंधनका रूप है । और न अहं मम इन पांच अक्षरोंसे मुक्ति होती है, अर्थात् यह देह मैं नहीं हूं, और देह इंद्रियादिक तथा स्त्री पुत्रादिक मेरे नहीं हैं, ऐसे देहादिकोंसे अहन्ता और ममताकी जो निवृत्ति है; सोही मुक्तता है । इस लिये प्रथम अहन्ता ममताकी निवृत्ति करनी चाहिये उन अहंतां ममताकी निवृत्तिका साधन ये है–विवेक[१], वैराग्य[२], षट्संपत्ति[३], मुमुक्षुता[४], श्रवण[५], मनन[६], ध्यान[७] इन सात साधनोंसे अहंता ममताकी निवृत्ति होती है ॥ और येही सप्त भक्तिकेभी साधन हैं, ये सात साधन भक्तिके जनक हैं, और भक्ति फलरूपजन्या है, और भक्ति उत्पन्न हुये पीछे भक्तिमान् पुरुष परमात्माके स्वरूपको भक्ति करके यथार्थ जानता है, अनन्तर भगवतके धामको प्राप्त होता है ॥

प्रश्न–परमात्माके स्वरूपको ज्ञान करके जाननेका शास्त्रमें कहा है, परन्तु भक्तिकरके कहां कहा है ।

उत्तर–"भक्त्या मामभिजानाति ।"

"ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥"

---

१ आत्मा सत्य है और देह असत्य है । २ इस लोकसे लेकर ब्रह्म लोक पर्यंतके विषयोंका त्याग । ३ शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपराम, तितिक्षा । ४ मोक्षकी इच्छा । ५ वेदांतकी कथा सुनना । ६ सुने हुये अर्थको याद करना । ७ याद किये हुये अर्थको भूले नहीं चित्तमें रक्खै ॥

इस प्रकारसे कृष्णजीने अर्जुनके प्राति भक्ति करकेही स्वरूपका जानना कहा है और भक्ति करकेही मोक्षभी कहा है इति ॥ इति प्रथमप्रश्नोत्तरम् ॥१॥

अब हे शिष्य ! तूने कहा कि मैं कौन हूं। इसका उत्तर सुन। स्थूल, सूक्ष्म और कारण, ये तीन शरीर हैं ये तू नहीं । जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, ये तीन अवस्था हैं, येभी तू नहीं । अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय ये पंच कोश हैं, येभी तू नहीं । और प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान ये पंच मुख्य प्राण और नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय ये पंच उपप्राण हैं, ये दोनों प्रकारके प्राण भी तू नहीं । तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ये चार अंतःकरण हैं, येभी तू नहीं । तथा श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण ये पंच ज्ञान इंद्रिय हैं, येभी तू नहीं । तथा वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ, पायु ये पंच कर्म इंद्रिय हैं, येभी तू नहीं, किंतु इन सबका द्रष्टा और ज्ञाता तू है। और तेरा स्वरूप कैसा है कि, सत, चित्, आनंद, अजर, अमर, अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, अशोष्य, नित्य, सनातन है, ऐसा तेरा स्वरूप श्रुति स्मृति आदिक अनेक प्रमाणोंसे हम आगे जीवतत्त्वके प्रकरणमें निरूपण करेंगे, वहां देख लेना इति ॥ और हे शिष्य ! मनका देव चंद्रमा, बुद्धिका ब्रह्मा, चित्तका नारायण, अहंकारका रुद्र, कानका देव दिशा और विषय शब्द, त्वचाका देव वायु, विषय स्पर्श, नेत्रका देव सूर्य और विषय रूप, जिह्वाका देव वरुण है और विषय रस, नासिकाका देव अश्विनीकुमार विषय गन्ध, वाणीका देव अग्नि और विषय वचन, हस्तका देव इंद्र और विषय आदान, पादका देव उपेंद्र और विषय गमन, शिश्नका देव प्रजापति और विषय आनंद, गुदका देव मृत्यु और विषय मल विसर्ग है ॥ हे शिष्य ! जैसे घरमें रहनेवाला पुरुष घरसे भिन्न है तैसे देहरूपी घरमें रहनेवाला तू जीवतत्व, देहसे भिन्न (न्यारा) है। इति द्वितीयप्रश्नोत्तरम् ॥ २ ॥

हे शिष्य ! तूने कहा कि, जगत् सो किनसे । इस तृतीय प्रश्नके उत्तरको सुन। परमात्माको आश्रय करके रही जो माया है उस मायासे आकाश उत्पन्न हुआ, आकाशसे वायु, वायुसे तेज, तेजसे जल, जलसे भूमी उत्पन्न हुई है ॥ आकाशका शब्द गुण वायुका स्पर्श गुण तेजका रूप गुण जलका रस गुण, भूमीका गन्ध गुण है ये पंच गुण पंच भूतोंमें अपने अपने मुख्य हैं और अपने अपने कारणोंके गुण कार्यमें आनेसे अधिक होते हैं । जैसे वायुमें अपने कारण आकाशका शब्दगुणके आनेसे वायु, शब्द और स्पर्श ये दो गुणवाला हुआ,

वायुमें सीसी शब्द है, और उष्ण, शीत कठिन, इन तीन स्पर्शोंसे विलक्षण स्पर्श है। और अग्निमें शब्द, स्पर्श ये दो गुण आकाश और वायुके आनेसे शब्द, स्पर्श, रूप इन तीन गुणोंवाला अग्नि होता है। अग्निमें भुक् भुक् शब्द है और उष्ण स्पर्श है तथा प्रकाश रूप है। और जलमें शब्द, स्पर्श, रूप, ये तीन गुण आकाश, वायु, और तेजके आनेसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस इन चारगुणोंवाला जल होता है। जलमें चुल चुल शब्द है, शीत स्पर्श है, शुक्ल रूप है, मधुर रस है। और भूमीमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस ये चार गुण, आकाश, वायु तेज और जलके आनेसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इन पांच गुणोंवाली भूमी होती है पृथिवीमें कट कट शब्द है, और उष्ण शीतसे विलक्षण कठिन स्पर्श है, और श्वेत, नील, पीत, रक्त, हरित आदिक रूप हैं, और मधुर[1], अम्ल[2], क्षार[3], कटु[4], कषाय[5], तिक्त[6] ये षट् रस हैं, और सुगंध तथा दुर्गंध ये दो प्रकारके गंध हैं इस रीतिसे आकाशमें प्रतिध्वनिरूप शब्दगुण एकही है, वायुमें दो, तेजमें तीन, जलमें चार, पृथिवीमें पांच गुण हैं. तिनमें एक एक अपना २ है और अधिक कारणके हैं इति ॥ पीछे पंच भूतोंका सत्व गुण अंश मिलकर अंतःकरण उत्पन्न हुआ उस अंतःकरणकी पारिणाम रूप वृत्ति (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) इस चार प्रकारसे हुई। उनमें पदार्थके भले बुरे स्वरूपको निश्चय करनेवाली, बुद्धि कही जाती है। संकल्प विकल्प वृत्ति, मन कहा जाता है। चिंतन करनेवाली वृत्ति, चित्त कहा जाता है। "अहं" ऐसी अभिमान वृत्ति, अहंकार कहा जाता है। और पंचभूतोंके मिले रजो-गुण अंशसे प्राण उत्पन्न हुआ। सो प्राण क्रिया भेद और स्थानभेदसे पांच प्रकारका है। जिसका हृदय स्थान और क्षुधा पिपासा क्रिया, सो प्राण[7] कहा जाता है। और जिसका गुदा स्थान और मल मूत्रक अधोनयन क्रिया, सो अपान। और जिसका नाभि स्थान और खाया पिया अन्न जलको पाचन योग्य सम करके अन्न जलके रसको रोम रोममें नाडी द्वारा प्रवेश करै, सो समान। और जिसका कंठ स्थान और अन्न रसका विभाग करै तथा स्वप्न हिचकी दिखावै, सो उदान कहा जाता है। और जिसका सर्व अंग स्थान और देहकी संधियोंको हलावै चलावै सो व्यान कहा जाता है इति ॥ इस

---

१ जल आदिक विषे। २ आम्लिकादिक विषे। ३ लवण आदिक विषे। ४ मरीच आदिक विषे। ५ हरड आदिक विषे। ६ निंब आदिक विषे। ७ और जो प्राण हृदय स्थानमें रहता है उसकी रात दिनमें इक्कीश हजार और छः सौ श्वासोच्छ्वास लेनेकीभी क्रिया कहीं है। और येही इक्कीश हजार और छः सौ श्वासोच्छ्वासरूप प्राणकी क्रिया योगीजनोंका अजपा जापभी कहा जाता है॥

प्रकारसे प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान ये पंच प्राण हैं; और नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय ये पंच उपप्राण हैं, उनकी उद्गार, निमेष, छींक, जंभाई मृतकशरीर फुलावन इस अनुक्रमसे पांच क्रिया कही हैं इति ॥ और एक एक भूतके सत्वगुण अंशसे पंच ज्ञान इंद्रिय, उत्पन्न होते हैं आकाशके सत्व अंशसे कर्ण इंद्रिय, वायुके सत्व अंशसे त्वचा इंद्रिय, तेजके सत्व अंशसे नेत्र इंद्रिय, जलके सत्व अंशसे जिह्वा और पृथिवीके सत्व अंशसे नासिका इंद्रियकी उत्पत्ति हुई है। इस रीतिसे जो जो इंद्रिय जिस जिस भूतसे उत्पन्न हुआ है वे उस उस भूतके गुणकोही ग्रहण करते हैं और भूतोंके सत्व गुण अंशसे अंत:करण और ज्ञानेंद्रिय उत्पन्न हुये हैं. इसलिये वे ज्ञानके साधन हैं. क्योंकि सत्व गुणसेही ज्ञानकी उत्पत्ति शास्त्रमें कही है ॥ फिर आकाशके रजोगुण अंशसे वाक् इन्द्रियकी उत्पत्ति हुई। वायुके रजो गुण अंशसे पाणिकी। तेजके रजो गुण अंशसे पादकी. जलके रजो गुण अंशसे उपस्थकी। पृथिवीके रजो गुण अंशसे गुदाकी उत्पत्ति हुई। स्त्रीकी योनि और पुरुषके लिंगमें जो विषयानंदका साधन इंद्रिय है सो उपस्थ है। ये पंच कर्म इंद्रिय हैं. कर्म नाम क्रियाका है. ये पंच इंद्रिय क्रियाके साधन हैं इससे कर्मेंद्रिय हैं। क्रिया रजोगुणसे होती है.. इसलिये भूतोंके रजोगुण अंशसे इनकी उत्पत्ति कही है ॥ इस प्रकारसे अपंचीकृत भूत और उनके कार्य अंत:करण, प्राण, ज्ञानेंद्रिय, कर्मेंद्रिय इतनी सूक्ष्म सृष्टि कही। सूक्ष्म सृष्टिका ज्ञान, इंद्रियोंसे नहीं होता है। नेत्र, नासिका, कर्ण आदिक गोलक तौ इंद्रियोंके विषय हैं परंतु उन गोलकोंमें स्थित जो इंद्रिय हैं वे किसीभी इंद्रियोंके विषय नहीं. इससे वे अतींद्रिय हैं। इति सूक्ष्म सृष्टि ॥ पीछे स्थूल सृष्टिके निमित्त ईश्वरकी इच्छासे पंच भूतोंका पंचीकरण हुआ है पंचीकरणके लक्षण यह है कि, एक एक भूतके दो दो भाग होकर, उन दो दो भागोंमेंसे एक एक भाग अलग रहा और दूसरे आधे आधे भागोंमेंसें एक एक आधेका चार चार भाग होकर, अपने अपने जो आधे आधे भाग जुदे रहे थे, उनको छोडकर अपने अपने चार भागोंमेंसे एक एक भागका जो मिलाप है उसका नाम पंचीकरण है॥ इस रीतिसे जिन भूतोंका पंचीकरण हुआ है उनको पंचीकृत पंचमहाभूत कहते हैं। हे शिष्य! उन पंचीकृत भूतोंसे इंद्रियोंका विषय स्थूल ब्रह्मांड उत्पन्न हुआ। उस ब्रह्मांडके अंदर, भूलोक १ भुवर्लोक २ स्वर्लोक ३ महर्लोक ४ जनलोक ५ तपलोक ६ सत्यलोक ७ ये सात लोक ऊपरके, और तल १ अतल २ सुतल ३ वितल ४

महातल ५ पाताल ६ रसातल ७ ये सप्त लोक नीचेके हुये हैं । उन चतुर्दश लोकोंमें जीवोंके भोगयोग्य अन्नादिक और भोगके साधन देव मनुष्य पशु आदिक स्थूलशरीर हुआ है । हे शिष्य! इस जगतका कर्ता अकेले ईश्वरको कहे तौ ईश्वर विकारी ठहरेगा और माया जड है उससे कुछभी बनता नहीं है इसलिये "मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् " भगवान् अर्जुनको कहते हैं, हे अर्जुन ! सत्यसंकल्प हमसे प्रकाशित की हुई मायारूप जडप्रकृति इस चराचर जगतको उत्पन्न करती है' इस भगवतके वचनसे सिद्धांत हुआ कि प्रकृति जड है परंतु ईश्वरकी सत्तासे क्षेत्रज्ञोंके कर्मानुसार जगतको उत्पन्न करती है। जैसे एक पंगु और एक अंधी ये दोनों एक ठिकानेपर बैठे थे, वहां पंगु बोला कि, मैं सर्व पदार्थोंको देखता हूं परंतु मेरेमें चलने फिरनेकी क्रिया नहीं है अंधी बोले कि, मेरेमें चलने फिरनेकी क्रिया तो है परंतु मेरेको कोईभी पदार्थ सूझत नहीं है, इसलिये हे पंगुजी ! आप मेरे कंधेपर बैठो, मैं पाओंसे जहां कहोगे तहां ले चलूंगी, परंतु तुम्हारे नेत्रोंसे मेरेको मार्ग बतायियो । अनंतर पंगु अंधीके कंधेपर चढ बैठे, और दोनों मिलाकर जो कुछ कार्य करनेका था सो सब कर लिया, तैसे ईश्वर चेतन तत्त्व होनेसे सब पदार्थोंको जानते हैं परंतु ईश्वर निर्विकार होनेसे क्रियारहित है. और माया जडतत्त्व है मायामें क्रियाआदिक विकार तो हैं परंतु जड होनेसे किसीभी पदार्थको जानती नहीं। इसवास्ते ईश्वरके आश्रय करके ईश्वरकी सत्ता प्रकाशसे माया जगतको रचती है । और शक्तिके मतवाले शक्तिसे जगतकी उत्पत्ति मानते हैं, सो बने नहीं, क्योंकि शक्ति जड है । जैसे पुरुषकी शक्ति दो मण बोझा उठानेकी है परंतु वह शक्ति पुरुषसे अलग होकर भार नहीं उठा सकती है, किंतु पुरुषमें मिली हुईही उठा सकती है । पुरुषसे शक्ति अलग होकर एक घडा जल भर लावै तो शक्तिको कर्ता मानना ठीक है, नहीं तो शक्तिमत मिथ्याकल्पित है और वेदविरुद्ध है ॥ और सांख्यमतवाले प्रकृतिसे महत्तत्त्व, उससे अहंकार, अहंकारसे सत्वगुण रजोगुण और तमोगुण, सत्त्वगुणसे देव, अंतःकरण और ज्ञानेंद्रिय । रजोगुणसे पंचप्राण और पंच कर्मेन्द्रिय । तमोगुणसे पंचमहाभूत और पंचतन्मात्रा, इस प्रकारसे सृष्टि मानते हैं, सोभी वेदसे विरुद्ध है. क्योंकि प्रकृति जड है ईश्वरके आश्रय विना कुछभी नहीं कर सकती है ॥ और न्यायमतवाले काल, आकाश और दिशा आदिक सामग्रीसहित ईश्वरको जगत्कर्ता मानते हैं. सोभी वेदविरुद्ध मत है । इससे " अस्मान्मायी

सृजते विश्वमेतत् " अर्थात् मायाका अधिपति ईश्वर है इसकी इच्छासे मायाही जगतको रचती है. ईश्वरकी सत्ता विना नहीं रच सकती है । जैसे राजाकी सत्तासे उसके नौकर अनेक कार्योंको करते हैं, परंतु उस कार्योंका मुख्य कर्ता राजाही है, नौकर तो कहने मात्र हैं, वैसे ईश्वरकी सत्तासे मायाभी अनेक ब्रह्मांडोंको उत्पन्न करती है, परंतु उन ब्रह्मांडोंका मुख्य कर्ता " यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" ऐसा वेदका सिद्धांत होनेसे ईश्वरही है, माया कहने मात्रहै॥ इति संक्षेपसृष्टिनिरूपणम् ॥ इति तृतीयप्रश्नोत्तरम् ॥

हे शिष्य ! कहां जाऊंगा अब मैं । ऐसा तैंने प्रश्न किया है, तिसका यह उत्तर है कि, जब तू गुरुके पाससे तीन तत्त्वोंको तीन रहस्योंको तथा अर्थपंचकोंको जानकर निष्काम कर्मपूर्वक भगवत उपासना करेगा तब तू त्रिपाद्विभूतिरूप प्राप्यमें जावेगा. और जो ऐसे नहीं जानेगा तो तू चौराशी लक्ष योनियोंमेंही जावेगा. अर्थात् यह जीव जबतक तत्त्वत्रय आदिकके ज्ञानपूर्वक भगवतकी उपासना नहीं करेगा, तबतक घटीयंत्रके सदृश जीवका जन्म मरणरूप आवागमन नहीं मिटेगा ॥ इति चतुर्थप्रश्नोत्तरम् ॥

मुमुक्षो ! अब पंचम प्रश्नके उत्तरको सुन. चार खानियोंसे निकल जानेका द्वार एक मनुष्य देह है । क्योंकि, चौराशी लक्ष योनियोंमें भ्रमण करते करते अंतमेंही इस जीवको मनुष्य देह मिलता है, "दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां " इन चौराशी लक्ष योनियोंके जीवोंको मनुष्यदेह बहुत दुर्लभ है, ऐसा भागवतमें कहा है, और इस मनुष्य देह करके ही ईश्वरभक्ति, गुरुभक्ति, विवेक, वैराग्य, श्रवण, जप, तप, तीर्थ, दान, योगादि हो सकते हैं, इस कारण मनुष्यशरीरही चार खानिसे निकलनेका द्वाररूप है । इति पंचमप्रश्नोत्तरम् ॥

हे आस्तिक ! कैसा रूप है मेरा, इस प्रश्नके उत्तरको अब श्रवण कर । तू लंबा चौडा और ऊंचाभी नहीं. तथा तू श्वेत, पीत, रक्त, श्याम, हरितभी नहीं, किंतु तेरा सत्, चित्, आनंद स्वरूप है, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, इन तीन अवस्था तथा भूत, भविष्य, वर्तमान इन तीन कालमें तू (आत्मा) है तेरा नाश नहीं, इसलिये तू सत् है । और देह इंद्रिय, प्राण, अंतःकरण तीन अवस्था इन सबको तू जाननेसे चित् है । और सदा काल आत्मा परम प्रेमास्पद रूप होनेसे तू आनंद रूप है । जैसे धनसे पुत्र पुत्रसे पिण्ड पिण्डसे इंद्रिय, इंद्रियोंसे प्राण प्रिय और प्राणसे परम श्रेष्ठ और अतिशय प्रिय अपना आत्मा है ऐसेही बृहदारण्य उपनिषदके मैत्रेयीब्राह्मणमें याज्ञवल्क्य मुनिने

अपनी स्त्री मैत्रेयीको कहा है कि–स्त्री, पति, पुत्र, धन, पशु, देवता, लोक इत्यादिक जो प्रिय लगते हैं, वे अपने आत्मसुखके साधन होनेसे प्रिय लगते हैं परंतु जो अपनेसे प्रतिकूल होवे तौ वे स्त्री पुत्रादिक प्रिय नहीं लगते, इसलिये अपना आत्माही सबसे अधिक प्रिय है, आत्मा आनंद रूप है. ऐसे सत्, चित् और आनन्द ऐसा स्वरूप तेरा है सो अनुभव करके देखनेमें आता है इति॥ षष्ठप्रश्नोत्तरम्।

हे शिष्य! इच्छादिमान हूं कि इनसे न्यारो। ऐसा तूने जो प्रश्न कियाहै, उसके उत्तरको अब सुन। इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान, प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष, जीवन, मनोगति, इंद्रियांतरविकार, क्षुधा, तृषा, हर्ष, शोक इत्यादिक गुण, मन इंद्रिय प्राणादिकोंके हैं, तू आत्माके नहीं तू इनका प्रकाशक है, कदाचित् इच्छादिकोंको आत्माके लक्षण मानोगे तौ समाधि, सुषुप्ति, मूर्छादिकोंमें इच्छादिकोंका आत्मामें व्यभिचार देखनेमें आता है। क्योंकि, जो गुण होता है सो गुणीसे अलग नहीं रहता है, समाधि आदिकोंमें मन, इंद्रिय, प्राणादिकोंका लय होनेसे। इच्छादिक जो गुण हैं वे मन इंद्रियादिकोंके हैं, इसलिये समाधिमें मन आदिकोंका लय होजाता है वे समाधिमें मालुम नहीं पडते हैं, कदाचित् आत्माके इच्छादिक गुण अंगीकार करे तो बालकमें इच्छा, द्वेष, प्रयत्न आदिक हैं नहीं, और आत्मा तौ बालकमें भी विद्यमान है इस कारण ये इच्छा आदिक आत्माके गुण नहीं हैं, किंतु आत्माके अनुमापक है, अर्थात् देहादिकसे भिन्न आत्माके अनुमान करनेवाले हैं, अनुमानकी ऐसी रीति है कि "इदं शरीरं सात्मकं इच्छादिमत्त्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा मृतकशरीरम्" अर्थात् यह शरीर इच्छा, द्वेष, वृद्धि, निमेष, उन्मेषवाला होनेसे आत्मासहित है, जो आत्मा सहित यह शरीर न होय तो इच्छादिकभी नहीं होते। जैसे मृत शरीरमें इच्छा, द्वेष, वृद्धि आदिक कुछभी नहीं दीखते हैं इति॥ और जैसे घरमें दीपकके होनेसे घरकी सब सामग्री दीखती है और जब दीपक निर्वाण हो जाता है तब उस घरमें सामग्री नहीं दीखती है तैसे देहरूपी घरमें भी दीपकरूप आत्माके होनेसेही इच्छा, द्वेष, आंखका उघाडना, मीचना आदिक सामग्री दीखती है। और आत्माके नहीं होनेसे नहीं दीखती है इस प्रकारसे हे शिष्य! इच्छादिक जो गुण हैं वे मन इंद्रियादिकोंके हैं आत्माके नहीं हैं॥ इति सप्तम प्रश्नोत्तरम्॥

हे शिष्य ! तूने पूछा है कि, देहमें कैसे आयो । इस अष्टम प्रश्नके उत्तरको अब श्रवण कर । यह जीव इस मृत्युलोकमें पुण्य पाप कर्मोंको करके स्वर्ग नगरको प्राप्त होते हैं, पुण्यका फल स्वर्ग और पापका फल नरक है । जब स्वर्गसे यह जीव अपने किये हुये कर्मोंको भोग लेता है, तब पुण्य पापके क्षीण होनेसे स्वर्ग नरकमेंसे प्रथम चंद्रमंडलमें गिरता है, पीछे उस चंद्रमंडलसे चंद्रमाकी किरणोंमें होकर पृथिवीमें पडता है, पृथिवीमें व्रीहिं आदिक खानेके पदार्थोंमें बहुत दिनपर्यंत रहता है, उन खान पानादिक पदार्थोंको मनुष्यादिक भोजन करते हैं, उन खाने पीनेके पदार्थोंके साथ पेटमें जाय वीर्य रूपसे परिणतहो पीछे ऋतुकालमें जब पुरुष स्त्रीकी साथ संभोग करता है, तब पुरुषके वीर्यमें रहा हुआ जो जीव है सो स्त्रीकी योनिद्वारा गर्भस्थानको प्राप्त हो उस गर्भ स्थानमें स्त्रीका शोणित और पुरुषका वीर्य दोनों इकट्ठे होते हैं, वात, पित्त, कफ आदिक दोषोंसे रहित ऐसे शुद्ध शुक्र[1] शोणितमें वह जीव स्थितिको करता है, और भूमि, जल तेज, वायु, आकाश इन पंच धातुओंको शरीरका आरंभके वास्ते अंगिकार करता है, और आत्मा आप षष्ठम चित् धातु है, शरिरके धारण करनेसे धातु ऐसा नाम कहा है, उन पंच धातुओंमें छठां चैतन्य धातु क्षीर नीरके तुल्य एकरूप हो जाता है. पीछे वे शुक्रशोणित और जीव ये तीनों इकट्ठे रहनेसेभी वह गर्भ एक मास पर्यंत पतले दधि सरीखा नरमही रहता है, फिर द्वितीय मासमें वह गर्भ मांसका पिंड अर्थात् उदरके पवन और जठराग्नि करके दिन दिन प्रति पकता हुआ कठिन होता है, तृतीय मासमें शिर, ग्रीवा और पादोंका आकार उत्पन्न होता है । चौथे मासमें गुल्फ, उदर और कटि इनकी उत्पत्ति होती है । पंचम मासमें पीठ और रुधिर उत्पन्न होते हैं । षष्ठ मासमें मुख, नासिका, नेत्र और कान, बल, वर्ण, नख, रोम, इनकीभी उत्पत्ति होती है । सप्तम मासमें मन, चैतन्य, नाडी[2], स्नायु[3], शिरा[4], इन करके युक्त होता है । अष्टम मासमें त्वचा, मांस और स्मृति इन करके युक्त होता है। जीवनेका हेतु जो ओज है उस ओजकोभी हृदयमें स्थिति होती है । शुद्ध और पित्त सहित

---

१ गर्भमें पुरुषका वीर्य अधिक होनेसे पुत्र उत्पन्न होता है, और स्त्रीका रज अधिक होनेसे पुत्री उत्पन्न होती है, तथा स्त्री और पुरुषका समभाग वीर्यके होनेसे नपुंसक उत्पन्न होता है तथा वायु आदिक विकारवाले वीर्यके अंध पंगु युगल उत्पन्न होते हैं । २ वायुको वहनेवाली। ३ हाडोंके बन्धन । ४ वात पित्त और कफ इनको वहनेवाली ।

जो उष्ण (गरम) हृदयमें रहता है उसका नाम ओज है, उस ओजके नाश होनेसे यह शरीर मरणको प्राप्त होता है इस प्रकारसे आठ मासमें वह गर्भ सर्व प्रकारसे सम्पूर्ण हो जाता है। माताकी दक्षिण कुक्षिमें जरायु नाम चर्मकी चद्दरमें जैसे किसी बालकको चद्दरमें बांधकर रखनेसे वह बालक हलने फिरने नहीं पाता है, तथा जैसे किसी पक्षीको पींजरामें बन्द करनेसे वह पक्षी उडने फिरनेकी चेष्टाको नहीं कर सकता है वैसे यह जीव चर्मकी चद्दरमें बांधा हुआ कुक्षिमें चेष्टासे रहित होकर रहता है; और उस गर्भके नाभिमेंसे एक आप्यायनी नाडी निकलकर माताके आंतोमें बँधी हुई रहती है। तिस नाडीमें होकर माताके खान पानके रससें गर्भका पोषण होता है; तहां माताके उदरमें मल मूत्रके खड्डेमें पडा हुआ वह जीव उस गर्भवासके दुःखको देखकर वहां इस जीवको अनेक जन्मोंके गर्भवासके दुःखोंकी स्मृति उत्पन्न होती है. फिर उस गर्भवाससे छूटनेके वास्ते यह जीव भगवान्‌की स्तुति करता है कि–

"यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये नारायणम् ।
अशुभक्षयकारकं परिमुक्तिप्रदायकम् ॥ "

अर्थ–अरे अब जो मैं इस योनिसे छूट जाऊं तो मैं अशुभ कर्मोंका नाश करनेवाले और मुक्तिको देनेवाले नारायणके शरण जाऊं। मैंने अनेक प्रकारके आहार और पान किये और बारम्बार मैं जन्म और मरणलिया, मैंने नानाप्रकारकी हजारों योनियोंमें निवास किया और अनेक माता पिता कुटुंबियोंको मैंने देखा अब मैं ऊंधा मस्तक करके पीडायमान होताहूं, तथा उदरमें कीडाभी मेरेको काटते हैं, मैंन कुटुम्बके अर्थ नाना प्रकारके शुभ अशुभ कर्म किये और दुःख मैं अकेला भोगताहूं, अब मैं इस योनिसे छूट जाऊं तो नारायणका भजन करूं इति ॥

तदनंतर प्रसूतिकालका पवन करके नवम मासमें अथवा दशममासमें योनिके द्वारमें प्राप्त हो योनिसे बाहिर निकलते समय जैसे इक्षुदण्डको यन्त्रमें पीलते हैं तैसे पीडायमान होता हुआ जन्म लेता है, पीछे विष्णुकी मायारूपी पवनके लगनेसे उस गर्भके ज्ञानको भूल जाता है। इस रीतिसे गर्भमें जीवने नारायणको भजनेकी प्रतिज्ञा की थी, और बाहिर निकलकर बदल गया, अर्थात् शिव, शक्ति,गणपति, इंद्र आदिकोंका सेवक बन बैठा, इस कारण इस

जीवका मोक्ष नहीं होता है, गर्भवासमें यह जीव जिस देवकी स्तुति करता है, वहही मुक्तिका देनेवाला सच्चा देव नारायण है इति । हे शिष्य ! जिस शरीरमें तू रहता है वह शरीर कैसा है सो व्यासजीने कहा है कि–

सर्वाशुचिनिधानस्य कृतघ्नस्य विनाशिनः ।
शरीरकस्यापि कृते मूढाः पापानि कुर्वते ॥
यदि नामास्य कायस्य यदन्तस्तद्बहिर्भवेत् ।
दण्डमादाय लोकोयं शुनः काकांश्च वारयेत् ॥

अर्थ–सर्व प्रकारसे अपवित्रका स्थानरूप और कृतघ्न तथा नाशवान् ऐसा जो शरीर है इस शरीरके निमित्त मूढपुरुष पापोंको करते हैं और इस शरीरके भीतर जो वस्तु भरी हुई है सो वस्तु यदि बाहिर होवे तौ यह लोक हाथमें दंडा लेकर श्वान और कागोंको निवारण करने लगेंगे परंतु जैसा भीतर है तैसा बाहिर नहीं हैं ॥

स्थानाद्बीजादुपष्टंभान्निष्पंदान्निधनादपि ।
कायमाधेयशौचत्वात्पंडिता ह्यशुचिं विदुः ॥

अर्थ–विद्वान्लोग इस शरीरको स्थान, बीज, उपष्टंभ, निष्पंद, निधन, आधेयशौच, इन षट् हेतुओंसे अशुचिही जानते हैं।यहां स्थानादि छः ये हैं कि, विष्ठा मूत्र करके युक्त माताका उदर सो स्थान १, माता पिताका जो शुक्र शोणित है सो बीज २, अन्नका परिणाम जो श्लेष्म रुधिरादिक हैं उसका नाम उपष्टंभ ३, मुख, नासिका, कर्ण, नेत्र, पायु, उपस्थ इन सब द्वारोंसे मलका जो बाहिर निकलना, उसका नाम निष्पंद ४, मरणका नाम निधन ५ और स्नान, चंदन आदिक करके जो इस शरीरमें शुचित्वका संपादन करना है उसका नाम आधेय शौच है ६ इन षट् हेतुओंसे अत्यंत अपवित्र और मलिन ऐसा यह शरीर है सो जीवके कैदखानाका घर है, इस कारागारवास गर्भवासमें जिस नारायण देवकी स्तुति की थी उसके भजनसेही छूटैगा ॥ इति अष्टमप्रश्नोत्तरम् ॥

हे शिष्य ! तैंने पूछा कि अंतर्यामी हममें कहां बसते हैं, इस प्रश्नका उत्तर ऐसा है कि–

" य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोन्तरो यमात्मा न वेद

यस्यात्मा शरीरम् य आत्मनोऽन्तरोयमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ "

अर्थ–जो परमात्मा, आत्मामें रहता हुआ आत्मासे पृथक् है. और जो परमात्मा, आत्माके अंतर रहकर उसको नियममें रखता है, वह ही अमृत स्वरूप परमात्मा तुम्हारा अंतर्यामी है। हे शिष्य ! जैसे तूं इस देहके भीतर रहकर इस देह तथा अंतःकरण इंद्रियादिक सर्वको तू जानता है परंतु ये सब तुमको नहीं जानते हैं वैसे तेरे अंदर रहा जो अंतर्यामी परमात्मा है सो अंतर्यामी तुमको जानता है परंतु तूं उसको नहीं जानता है सोही तेरा अंतर्यामी है इति ।। इति नवमप्रश्नोत्तरम् ।।

इति श्रीभगवद्रामानुजचरणपंकजमधुपेन श्रीमत्पंडितगोपालदासेन विरचिते श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकरे शिष्यकृतनवमप्रश्नदत्तोत्तरो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पंचमोऽध्यायः ।

श्रीमते रामानुजाय नमः ।

रामानंदीसंप्रदायका वृत्तान्त ।

हे गुरुमहाराज ! मेरा एक बडा भारी संशय है कि, श्रीसंप्रदायकी गुरुपरंपरामें रामानंदस्वामी हुए हैं ।कि, इनने श्रीसंप्रदायसे भिन्न अपना धर्म चलाया है. क्योंकि जटा भस्म आदिक वाममार्गके चिन्होंको धारण करनेवाले वहुत संतलोग ऐसा कहते हैं कि, रामानंदस्वामीने अवधूत मार्ग चलाया है. ऐसा उनका कहना सत्य है वा असत्य है ? । यदि रामानंदस्वामी श्रीसंप्रदायकी गुरुपरंपरामेंही हुये हो तो आदिशेष श्रीरामानुजस्वामीकी कितनी पीढीपर हुये हैं. और उनके गुरुका क्या नाम है. और उन रामानंदजीने श्रीवैष्णवधर्मकी पुष्टि करनेवास्ते अपने मुखसे नवीन ग्रंथ बनाकर अपने श्रीवैष्णवधर्मके ज्ञानका उपदेश किया हुआ जो ग्रंथ है सो श्रीरामानुज आदिक आचार्योंके किये हुये वैष्णवग्रंथांसे मिलता है, कि उन ग्रंथोंसे विरुद्ध है ? ये जो मैंने प्रश्न किये हैं वे अवधूत मार्गका निश्चय करनेवास्ते किये हैं । क्योंकि रामानंदजीने कोईभी शिष्यको अवधूतमार्गका उपदेश किया है वा

नहीं ? इसलिये हे गुरुजी ! अवधूतमार्गमें चलनेवाले जे जटा भस्मधारी हैं उनको विश्वासके अर्थ रामानंदजीके मुखका उपदेश हमारेको सुनाओ इति ॥

उत्तर–हे शिष्य ! श्रीसंप्रदायके गुरुपरंपरामेंही रामानंदस्वामी हुये हैं. और उन्होंने अपने सब शिष्योंको श्रीसंप्रदायके धर्मोंकाही उपदेशभी किया है, क्योंकि परमपवित्र श्रीवैष्णवसंप्रदायमें श्रीराघवानंदजी हुए, उनके शिष्य रामानन्दजी हुए हैं इति ॥

प्रश्न–किस प्रकारसे राघवानंदजीसे रामानंदजीको भेट हुआ ?

उत्तर–एक समय राघवानंद स्वामी तीर्थयात्राके निमित्तसे दक्षिण देशमें गये रहे, वहां एक नगरके समीप बागमें स्नान ध्यान करके बैठे रहे, पीछें उस बागमें पुष्प लेने वास्ते रामानंदजी आये । तहां विष्णुरूप राघवानंद स्वामीको देखकर उनके पासमें आकर प्रणाम किया । पीछे राघवानंदजी बोले, तुम कौन हो, तुम्हारा कौन संप्रदाय है और तुम्हारा क्या नाम है ? रामानंदजी बोले कि हमारा शैवसंप्रदाय है मैं संन्यासी हूं. मेरा नाम रामभारती है । राघवानंदजी बोले कि तुमने शिखा सूत्र क्यों नहीं रक्खे ? रामभारती बोले कि संन्यासियोंको शिखा और यज्ञोपवीत नहीं होते हैं । राघवानन्दजी बोले कि जो संन्यासी शिखा सूत्रका त्याग करता है उसको मरणके पीछे नरक मिलता है और नरकसे जब छूटता है तब श्वानयोनिमें जन्म मिलता है ऐसा हारीतस्मृति धर्मशास्त्रमें कहा है कि–

एकदण्डीकी निंदा ।

यस्त्वेकदंडमालंब्य धर्मं ब्राह्मं परित्यजेत् ।
विकर्मस्थो भवेद्विप्रः स याति नरकं ध्रुवम् ॥ १ ॥
शिखायज्ञोपवीतादि ब्रह्मकर्म यतिस्त्यजेत् ।
स जीवन्नेव चांडालो मृतो वै श्वाभिजायते ॥ २ ॥

अर्थ–जो ब्राह्मण एक दंडको धारण करके ब्राह्मणके धर्मका त्याग करता है, वह निषिद्ध कर्मका करनेवाला विप्र, अंतसमयमें निश्चय करके नरकमें जाता है ॥ १ ॥ शिखा यज्ञोपवीत आदिक ब्रह्मकर्मको जो संन्यासी त्याग करे, सो जीवता हुआही चांडालके समान है, और जब वह मरेगा तब श्वानकी योनिमें जन्म पावेगा ॥ २ ॥

इस कारण हे रामभारति! संन्यासियोंको वैष्णव त्रिदण्ड काषायवस्त्र शिखा और यज्ञोपवीत इनका अवश्य धारण करना कहा है ऐसा शास्त्रका सिद्धांत है।

रामभारती बोले कि, हमारे शंकराचार्य स्वामीने इस पृथ्वीके चार दिशामें चार मठ बनवाकर उन चार मठोंमें चार शिष्योंको मठाधिपति किये हैं। पूर्व दिशामें गोवर्धनमठ है, उसमें पद्माचार्यको अधिपति किये १। दक्षिणमें शृंगेरीमठ है उसको पृथ्वीधराचार्यको अधिपति किये २। पश्चिममें शारदामठ है, उसमें स्वरूपाचार्यको मठाधिपति किये ३। उत्तरमें ज्योतिर्मठ है, उसमें त्रोटकाचार्यको मठाधिपति किये ४। गोवर्धन मठके संन्यासियोंके नाम वन और अरण्य धरे जाते हैं. और ब्रह्मचारियोंके नामके आगे प्रकाशपद जोडते हैं जैसे शिवप्रकाश इत्यादि १। शृंगेरीमठके संन्यासियोंके नाम, सरस्वती भारती और पुरी ये तीन नाम धरे जाते हैं, और ब्रह्मचारियोंके नामके आगे चैतन्यपद जोडते हैं जैसे कि कृष्ण चैतन्य इत्यादि २। शारदा मठके संन्यासियोंके नाम तीर्थ और आश्रम धरे जाते हैं और ब्रह्मचारियोंके नामके आगे स्वरूपपद जोडते हैं जैसे कि शंकरस्वरूप इत्यादि ३। और ज्योतिष मठके संन्यासियोंके गिरि पर्वत और सागर ये तीन नाम धरे जाते हैं. और ब्रह्मचारियोंके नामके आगे आनंदपद जोडते हैं जैसे कि ब्रह्मानंद इत्यादि ४। पूर्वमें गोवर्धनमठवाले संन्यासी और ब्रह्मचारियोंका ऋग्वेद है. और ये उस वेदके महावाक्यको तथा उपनिषदोंको पढते हैं। शृंगेरीमठवाले यजुर्वेदके महावाक्य तथा उपनिषदोंको पढते हैं। और शारदामठवाले सामवेदके महावाक्य तथा उपनिषदोंको पढते हैं। ज्योतिष मठवाले अथर्वणवेदके महावाक्यको तथा उपनिषदको पढते हैं। इस प्रकारसे हमारे मठाम्नायग्रंथमें दश नामी संन्यासी और चतुर्नामी ब्रह्मचारी कहते हैं।

राघवानंदजी बोले कि, हे रामभारति! तुम्हारे संप्रदायमें संन्यासियोंके गिरि, पुरि, भारती आदिक दश नाम धरते हैं. और ब्रह्मचारियोंके प्रकाश, स्वरूप, आनंद, चैतन्य, आदिक पद जोडकर नाम धरते हैं. यह सब तुम्हारे रीति अशुद्ध है. क्योंकि ऐसे नाम धरनेका किसीभी शास्त्रमें लिखा नहीं है. यह पंथ तुमने अपने मनसेही चला लिया है. इसमें कोईभी शास्त्रका प्रमाण मिलता नहीं है।

रामभारति बोले कि, आपके श्रीसंप्रदाय आदिक चारों संप्रदायोंमें नारायणदास, हरिदास, रामदास, केशवदास आदिक नाम धरते हैं उसमें कौन शास्त्र प्रमाण है?

राघवानंदजी बोले कि, हम जो दास नाम धरते हैं सो शास्त्रके विधिसे धरते हैं । तुमको जैसे शास्त्रके प्रमाण नहीं मिलते हैं, वैसा हमारे संप्रदायमें नहीं है. किंतु बहुत शास्त्रोंके प्रमाण विद्यमान हैं । पराशरस्मृतिमें कहा है–

वैष्णवोंका नामधारण ।

योजयेन्नाम दासान्तं भगवन्नामपूर्वकम् ।
तस्मात्पापानि नश्यन्ति पुण्यभागी भवेन्नरः ॥ ३ ॥

अर्थ–जो वैष्णव है सो आदिमें भगवतका नाम और अंतमें दास ऐसा अपने शिष्यका नाम धरे । ऐसा नाम धरनेसे उस शिष्यके सब पाप नाश हो जातेहैं. और वह शिष्य पुण्यका भागी होता है. ऐसा पराशर मुनिका वचन है ॥३॥

अब इससे अधिक प्रमाण देखने होय तो हमारे वैष्णव ग्रंथोंमें तृतीय नाम संस्कारके प्रकरणमें देख लेना । और हे रामभारति ! दास नाम जो है सो परम पवित्र और महा मांगलिक तथा मोक्षपदको देनेवाला है. नारायणका जो दास हो उसको नारायणदास कहते हैं, ऐसा नारायणदास आदिक नामोंका अर्थ है । और तुम्हारे मतमें वन अरण्य गिरि सागर आदिक जो नाम हैं वे नाम भगवतके नामसे रहित और शास्त्रके विधिसे रहित होनेसे अशुद्ध और अप्रामाणिक हैं । क्योंकि वे वन, पर्वत और सागर आदिक नाम जड पदार्थोंके नाम हैं, उन जड पदार्थोंके नाम लेनेसे जडबुद्धि और मलिन बुद्धि उत्पन्न होती है । जैसे अजामील पापी विप्रने अपने पुत्र नारायणका नाम लेनेसे मुक्ति पाई वैसे तुम्हारे वन, पर्वतोंके नाम लेनेसे वन पर्वतरूप जड गतिही मिलेगी । और हमारे दासनामोंमें भगवतकेही नाम आते हैं वे नाम कैसे हैं कि–

अनेकजन्मार्जितपापसंचयं हरत्यशेषं स्मरतां सदैव ।

जो हरिका नाम हैं सो स्मरण करनेवाले पुरुषोंके अनेक जन्मोंके इकट्ठे किये हुये पापोंके समूहको हर लेता है । ऐसा महान् पवित्रकारी नामका प्रथम उच्चारण करके अंतमें दास पद जोडते हैं, इसलिये उन वैष्णवोंके नामोंको लेनेवालाभी पवित्र हो जाता है । इन नारायणदास आदिक नामोंके अर्थ भी व्याकरणकी रीतिसे स्पष्ट मालूम होते हैं । जैसे कि नारायणस्य दासः । केशवस्य दासः । रामस्य दासः । दास नाम सेवकका है । इस हेतुसे तुम्हारे वन, पर्वत आदिक नाम अर्थसे, फलसे शास्त्रके विधिसे तथा प्रमाणोंसे रहित और कपोलकल्पित हैं इसकारण उन नामोंका त्याग करके दास नाम धारण करो इति ॥

रामभारति बोले कि, जब एक दंडके धारण करनेसे नरक मिलता है, तब विना दंडके धारण किये संन्यास किस प्रकारसे कहा जायगा ॥

त्रिदंडिस्वरूप।

उत्तर–काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।

अर्थ–गीताजीमें कहा है कि काम्य कर्मोंके त्यागका नाम संन्यास है ऐसा कविजन जानते हैं। और मनुस्मृतिमें मनुजीनेभी कहा है कि–

वाग्दंडोथ मनोदंडः कायदंडस्तथैव च ।
यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदंडीति स उच्यते ॥ ४ ॥

अर्थ–वाणीका दंड अर्थात् वाणी करके निंदादिक पाप कर्म न करे, किन्तु भगवतके गुणोंकाही वर्णन करे १, मनका दंड अर्थात् मनकरके अशुभ चिंतन न करै, किन्तु ब्रह्म स्वरूपकाही चिंतन करे २, कायाका दंड अर्थात् काया करके अशुभ कर्म न करै किंतु भगवतका कैंकर्य आदिको ही करै ३ । इस प्रकार त्रिदंडोंका प्रयोजन मनुजीने बताया है इस लिये जिसकी बुद्धिमें ये तीनों दंड स्थित हैं सो त्रिदंडी संन्यासी कहा जाता है. इस वास्ते वहिरके त्रिदंडों करके आंतरिक मन वचन और कायाके दंडही सूचन किये हैं इसलिये संन्यासियोंको त्रिदंडोंकाही धारण करना आवश्यक है इति ॥ ४ ॥

संन्यासियोंके जलपात्रभी तुंबिका, काष्ठपात्र, वेणु आदिक मनुजीने कहे हैं. परंतु तुम्हारे मतधारी झहरी नारियलका कमंडल आदिको जल पीनेके वास्ते रखते हैं, सो भी शास्त्रसे विरुद्ध है ॥

रामभारति बोले कि, ये सब चिह्न शंकरावतार शंकराचार्य स्वामीने चलाये हैं. सो शास्त्र विरुद्ध क्यों कहते हो ?

शंकराचार्यका संक्षिप्त वृत्तान्त।

उत्तर–शंकरस्वामी अपने नवीन पंथको चलानेमें बहुत आसक्त रहे सो वे सत् असत्का विचार नहीं रखते रहे, अपना पंथ चलानेमेंही उन्होंने कमर बांधे थ। यह सब वृत्तांत तुम्हारे शंकरदिग्विजय ग्रंथमें लिखा है कि शंकराचार्यने एक दिन मंडनमिश्रकी स्त्रीके साथ विवाद किया, उस स्त्रीने शंकरको पूछा कि पंदरह दिन शुक्ल पक्षमें और पंदरह दिन कृष्ण पक्षमें पुरुष और स्त्रियोंके कौन कौनसे अंगोंमें कामदेवका वास रहता है। और कामदेवकी सोलह कला कौन कौनसी है ॥ शंकर बोले कि, मैं कामशास्त्र नहीं पढा हूँ।

सरस्वती बोली कि, तब तो मैंने आपको जीत लिये । शंकर बोले कि, एक मास पीछे इन प्रश्नोंका उत्तर मैं देऊंगा, ऐसी सरस्वतीकी आज्ञा लेकर गये, और एक अमरुक राजाको मरा हुआ सुनकर अपनी शरीर रक्षाके लिये शिष्योंको नियत करके, उस राजाके शरीरमें परकायप्रवेशविधिसे जा घुसे तब राजा जी उठा और राजाकी सब प्रजा आनंदको प्राप्त हो गई । पीछे शंकर उस राजाकी रानीयोंके साथ मांस और मदिरा खाने पीने लगे. और रात्रीमें रानीयोंसे भोगभी करने लगे. पीछे रानीयोंसे पूछने लगे कि कामदेवकी कला कितनी हैं. और कौन कौनसे स्थानोंमें काम निवास करता है । रानीयां बोली कि, तुम कौन हो ? हमारे राजाने तो ऐसी बातें कोई दिनभी पूछी नहीं, इससे सत्य बोलो, नहीं तो हम लोग शाप देऊँगी । अनंतर शंकर व्याकुल होकर बोले कि, मैं शंकराचार्य हूं, और सरस्वतीको प्रत्युत्तर दे उसको जीतनेके वास्ते यह मेरा उद्यम है। रानी बोली कि धिक्कार है तुम्हारेको तुम त्यागी और संन्यासी होकर परस्त्रियोंका भोग करते हो, और मांस मदिरा सेवनकरते हो ॥ पीछे शंकरके मृतक शरीरको रक्षण करनेवाले शिष्योंने राजसभामें आकर शंकरको उपदेश किया कि “ तत्त्वमसि राजन् ” अर्थात् हे राजन् ! जंगलमें शरीर छोडकर यहां आये हो सोही तुम हो. इस प्रकार वारंवार चेताकर शिष्य गये. और रानीयोंने अनुमानकर प्रधानको हुकम दिया कि, अपने राज्यभरमें कोई ठीकाने मृतक शरीर पडा हो तो उसको निर्विचारसे जला देना. पीछे वह प्रधान आदिक जब शंकरके शरीरको जलाने लगे कि, तुरंतही राजाके शरीरका त्याग करके अपने मृतक शरीरमें शंकर स्वामी आ घुसे. और वहां जब शरीर जलने लगा तब लक्ष्मीनृसिंहकी स्तुति की । लक्ष्मीनरसिंहने अग्निको शीतल कर दिया इति । अब विचार करो कि, शंकराचार्यने मदिराका पान किया, मांस खाया, रानीयोंके साथ लिपटकर सोये, इस प्रकार अपने धर्मसे भ्रष्ट होकर उभय लोकसे पतित हुये । और शंकर स्वामीका ‘ अहं ब्रह्मास्मि ’ ऐसा जो ज्ञान है सो ज्ञानभी खंडित है. अखंड नहीं है, क्योंकि जबसे अमरुक राजाके शरीरमें इनने प्रवेश किया, तबसे ‘ तत्त्वमसि ’ आदिक वाक्योंका ज्ञानभी भूल गये. और मैं ब्रह्म हूं ऐसा ज्ञानभी उनको न रहा और विषयोंमें आसक्त होकर अज्ञानी बन गये, खबर न रही कि मैं जंगलमें, अपना शरीर शिष्योंको सोंपकर, यहां कामदेवके वशसे बहुत दिन लग गये, ऐसा ज्ञानभी नहीं रहा.

इस हेतुसे अहं ब्रह्मास्मि यह ज्ञान खंडित है, उस ज्ञानका आत्माके साथ संबंध नहीं है, किन्तु शरीरके साथही उस ज्ञानका संबंध है. जो आत्माके संग उस ज्ञानका संबंध होता तो आत्मा तो अमरुक राजाके शरीरमें आया है तहां वह ज्ञान है नहीं, शिष्योंने जव 'तत्त्वमसि राजन्' ऐसा उपदेश किया तव अमरुक राजाके शरीरका त्याग करके अपने शरीरमें गये इसलिये तुम्हारा सव भेष शास्त्रसे विरुद्ध है इति ॥ और शंकराचार्यको ऐसाभी अभिमान रहा कि मैं सर्वज्ञ हूं मेरे समान विद्यामें कोईभी दूसरा सर्वज्ञ नहीं है, इस रीतिसे शंकराचार्य, अपनेको आप सव ठिकाने सर्वज्ञ कहते फिरते रहे, परंतु मण्डनमिश्रकी स्त्री सरस्वतीके आगे इनकी सर्वज्ञता नहीं चली । और शंकरस्वामीने इस दुनियामें नास्तिकमतभी वहुत फैला दिया । क्योंकि नास्तिकलोक ऐसा मानते हैं कि, ईश्वर, जगत्, वेद, देव, परलोक, तथा पाप पुण्य स्वर्ग नरक कुछभी नहीं हैं इस रीतिसे नास्तिक मतवाले मानते हैं और इसही रीतिसे शंकराचार्यभी मानते हैं कि जीव, ईश्वर, वेद, गुरु, स्वर्ग, नरक इत्यादिक सव मिथ्या हैं. ऐसे अधर्मोंके करनेसे और कहनेसे शंकरस्वामी वत्तीस तेतीस वर्षोंमेंही समाप्त हो गये, और कलियुगमें तो शत वर्षका आयुष्य है, सो भोगने पाये नहीं, क्योंकि अधर्म करनेसे आयुष्यका नाश होता है ॥ हे रामभारति ! तुम्हारा शंकरमत ऐसे दूषणोंवाला है इसकारण तुम अपने आत्माका संसारमहासमुद्रसे उद्धार करना चाहो तो उस मतकी दीक्षाका त्याग करके श्रीवैष्णवधर्मकी दीक्षाको धारण करो । क्योंकि, एक यादव नामवाला और तुम्हारे मतमें अत्यन्त प्रवीण वडा भारी पंडित रहा, सो अपनी माताके उपदेशसे और देवराज भगवान्के कहनेसे शंकरमतका त्याग करके आदिशेष श्रीरामानुजके शरण जाकर–

यादवप्रकाशका अपराधक्षापण ।

" भक्त्या प्रदक्षिणं कृत्वा यादवो ह्यपतत्तदा ।
यतिराज दयासिंधो दीनं मामवलोकय ॥ ५ ॥
मत्कृतानपराधांस्तान् क्षमस्व बहुधा किल ।
संसारार्णवनिर्मग्नं मामुद्धर कचग्रहात् ॥ ६ ॥

अर्थ–यादव पंडित, भक्तिसे रामानुज स्वामीको प्रदक्षिणा करके दंडकेसदृश पृथ्वीमें साष्टांग नमस्कार कर स्तुति करने लगा कि,हे यतिराज ! हे दयासिंधो!

दीन ऐसा जो मैं सो मेरेको आप कृपादृष्टि करके अवलोकन करो (मेरेको देखो) ॥ ५ ॥ और मेरे बहुतसे किये हुए अपराधोंको आप क्षमा कीजिये और संसारसमुद्रमें डूबा हुआ मेरी चोटी पकडकर संसारसमुद्रसे बाहिर हमको निकालिये ॥ ६ ॥ इसकी दीनता देख आदिशेष श्रीरामानुजमुनिमहाराज प्रसन्न होकरः–

यादवप्रकाशका उद्धार ।

तस्य संरक्षणे यत्नं चकार विबुधाग्रणीः ।
मौंजीबन्धादिकं कृत्वा यादवस्य यतीश्वरः ॥
आदरात्पंच संस्कारानथ तुर्याश्रमं ददौ ।
गोविन्ददास इति च दास्यनामाकरोत्प्रभुः ॥ ७ ॥

अर्थ–पंडितोंमें अग्रेसर और यतियोंके ईश्वर श्रीआदिशेष रामानुजस्वामी उस यादवको मौंजीबन्धनादि पुनस्संस्कारपूर्वक पञ्चसंस्कारों करके पीछे आदरसे संन्यास आश्रम देकर त्रिदंड धारण कराय ' गोविंददासः ' ऐसा दास्यनाम भी किये ॥ ७ ॥ अनन्तर वह यादव भी संस्कारोंके धारण करनेसे निष्पाप हो शरदृतुके चंद्रमाकी शोभाको प्राप्त हुआ। पीछे करुणासागर यतीन्द्र श्रीरामानुज मुनि उस गोविंदादसको समस्त वैष्णवग्रंथोंका उपदेश करके बोले कि, प्रथम तूने शिवधर्ममें रह कर वैष्णवोंकी निंदा बहुत कीथी । उस निंदाजनित दोषके दूर करनेके लिये एक ग्रंथ करो । तत्पश्चात् श्रीलक्ष्मणाचार्यकी आज्ञाको पाकर यादव वैष्णवोंकी निंदाकृत दोषकी शांतिके अर्थ " यतिधर्मसमुच्चय " नामवाला ग्रंथको करके समर्पण किया । हे रामभारति ! अब तुम आपही विचार करो कि शिवधर्ममें कुछ सार होता तो महान् पंडित जो यादव है सो शिवधर्मका त्याग किस वास्ते करता ? इति ॥

गोविन्दभट्ट (एंबार स्वामी) का वृत्तान्त ।

हे रामभारते ! अब एक दूसराभी इतिहास मैं तेरेको कहता हूं सो तू सुन । एक समय श्रीशैलपूर्णाचार्य अपने शिष्योंको साथ लेकर, कालहस्तिपुरके पास एक बागमें पुष्पोंसे भरे हुए एक पाटली वृक्षकी छायामें बैठकर, अपने शिष्योंको सहस्रगीती ग्रंथका अर्थ सुनाते रहे उस समय वहां गोविन्द नामक एक शिवभक्त पुष्प लेनेके निमित्त उस पाटली वृक्षपर चढकर पुष्प

---

१ यह रामानुजस्वामीका मातृष्वस्रेय (मौसीका लडका) यादवप्रकाशकी मायासे काशीमें जो शिवभक्त हुआ । इनका संपूर्ण वृत्तान्त प्रपन्नामृतमें देख लेना ।

लेता लेता सहस्रगीतीके द्वितीय शतकमें द्वितीयदशककी वाक्योंको सुनने लगा । प्रथम गाथासे लेकर तीसरी गाथा तक एकाग्र चित्तसे "सकल-कल्याणगुणनिधि श्रीमन्नारायणही परात्पर देव है और ब्रह्मरुद्रादिनिर्वाहक श्रियःपतिके विना दूसरा रक्षक नहीं है" इत्यादि संपूर्ण अर्थको सुन मनमें विचारते थे. फिर चौथी गाथामें ऐसा अर्थ गोविंदकेसुन नेमें आया कि, श्रीमन्नारायाणके विना दूसरे देवोंके आराधनमें पुष्प क्या योग्य है? ऐसा सुन गोविंद बोला कि श्रीमन्नारायणके आराधनमेंही पुष्प योग्य है दूसरे देवोंको नहीं । फिर श्रीशैलपूर्ण बोले कि–

तस्यैवार्हति गोविंद पूजा पुष्पं च चक्रिणः ।
तं विना पूजनं पुष्पं चान्येषां नार्हति ध्रुवम् ॥ ८ ॥

अर्थ–हे गोविंद! चक्रधारी तिस नारायण देवकी पूजामेंही पुष्प योग्य हैं, उस नारायणके विना पूजा और पुष्प दूसरोंको निश्चय करके योग्य नहीं हैं, योग्य नहीं हैं॥ ८॥ ऐसे श्रीशैलपूर्ण जब तीन वार बोले तब गोविंद उस वचनको सुनकर–

वृक्ष एव हि गोविन्दः छिन्नां कृत्वाथ मालिकाम् ।
दूरेण पुष्पसंपूर्णां हित्वा तां पुष्पपेटिकाम् ॥ ९ ॥
रुद्राक्षमालिकास्त्यक्त्वा भस्म वस्त्रेण मार्जयन् ।
त्रिवारं नार्हतीत्येव स्वरेण महताऽवदत् ॥ १० ॥

अर्थ–वृक्षपर बैठा हुआही गोविंद अपनी माला और पुष्पोंसे भरीहुई पेटीको दूर फैंककर पीछे रुद्राक्षकी मालाओंको तोड फैंक दिया, तथा भस्मको वस्त्रसे पूंछ डाला और दूसरेको पुष्प योग्य नहीं हैं, ऐसे तीन वार बडे ऊंचे स्वरसे बोलता हुआ उस पाटलीके वृक्षसे नीचे कूदकर गोविंद श्रीशैलपूर्णके चरणोंमें साष्टांग प्रणाम कर बोला ॥ ९ ॥ १० ॥

अज्ञश्चाचारहीनश्च विस्तीर्णे दुःखसागरे ।
पतितोऽहं दयासिन्धो रक्ष मां शरणागतम् ॥ ११ ॥

अर्थ–हे दयासिंधो! अज्ञानी और आचारसे रहित तथा बहुत विस्तारवाला दुःखसागरमें पडा हुआ ऐसा जो मैं गोविंद हूं सो आपके शरण आया हूं सो

आप मेरा रक्षण कीजिये ॥११॥अरे दैव ! मैंने बहुत बुरा काम किया देखो मैंने उभय विभूतिके नाथ किरीटधारी विष्णुका त्याग करके और विखरे हुए केश जिसके मस्तकमें हैं ऐसे शिवके विषय मैं मोहित हुआ हूं ॥ अहो सब विश्व जिसके उदरमें रहता है; ऐसे श्रीनारायणका मैं त्याग करके और जिसके कंठमें विष भरा है, ऐसे शिवमें मोहित हुआ हूं । और जिसके वक्षस्थलमें लक्ष्मीजी नित्य वास करती है ऐसे श्रीनारायणका मैं त्यागकरके लक्ष्मीसे रहित वक्षस्थल जिसका है ऐसे शिवका आश्रित मैं हुआ हूं । और जिसके कमल समान नेत्र हैं उस विष्णुका त्यागकरके (विरूप) रूपसे रहित नेत्रोंवाले शिवमें मोहित हुआहूँ और गिरिराज गोवर्द्धन पर्वतको एकहस्तसे उठाके महावृष्टिसे गोकुलका जिन कृष्णजीने रक्षण किया, उन श्रीकृष्णजीका मैं त्याग करके और मनुष्यकी खोपडीको हाथमें धारण करनेवाले शिवका मैं आश्रित हुआ तथा ब्रह्मादि स्थावर पर्यंत सकल प्राणियोंके अंतर्यामी श्रीहरिको तथा जगत्की उत्पत्ति स्थिति और विनाशको करनेवाले श्रीनारायणको मैं परित्याग करके श्मशानके वासी रुद्रकी मैंने अच्छी तरहसे प्रदक्षिणा की तथा सुवर्णमय वस्त्रोंवाले विष्णुका त्यागकरके, और वस्त्रोंकरके रहित (नग्न) शिवका मैंने आश्रय किया । और देवरूपी इस तुलसीके वनका मैं त्यागकरके कडवी पटोलकी बेलीको अरे मैंने वृथा बढाई । ऐसे बहुत प्रकारसे पछतावा करके गोविंद श्रीशैलपूर्णके चरणोंमेंसे नहीं उठा । पीछे श्रीशैलपूर्ण गोविंदको बहुत प्रकारसे समझाकर–

आदाय वेंकटगिरिं स्वजनैः प्रविवेश ह ।
वपनं करायित्वाशु गोविंदस्य यतीश्वरः ॥ १२ ॥
अकरोत्पंच संस्कारान् पूर्णः श्रीशैलपूर्वकः ।
विष्णुचित्तादियोगींद्रैः कृतां द्राविडसंहिताम् ।
स तेनाध्यापयित्वाथ चतुष्टयसहास्रिकाम् ॥ १३ ॥
अर्थपंचकविज्ञानं मंत्रार्थज्ञानमुत्तमम् ।
संपूर्णं बोधयामास गोविंदाय यतीश्वरः ॥ १४ ॥

अर्थ–फिर गोविंदको ले अपने स्वजनोंसाहित श्रीशैलपूर्ण वेंकटगिरिमें आय उस गोविंदको प्रायश्चित्तार्थ क्षौर कराकर, ताप, पुंड्र, नाम, आदिक पंच-

संस्कारोंको यथाविधि किये। पीछे विष्णुचित्तआदि योगीद्रोंने की हुई चारहजार गाथारूप दिव्यप्रबन्धको पढाकर अर्थपंचक और मंत्रार्थके उत्तम ज्ञानको संपूर्ण बोध कराये ॥ १२–१४ ॥ इस प्रकार शिवधर्मको और शिवकर्मके चिह्न जो रुद्राक्ष, त्रिपुंड्र, जटा और भस्म इन सबका त्याग करके गोविन्दभट्ट श्रीवैष्णवधर्मको तन मनसे धारण कर भगवत्कैंकर्यमें आसक्त हुए ॥ इति ॥

हे रामभारते ! तुम्हारे शिवधर्मका त्याग करनेमें अब हम तीसरा वृत्तांतको कहते हैं उसको भी तू सुन–

भक्तिसारका संक्षिप्त वृत्तान्त ।

द्वापर और कलियुगके मध्यमें भार्गव ऋषिका एक पुत्र भक्तिसार नामक हुआ, वह भक्तिसार तीर्थोंकी यात्रा कर विचरते समय एक दिन उसका मन अष्टांग योगमें संलीन हो विचारने लगा कि " कारणं तु ध्येयः " जो जगत्का कारण परब्रह्म है सो ध्यान करके जाना जाता है । और इस लोकमें बहुत मत हुए हैं, परंतु उन सब मतोंमें कौनसे मतमें जगत्का कारण परब्रह्म निश्चय किया हुआ है, सो उस परब्रह्मको अब मैं अत्यन्त दृढ यत्नकरके ढूंढूंगा । इस प्रकारसे भक्तिसार अपने मनसे निश्चय करके–

शाक्योलूक्याक्षपादाश्च कापिलाश्च पतञ्जलिः ।
एते बाह्यमताः प्रोक्तास्तान्सर्वान् स व्यशोधयत् ॥ १५
मायावादं च शैवं च न्यायवैशेषिकौ तथा ।
एते कुदृष्टिसमया भट्टप्राभाकरादयः ॥ १६ ॥

अर्थ–शाक्य, उलूक्य, अक्षपाद, कापिल, पतंजलि आदि जो बाह्यमत और मायावाद, शैव, न्याय, वैशेषिक और भट्ट प्राभाकर आदि जो कुदृष्टिमत हैं उन सब मतोंमेंभी जगत्का कारण ब्रह्मको विचारकर इन मतोंमें कुछ भी न सार पाकर फिरभी सूक्ष्म विचारसे इस श्लोकमें जो आदि पद है उस करके अन्य दत्तमत, शक्तिमत, भैरवमत आदिक सैंकडों मतोंमें हजार वर्ष पर्यन्त बारंबार परब्रह्मका शोधन किये ॥१५॥ १६ ॥ पीछे उन सबको असार और तुच्छ जानकर शिवमतमें प्रवेश किया और अपनेको शिववाक्य नाम धारण किया और उस शिववाक्यने द्राविड भाषामें बहुत ग्रंथ बनाये,उन ग्रंथोंमें शिवको ही परतत्त्व ठहराकर दूसरे मतोंको तृणसमान मानकर शिवभक्तोंमें मुख्य हुआ, उस

समय महत् नामवाले आचार्य उस भक्तिसारके वृत्तांतको सुनकर उसको शिक्षा करनेकी इच्छासे भक्तिसारके आश्रममें आये । जब भक्तिसार महत् योगीको विष्णुभक्त जान उनके पास नहीं आया, तब महत्‌योगीने उसको बुलानेका उपाय किया कि, एक वृक्षको ऊंधा शिरसे रोपिके छिद्रवाले घडासे जल पिलाने लगे, उस महत् योगीकी विचित्र क्रियाको देख भक्तिसार बोले कि, हे विष्णुदास ! क्या तू पागल हुआ है, क्योंकि फुटे घटसे जल पिलाय ऊंधे वृक्षको लगाने चाहता है । पीछे महत् योगी बोले कि, हे शिव-भक्त ! तूही पागल और भ्रांतिवाला है. हम पागल नहीं । क्योकि, जो जगत्‌का कारणवस्तु है उसको तुम नहीं जानकर पागलकी तरह फिरते हो, और हम तौ तत्त्वका निश्चय करके श्रीवैष्णवधर्ममेंही स्थिरबुद्धि हुये हैं, तुम तो वहुत मतोंमें भटके, परंतु तुमको तत्त्ववस्तु न मिलनेसे शांति हुई नहीं । फिर भक्तिसार बोले कि, जो जगतका कारणवस्तु है सो शिव है, शिवसे पर दूसरा कोईभी नहीं है । महत्‌योगी बोले कि,

यत्तत्परात्परं वस्तु सूक्ष्मबुद्धया विचार्यताम् ।
अरक्ष्यं यदनुत्पन्नमन्येषामपि रक्षकम् ॥ १७ ॥
तज्जगत्कारणं वस्तु तच्च वेदांतसंमतम्
परात्परतरं वस्तु तदेवेत्यवधारय ॥ १८ ॥

अर्थ–हे शिवभक्त ! तुम सूक्ष्म बुद्धिसे जो तत्त्ववस्तु सबसे पर है उस वस्तुको विचार करो. क्योंकि जो वस्तु आप अरक्ष्य होते हुए अन्यको रक्षण करता और आप उत्पत्ति रहित होते हुए अन्योंकी उत्पत्ति करता है वहही जगत् कारण है और उसकोही वेदान्तसम्मत परात्पर वस्तु अर्थात् सर्वोत्कृष्टजानो १८

हे विद्वानोंके मुखिया ! किसीभी श्रुति स्मृतियोंके प्रमाणसे रहित, अपने मनसेही तुम शिवको परतत्त्व मानते हो उस शिवकी तौ वेदमें उत्पत्ति सुनी है कि–

"यन्नाभिपद्मादभवन्महात्मा प्रजापतिर्विश्वसृड्विश्वरूपः ।"
"तस्य ध्यानमास्थितस्य ललाटात्स्वेदोऽभवत् ।
स्वेदाद्बुद्बुदोऽभवद्बुद्बुदात्र्यक्षः शूलपाणिः पुरुषोऽजायत ।"

इस श्रुतिप्रमाणसे परमात्माका नाभिकमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ । वह ब्रह्मा ध्यानावस्थामें रहते समय उनके ललाटसे (स्वेद) पसीना हुआ । वह पसीनेका बूंद बुद्बुदाकार हो उस बुद्बुदसे तीन नेत्रवाला और शूलको धारणकरनेवाला पुरुष ' रुद्र ' प्रकट हुआ । स्तुतिमें भी प्रमाण है कि-

सर्वे देवाः सपितरो ब्रह्माद्याश्चांडमध्यगाः ।
विष्णोः सकाशादुत्पन्ना इतीयं वैदिकी श्रुतिः ।
पुराणे भारते वेदे वेदांते च स्मृतावपि ॥ १९ ॥

अर्थ–इस ब्रह्मांडमें ब्रह्मा आदि पिपीलिका पर्यंत सर्व प्राणीमात्र और पितरों सहित सर्वदेवता, ये सब श्रीविष्णुभगवानसे उत्पन्न हुये हैं ऐसी पुराण, भारत और स्मृति आदिमेंभी विष्णुसेही ब्रह्मा शिव इंद्र आदिक सकल ब्रह्मांडकी उत्पत्ति कही है॥१९॥हे शिवभक्त ! अब मैं तेरे कल्याण होनेके मार्गको कहता हूं सो तू मन लगाकर सुन । विष्णु ब्रह्मा और शिव, ये तीन देवही लोक और शास्त्रमें प्रसिद्ध हैं । उनमें विष्णु शुद्धसत्वगुणमय हैं, ब्रह्मा रजोगुणी हैं, रुद्र तमोगुणमय हैं । हे शिवभक्त ! बलिराजाके यज्ञमें वामन भगवानने भुवरादिलोकोंको मापनेवास्ते ऊपर जो अपना चरणको पसारा, सो चरण-कमल, ब्रह्मलोकमें पहुंचा, उसको ब्रह्माने भक्तिकरके धो लिया, और उस विष्णुके चरणजलको (गंगाजी) शिवने भक्ति करिके मस्तकमें धारण किया। अब हे विद्वन् ! उन तीनों देवोंमें कौनसा बडा है, चरण पसारनेवाला बडा है या चरण धोनेवाला बडा है वा चरणजल मस्तकपर धरनेवाला बडा है ? सो तुमही विचार करो. और भागवतमेंभी कहा है कि. एक दिन अठ्ठासी हजार ऋषियोंने नैमिषारण्यक्षेत्रमें इकट्ठे होकर विचार किया कि, तेतीस कोटी देवोंमें विष्णु, ब्रह्मा और शिव, ये तीन देव बडे हैं और इन तीनोंमें कौनसा बडा है, ऐसा संशय कर परीक्षा करने वास्ते भृगु ऋषिको भेजे हैं । भृगुने परीक्षा करके विष्णुकोही बडा मुक्तिदाता सिद्ध किया, इससे ब्रह्मा और रुद्रके स्वामी विष्णुभगवान् हैं. सो विष्णु उत्पत्ति और विनाशसे रहित हैं । जब जब ब्रह्मा और शिवादि देवोंको दैत्यलोकों करके दुःख प्राप्त होता है. तब तब उस दुःखको सहजमें विष्णुभगवानही दूर करते हैं. यह जो हमने कहा है सो लोक और शास्त्रमें प्रसिद्धही है। हे भक्तिसार ! सर्व

शास्त्रोंका मंथन करके और सर्व शास्त्रोंका वारंवार विचार करके यह ही एक निश्चय हुआ कि, सदा श्रीमन्नारायणही ध्यान करके योग्य हैं. उन नारायणके विना दूसरा कोईभी देव ध्यान करने योग्य नहीं है । और श्रुतिमेंभी ऐसा कहा है कि " योऽन्यदेवमुपासते स पशुरेव देवानाम् " अर्थात् जो पुरुष नारायणको छोडके दूसरे देवोंकी उपासना करता है, सो पुरुष देवताओंका पशु है इति । और इस श्रुतिकी टीकारूप धर्मशास्त्रकी हारीतस्मृतिकाभी ऐसा वचन है कि,

त्यक्त्वा गां हि विमूढात्मा गर्दभीं विन्दते यथा ।
तथा हरिं परित्यज्य योऽन्यदेवमुपासते ॥ २० ॥

अर्थ–जैसे मूढ पुरुष गौकी सेवा पूजाको छोडकर गधीको पूजता है तैसे श्रीहरिकी सेवा पूजा उपासना आदिकको छोडकर दूसरे देवोंकी उपासना करता है इस प्रकारसे अन्य देवोंके उपासकको पशु और मूढ करके श्रुति स्मृतिमें कहे हैं ॥ २० ॥

एवं शतसहस्राणि प्रमाणानि यथाविधि ।
सत्तर्कसहितान्येव सर्वज्ञत्वान्महामतिः ॥ २१ ॥
तानि वादमुखेनैव प्रतिपाद्यार्थसंमतम् ।
पराशरादिवत्सम्यगकरोत्तत्त्वनिर्णयम् ॥ २२ ॥
सन्तुष्टस्तेन वाक्येन स सम्यक् छिन्नसंशयः ।
भक्तिसारो महाख्यस्य शिष्यत्वमकरोत्तदा ॥ २३ ॥
स तस्मै भक्तिसाराय विष्वक्सेनकृपावशात् ।
तापादिपञ्चसंस्कारान् चकार महदाह्वयः ॥ २४ ॥

अर्थ–हे शिष्य ! इस प्रकारसे महाबुद्धिमान् महत्भगवान् सर्वज्ञ होनेसे सच्चे तर्कों सहित यथार्थ रीतिसे भाक्तिसारके प्रति सौ हजार प्रमाणोंको समझाये और उन सौ हजार प्रमाणोंको विवाद मुखसेही प्रतिपादन करके, पराशर व्यास आदिक मुनियोंके सदृश अच्छी तरहसे पूर्वाचार्योंसे मानने योग्य तत्त्वका निर्णय किये फिर भक्तिसार महत्भगवानके उन प्रमाण वाक्यों करके

संतोषको प्राप्त हुआ और सब संशयोंसे निवृत्त हो उसी समय महत् योगीका शिष्य हुआ। इनको ऐसा अन्यमतोंके सारासार विवेचनमें एकहजार वर्ष पूरा होगया। अनंतर महत योगीभी विष्वक्सेनमहाराजकी कृपासे उस भक्तिसारको ताप, पुंड्र, नाम, मंत्र, याग इन पांच संस्कारकर, अष्टांग योग तथा जगत्के कारण वस्तुका उपदेश करके जीव, प्रधान, काल, आत्मा, लीला, सृष्टि इन सबका उपदेश किये। फिर उभयविभूतिका जो कर्ता है सोही भक्तजनोंके दुःखको हरण करनेवाला भगवान् है. उस दो विभूतिके नाथ जगतके पति विष्णुभगवानके नाभिकमलसे जगत्को निर्माता ब्रह्मा उत्पन्न हुआ, उस ब्रह्मासे शंकर उत्पन्न हुआ ऐसा निश्चयकर भक्तिसार कृतार्थ हुये, अनंतरही द्राविडभाषामें श्रीचंद्रवृत्त, चतुर्मुखअन्दादि ग्रंथोंको रचे ॥ फिर भक्तिसारसे बहुत पूजित महाबुद्धिमान् महतयोगी, तीर्थयात्राके लिये उत्तर दिशाके प्रति गमन किये ॥ इस प्रकार भक्तिसार सब देशोंमें सब जनोंको श्रीवैष्णवधर्मका उपदेश करते करते, कुंभकोणतीर्थमें आय वहां दो हजार तीन सौ वर्षतक निवास कर अन्न आहारादिसे रहित हो तीन हजार सात सौ वर्ष पर्यंत दूधपान करतेही विचरते रहे इस रीतिसे भक्तिसारने भगवत्भक्ति, भगवत्सेवा, भगवत्ध्यान और भगवत्के अनुभव आदिकों करकेंही इस पृथ्वीमें छः हजार वर्ष पूरे किये। इस भक्तिसार महानुभावको एक हजार वर्ष अन्य मतोंके विवेचनमें लगे इस रीतिसे भक्तिसार इस लोकमें सात हजार वर्ष पर्यंत रहकर, श्रीवैकुंठ धाम पधारे इति ॥

अब राघवानंदजी कहते हैं कि, हे रामभारति ! देखो कि यादव, गोविंद और भक्तिसार ऐसे ऐसे औरभी सैकडों शिवभक्त अपने शिवधर्मको असार और अशुद्ध जानकर श्रीवैष्णवधर्ममें संमिलित हुए हैं। इसलिये हे रामभारते ! तुमभी संसारसमुद्रसे अपने आत्माका उद्धार करनेके वास्ते श्रीवैष्णवधर्मकी दीक्षाको धारण करो. क्योंकि अब तुम्हारा आयुष्यभी पूरा हो चुका है. अंतकालमें भगवत्के शरण होना चाहिये. यदि जो तुम्हारे गुरु इस आये हुए कालसे बचा लेवें तो जाओ उनको पूछ देखो। फिर रामभारति अपने गुरुके पास आय राघवानंदजीका कहा हुआ सब वृत्तांत कहा। गुरु बोले कि, इस कालसे हम तुमको नहीं बचा सकते हैं. जो राघवानंदजी बचा सके तो उनकी सेवा करो। फिर रामभारति, शिवधर्मका त्याग करके रुद्राक्षकी मालाको तोड डाली, विभूतिको धोय डाली, आडा तिलकको पूंछ डाला,

शिव शिव कहना छोड दिया और राघवानंदजीके चरणोंमें साष्टांग गिरकर बोले कि–

त्राहि त्राहि महायोगिन् रक्ष मां शरणागतम् ।
त्वां विनान्यो दयासिंधो मम रक्षाकरो न हि ॥२५॥

अर्थ–हे दयासिंधो ! आपके विना इस कालके मुखसे मेरा रक्षण करनेवाला दूसरा कोई भी नहीं है. हे महायोगिन् ! आप मेरा रक्षण कीजिये आपके मैं शरण आयाहूं ॥ २५ ॥ ऐसा सुन राघवानंदजी, रामभारतिको विष्णुमंदिरमें लेजाय उसको देहशुद्धि प्रायश्चित्त और मुंडन कराकर विधिसे होमपूर्वक, ताप और पुंड्र संस्कार करके पीछे भारति नामका त्याग कराय रामानंददास नामको धारण कराया । उसके पीछे मंत्र और माला संस्कारोंको किये. फिर रामानंदजीको तीन तत्त्व, तीन रहस्य, अर्थपंचक इत्यादिक श्रीवैष्णवरहस्योंका अर्थ सहित बोध कराये। फिर राघवानंदजी रामानंदजीको यम नियमादिक अष्टांग योगका और धोति बस्ति आदिक योगके षट् कर्मोंका तथा आधार स्वाधिष्ठान आदिक षट् चक्रोंका समाधि पर्यंत अभ्यास करा दिया, और रामानंदजीके प्राणोंको दशवें द्वार ब्रह्मांडमें पहुंचा दिया, जब मृत्युकी घडी टल गई तब फिर समाधि उतारकर चैतन्य कर दिया और बहुत वर्ष पर्यंत जीनेका वरदान दिया, और रामानंदजीभी बहुत काल पर्यंत गुरुकी सेवा करके वेद, वेदांग, षट्शास्त्र, धर्मशास्त्र, पुराण, इतिहास, रामायण, सहस्रगीति, श्रीभाष्य, आदिक सर्व शास्त्रोंमें प्रवीण होकर अपने गुरु श्रीराघवाचार्यकी आज्ञा लेके काशी पुरी आय निवास करते रहे इति ।

प्रश्न–हे गुरुमहाराज ! राघवानंदजीने रामानंदजीको योगके अष्ट अंगोंका और षट् चक्रोंका अभ्यास कराया, सो वे कौनकौनसे हैं, उनको स्पष्ट करके आप मेरे प्रति उपदेश कीजिये ।

उत्तर–यम १ नियम २ आसन ३ प्राणायाम ४ प्रत्याहार ५ धारणा ६ ध्यान ७ समाधि ८ ये योगके अष्ट अंग हैं, उनमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धृति, दया, आर्जव, मिताहार, शौच ये दश यम हैं, । जप, तप, होम, श्रद्धा, आतिथ्य, भगवत अर्चन, तीर्थाटन, परार्थेहा, तुष्टि, आचार्यसेवा ये दश नियम है, चौरासी प्रकारके आसन हैं, तीन प्रकारके प्राणायाम हैं, मन सहित इंद्रियोंको वश करनेका नाम प्रत्याहार है, भगवद्रूपमें

मनका धारण करनेकी धारणा कही जाती है, भगवत्के एक एक अंगोंमें मनकी स्थिरताका नाम ध्यान और निर्विषयक मनको परमात्मामें स्थिरकरनेका नाम समाधि है।

अब हे शिष्य! योगक्रियाके जो षट् कर्म हैं उनको सुन–

धोतिर्बस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा।

कपालभातिश्चैतानि षट् कर्माणि प्रचक्षते ॥ २६ ॥

अर्थ–धोति १ वस्ति २ नेति ३ त्राटक ४ नौलिक ५ कपालभाति ६ ये योगके षट् कर्म कहे जाते हैं, उनमें सोलह हाथके लंबे और पांच अंगुल चौडे मलमल कपडेके रुमालको निगलकर उदरकी शुद्धि करे, उसको धोती कर्म कहते हैं। जो गुदाकी शुद्धि करनी है उसको वस्ति कर्म कहते हैं। तथा जो नासिकाकी शुद्धि करनी है उसको नेति कर्म कहते हैं।जबतक नेत्रमें जल आवे तहांतक एक ठिकाने दृष्टिको स्थिर रखनेको त्राटक कर्म कहते हैं। मस्तकको नीचा रखकर उदरको दक्षिण वाम तरफ हिलानेका नाम नौलिक कर्म है। लुहारकी धमनीकी माफक श्वासोच्छ्वासको चलानेका नाम कपालभाति कर्म है। हे शिष्य! इस प्रकारसे योगके अष्ट अंग और षट् कर्म मैंने तुमको कहे। अब षट् चक्रोंके ज्ञानको श्रवण कर। इस आगे लिखे हुये कोष्ठकमें षट् चक्रोंके नाम, स्थान, आकार, पांखाडियोंकी संख्या, चक्रकी पांखडियोंके अक्षर तथा उनका रंग और चक्रके देव इन सबका वर्णन किया है सो देख लेना ॥

षट्चक्र कोष्ठक ।

चक्रका नाम.	चक्रका स्थान	चक्रका आकार.	चक्रकी पांखडियोंकी संख्या.	चक्रकी पांखडियोंके अक्षर.	चक्रकारंग.	चक्रके देव.
आधार	गुदा	चतुष्कोण	४	व,श,ष,स,	थोडा लाल	गणेशः
स्वाधिष्ठान	लिंग	गोल	६	ब भ म य र ल	पीत	ब्रह्मा
मणिपूरक	नाभि	त्रिकोण	१०	ड ढ ण त थ द ध न प फ	आशमानी	विष्णुः
अनाहत	हृदय	गोल	१२	क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ	श्वेत	रुद्रः
विशुद्ध	कंठ	गोल	१६	अआइई उ ऊ ऋ ॠऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः	धूम्रवर्ण	जीवः
आज्ञा	भ्रूमध्य	लंबागोल	२	ह क्षः	लाल	हंसः
सहस्रदल	मूर्धा	गोल	१०००	अनंत स्वरूपी	श्वेत	गुरुः

प्रश्न–हे सद्गुरुजी ! फिर रामानंदजीने काशीपुरीमें निवास करके श्रीवैष्णव धर्मका जीवोंको किस प्रकारसे उपदेश किया ?

उत्तर–हे शिष्य ! तहां काशीमें सर्व जीवोंके कल्याणके अर्थ, रामानंदीय-वैष्णवमताब्जभास्कर, इस नामके ग्रन्थको रचे, उस ग्रन्थमें मुमुक्षु वैष्णवोंको करने योग्य मोक्षके सकल अर्थोंका निरूपण किया हुआ है ।

प्रश्न–उस ग्रन्थका उपदेश रामानंदजीने प्रथम कौन कौनसे शिष्योंको किया था?

उत्तर–अनंतानंद १ सुरसुरानंद २ सुखानंद १ नरहरियानंद ४ भावानंद ५ गालवानंद ६ योगानंद ७ ये सात शिष्य विरक्त थे. उनमें अति

विभलमति सुरसुरानंद रहे, सो कल्याणसे विमुख विषयासक्त जीवोंको संसारसे उद्धार करनेकी कामनावाले कृपालु सुरसुरानंदजी सकल वेद शास्त्र इतिहासोंके सारको अल्पज्ञ जीवोंका ग्रहण करानेकी इच्छा करके और आपभी जिज्ञासु होके श्रीरामानन्द स्वामीसे इस प्रकार दश प्रश्न करने लगे ।

सुरसुरानन्दके प्रश्न ।

तत्त्वं किं किं च जाप्यं परमिह विबुधैर्वैष्णवैर्ध्यानमिष्टं
मुक्तेः किं साधनं सद्गुर अधिकतमो धर्म एकोऽस्ति कश्च ॥
धर्माणां वैष्णवास्ते गुरुवर कतिधा लक्षणं किं च तेषां
कालक्षेपः किमाप्यं कथमुरु शुभदं कुत्र कार्यो निवासः २७

अर्थ–हे सद्गुर अर्थात् हे संत महात्माओंके मध्यमें श्रेष्ठ! १–इस जगतमें जानने योग्य तत्त्व वस्तु क्या है ? २–विष्णुके भक्त वैष्णवोंको परम उत्तम जप करनेयोग्य मन्त्र कौनसा है ? ३–उन वैष्णवोंको अपने हृदयमें करने योग्य प्रिय ध्यान क्या है ? ४–मोक्षका साधन क्या है ? ५–अनेक प्रकारके धर्मोंमें मुख्य और अतिशय करके वडा धर्म कौनसा है ? ६–हे गुरुवर ! वे वैष्णव कितने प्रकारके हैं? ७–उन वैष्णवोंका लक्षण क्या है? ८–वैष्णवोंको निवास कैसे देशोंमें करना चाहिये ? ९–वैष्णवोंको कालक्षेप किस प्रकारसे करना चाहिये? १०–वैष्णवोंको मोक्षका देनेवाला मोक्षपद कौनसा है? ॥२७॥

मूलप्रकृतिनिरूपण ।

प्रश्नानामेकमाद्यं त्रिकमपि शृणु तद्भेदतो नामभेदैः
नित्याज्ञा चेतना सा प्रकृतिरविकृतिर्विश्वयोनिः शुभैका ॥
नानावर्णात्मका या त्रिगुणसुनिलयाऽव्यक्तशब्दाभिधेया
निर्व्यापारा परार्था महदहमितिसूरुच्यते तत्त्वविद्भिः॥२८॥

---

१ कैसे श्रीरामानंदस्वामी हैं कि श्रीवैष्णधर्मको दशों दिशामें स्थापन करके परमतके अभिमानियोंको जीत लिये और सर्व पंडितोंके धुरंधर तथा सकल वेद शास्त्रोंके पारगामी ऐसे श्रीरामानन्द महाराजको दुराचारी लोक कहते हैं कि, रामानन्दजीने अवधूतमार्ग चलाया है. ऐसा उन निर्लज्जोंका कहना अज्ञानसे भरा हुआ है । क्योंकि वैष्णवधर्मके सिद्धान्तको जाननेवालेसे ऐसा काम बने नहीं ।

अर्थ–हे शिष्य ! तैंने पूछे हुए तत्त्वादि दश प्रश्नोंमें प्रथम तत्त्वको श्रवण कर। तत्त्व–अचेतन चेतन और ईश्वर भेदसे तत्त्ववेत्ताओंने तीन प्रकार कहा है।उन तीन तत्वोंमेंसे प्रथम अचेतनतत्त्वकेही मूलप्रकृति, प्रधान, अव्यक्त और माया इत्यादिक नाम हैं, वह मूलप्रकृति कैसी है कि, चेतनासे रहित, जडरूप ज्ञानसे रहित, विनाश और जन्मसे रहित करके 'अजामेकाम्' इस श्रुतिसे सिद्ध होता है। और वह मूलप्रकृति विकार[1]से रहित अर्थात् स्थावर जंगमरूप जगतकी (कारण) है। तथा एका शोभायमान है और शुक्ल, कृष्ण, लोहित आदिक अनेक वर्णवाली है। यहां इस श्रुति प्रमाण है कि–

"अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः जनयंतीं स्वरूपाः। अजो ह्येको जुषमाणोनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोन्यः" ॥

अर्थ–प्रकृति कैसी हैं कि, अजा एक है तथा रक्त, शुक्ल और कृष्ण रूपवाली है, और अपने समान बहुतसी प्रजाको उत्पन्न करती हुईको अज जो जीव है सो उस प्रकृतिका भोग करता हुआ प्रकृतिके वश होता है, और दूसरा जो अज ईश्वर है सो उस प्रकृतिका भोग करके उसका त्याग करता है. इस श्रुतिमें तीन अज शब्द हैं, तिनमें प्रथम अजा शब्द प्रकृतिका वाचक है. दूसरा अज शब्द जीवका वाचक है. और तीसरा अज शब्द ईश्वरका वाचक है। इस रीतिसे प्रकृति जीव और ईश्वर ये तीनों अज जन्मसे रहित अनादि हैं इति॥ फिर प्रकृति कैसी है कि, सत्व, रज और तम ये तीन गुण जिसमें अत्यंत लीन, अव्यक्त प्रधान आदिक शब्दों करके कहने योग्य, शब्दोंका वाच्य अस्वतंत्रता करके जड होनेसे रथादिकोंके सदृश व्यापारसे रहित, परके (परमेश्वरके) भगवतके आधीन,महत्तत्व अहंकार आदिकोंको उत्पन्न करनेवाली है। इस मूल पदमें जो इतिशब्द है सो "इति हेतुप्रकरणप्रकारादिसमाप्तिषु" इति कोशसे आदिशब्दका वाचक है। हे शिष्य ! ऐसी मूल प्रकृति, मैंने तेरे प्रति कही, सो उसका स्वरूप, अचेतन १ अज्ञा २ नित्या ३ अजा ४ अविकृति ५ विश्वयोनि ६ शुभा ७ एका ८ नानावर्णात्मका ९

१ महतत्त्व, अहंकार, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, ये सात प्रकृतिके विकृति (विकार) हैं।

त्रिगुणसुनिलया १० अव्यक्तशब्दाभिधेया ११ निर्व्यापारा १२ परार्था १३ महदहमितिसू: १४ इत्यादि चतुर्दशविशेषणों करके सर्व वैष्णवोंको निश्चय करने योग्य है इति॥हे शिष्य ! फिर इसही मूलप्रकृतिके स्वरूपको श्रीमद्भागवतके छवीसवां अध्यायमें देवहूति माताके प्रति कपिल भगवाननेभी निरूपण किया है कि–

यत्तत्त्रिगुणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ।
प्रधानं प्रकृतिं प्राहुरविशेषं विशेषवत् ॥ २९ ॥

अर्थ–जो प्रधान है ? उसको प्रकृति कहते हैं । सो प्रधान कौनसा है कि, अविशेष आप विशेष करिके रहित है. और विशेषवत् है अर्थात् विशेष जिसमें रहे होंय उसका नाम विशेषवत् है, समस्त विशेषोंका आश्रयरूप है । शंका–तो क्या ब्रह्मको प्रधान कहते हो ? उत्तर–ब्रह्म तो सत्व रज और तम इन तीन गुणोंसे रहित है. और प्रधान तो सत्व आदिक तीन गुणोंवाला है । शंका–तीन गुणवाले तो महत्तत्त्वादिक हैं तो क्या महत्तत्त्वादिकको प्रधान कहना चाहिये ? उत्तर–महत्तत्त्वादिक तो कार्य हैं और प्रधान तो अव्यक्त है अर्थात् अकार्य है किसीकाभी कार्य नहीं है । शंका–अकार्य तो कालादिक हैं तो क्या कालादिक प्रधान है ? उत्तर–कालादि तो कारणरूप हैं और प्रधान तो सदसदात्मक हैं । अर्थात् कार्यकारणरूप हैं. और नित्य हैं इति । शंका–शास्त्रमें चौवीस तत्त्व अथवा पचीस तत्त्व सुननेमें आते हैं, और आप तो तीन तत्त्व कहते हो, सो कैसे समझना चाहिये? उत्तर–पृथ्वी १ अप २ तेज ३ वायु ४ आकाश ५ गन्ध ६ स्पर्श ७ रूप ८ रस ९ शब्द १० श्रोत्र ११ त्वचा १२ चक्षु १३ रसना १४ नासिका १५ वाक् २६ पाणि १७ पाद १८ मेढ्र १९ पायु २० मन २१ बुद्धि २२ अहंकार २३ और चित्त २४ ये चौवीस तत्त्व जो हैं वे प्रकृतिसे उत्पन्न होते हैं, और प्रकृतिमेंही लीन होते हैं । इससे इनकी प्रकृतिसे भिन्न गणना नहीं की है. क्योंकि प्रकृतितत्त्वके निरूपण करनेसे इन चौवीस तत्त्वोंकाभी ग्रहण हो चुका । शिष्य ! यह जो मैंने प्रकृतिका स्वरूप निरूपण किया है सो विशिष्टाद्वैतमतके सिद्धांतकी रीतिसे किया है ॥ इति मूलप्रकृतिस्वरूपनिरूपणम् ॥

जीवस्वरूपनिरूपण ।

नित्योऽज्ञश्चेतनोऽजः सततपरवशः सूक्ष्मतोऽत्यन्तसूक्ष्मो

भिन्नो बद्धादिभेदैः प्रतिकुणपमसौ नैकधा सूरिवर्यैः ॥
श्रीशाक्रान्तालयस्थो निजकृतिफलभुक् तत्सहायोभिमानी
जीवः संप्रोच्यते श्रीहरिपदसुमते तत्त्वजिज्ञासुवेद्यः ॥ ३० ॥

अर्थ–हे श्रीहरिके चरणकमलमें सुंदर बुद्धिवाले हे शिष्य ! पंडितोंमें श्रेष्ठ-पुरुषोंने ऐसे विशेषणों करके जीवका स्वरूप कहा है कि, जीव जो है सो नित्य है । कैसा नित्य है कि,सर्वकालमें एकरूप है सनातन है आदि मध्य और निधनसे रहित अर्थात् सर्वज्ञ जो भगवान् हैं उनकी अपेक्षा अल्पज्ञ है । और जो मूलपद अज्ञके स्थानमें ज्ञ ऐसा पदच्छेद करिये तो "जानातीति ज्ञः अजडः नतु प्रधानवज्जडः " और यह जीव अज्ञानी है ऐसा श्रुतिमेंभी लिखा है कि, " ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशौ" अर्थात् ज्ञानी ईश्वर और अज्ञानी जीव ये दोनों अज–जन्मसे रहित हैं, उनमें एक ईश (समर्थ) है दूसरा अनीश (अस-मर्थ)है इस प्रकारसे श्रुतिमें जीव और ईश्वर दोनों पृथक् पृथक् कहे हैं । और (चेतन) अर्थात् चौराशी लक्ष योनियोंके अनेक शरीरोंमें अनुभव किये हुए सुख दुःखोंकी स्मृतिवाला है । " चिती संज्ञाने " इस धातुसे चेतन शब्द हुआ है । (अज) अर्थात् जन्म मरणरूप विकारसे रहित, (सततपरवशः) अर्थात् निरन्तर परमात्माके आधीन है. स्वतन्त्र नहीं है । तथा (सूक्ष्मतोत्यं-तसूक्ष्मः)अर्थात् सूक्ष्म जो अणु परमाणु आदिक पदार्थ हैं उनसे जीव अत्यन्त सूक्ष्म है । ॥ ३० ॥ और ऐसाही जीवका स्वरूप शास्त्रांतरमें भी कहा है कि–

वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥ ३१ ॥

अर्थ–बालकी अणीको चीरके सौ भाग करे, उस सौ भाग करके कल्पित भागका एक भाग जितना अंत्यन्त सूक्ष्म जीव है, सो जीव मुमुक्षु पुरुषों करके जानने योग्य है और वह जीव अनन्त है और श्रुतिमें भी जीवको अणुत्व कहा है कि, "एषोणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः" अर्थात् यह जीवात्मा अणुरूप अत्यंत सूक्ष्म है, सो चित्त करके जानन योग्य है इति । यह जीवात्मा बद्ध मुक्त मुमुक्षुआदिक भेदों करके अनेक प्रकार प्रतिशरीर भिन्न भिन्न, श्रीके ईश परमात्माने अंतर्यामिरूप करके आक्रमण किया हुआ जो आलय (शरीर) है उस शरीरमें रहनेवाला और अपने कियेहुए शुभाशुभ अनेक प्रकारके कर्मोंका फलको भोगनेवाला है । जीवात्माके भोक्तृत्वमें यह श्रुति प्रमाण है कि–

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥"

अर्थ–ईश्वर और जीव दोनों,अर्थात् ज्ञान नामकी उत्तम पंखोंवाले दो पक्षी व्याप्य व्यापक भावसे संग रहनेवाले, समान प्रीतिवाले, परस्पर मित्रता युक्त, तथा एक वृक्षको आश्रय करके रहते हैं। उनदोनोंमें एक (जीव)वृक्षके फलको अच्छे प्रकारसे भोगता है । दूसरा (परमात्मा) कर्मोंके फलोंको न भोगता हुआ चारों ओर भीतर बाहिर सर्वत्र प्रकाश करता है ॥

भावार्थ–यह है कि, इस शरीररूपी वृक्षमें पक्षीयोंके सदृश जीव और ईश्वर दोनों रहते हैं, परंतु पुण्यपाप कर्मोंके सुख दुःखरूप फलोंका यह जीवही भोग करता है ईश्वर नहीं करते हैं।क्योंकि, ईश्वरको कर्मफल देनेवाला कोई दूसरा ईश्वर है नहीं. और जीवोंको तो कर्मफल देनेवाला ईश्वर है. इसलिये जीवोंकोही कर्मफल भोगना पडता है ईश्वरको नहीं इति ॥

और यह जीव अज्ञानी असमर्थ तथा पराधीन है. ऐसा महाभारतमेंभी लिखा है कि–

अज्ञो जन्तुरनीशोयमात्मनः सुखदुःखयोः ।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं नरकमेव च॥ ३२ ॥

अर्थ–अपने सुख दुःखको जाननेमें असमर्थ यह जीव ईश्वरसे प्रेरा हुआ स्वर्ग अथवा नरकको जाता है ॥३२॥ इसलिये यह जीव कर्मोंके करनेमें और भोगनेमें अस्वतंत्र, ईश्वरकेही आधीन, सो परमात्माको उपकारक सखा माननेवाला, कर्त्ता भोक्तापनेका अहंभाववाला और तत्त्वोंको जाननेकी इच्छा वालेको तत्त्व रूप करके जानने योग्य है इति ॥ फिर गीतामेंभी कहा है कि, इस जीवको पृथ्वीके विकाररूप शस्त्र छेदन नहीं करते, अग्नि नहीं जलाती है, जल नहीं गलाता, पवनभी शोषण नहीं करता है । यह जीव कोई कालमेंभी जन्मता नहीं है और मरताभी नहीं है किंतु यह आत्मा अज है नित्य है शाश्वत है और पुराण है इति॥ हे शिष्य ! इस प्रकार जीव चेतन और नित्य, अज्ञ, अज, शाश्वत, पुराण, सततपरवश, सूक्ष्म, अनंत प्रतिशरीर भिन्न, तत्सहाय, अभिमानी, अणुत्वपारतंत्र्यादिविशिष्ट और अनेक प्रकारके स्वकर्मफलोंका अवश्य भोक्ता ऐसा जीवात्मा चेतन तत्त्व है सो अनादि है. ऐसा जीवका स्वरूप मुमुक्षुपुरुषों करके अत्यंत जानने योग्य है ॥

औरभी कहा कि, "प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्धयनादी उभावपि" हे अर्जुन! प्रकृति और पुरुष (जीव) इन दोनोंको तू अनादि जान । इस भगवतके वचनसे जीव और माया अनादि सिद्ध होते हैं. सो ये दोनों ब्रह्मका शरीररूप हैं और ब्रह्म शरीरी है ऐसा विशिष्टाद्वैतवादियोंका निर्दोष सिद्धांत है ॥ इति जीवस्वरूपम् ॥

हे शिष्य ! अब पूर्वोक्त चेतन अचेतन इन दोनों तत्त्वोंका नियम करके धारक नियंता और शेषिपनेके योगसे सर्व शरीरी तथा सर्व कार्योंके कारणरूप तथा अखिलहेयगुणोंके विरोधीपने करके सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान् आदिक सकल कल्याण गुणगणोंके आस्पद एवं सर्वसे विलक्षण तथा सर्व शास्त्रीयकर्मों करके आराध्य, सकल फलोंके प्रदाता मुमुक्षुओंके आश्रयरूप, मुक्तोंके प्राप्यरूप, अखिल वेदांत वेद्य और पुरुषोत्तम ऐसे श्रीसीतापति ईश्वरको निरूपण करते हैं॥

ईश्वरस्वरूपनिरूपण ।

विश्वं जातं यतोऽद्धा यदवितमखिलं लीनमन्तेऽस्ति यस्मिन्
सूर्यो यत्तेजसेन्दुः सकलमविरतं भासयत्येतदेषः ।
यद्भीत्या वाति वातोऽवनिरपि सुतलं याति नैवेश्वरो ज्ञः
साक्षी कूटस्थ एको बहुशुभगुणवानव्ययो विश्वभर्ता ॥ ३३॥

अर्थ–हे शिष्य ! यह स्थावर जंगमरूप संपूर्ण जगत् जिससे उत्पन्न हुआ है तथा जो रक्षण करता है और अंतमें जिसमें लीन होता है सोही ईश्वर वेदमें प्रतिपादन किया है । इस जगत्का कर्त्ता हर्त्ता और पालक ईश्वर है. इसमें यह श्रुतिभी प्रमाण है कि–

" यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व । तद्ब्रह्मेति " ॥

अर्थ–वरुणसे भृगुने पूछा कि, ब्रह्मका क्या लक्षण है ? तब वरुण बोले कि, हे भृगु ! जिससे ब्रह्मादि स्तंब पर्यंत ये सर्व प्राणी उत्पन्न होते हैं और जिस करके प्राणोंको धारण करते हैं वा वृद्धिको प्राप्त होते हैं और नाशकालमें

जिसके प्रति जाते हुए प्रवेश करते हैं, उस ब्रह्मको तू विशेष करके जाननेकी इच्छा कर इति ॥ फिर महाभारतमें भी कहा है कि–

"यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे ।
यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये ॥ ३४ ॥

अर्थ–आदि युगके आरंभमें स्थावर जंगमरूप ये सर्वभूत जिससे उत्पन्न होते हैं, और युगके नाशकालमें जिसमें लयको निश्चय करके प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥ जिसके तेज करके चंद्रमा और सूर्यभी इस सकल विश्वको निरन्तर प्रकाशते हैं, उस प्रकारसे श्रुतिभी कहती है कि–

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोयमग्निः । तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ "

अर्थ–उस परमात्मामें सूर्य चंद्र और तारा तथा विजुलीभी प्रकाश नहीं करती है. तो यह अल्प प्रकाशवाला अग्नि तो कहांसे प्रकाश करैगा ? उस परमात्माके प्रकाशसेही यह सब जगत् प्रकाशमान होता है । परमात्माकी दीप्ति करकेही यह सर्व जगत प्रतीत होता है । जैसे सूर्यरूप ज्योति करके भी समान घटादि पदार्थ स्वभासक सूर्यको प्रकाश कर नहीं सकते वैसे सूर्यादिक ज्योतिभी स्वभासक परमात्माको प्रकाश कर नहीं सकते ॥ इति ।

गीतामेंभी कहा है कि–

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ ३५ ॥

अर्थ–हे अर्जुन ! आदित्य और चंद्रमा तथा अग्निमें स्थित जो परके प्रकाश करनेमें समर्थ श्वेत भास्वररूप तेज और जो तेज रूपवान् सर्व वस्तुरूप जगतको प्रकाश करता है सो तेज मैं परमेश्वरकाही तू जान ॥ ३५ ॥ जिस परमात्माके भय करके जगतका परमआयुरूप पवन देव, तिर्यच, नर आदिकोंमें संचार करता है. और पृथ्वीभी जिनके भय करके डूब नहीं जाती, एवं जिस प्रकारसे पवन आदिक पंच देव अपने अपने अधिकारमें जिस परमात्माने लगाये हुए चकित होकर परमात्माकी आज्ञाको निरन्तर शिर करके वहन करते हैं, सोही सबका ईश्वर है । सो श्रुतिमेंभी कहा है कि–

" भीषास्माद्वातः पवते । भीषोदेति सूर्यः ।
भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च । मृत्युर्धावति पंचम इति ॥३६॥

अर्थ–इस ईश्वरके भयकरके वायु चलता है,सूर्य उदय होता है, अग्नि जलाती है, इंद्र वृष्ट्यादिक करके पालन करता है और मृत्यु अपने वशको प्राप्त हुए सर्व प्राणियोंको लेता हुआ दौडता है॥३६॥ यद्यपि वायु आदि पंचदेवोंका इस श्रुतिमें ग्रहण किया है, तथापि तदादिन्याय करके ब्रह्मादिदेवोंकाभी ग्रहण जानने योग्य है, क्योंकि ब्रह्मा शिव आदिक सकल देव ईश्वरका हुकम उठानेवाले हैं, इसलिये यह श्रुति सर्वेश्वरत्वको कथन करती है इति ॥

फिर ईश्वर कैसे हैं कि, ज्ञः अर्थात् सर्वज्ञ हैं । तहां यह श्रुति प्रमाण है कि–

" यः सर्वज्ञः सर्ववित् । यस्य ज्ञानमयं तपः । सर्वस्य
वशी सर्वस्येशानः । यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या
अंतरः । यस्य पृथिवी शरीरं यं पृथिवी नवेद यः
पृथिवीमन्तरो यमयति एष ते आत्मांतर्याम्यमृतः ॥

अर्थ–जो सामान्य करके सबको जानता है उसको सर्वज्ञ और विशेष करके सबको जानता है उसको सर्ववित् कहाजाताहै, इस करके ईश्वरका सर्वज्ञत्व सिद्ध हुआ और जिसका ज्ञानमय तप अर्थात् ज्ञान विकारही सर्वज्ञतारूप अनायासरूप जिसका तप है । और ब्रह्मा शिव इंद्र आदिक सबोंको वशमें रखनेवाले हैं, तात्पर्य यह कि, सर्व इसके वशमें वर्तते हैं इति ॥

ऐसेही अन्यश्रुतिमेंभी कहा है कि–

" एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्र-
मसौ विधृतौ तिष्ठतः ॥ "

अर्थ–याज्ञवल्क्य कहते हैं कि, हे गार्गि ! इस अक्षर परमात्माके आज्ञा-रूपी प्रशासनमें धेरे हुए सूर्य और चंद्रमा रहते हैं इति ॥

तथा महाभारतमेंभी कहा है कि–

" ससुरासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ।
जगद्वशे वर्ततेदं कृष्णस्य सचराचरम् ॥ ३७ ॥"

अर्थ–सुर, असुर, गंधर्वों, यक्ष, उरग और राक्षसों सहित चर और अचर रूप यह सर्व जगत् कृष्णके वशमें रहता है इति ॥ ३७ ॥

इस कथनसे सर्व शक्तिमान् ईश्वर है और ईश्वर केवल सर्वशक्तिवालाही नहीं है किंतु सर्वस्य ईशान है अर्थात् सर्वका ईश्वर भी है. ऐसा कहनेसे सर्वेश्वर ईश्वर है, ऐसा सिद्ध हुआ। जो ईश्वर पृथिवीमें रहता हुआ पृथिवीसे अभ्यंतर है, पृथिवी जिसका शरीर है और पृथिवी जिसको नहीं जानती है, जो ईश्वर पृथिवीके भीतर रहकर पृथिवीको नियममें रखता है सो ईश्वर अंतर्यामी अमृतरूप तेरा आत्मा है॥ इत्यादिक श्रुतियों करके सर्व नियन्ता, सर्वोपास्य, सर्वकर्मफलदाता ईश्वर सिद्ध हुआ। इस प्रकारसे सर्वज्ञ, सर्वशक्ति, सर्वेश्वर, सर्वनियंता, सर्वोपास्य, सर्वकर्मफलप्रदाता, समस्तकल्याणगुणनिलय ऐसे परमात्माको श्रुति स्मृतियां प्रतिपादन करती हैं इति ॥ फिर ईश्वर कैसा है कि (साक्षी) अर्थात् स्वकर्म फल भोक्ता जो जीव है उस जीवके कर्मोंका (द्रष्टा) साक्षात् देखनेवाला है तथा (कूटस्थः) जो अपनेसे इतर सर्वलोकोंका संहार करके कूट(लोहके घन) की तरह विकारसे रहित रहता है उसका नाम कूटस्थ है। और (एकः) अद्वितीय है, मुख्य है, सहायतासे रहित है. और आप सर्वका सहायरूप है। (बहुशुभगुणवान्) अर्थात् बहुत अनंत शुभगुण (कल्याणगुण–कृतित्व, कृतज्ञत्व, निभृतत्व, संभृताकारत्व, अमोघक्रोधहर्षत्व, स्थिरप्रज्ञत्व, धर्मज्ञत्व, सत्यसंधत्व, प्रियसत्यवादित्व, शरणागतवत्सलत्व, दृढव्रतत्व, मृदुत्व, सौलभ्यत्व) इत्यादिक इस परमात्माके अनंत गुण हैं। इसवास्ते परमात्मा बहु शुभगुणवान् है। फिर (अव्ययः) अविनाशी है और (विश्वभर्ता) सर्वजगत्का रक्षक और पोषक है॥

हे शिष्य ! परमात्माके औरभी बहुत गुण हैं, उन गुणोंकोभी तूं श्रवण कर,

श्रीमानर्च्यः शरण्यो विधिभवप्रमुखैर्योगिगम्यांघ्रिपद्मो-
ऽस्पृश्यः क्लेशादिभिः सत्समुदितसुयशाः सूरिमान्यो वदान्यः।
शश्वन्नारायणोऽजः सुमहितमहिमा साधुवेदैरशेषैः
निर्मृत्युः सर्वशक्तिर्विकलुषविजरो गीर्मनोभ्यामगम्यः ॥ ३८॥

अर्थ–फिर श्रीराम परमात्मा कैसे हैं कि, (श्रीमान्) "अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा" जैसे सूर्यकी प्रभा सूर्यसे भिन्न नहीं है वैसे मैं सीता राघवसे अलग नहीं हूं. ऐसे सीताजीने कहा है। इस रीतिसे श्रीरूप सीता इस

रामपरमात्माके नित्य अनपायिनी होनेसे रामचंद्रजी श्रीमान् हैं (अर्च्यः) ब्रह्मा शिव, इंद्र आदिक सकल देवोंकरके आराधन करने योग्य हैं। (शरण्यः) शरण (रक्षण) करनेमें साधु (अच्छे) हैं । (योगिगम्यांध्रिपद्मः) शिव सनकादिक योगियोंको प्राप्त होने योग्य चरणकमलवाले हैं, और क्लेशादिकों करके अस्पृश्य (स्पर्श करनेको अशक्य) हैं । सो पतंजलिभगवानने अपने योगशास्त्रके सूत्रोंमें लिखा है कि–

"क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥"

अर्थ–क्लेश, कर्म, विपाक और आशय इन चारों करके भूत भविष्यत् और वर्तमान इन तीनों कालमें असंबद्ध जो पुरुष विशेष है, उसका नाम ईश्वर है ॥

प्रश्न–क्लेश किसको कहते हैं ?

उत्तर–पतंजलि भगवानने अपने सूत्रमें पंच क्लेश लिखे हैं कि–

"अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पंच क्लेशाः ॥"

अर्थ–अविद्या १ आस्मिता २ राग ३ द्वेष ४ अभिनिवेश ५ ये पंच क्लेश हैं।

प्रश्न–अविद्यादिका स्वरूप कैसा है ?

अविद्या ।

उत्तर–"अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥"

अर्थ–अनित्य, अशुचि, दुःख, अनात्म इन चारोंमें, नित्य, शुचि, सुख, आत्मा, ऐसी बुद्धि जो करनी है उसका नाम अविद्या है । वहां अनित्यमें नित्य बुद्धि करनी, यह प्रथम अविद्या है । जैसे अनित्य पंचभूतोंका कार्य शरीरादिकोंमें यह पदार्थ नित्य हैं, ऐसी बुद्धि करना १ । अशुचि स्त्री आदि शरीरमें शुचि बुद्धि करनी, यह दूसरी अविद्या है २। दुःखरूप विषयभोगोंमें सुखबुद्धि करनी; तीसरी अविद्या है ३। अनात्मवस्तुमें आत्मबुद्धि करनी, जैसे अनात्मरूप इस स्थूल शरीरमें मैं मनुष्य हूं. मैं ब्राह्मण हूं, ऐसी जो बुद्धि करनी सो चौथी अविद्या है ऐसी चार प्रकारकी अविद्याही अस्मितादिक चार क्लेशोंका मूल रूप है, इस अविद्याको शास्त्रमें तमभी कहते हैं १ ॥

---

१ स्थानाद्बीजादुपष्टंभान्निष्यंदान्निधनादपि ।
कायमाधेयशौचत्वात्पंडिता ह्यशुचिं विदुः ॥

अस्मिता।

"दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतैवास्मिता ॥"

अर्थ–दृक् शक्ति जो पुरुष है, तथा दर्शन शक्ति जो बुद्धि है, वे दोनों भोक्ता भोग्य रूप करके अत्यंत भिन्न हैं, उन पुरुष और बुद्धि, दोनोंका जो अविद्याकृत अभेद अभिमान है, उसका नाम अस्मिता है। इसहीको ब्रह्मवेत्ता हृदयग्रंथीभी कहते हैं और इस अस्मिताको शास्त्रमें मोहभी कहते हैं २ ॥

राग।

"सुखानुशयी रागः।"

अर्थ–जो सुखकी प्राप्तिके जे साधन हैं उन साधनोंसे रहित पुरुषका जो हमारेको सर्वप्रकारसे सुख प्राप्त होवैं, ऐसा विपर्यय विशेष है उसका नाम राग है। इस रागकोही शास्त्रमें महामोहभी कहते हैं ३ ॥

द्वेष।

"दुःखानुशयी द्वेषः ॥"

अर्थ–दुःखके साधन विद्यमान हुए भी हमारेको कोई प्रकारका दुःख नहीं प्राप्त होवे, ऐसा जो विपर्यय विशेष है, उसका नाम द्वेष है। इस द्वेषको शास्त्रमें तामिस्र नामसे भी कहाहै ४ ॥

अभिनिवेश।

"स्वरसवाही विदुषोपि तथारूढोऽभिनिवेशः" ॥

अर्थ–जीवनका हेतु जो आयुष है उसका अभाव हुये भी इन अनित्य देहेंद्रियादिकोंके साथ हमारा कदाचित् भी वियोग नहीं होवे, इस प्रकारका विद्वान् अविद्वान् सर्वप्राणियोंमें साधारण मरणका जो त्रासरूप विपर्यय ह, उसका नाम अभिनिवेश है। इसको शास्त्रमें अंधतामिस्र नाम करके कहा है ५ इति ॥

इस प्रकारसे अविद्यादि पंच क्लेशोंसे रहित श्रीराम परमात्मा हैं ॥ तथा विहित प्रतिसिद्ध क्रियासे जन्म जो धर्म अधर्म है उसका नाम कर्म है और उस धर्म अधर्मका जो फल है, उसका नाम विपाक है। और उस फल भोगके अनुकूल जो संस्कार है, उसका नाम आशय है। जैसे इस पुरुषको जब पापकर्मके वशसे उष्ट्रका जन्म होता है, तब वहां कंटक भक्षण करनेके संस्कार उदय होता है। इस प्रकारसे यह जीव जिस जिस जातिवाले शरीरको पाता है,

उस उस जातिवाले शरीरके भोगोंमें प्रवर्त्तता है, सो पूर्वके संस्कारोंके वशसे हीं प्रवृत्ति होती है, उन संस्कारोंके उद्भव विना उस शरीरका जीवनभी नहीं होता ऐसे चित्तमें रहे हुए क्लेशादिकोंकरके यह संसारी जीवही सम्बन्ध होते हैं, वे क्लेशादिक तीनों कालमें जिसमें है नहीं ऐसा पुरुषविशेष ईश्वर कहा जाता है ॥ इहां सूत्रमें जो विशेषशब्द है, सो तीनों कालमें असम्बद्ध रूप अर्थका वाचक है । ऐसे विशेषपद करके उस ईश्वरमें मुक्तपुरुषोंसे भी व्यावृत्ति कथन की है । उन मुक्तपुरुषोंमें यद्यपि उस कालमें क्लेशादिरूप बन्ध नहीं है तथापि तत्व साक्षात्कारसे पूर्वकालमें सो बन्ध विद्यमान था । इसलिये तीनों कालमें उन क्लेशादिकोंके सम्बन्धका अभाव उन मुक्त पुरुषोंमें सम्भवता नहीं है किंन्तु " यः सर्वज्ञः सर्ववित् " इत्यादिक श्रुतियां करके प्रतिपादित जो सर्वज्ञ ईश्वर है उस ईश्वर विषयमेंही संभव है इति॥हे शिष्य फिर ईश्वर कैसे हैं कि सबमें निरतिशय ज्ञानवाले और सबके गुरु हैं, ऐसा पातंजलिने दो सूत्रोंकरने कहा है कि–

" तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ॥ १ ॥

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ २ ॥ "

अर्थ–अब उस ईश्वरकी सर्वज्ञतामें अनुमान प्रमाणका कथन करते हैं। तहां अस्मदादिक जीवोंका जो ज्ञान है सो ज्ञान सातिशय होनेसे निरतिशय ज्ञान करके व्याप्त है । जो पदार्थ सातिशय होता है वह पदार्थ अपने समानजातीय निरतिशयपदार्थ करके व्याप्तही होता है । जैसे–घटका परिमाण सातिशय है. परिमाणत्वरूपसे अपने समानजातीय विभुपरिमाण करके व्याप्त है ऐसा निरतिशय ज्ञान केवल ईश्वरमें ही रहता है,दूसरे किसीमेंभी रहता नहीं। और वह निरतिशय ज्ञानही सर्वज्ञताका जनानेवाला है अर्थात् जहां निरतिशय ज्ञान होता है तहां सर्वज्ञता जानी जाती है इस लिये निरतितशयज्ञानवाला होनेसे ईश्वर सर्वज्ञ है इति॥

अब उस ईश्वरमें ब्रह्मादि सर्व देवोंसे विशेषता कहते हैं कि, सृष्टिके आदि कालमें उत्पन्न हुए जो ब्रह्मादिक देवता हैं वे सब कालपरिच्छेदवाले हैं, उन देवताओंकेभी ईश्वर गुरुरूप हैं। क्योंकि ईश्वर काल करके अपरिच्छिन्न अर्थात् आदि अन्तसे रहित है इति ।

प्रश्न–ईश्वर सर्वका आदि गुरु है. ऐसा कहीं वेदमें कहा है ?

उत्तर–हां ! वेदमें कहा है कि–

"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै"॥

अर्थ–जो ईश्वर सर्गके आदिमें ब्रह्माको उत्पन्न कर उस ब्रह्माकेप्रति वेदोंको पढाये इति ॥

फिर कैसे हैं परमात्मा कि (सत्समुदितयशाः) अर्थात् वाल्मीकी आदिक सन्तोंसे सम्यक् प्रकार वर्णन की हुई जो समुद्र बंधनादि रावणादिकोंके निग्रहरूप सुन्दरयशवाला है। (सूरिमान्यः), अनन्त गरुड हनुमत् आदिक सूरियों करके पूज्य हैं। (वदान्यः) धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन पदार्थोंके दाता (नारायणः) नारायण शब्दवाच्य हैं, सो मनुस्मृतिके आरम्भमें मनुजीने कहा है कि–

" आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥३९॥"

अर्थ–आप नाम जलका है, सो जल नर (परमात्मा) से उत्पन्न हुआ है. इससे जल 'नारा' इस नाम करके कहाजाताहै, सो आप (जल) पूर्वकालमें परमात्माका अयन (स्थान) हुआ. इस कारणसे परमात्मा नारायण कहाजते हैं॥

प्रश्न–नर नाम परमात्माका कौन शास्त्रमें कहा है ?

उत्तर–व्यासस्मृतिमें कहा है कि–

" नरतीति नरः प्रोक्तः परमात्मा सनातनः ॥ "
नरति व्याप्नोतीति नरः ।

अपनी सत्ता स्फूर्ति करक सर्व पदार्थोंको जो व्याप्त करे, सो नर कहलाता है. सो नर सनातन परमात्मा है इति ॥ तथा "जन्हुर्नारायणो नरः " जन्हु, नारायण, नर इस प्रकारसे विष्णुसहस्रनामोंमेंभी नरशब्द नारायणकाही वाचक कहा है । इति ॥

हे शिष्य ! ऐसा नारायणशब्दका जो अर्थ है वह नारायणशब्द श्रीरामका वाचक है. ऐसा वाल्मीकी रामायणमें लिखा है कि–

" भवान्नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधो विभुः ।
अक्षरं ब्रह्म सत्यं त्वं त्वं मध्येऽन्ते च राघव ॥४०॥"

अर्थ–श्रीरामचंद्रजीको ब्रह्मा कहते हैं–हे राघव ! आप नारायण देव हो, तथा श्रीमान् हो, अर्थात् लक्ष्मीरूप सीता आपकी पत्नी है, आप चक्रके आयुधवाले हो, आप विभु अर्थात् करने अकरने अन्यथा करनेमें समर्थ हो तुम अक्षर अर्थात् नाशसे रहित परब्रह्म हो इस जगत्के अंत और मध्यमें एक तुमही सत्य हो. ऐसे नारायणरूप श्रीराम है ॥४०॥ इति ॥ फिर श्रीराम कैसे हैं कि–(अजः) जन्मसे रहित अजन्मा, तथा अच्छी तरहसे सर्व वेदोंसे गान किया हुआ सुंदर महिमावाला(निर्मृत्युः) मरणसे रहित सबमें सब प्रकारकी शक्ति रखनेवाला, एवं पाप और जरासे रहित और विधि भव आदिकोंको भी मन वाणी करके पानेको अशक्य है । उक्त प्रकार श्रुतिमेंभी कहा है कि–

"अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोविजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः ॥"

"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" इति ॥

अर्थ--परमात्मा; पाप मृत्यु शोक क्षुधा और पिपासा इत्यादिक हेयगुणोंसे रहित और सत्यकाम सत्यसंकल्प आदि कल्याणगुणोंका प्रतिपादन श्रुतिने किया है इति ॥ और इस परमात्मामें इतनेही गुण हैं इस प्रकार ईश्वरके गुणोंका अंतको नहीं पायके वाणी इंद्रिय मन सहित जिस ईश्वरसे निवृत्तिको प्राप्त होती है इति ॥

हे शिष्य ! इस प्रकारसे विश्वकर्ता, विश्वपालक, विश्वहर्ता, सर्व प्रकाशक, सर्वशास्ता, सर्वज्ञ, वशी, अक्षर, सर्वशक्ति, सर्वनियन्ता, सर्वशेषी, सर्वशरीरी, सर्वोपास्य, सर्वकर्मफलप्रदाता, अनंतकल्याणगुणानिलय, साक्षी, कूटस्थ, एक, अव्यय, श्रीमान्, आराध्य, अर्च्य, शरण्य, योगिगम्यांघ्रिपद्म, पंच क्लेशादिरहित, सर्वादिगुरु, विभु, अनाद्यंत, अज, अशेषवेदवेद्य, सत्समुदितसुयशा, सूरिमान्य, वदान्य, सुमहितमहिमा, निर्मृत्यु, विकलुष, विजर, अगम्य, अपहतपाप्मा, विशोक, विजिघत्स, अपिपास, सत्यकाम, सत्यसंकल्प, मनवाणीसे अगम्य, इत्यादि गुणोंके सागर सीतापति जो श्रीराम हैं सोही ईश्वर हैं इति ॥

हे शिष्य ! तूने पूछा कि, तत्त्व क्या वस्तु है, इस प्रथम प्रश्नके उत्तरमें, मैंने तुमको माया जीव और ईश्वर इन तीनों तत्त्वोंका उत्तर दिया। ये तीन तत्त्व कैसे हैं कि, इनके स्वरूप और गुण सर्व अवस्थाओंमें अलग २ हैं । उसमें

जीव तत्त्व अणुपरिमाण है तथा ज्ञान स्वरूप और ईश्वरका शेष है। और प्रकृति जो है सो जड है, सत्व रज और तम तीन इन गुणवाली है और निरंतर विकारका घररूप है, ऐसे जीव और प्रकृति ये दोनों ईश्वरका शरीर हैं, और ईश्वर शरीरी है। हे शिष्य! ईश्वरमें दो धर्म हैं। एक तो समस्त हेयगुणोंका विरोधी धर्म और दूसरा अनंत कल्याण गुणोंका विस्तार रूप धर्म है। ऐसे ईश्वर सर्व दोषों करके रहित हैं और सर्व जगतमें व्यापक तथा संपूर्ण जगतका शेषी हैं। हे मुमुक्षो! जो पुरुष जीवतत्त्व, मायातत्त्व, ईश्वरतत्त्व इन तीन तत्त्वोंके ज्ञानमें प्रवीण हो निष्काम कर्म सहित भगवतकी उपासना करता है सोही पुरुष मोक्षको प्राप्त होता है, ऐसा वेदांतका सिद्धांत है। इन तीन तत्त्वोंको जाननेवाला पुरुष ज्ञानी कहा जाता है। और संसार दुःखसे मुक्त होता है। यहां ईश्वर तत्त्व प्राप्य है और जीव तत्त्व प्रापक है. ऐसा जानना॥

हे शिष्य! शास्त्रमें ऐसा कहा है कि, जो पुरुष अर्थपंचकोंके तत्त्वको जानता है सोही वैष्णव कहा जाता है. उन अर्थपंचकोंमें प्रथम ईश्वर तत्त्व है, और दूसरा जीव तत्त्व है, सो इस पांचवें अध्यायमें इन दोनों अर्थोंकाभी निरूपण कर चुके। उनमें तीन अर्थ जो बाकी है सो आगे निरूपण करेंगे। जो ईश्वर और माया ये तीनों तत्त्व अनादि हैं और इन तीन तत्त्वोंका ज्ञानभी बहुत सूक्ष्म है. क्योंकि इस जगतमें सर्व पदार्थोंसे पृथिवी तत्त्व महान् स्थूल है। और पृथिवीसे जलतत्त्व सूक्ष्म है (सूक्ष्म नाम पतलेका है) क्योंकि–पृथिवीमें सर्वप्राणी चलते फिरते हैं और जलमें चलना फिरना नहीं बनता है। इसलिये पृथ्वीतत्त्वसे जल तत्त्व सूक्ष्म है। और जल तत्त्वसेभी अग्नि तत्त्व सूक्ष्म है। क्योंकि–जलके ऊपर तो काष्ठ तृणादिक तैरते हैं. और वे काष्ठादिक अग्निकी ज्वाला ऊपर तैरते नहीं हैं। इससे जलसे अग्नि तत्त्व सूक्ष्म है। अग्निसे वायु तत्त्व सूक्ष्म है. क्योंकि–अग्नि तो दूरसे देखनेमें आता है, और वायु देखनेमें आता नहीं है इसवास्ते अग्नितत्त्वसे वायुतत्त्व सूक्ष्म है। वायुसे अकाशतत्त्व सूक्ष्म है वायुका तो शीत और उष्ण स्पर्शभी होता है परंतु आकाशका तो स्पर्शभी नहीं होता है. इस वायुसे आकाश तत्त्व सूक्ष्म है. और आकाशसे अहंकारतत्त्व सूक्ष्म है आकाश तो नील रूप और कटाह आकार करके देखनेमेंभी आता है, परंतु अहंकार तो देखनेमेंभी नहीं आता है। इससे आकाशसे अहंकार सूक्ष्म है। अहंकारसे महत्तत्त्व सूक्ष्म है, क्योंकि यह पुरुष बडा अहंकारी है, इस रीतिसे अहंकारका स्वरूप जाननेमें आता है, परंतु महत्तत्व

ऐसे नहीं जाना जाता है। और महत्तत्त्वसे मायातत्त्व सूक्ष्म है, क्योंकि महत्तत्त्व मायाका कार्य है, परंतु माया किसीका कार्य नहीं है, मायासे जीव तत्त्व सूक्ष्म है. क्योंकि, यह सब भला बुरा ईश्वरकी मायाका कर्तव्य है इस प्रकार कार्य द्वारा ज्ञानी अज्ञानी सबको मायाकी प्रतीति होती है. परंतु जीवतत्त्वकी प्रतीति तो ज्ञानियोंकोही होती है अज्ञानियोंको नहीं होती। और जीव तत्त्वसे ईश्वर तत्त्व अत्यंत सूक्ष्म है. क्योंकि, यह जो जीव है सो ईश्वरका शरीर है और ईश्वर शरीरी है। जैसे यहां जीव ईश शरीरमें रहताहै सो जीव ईशशरीरसे अत्यंत सूक्ष्म है तैसे ईश्वरभी जीवका अंतर्यामी होकर जीवमें रहता है. इसलिये जीव,ईश्वरका शरीर है और ईश्वर शरीरी (जीवरूपी शरीरमें रहनेवाला) है इसकारण जीवसे ईश्वरतत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म है ॥ हे शिष्य ! जिस पुरुषको जीव, ईश्वर और माया इनके स्वरूपको जाननेकी इच्छा हो उस पुरुषको वेदांतशास्त्रका अभ्यास करना उचित है, सो वेदांत दो प्रकारका है, एक तो आम्नायवेदांत और दूसरा द्राविडवेदान्त है इन दो वेदान्त करकेही जीव ईश्वर और माया इन तीन तत्त्वोंका यथार्थ ज्ञान होता है, दूसरे शास्त्रोंसे नहीं होताहै। हे शिष्य ! सब तत्त्वोंसे ईश्वरतत्त्व अत्यंत सूक्ष्म है। इसमें इस श्रुतिका प्रमाण है कि–

"इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेर्यस्तु महान्परः॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किंचित् सा काष्ठा सा परा गतिः॥"

अर्थ–इंद्रियोंसे पंचविषय, पंच विषयोंसेमन, मनसे बुद्धि, बुद्धिसे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे अव्यक्त, अव्यक्तसे पुरुष पर है। और पुरुषसे पर किंचित् वस्तु मात्रभी नहीं है। वह पुरुषही सर्वका काष्ठा (अवधिरूप) है और वह पुरुषही परम गतिरूप है। हे शिष्य ! गीतामें जो क्षर अक्षरसे अन्य उत्तम पुरुष कहा है, सोही सर्वका सीमारूप और गतिरूप इश्वर है और ईश्वरसे पर कुछभी वस्तु नहीं है, ऐसा वेदका सिद्धांत है॥ इति ईश्वरतत्त्वनिरूपणम्॥

इति श्रीभगवद्रामानुजचरणपंकजचंचरीकेण श्रीमत्पंडितगोपालदासेन विरचिते गुरुशिष्यसंवादे श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकरे तत्त्वत्रयनिरूपणं नाम पंचमोऽध्यायः॥ ५॥

Duplicate

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

श्रीमते रामानुजाय नमः ।

अब (किंच जाप्यं) अर्थात् धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन चार पदार्थोंको देनेवाला और सर्वमंत्रोंमें अतिश्रेष्ठ ऐसा कौनसा मंत्र, जाप करने योग्य है इस प्रकारका जो द्वितीय प्रश्न किया था उस द्वितीय प्रश्नके उत्तरमें परमजाप्य करके श्रीराम महामंत्रका उपदेश करते हैं–

मुमुक्षुओंको जापनेयोग्य मंत्र ।

जाप्यं तत्तारकाख्यं मनुवरमखिलैर्वह्निबीजं तदादौ
रामे ङेप्रत्ययांतो रसमितशुभदस्वक्षरः स्यान्नमोन्तः ।
मंत्रं रामद्वयाख्यं सकृदिति चरमप्रान्वितं गुह्यगुह्यं
भूताक्ष्युत्संख्यवर्णं सुकृतिभिरनिशं मोक्षकामैर्निषेव्यम् ॥ १ ॥

अर्थ–सब मंत्रोंमें अति श्रेष्ठ और तारक नामवाला रामतारक महामंत्र सर्व मुमुक्ष पुरुषोंको दिन दिन प्रति क्षणक्षणमें जप करने योग्य है । वह रामतारक कैसा है कि, जिसके आदिमें अग्निबीज है, उसके पीछे ङे प्रत्यय जिसके अंतमें राम शब्द है, फिर कैसा है कि, नमः अंतमें है, अर्थात् ङे प्रत्ययांत रामशब्दके अंतमें नमःशब्द है तथा षट् संख्या प्रमाण मोक्षके देनेवाले सुंदर अक्षर जिसमें हैं, ऐसा षट् अक्षरोंवाला राममंत्र मुमुक्षुपुरुषोंको जप करनेसे मोक्ष देनेवाला है, और रामद्वयाख्यमंत्र ' सकृत् ' इस चरम मंत्रकरके अत्यंत युक्त गुह्यसेभी गुह्य है, अर्थात् राममंत्र १ रामद्वयाख्य २ और चरममत्र ३ ये तीनों मंत्र अनधिकारी पुरुषोंको दिखानेको योग्य नहीं, फिर रामद्वयाख्य (शरण मंत्र) कैसा है कि, भूत आक्षि उत्कृष्ट संख्या वर्णवाला अर्थात् पचीस उत्तम अक्षरों वाला है, सो मोक्षकी कामनावाले सुकृतिजनोंको निरंतर सेवने योग्य है.

भावार्थ यह है कि, परम जप्यत्वकरके ये तीनों मंत्र दिन दिनमें क्षणक्षण प्रति संसार महासमुद्रसे उतारनेकी इच्छावाले आलसके विना सत्संगमें आदरवाले तथा इंद्रियोंके पांचविषयोंके त्यागनेवाले और दृढमनवाले ऐसे

और मुमुक्षु (मोक्षकी इच्छावाले) पुरुषोंको अवश्य करके जप करने योग्य है इति ॥ १ ॥

प्रश्न–ब्रह्मा, शिव, शक्ति, सूर्य, गणेशादि देवोंके मंत्र बहुत हैं तथा विष्णुके वैष्णव मंत्रभी बहुत हैं, उन सर्व मंत्रोंमें अत्यंत श्रेष्ठ और संसारसमुद्रसे तत्काल तारनेवाला कौनसा मंत्र है ? ॥ उत्तर–

रामंत्रप्रशंसा ।

मंत्राणां व्यापकानां भगवत इह चाव्यापकानां तु मध्येऽ-
तिश्रेष्ठो व्यापकः स श्रुतिमुनिसुमतः शिष्टमुख्यैर्गृहीतः ।
नित्यानामाश्रयोऽयं परित उरुशुभो राममंत्रः प्रधानं
प्राप्यश्च प्रापकोपि प्रचुरतरगुणज्ञानशक्त्यादिकानाम् ॥ २ ॥

अर्थ–शिव शक्ति सूर्य गणेशादि मंत्रोंसे वैष्णव मंत्र श्रेष्ठ हैं, और वैष्णव मंत्रोंसे राम मंत्र श्रेष्ठ है, सो कहते हैं कि, यहां व्यापक और अव्यापक इन दो प्रकारके मंत्रोंके मध्यमें अति श्रेष्ठ और व्यापक ऐसा राममंत्र है, वहां चराचरमें व्यापक रूप भगवत्स्वरूपके प्रतिपादक जो मंत्र हैं, वे व्यापक मंत्र हैं, और भगवतके अवतार गुण चेष्टादिकोंमें एक एकके प्रतिपादक जे मंत्र हैं वे अव्यापक मंत्र हैं, और मूलश्लोकमें 'मंत्राणां' इस बहुवचन करके मंत्रोंका अनेकपना बताया है । क्योंकि, भगवतके गुणोंकी और गुणोंके परिवाहरूप जन्मोंकी संख्या नहीं है,सो गीतामें कहा है कि "बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि" मेरे बहुत जन्म व्यतीत हुए हैं. ऐसा कहनेसे भगवतके गुण और अवतार असंख्य हैं और ऐसे उन उन अवतारोंको प्रकाशक मंत्रभी अनंत हैं । "अनंता वै भगवन्मंत्राः"इस उक्तिसे भगवतके मंत्र अनंत हैं । और "मत्रि गुप्तभाषणे" मत्रि धातु गुप्त भाषण अर्थमें है, इसलिये मंत्र गुप्त रखने योग्य है, फिर (नित्यानां आश्रयः)नित्य जो ज्ञान आनंदादिक पदार्थ हैं उनका आश्रय (आधार) है–जैसे घृतका आधार पात्र है तैसे ज्ञान आनंद, अमलत्वादि, ज्ञान, शक्त्यादि, वात्सल्य सौशील्यादि, दिव्यात्मगुणादि, दिव्यमंगलविग्रह, कांति सौकुमार्यादि दिव्यमंगलविग्रहके गुण, दिव्य विभूषण, दिव्य आयुध, दिव्य महिषी, नित्यसूरी, छत्र चामरादि परिचारणसाधन, द्वारपालक, गणाधिपमुक्त,परमाकाश,मूल प्रकृति,बद्धात्मा काल,महदादिविकार, अंड और अंडोंमें रहे हुए देवादि पदार्थोंका आश्रय है । इहां ज्ञान

शब्दसे आदि लेकर कालशब्द पर्यंत जे पदार्थ हैं वे स्वरूपसे नित्य हैं। और महदादिक प्रवाहसे नित्य हैं ।

प्रश्न–स्वरूपनित्य और प्रवाहनित्यका क्या लक्षण है ?

उत्तर–तत्र स्वरूपतोनित्यत्वं नाम, सत्वे सति उत्पत्तिविनाशात्यन्ताभाववत्त्वम्॥१॥ प्रवाहतो नित्यत्वं तु उत्पत्तिविनाशयोग्यत्वे सत्येव पूर्वनामरूपानन्यथाभाववत्त्वम् ॥ २ ॥

अर्थ–जो पदार्थ विद्यमान होते हुए उत्पत्ति और विनाशका अत्यंताभाववाला होताहै सो पदार्थ स्वरूपसे नित्यत्व कहाजाताहै ॥ १ ॥ उत्पत्ति तथा विनाशकी योग्यता होते हुए ही पूर्व नामरूपका अन्यथासिद्धि शून्यत्ववाला होताहै, सो प्रवाहसे नित्यत्व कहाजाताहै ॥२॥ स्वरूप और प्रवाहसे नित्य ऐसे ज्ञानादि पदार्थोंका नाम ' रा ' है उनके आश्रयका नाम ' आम ' है ऐसे रा और आम मिलकर ' रामः ' शब्द सिद्ध हुआहै, सो रामशब्द नारायणका वाचक सिद्ध होवेगा, कि " रीङ क्षये " रीङ् धातु क्षय अर्थवाला है। " रीयन्ते क्षीयंते इति राः क्षयिष्णवः । राः न भवंति अर्थात् क्षयिष्णवो न भवंतीति राः नित्याः । वेदव्यासो व्यासः " इत्यादिकमें जैसे पूर्वपदका लोप हुआ है तैसे इहांभी पूर्वपदरूप नञ्का लोप करके पीछे अवशेष पद करकेही लुप्यमानपदार्थघटित समुदाय अर्थका कथन है, तथा " राजृ दीप्तौ " राजृ धातु प्रकाशार्थक है, " राजंते प्रकाशंते इति राः । राणां आमः रामः" प्रलय कालमेंभी भगवतके आश्रयत्व करके निरंतर प्रकाश करते हैं उससे भी राशब्द ज्ञानादि नित्य पदार्थोंका वाचक है उन नित्य पदार्थोंका जो प्राप्यप्रापक और आधार होता है सो आमः कहाजाता है जैसे "अम गतौ प्राप्तौ" च अम धातु गति और प्राप्ति अर्थवाला है । इससे " अम्यते प्राप्यते इति आमः " इस कर्मव्युत्पत्ति करके सो आम शब्द प्राप्य वाचि है, और "अम्यते अनेनेति आमः" इस कारणव्युत्पत्ति करके आम शब्द प्रापक वाचि है, सो श्रुतिमेंभी कहा है कि " यत्प्रयंत्यभिसंविशन्तीति " तथा " अमंति गच्छांति इति आमः " इस अधिकरणव्युत्पत्ति करके आश्रयाभिन्नाधार वाचि है, इसलिये " राणां नाम नित्यानां ज्ञानानंदादीनां आमः प्राप्यः प्रापकः आधारश्चेति रामः" ज्ञानानंदादिकोंका आम कहिये जो प्राप्य प्रापक आधार हो, उसको राम कहते हैं और " राः आमः आधारो यस्य स रामः " रा है आधार जिसका सो राम है । इस बहुव्रीहि समासमें अंतर्यामिपनेकी सुलभता दिखाई ।

प्रश्न–इस बहुव्रीहि समासमें कोई पमाग नहीं है ?

उत्तर–यह श्रुति प्रमाण है कि—

" अंतः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा । "

" अंतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ।"

अर्थ–सर्वजनोंके भीतर प्रवेश करके सबका शास्ता है और सबका आत्मा रूप है और बाहर भीतर सर्वको व्याप्त होकर श्रीनारायण रहता है ॥

प्रश्न--पूर्वोक्त श्रुतिवाक्यसे तो नारायणशब्द सिद्ध होता है और इहां प्रकारणमें तुम रामशब्दको साधते हो सो कैसे ? ।

रामशब्दका नारायणपदार्थसे निरूपण ।

उत्तर–भवान्नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधो विभुः ।
महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः ॥

अर्थ--ब्रह्मा श्रीरामको कहते है कि, चक्रधारी और समर्थ ऐसे तुम श्रीमान् नारायण देव हो, सो तुम महासमुद्रमें महाजलमें शयन करते हुये प्रथम हमको उत्पन्न किये इत्यादि वचनों करके नारायणपदसे श्रीरामका उद्देश करके परम प्राप्त और अत्यंत शिष्ट ऐसे महर्षि वाल्मीकिने रामको विशेष्यता करके कथन की है, इससे श्रुति स्मृति और वाल्मीकि महर्षिके वचनोंकी एकवाक्यता करके नारायणपदका वाच्य श्रीराम हैं और शक्तिग्रहमें.व्याकरण, उपमान,कोश,आप्तवाक्य,व्यवहार,वाक्यशेष,सान्निध्य इत्यादि हैं उनमें व्याकरणकी मुख्यता होनेसे विवरणीभूत वचनमें नरशब्दको पृषोदरादि होनेसे राअदेश करके उक्तार्थ सिद्ध होता है, यथा--

" नराणां समूहो रः । तस्य समूह इति नरशब्दात् समूहेर्थेऽणि नरस्य रादेशे, यस्येति चेत्यकारलोपः । अतः रस्य नरसंघातस्य आमो गतिः आलंबनं चेति रामः।"

र नाम नरसमूहका है और आम ऐसा गति और आलंबनका नाम है इससे नरसमूहका गतिरूप और आश्रयरूप होनेसे राम ऐसा कहा जाता है ॥

'नारा आपः, आमः शयनार्थ आश्रयो यस्य स रामः इति विग्रहे जलवाचकनारशब्दस्य रादेशः '

नारा जलका नाम है और आम आश्रयका नाम है इस वास्ते जल, शयन करनेके अर्थ आश्रय जिसका होवे सो राम कहते हैं। तथा–

"ज्ञानादयो गुणाः सन्ति लक्ष्मीर्नित्यानपायिनी।
भूमिलीलादयो देव्यः शेषाद्या नित्यसूरयः॥
तद्धाम परमः कालः पुरुषः प्रकृतिस्तथा।
महदादिधरान्तानि सप्त चावरणान्यपि॥
ब्राह्मण्डं तदन्तस्था लोकाश्च सचराचराः।
एवमण्डान्यनन्तानि तत्सर्वं नारमुच्यते॥" इति॥

अर्थ--ज्ञानादिक गुण, लक्ष्मी भूमि लीलादिक देवियां, शेष गरुडादि नित्य सूरि, काल, पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी ये सप्त आवरण तथा ब्रह्मांड और ब्रह्मांडमें रहनेवाला चराचर लोक अनंत अंड, ये सर्व नार शब्द करके कहे जाते हैं। इहां नार शब्द करके कहे हुए ज्ञानादिक पदार्थोंका रशब्द करकेही कथन है, इस वास्ते–

राणां पूर्वोक्तानां ज्ञानादीनां आमः निवासः इति रामः।

और स्मृतियोंमें भी ऐसाही कहा है कि--

नारास्त्विति सर्वपुंसां समूहः परिकीर्तितः।
गतिरालंबनं तस्य तेन नारायणः स्मृतः॥
नारो नराणां संघातस्तस्याहमयनं गतिः।
तेनास्मि मुनिभिर्नित्यं नारायण इतीरितः॥
नराज्जातानि तत्त्वानि नाराणीति विदुर्बुधाः।
तान्येव चायनं तस्य तेन नारायणः स्मृतः॥
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता एव चायनं तस्य तेन नारायणः स्मृतः॥

अर्थ—नारा शब्द सर्व पुरुषोंके समुदायको कहता है, इस नरसमूहका गति और आलंबन करके नारायण कहाता है, तथा नरोंका समूह नार है उस नारका मैं निवास और गतिरूप हूं इस कारणसे नारायण ऐसा मुनियों करके नित्य मैं कहा हुआ हूं, ऐसा भगवाननेभी स्वार्थ कहा है, और नर (परमेश्वर) से उत्पन्न हुये जो तत्व हैं वे नार इस प्रकारसे ज्ञानी जानते हैं, वे नारही इसका आश्रय है, इस करके नारायण नाम कहा है। नार और अयन मिलकर नारायण पद सिद्ध हुआ। फिर मनुने भी कहा है कि, आप नाम जलका है सो जल नारा इस नामसे कहा है, और आप (जल) नरसूनु हैं अर्थात् नर (परमेश्वर) से उत्पन्न हुये हैं, वे नारा उसका निवास हैं इस करके नारायण ऐसा नाम है । इस कारणही श्रीरामका उद्देश करके " महार्णवे शयानोप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः " इस प्रकारसे कालके मुखसे कहाहुआ ब्रह्माका सन्देशा है सो इस अर्थमें प्रमाण है यथा—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥

अर्थ—हे अर्जुन ! जिन पुरुषोंने पूर्व अनेक जन्मोंमें पुण्यकर्मका संचय किया है, वेही सफल जन्मवाले हैं, उनसे भिन्न पुरुष निष्फल जन्मवालेही हैं, ऐसे सुकृति जन मेरा आराधन करते हैं, वे हमारा भजन करनेवाले जनभी आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी इस भेद करके चार प्रकारके हैं, उनमें आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी ये तीन सकाम भक्त हैं और चौथा ज्ञानी निष्काम भक्त है, शत्रु व्याघ्रादिरूप आपदारूप आर्ति करके जो ग्रस्त है उसका नाम आर्त है । जैसे ग्राहग्रस्त गज, इंद्रके भयसे व्रजवासी, दुर्योधनकी सभामें द्रौपदी, और जरासंधके बंदीखानेमें वीसहजार राजालोग इत्यादिक अनेक आर्त होकर मेरा आराधन करते हैं । आत्मज्ञान प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला जिज्ञासु हैं, सोभी ज्ञानकी प्राप्तिवास्ते मेरा आराधन करते हैं । जैसे मुचुकुंद जनक उद्धवादिक हैं. और इस लोक तथा परलोकमें रहे जे धन स्त्री पुत्रादिक भोगके साधन हैं, उनका नाम अर्थ है, उसकी इच्छा करनेवालेका नाम अर्थार्थी है, सोभी धनादिककी प्राप्तिके वास्ते मेरा आराधन करते हैं. जैसे ध्रुव, सुग्रीव, विभीषण उपमन्यु आदि सकाम भक्त और सनकादिक, नारद, प्रह्लाद, पृथुराजा, शुकदेव इत्यादिक निष्काम ज्ञानी भक्त हैं, और ज्ञानी च, इस पदमें चकार ग्रहण किया है, इस

करके निष्काम शुद्धप्रेम भक्तोंका कथन किया है, वे व्रजवासी गोपिका तथा अक्रूर, युधिष्ठिरादिक हैं. इस प्रकार भगवानने पंच प्रकारके भक्त कहे हैं, उन पांचों भक्तोंको अर्थ, धर्म, काम और मोक्षको 'राति ददातीति रामः' जो पंच प्रकारके अपने आश्रितोंको जो चार पुरुषार्थ देवै,उसको राम कहते हैं "रा दाने" रा धातु दान अर्थवाला है। यद्वा–"महीस्थितः सन् सर्वेभ्योऽधिकतरं राजते शोभते इति रामः"। पृथिवीमें रहकर सबसे जो अत्यन्त अधिक शोभता है उसका नाम राम है, पृषोदरत्व होनेसे महीस्थितशब्दके आदि वर्णके शेष हुये इतरवर्णका लोप हुआ। राजते रादेरेव शेषः।

यद्वा–धर्मरक्षणपूर्वकशरणागतरक्षणाय राक्षसान् मारयतीति रामः। यद्वा–राक्षसा मरणं येन स रामः अत एव रामो राक्षसमर्दनः इति प्रसिद्धतरम् ॥

अर्थ–धर्मरक्षण पूर्वक शरणागतोंके रक्षणकेवास्ते राक्षसोंको मारे सो राम वा जिस करके राक्षस मरणको प्राप्त हो उसको राम कहते हैं, इसलिये राम राक्षसोंके मर्दन करनेवाला है। ऐसा प्रसिद्धही है। इस करके श्रीरामको दो विभूतियोंका नायकत्व कहा, इस प्रकारसे वाल्मीकीय रामायणके आरण्यकाण्डमें प्रपत्तिपरायण महर्षियोंनेभी कहा है कि–

रामप्रशंसा।

ते वयं भवता रक्ष्या भवद्विषयवासिनः।
नगरस्थो वनस्थो वा त्वं नो राजा सनातनः॥

अर्थ–तुम्हारे संबन्धवाले हम अर्थात् तुम्हारे शेषरूप हम लोग तुम्हारे अवलोकनरूप अमृतलाभके वास्ते तुम्हारे आगे खडे हुए और तुम्हारी आज्ञाकी कांक्षा करते हुए हैं, सो हमारे कोई बडे भाग्यके उदयसे आपके दर्शन हुआ है तुम कौशल्यानन्दन करके हम लोग रक्षण करने योग्य हैं। यदि आप ऐसा कहोगे कि, तुम कौन हो और कहांके रहनेवाले हो सो जानकर हम तुम्हारा रक्षण करें. वहां कहते हैं (भवद्विषयवासिनः) तुम्हारेही देशके निवासी हैं, तात्पर्य ऐसा है कि, जो पुरुष जहां वसते हैं, वे पुरुष तुम्हारेही देशमें वसते हैं, क्योंकि सर्वके स्वामी स्वकीय वस्तुके रक्षणमें स्थान विशेषका नियम नहीं है. तहां कहा है कि, "त्रैलोक्यनाथस्य चराचरस्य" जब चराचररूप

तीनोंलोकोंके नाथ तुम हो, तब तुम्हारेही देशमें सब कोई रहते हैं. इससे हमभी आपहीके देशमें रहनेवाले हैं ॥ राम बोले कि, यह कहना ठीक है, परंतु अब तो मैं वनमें स्थितहूं तुम्हारा राजा नहीं हूं, जब मैं अयोध्यानगरमें रहूंगा, तब मेरे देशके निवासियोंकी मैं रक्षा करूंगा ऐसा जो आप कहो तो तहां हम कहते हैं—

न हि तद्भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपतिः ।
तद्वनं भविता राष्ट्रं यत्र रामो निवत्स्यति ॥

अर्थ–जहां राम भूपति नहीं है सो देश नहीं और जहां राम निवास करेंगे, सो देश वन नहीं है, इसवास्ते सर्व देशोंके स्वाभाविक राजा तुमही हो तुम्हारा स्वत्वपनको कोईभी दूर करनेको समर्थ नहीं है । अयोध्यानगरमें रहो अथवा वनमें रहो तथापि हमारे सनातन राजा आपही हो. इहां दूसरा अर्थ ऐसा है कि " जीवनं भुवनं वनम् " इस अमरकोशसे वननाम जलका है अर्थात् महासमुद्रमें रहनेवालेका नाम वनस्थ है, ऐसे वनस्थ पद्मनाभ नारायण आपही हो. ऐसे रामायणमेंभी कहा है कि—

पद्मं दिव्यार्कसदृशं नाभ्यामुत्पाद्य मामपि ।
प्रजापतिं च मां कृत्वा मयि सर्वं न्यवेशयत्॥ इति ॥

अर्थ–नाभिमें दिव्य सूर्यके समान कमलको उत्पन्न करके उस नाभिकमलमें हमकोभी उत्पन्न करके प्रजाका पति बनाकर हममें सबका समावेश किये हो । ऐसा ब्रह्माने श्रीरामकोही नारायण कहेहैं. इस वास्ते महासमुद्रमें रहनेवाले आपही हो. और नगर नाम वैकुंठका है इससे वैकुंठवासीभी आप हो. अथवा

ताभिः परिवृतो राजा शुशुभे परमः पुमान् । '
' सायोध्या इति कीर्तिता ' ॥

'आज्ञानुग्रहभीमकोमलपुरीपाल फलं भेजुषां याऽयोध्ये-
त्यपराजितेति विदिता नाकं परेण स्थिता । '

इत्यादि पुराणोंकी प्रसिद्धिसे अयोध्या नामवाला महावैकुंठ नगरमें नित्यवास करनेवाला तुमही हमारे राजा त्रिपाद्विभूतिके स्वामी हो, इसलिये

हमारी रक्षा करो। यह हमारी प्रार्थना केवल देहसंबंधी रक्षाके मात्र नहीं है किंतु अविद्यादि पंचक्लेशोंसे मुक्त करके तुम्हारे चरण युगल कमल कैंकर्यको हमारे लिये देओ ऐसा रक्षणकी हमारी प्रार्थना है इति ॥ फिर रामशब्द कैसा है कि

अश्व आश्च मश्च एतेषां समाहारः आमं विष्णुब्रह्मे-शसमूहः। राज्जातं रजातम्। रजातम् च तत् आमं च रामम्। "अकारो वासुदेवः स्यादाकारश्च पितामहः। मकारः शंकरः प्रोक्तः ॥" इत्येकाक्षरकोशः।

अ आ यह दो अक्षर मिलकर आ और आ तथा म यह दो मिलकर आम हुआ उसमें अकार वासुदेव है, आकार ब्रह्मा है, मकार शंकर है, ऐसे एकाक्षर कोशमें कहा है। इससे आमशब्द विष्णु ब्रह्मा और शंकरका वाचक है, रशब्द 'रश्च रामे तिले वह्नौ' इत्याचार्यवाक्यप्रमाणसे श्रीरामका वाचक होनेसे रात् रामसे जातम् उत्पन्न हुआ हो उसको रजात कहाजाताहै पीछे शाकपार्थि-वादिपनेसे जातशब्दका लोप करके बहुव्रीहि वा कर्मधारयपक्षमें "राममस्या-स्मिन्वास्तीति रामः" ब्रह्मा विष्णु महेश इन तीनोंके कारण होनेसे राम नाम है और वसिष्ठसंहितामेंभी ऐसा कहा है कि–

यस्यानन्तावताराश्च कला अंशा विभूतयः।
आवेशा विष्णुब्रह्मेशाः परब्रह्मस्वरूपभाः॥
स एव सच्चिदानन्दो विभूतिद्वयनायकः।
वात्सल्यभूताद्यानन्तकल्याणगुणवारिधिः॥

अर्थ–जिस रामपरमात्माके अनंत अवतार हैं, उनमें कोइ कला अवतार है, कोइ अंशावतार हैं, कोइ विभूति अवतार हैं, और कोइ आवेश अवतार हैं, विष्णु, ब्रह्मा, ईश ये सर्व श्रीराम परब्रह्मके स्वरूप करके भासते हैं, सो रामही सच्चिदानन्द हैं. और श्रीरामही त्रिपादद्विभूति तथा भोगविभूति इन दोनों विभूतियोंके स्वामी हैं, और श्रीरामही वात्सल्यादि अनन्त कल्याण गुणोंके समुद्र हैं इति ॥ श्रीरामही चतुर्विंशति आदिक अनंत अवतारोंके कारण हैं। ऐसा भागवतमेंभी कहा है "एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम्।" यह श्रीरामही अनेक अवतारोंका अव्यय बीज है ॥ और बृहद्ब्रह्मसंहितामेंभी सर्व अवतारोंका आश्रय श्रीरामकोही कहा है कि–

रामशब्दका नानाविधअर्थनिरूपण ।

वासुदेवादिमूर्त्तीनां चतुर्णां कारणं परम् ।
चतुर्विंशतिमूर्त्तीनामाश्रयः शरणं मम ॥
कर्ता सर्वस्य जगतो भर्ता सर्वस्य सर्वतः ।
संहर्ता कार्यजातस्य श्रीरामः शरणं मम ॥

अर्थ–वासुदेव १ संकर्षण २ प्रद्युम्न ३ अनिरुद्ध ४ इन चार मूर्तियोंके परमकारण श्रीराम हैं और चौवीस अवतारोंकी मूर्तियोंके परमआश्रय श्रीराम है, सो मेरा शरण है और श्रीराम इस सर्व जगत्के कर्ता, सर्व जगतके सर्व प्रकारसे पोषणकर्ता और इस जगत्रूप कार्यके संहर्ताभी श्रीरामही हैं, सो श्रीराम मेरा (शरण) अर्थात् रक्षण करनेवाले हैं, ऐसा लक्ष्मीने नारायणके प्रति कहा है, इस कथनसे श्रीरामका अष्टाक्षर मन्त्रभी सिद्ध होता है कि–" श्रीरामः शरणं मम " इस अष्टाक्षर मन्त्रका महिमा " नास्ति चाष्टाक्षरात्परः, न मन्त्रोष्टाक्षरात्परः " इत्यादि शास्त्रोंमें बहुत विस्तारसे कहा सो प्रकरण आवेगा तो आगे लिखेंगे इति ।

नरशब्द परमात्माका वाचक है सोभी श्रीरामही है । क्योंकि, वाल्मीकिने नरत्वशब्द करके नारदके प्रति जब प्रश्न किया तब नारदने " श्रूयतां नरः " ऐसा कहकर–" इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामः " ऐसा उत्तर दिया था । और राममंत्र ऐसा है कि " रं अमतीति रामः " रं "रश्च रामे तिले वह्नौ भूमावपि धनेपि च । इंद्रिये धनरोधे च भूपे रश्च प्रकीर्तितः ॥ इति रं वह्निसूर्यादितेजः । ऐसा सूर्यादिकोंके तेजका नाम है, उस तेजको लोकके वास्ते प्रकाशकपने करके "अमाति व्याप्नोति " व्याप्त अर्थात् जगत्प्रकाशक सूर्य चंद्र अग्नि आदिकोंके तेजकाभी प्रकाशक है । इस कारणसे इस अर्थको भगवतीश्रुतीभी ग्रहण करती है "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति " इति । उस राम परमात्माके तेजकरके यह सूर्यादिक सब कोई प्रकाश करते हैं और स्मृतिभी कहती है कि–

" यदादित्यगतं तेजो तत्तेजो विद्धि मामकम् "

सूर्य चंद्र अग्नि आदिकमें जो तेज है सो तज मेरा है । ऐसे भगवानने कहा है । औ रामायणमें ऐसाही कहा है कि–

"सूर्यस्यापि भवेत्सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः "

सूर्यकेभी सूर्य हैं, अग्निकेभी अग्नि हैं, और प्रभुके भी प्रभु श्रीराम हैं। ऐसे सकल अभिप्रायोंको लेकर 'व्यापक, आश्रय, प्राप्य और प्रापक'ये चार विशेषण सिद्ध होते हैं। ऐसे रामस्वरूपके प्रतिपादक होनेसे उस रामका मंत्रभी वैसाही है। और भी "रमंते योगिनोस्मिन्निति रामः" इस राममें योगिजन रमण करते हैं, इससे राम है। सो रामतापिनी उपनिषद्में कहा है कि–

"रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि । "

अनंत और सत् चित् आनंदात्मा राममें योगिजन रमण करते हैं, इस वास्ते यह रामपरब्रह्म कहे जाते हैं। अथवा नित्यमुक्तादि भेदकरके पंच प्रकारके जीवोंको अपनेमें रमण करानेसे राम कहे हैं. अथवा स्थावर जंगमात्मक भूतोंमें रमण करनेसे राम हैं॥

" रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च "

ऐसा वाल्मीकि महर्षिके वचनसे चराचर भूतोंमें रमण करनेवाले राम हैं। अथवा "यं प्राप्य नित्यमुक्ता योगिनो रमंत इति रामः" जिसको प्राप्त होकर नित्य मुक्त योगिजन रमण करते हैं सो राम हैं। यद्वा "स्वेनैव स्वस्मिन्सर्वान् रमयतीति रामः" अपने करकेही आपमें सर्वको रमण कराते हैं सो राम है इस कारणसे गीतामें भी कहा है कि–

"ददामि बुद्धियोगं च येन मामुपयान्ति ते "

मेरेमें आसक्त और प्रीतिपूर्वक मेरा भजन करनेवाले मेरे भक्तोंको बुद्धिरूप उपायको मैं देता हूं, जिस उपाय करके वे भक्त मेरेको प्राप्त होते हैं। यद्वा अशेष चेतन अचेतनोंमें रमण करनेवाला होनेसे भी राम है सो अर्थ रामायणमें भी कहा है कि--

" वृक्षे वृक्षे च पश्यामि चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ।
रामभूतमिदं सर्वमरण्यं प्रतिभाति मे ॥ "

हे रावण ! वृक्षवृक्षमे मैं रामको ही देखता हूं और यह सर्व वन मेरेको रामरूप भासता है। और भी राममंत्र श्रुतियों तथा मुनियों करके अत्यंत माना हुआ है॥

प्रश्न–कौन कौनसी श्रुतियों करके तथा कौनकौनसे मुनियों करके राममंत्र संमत है ?

मन्त्र माहात्म्यादि रामरहस्यनिरूपण ।

उत्तर–वेदकी हजारों श्रुतियों तथा हजारों मुनियोंकरके माना हुआ है. हे शिष्य ! तहां प्रथम श्रुतियोंके प्रमाणोंको संक्षेपसे तूं श्रवण कर । रामतापिनी उपनिषद्में ऐसा कहा है, कि जब महादेवने चौदह हजार वर्षपर्यंत तप किया, तब विष्णुभगवान् आकर बोले कि, वर मांग। शिव बोले कि–'हमारी काशीपुरीमें जो कोई प्राणी मरे, सो प्राणी मुक्तिको पावे' ऐसा वर देओ।विष्णु बोले कि, तुम्हारी काशीपुरीमें नाना प्रकारके पापी आके मरें, वे भी मुक्तिको पावे ऐसा बटे नहीं,परंतु जिन मनुष्योंके कर्णमें तुम तारकमंत्र सुनावोगे वे मनुष्यही हमारे मंत्रके प्रभावसे मुक्तिको पावेंगे. ऐसा वर देकर भगवान् अपने धांमको गये,और शिव भी वैसेही करते थे, सो कहा है कि–

"जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे ।
येनासौ अमृतीभूत्वा मोक्षीभवति ॥"

अर्थ–प्राण छूटते समय रुद्र प्राणीको तारक ब्रह्मका उपदेश करता है, इस करके यह प्राणी अमर होकर मोक्षको पाता है । फिर सामवेदकी पिप्पलायन्न शाखामें राममंत्रसंबंधी ऐसे प्रश्नोत्तर हुआ है कि–

"अथाह भारद्वाजो याज्ञवल्क्यं स होवाच श्रीराममंत्रस्य माहात्म्यं नो ब्रूहि भगवन्न् स होवाच याज्ञवल्क्यः।तारकत्वा-त्तारको भवति तदेव तारकं ब्रह्म त्वं विद्धि तदेवोपास्यं य एतत्तारकं ब्राह्मणो नित्यमधीते स पाप्मानं तरति स मृत्युं तरति स ब्रह्महत्यां तरति स भ्रूणहत्यां तरति स वीरहत्यां तरति स सर्वहत्यां तरति स संसारं तरति स विमुक्तात्मा भवति स महान् भवति सोऽमृतत्वं च गच्छति ॥

अर्थ–भारद्वाजमुनि पूछते हैं कि–हे याज्ञवल्क्य ! हे भगवन् ! हमारे लिये श्रीराममंत्रका माहात्म्य कहो । सो याज्ञवक्ल्य बोले कि, गर्भ जन्म जरा मरणरूप संसारके महाभयसे तारनेवाला होनेसे 'तारक' नाम है उस तारककोही हे भारद्वाज ! तू ब्रह्म जान सो तारकही उपासना करने योग्य है जो कोई

ब्राह्मण इस तारक मंत्रको नित्य अध्ययन करताहै वह अनेकजन्मोंके पापोंको और मृत्युको तरता है तथा सो पुरुष ब्रह्महत्याको वीरहत्याको तथा सर्वहत्या-कोभी तरता है तथा संसारको तरता है सो पुरुष विमुक्त होता है तथा महान् होता है और वह पुरुष मोक्षको प्राप्त होता है ।

य एवं मंत्रराजं श्रीरामचन्द्रस्य नित्यमधीते सोऽग्निना पूतो भवति स वायुना स आदित्येन स सोमेन स ब्रह्मणा स विष्णुना स रुद्रेण पूतो भवति स सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति ॥ तेने-तिहासपुराणानां रुद्राणां शतसहस्राणि जप्तानि भवन्ति प्रण-वानामयुतं कोटिजप्तं भवति दश पूर्वान् दश परान्पुनाति स हि क्रियावान् भवति स महान् भवतीति ॥

अर्थ-जो पुरुष इस प्रकारसे श्रीरामचंद्रके मंत्रराजको नित्य अध्ययन करता है सो पुरुष अग्निकरके पवित्र होता है तथा वायु, सूर्य, सोम, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रकरके पवित्र होता है और वह पुरुष सर्व देवोंकरके जाना हुआ होता है, और तथा इतिहास और पुराणों, रुद्रोंके सौ हजार जप, प्रणवके दश हजार कोटि जप करनेका फलको प्राप्त होता है. और वह पुरुष दश पीढी पूर्वजन्मकी और दश पीढी आगेकी ऐसे अपनी वीस पीढीयोंको पवित्र करता है । राममंत्रको जपनेवाला क्रियावान् होता है.और महान् होता है इति ॥ इस प्रकारसे श्रुतियों करके राममन्त्र सुंदर माना हुआ है । और मुनियों करके भी संमत है । सो अगस्त्य संहितामें सुतीक्ष्णके प्रति अगस्त्यने ऐसा कहा है कि-

सुतीक्ष्ण मन्त्रवर्गेषु श्रेष्ठो वैष्णव उच्यते ।
गाणपत्येषु शैवेषु शाक्तसौरेष्वभीष्टदः ॥
वैष्णवेष्वपि सर्वेषु राममन्त्रः फलाधिकः ।
मन्त्रराज इति प्रोक्तः सर्वेषामुत्तमोत्तमः ॥

अर्थ-हे सुतीक्ष्ण ! गाणपत्य, शैव, शाक्त, सौर इन मन्त्रवर्गोंमें विष्णुका मंत्र श्रेष्ठ है और सो विष्णुका मन्त्र वांछित फलको देता है और विष्णुके सब

मंत्रोंमेंभी राममंत्र श्रेष्ठ है. और उन वैष्णव मंत्रोंसे राममंत्र अधिक फल देनेवाला है । क्योंकि, यह राममंत्र सर्वमंत्रोंका राजा है, इसलिये इसका नाम मंत्रराज कहा है, और यह मंत्रराज सर्वमंत्रोंमें उत्तमसे भी उत्तम है मूल श्लोकमें अति श्रेष्ठ और प्रधान यह दो विशेषण राममंत्रके कहे हैं, वे दो विशेषण इस अगस्त्य संहिताके प्रमाण करके सिद्ध हुए । अब बृहद्ब्रह्मसंहिताके प्रमाण कहते हैं—

श्रीराममन्त्रराजस्य माहात्म्यं गिरिजापतिः ।
जानाति भगवांच्छंभुर्ज्वलत्पावकलोचनः ॥

अर्थ—श्रीराममंत्रराजके माहात्म्यको गिरिजाके पति शंभु भगवान् जानते हैं ॥ और हारित स्मृतिमें भी ऐसा कहा है । कि—

अनन्ता भगवन्मन्त्रा नानेन तु समाकृताः ॥

भगवतके मंत्र अनंत हैं परंतु इस राममंत्रके समान कोई भी मंत्र नहीं है॥ और शारदातिलकमें भी कहा है कि—

वेदानां च यथा सामवेदज्ञो जायते वरम् ।
तथा समस्तमन्त्राणां राममन्त्रः प्रकीर्तितः ॥

अर्थ--जैसे चार वेदोंमेंसे सामवेदका पढनेवाला श्रेष्ठ होता है, तैसे समस्त मंत्रोंमें राममंत्र श्रेष्ठ कहा है ॥ स्कंदपुराणमें भी--

विश्वरूपस्य ते राम विश्वशब्दा हि वाचकाः ।
तवैव मूलमन्त्रस्ते विश्वेषां बीजमक्षयम् ॥
अचिन्त्योऽयं महाबाहो मन्त्रश्चिन्तामणिर्विभो ।
विहायैनं विमूढात्मा ततश्चेतश्च धावति ॥

अर्थ--हे राम ! तुम विश्वरूप हो, विश्वमें जितने शब्द हैं, वे तुम्हारेही वाचक हैं, और तैसेही तुम्हारा मूल मंत्र (राममंत्र) सर्व विश्वका अक्षय बीज है । हे महाबाहो ! यह तुम्हारा मंत्र चिंतामणिरूप है, और अचिंत्य महिमावाला है, इस मंत्रका त्याग करके मूढात्मा पुरुष इधर उधर दौडता है, अर्थात् दूसरे मंत्रोंको जपता है ॥ अगस्त्य मुनिभी कहते हैं कि—

मंत्ररूपं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद तत्परः ।
रकारादि मकारान्तं मन्त्रं षड्वर्णसंयुतम् ।
षडक्षरात्मकं मन्त्रं तारकं ब्रह्मसंज्ञकम् ॥

अर्थ–राममंत्रके रूपको मैं कहता हूं तू तत्पर होकर श्रवण कर । हे नारद! राम मंत्रका कैसा लक्षण है कि, रकार जिसके आदिमें और मकार जिसके अंतमें है, तथा षट् अक्षरों करके युक्त है, ऐसा षट् अक्षररूप राममंत्र ब्रह्मसंज्ञक और उपासकोंको गर्भवास जन्मजरामरणादिरूप संसारके महाभयसे "तारयति मोचयतीति तारकम्"मुक्तकरता है.इसलिये इसका नाम तारक है॥ फिर शिवसंहितामें भी--

सर्वेषां मन्त्रवर्याणां श्रेष्ठो वैष्णव उच्यते ।
तेषु वैष्णवमन्त्रेषु राममन्त्रः फलाधिकः ॥

अर्थ–सव श्रेष्ठ मंत्रोंमें विष्णुके मंत्र श्रेष्ठ हैं उन विष्णुके सब मंत्रोंमें राममंत्र श्रेष्ठ है, और अधिक फल देनेवाला है इति । तथा सनत्कुमारसंहितामें–

श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञकम् ।
ब्रह्महत्यादिपापघ्नमिति वेदविदो विदुः ॥

अर्थ–" श्रीराम " ऐसा मन्त्र मुमुक्षु पुरुषोंको जप करनेयोग्य है और संसार सागरसे तारता है, इससे तारक है, तथा इस मन्त्रसे ब्रह्मका सम्यक् अनुभव होता है । " ब्रह्मसंज्ञकं तारकं " इन दो विशेषणोंकरके अविद्यानिवारणपूर्वक भगवतके आनन्दको देनेवाला रामतारक है ऐसा सिद्ध हुआ, इस करके मन्त्र और मन्त्रप्रतिपाद्य देवताका समसामर्थ्य कहा जाता है । मुख्य फल तो इस मन्त्रका तारक और ब्रह्मसंज्ञकही है परंतु रुचि उत्पादन करने वास्ते आनुषंगिकफलकोभी अब कहते हैं कि, ब्रह्महत्या-राजहत्या भ्रूणहत्या इन्द्रहत्यादिक सर्व पापोंका हनन करनेवाला यह रामतारक मन्त्र है. यह कथन स्तुतिमात्रही नहीं हैं,किंतु वास्तव है। क्योंकि–इस राममन्त्रके महिमाको चार वेदके अर्थको जाननेवाले ज्ञानी पुरुषभी पूर्वोक्त प्रकारसेही जानते हैं.

---

१ ब्रह्मणः संज्ञा सम्यग्ज्ञानम् । अनुभवो यस्मात्तद्ब्रह्मसंज्ञकम् ॥

प्रश्न–षट् अक्षरात्मक राममन्त्रके स्वरूपको इस पुस्तकमें लिखकर क्यों नहीं बताते हो, केवल महिमाकाही कथन किस वास्ते करते हो.

उत्तर–तत्स्वरूपानिर्देशस्त्वतिरहस्यत्वात् ॥

भाष्यकार श्रीरामानुज स्वामी कहते हैं कि, उस राममन्त्रको लिखकर स्वरूपका कथन नहीं किया है, सो उस मन्त्रका अत्यन्त रहस्यपना (गोप्यत्व) होनेसे नहीं किया है.

प्रश्न–आनुषंगिक फल किसको कहते हैं ?

उत्तर–हे शिष्य ! आपस्तंबस्मृतिमें आनुषंगिकफलका लक्षण कहा है कि–

तद्यथा–आम्रे फलार्थे निर्मिते छाया गन्ध इत्यनूत्पद्यते । एवं धर्मं चर्यमाणमर्था अनूत्पद्यन्ते । नोचेदनूत्पद्यन्ते न धर्महानिर्भवतीति ॥

अर्थ–जैसे आम्रके वृक्षको लगानेवाले पुरुषको छाया और गन्ध अवश्य प्राप्त होते हैं, क्योंकि–वृक्ष तो फलके वास्ते लगाया है कुछ छाया गन्धके वास्ते लगाया नहीं. वे छाया गन्ध तो आनुषंगिक फल हैं मुख्य फल तो आम्रवृक्षका फल है. वैसे रामतारकमन्त्रका मुख्य फल तो तारक और ब्रह्मसंज्ञक है. और ब्रह्महत्यादि पापोंका निवारण तो आनुषंगिक फल है. ऐसेही स्वधर्म बुद्धिकरके किया हुआ जो धर्म है, उस करके राज्य स्वर्गादिक आनुषंगिक फलभी अवश्य मिलते हैं, जो कदाचित् वे राज्य स्वर्गादिक नहीं मिलें, तोभी धर्मकी हानि होती नहीं । इति । फिर राममन्त्र कैसा है कि–(शिष्टमुख्यैर्गृहीतः) शिव-अगस्त्य-सुतीक्ष्ण-शरभंग-सुदर्शनादि परम शिष्टोंने ग्रहण कियाहुआ है. यह शिवअगस्त्यादि शिष्टमुख्य परम आप्त हैं अर्थात् भ्रमप्रमाद लिप्सा आदिक दोषोंकरके रहित यथार्थवक्ता हैं, इन शिव अगस्त्यादि यथार्थवादियों करके यह राममन्त्र ग्रहण किया हुआ है । और (उरुशुभः) मोक्षका देनेवाला है ॥

यहां ऐसा तत्व है कि, जैसे अष्टाक्षर नारायणमन्त्रका, जब ओंकार सहित होवे तब आठ अक्षरोंवाला होता है, और तबही वैदिकपना सिद्ध होता है और उस वैदिकमन्त्रमें ही ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णोंका अधिकार होता है. जब ओंकारसे रहित होवे तव तांत्रिकमन्त्र कहा जाता है, उस तांत्रिकमंत्रमें सर्व वर्णोंका अधिकार है, ऐसे शास्त्रमें कहा है कि–

वैदिकं ब्राह्मणानां स्याद्राज्ञां वैदिकतान्त्रिके ।
तांत्रिकं वैश्यशूद्राणां सर्वेषां तांत्रिकं तु वा ॥

अर्थ–वैदिक मन्त्र ब्राह्मणोंको, क्षत्रियको वैदिक और तांत्रिक, वैश्य और शूद्रोंको तांत्रिक मन्त्र होना अथवा सब कोईको तांत्रिक मन्त्र होना ॥

इससे स्त्रियों तथा शूद्रोंको आचार्यलोग ओंकार रहितही मन्त्रका उपदेश करना चाहिये ।

प्रश्न–ओंकारसे विना अष्टाक्षरका मन्त्र किस रीतिसे होवेगा ?

उत्तर–प्रणवकें ठिकाने अं ऐसा उच्चारण करनेसे अष्टाक्षरत्वकी सिद्धी होवेगी सो अभियुक्तोंनेभी कहा है कि–

अमित्येतत्समुच्चार्य्यं तेनाष्टाक्षरता भवेत् ।

अर्थ–अं ऐसे मूल मन्त्रके आदिमें अनुस्वार सहित अकारका उच्चारण करनेसे अष्टाक्षरता होती है ॥ इति ॥

तैसे राममंत्रभी ओंकारवाला रां बीज सहितही षट् अक्षरवाला होता है. इस षडक्षर मन्त्र वैदिक होनेसे ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णोंका अधिकार है । और रां इस बीजसे रहित तांत्रिक मंत्रोंमें स्त्री शूद्रादिक सब कोईका अधिकार है॥

प्रश्न–बीजसे रहित तो पंचाक्षरी मंत्र होता है और महिमा तो षडक्षरात्मक मंत्रका सुनते हैं, सो कैसे षडक्षर मंत्रसिद्धि होवेगा ?

उत्तर–रां इस बीजके स्थानमें श्रीशब्दका उच्चारण करनेसे मंत्रके षट् अक्षरोंका संपादन करना योग्य है ।

प्रश्न–ऐसा कहां प्रमाण है ?

उत्तर–सनत्कुमारसंहितामें है कि–

श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञकम् । इति ।

अर्थ–'श्रीराम' यह परम जप करने योग्य ब्रह्मसंज्ञक तारक मंत्र है इस श्रीराम शब्दके आगे चतुर्थी विभक्तिके लगानेसे षट् अक्षरात्मक मंत्रकी सिद्धि होती है. इसमें सर्व वर्णोंका अधिकार है । और श्रुतिमेंभी—

मुमुक्षोर्मणिकर्णिकायामर्धोदकनिवासिनः ।
रुद्रस्तु तारकं ब्रह्म व्याचष्टेति श्रुतौ ॥

सर्वेषामधिकारो वै ज्ञातव्यो देशिकोत्तमैः ।
इत्याद्याः श्रुतयः संति स्मृतयश्च सहस्रशः ॥

अर्थ–मणिकर्णिकामें अर्धोदकनिवासी मुमुक्षुको तारक ब्रह्मका रुद्र कथन करता है इस श्रुतिमें मूलमंत्रमें सब कोईका अधिकार देशिकों करके जानने योग्य है, क्योंकि इस श्रुतिमें कोईभी जातिका कथन नहीं है, इत्यादिक श्रुतिस्मृति हजारों प्रमाण हैं. और श्रीमद्भागवतके तृतीय तथा सप्तम स्कंधमेंभी चांडाल पर्यंत सब कोईका अधिकार भगवतके मूलमंत्रमें बताया हुआ है॥

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥
विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभपादारविन्दविमुखात् श्वपचं वरिष्ठम् । मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थप्राणान् पुनाति सकुलं न तु भूरिमानः ॥

अर्थ–देवहूती कपिल भगवानको कहती हैं कि हे भगवन् ! आश्चर्य लगता है कि, जिसकी जिह्वाके अग्रभागमें तुम्हारा नाम वर्तता है, सो चांडालभी नाम ग्रहण करनेसे श्रेष्ठ है । क्योंकि–जिसके जिह्वामें तुम्हारा नाम वर्तता है; इससे चांडालभी श्रेष्ठ है जो कोई पुरुष तुम्हारा नाम ग्रहण करते हैं वेही पुरुष तप, होम, तीर्थोंमें स्नान किये हैं,वेही पुरुष आर्य अर्थात् सदाचारवाले वेदको पढेहुए हैं। क्योंकि तुम्हारा नामके कीर्तनमें तप होमादिकका अंतर्भूतत्व है इस लिये वे पुरुष अत्यंत पवित्र हैं. उन्होंने पूर्व जन्ममें तपहोमादिक सर्व किये हैं क्योंकि, नाम कीर्तन करके उन पुरुषोंमें महाभाग्यके उदयका निश्चय हुआ है इस रीतिसे भगवन्नाम आभीर, कंक, पुल्कस, यवन, श्वपचादिकोंको भी परमपावनकारी है. सो चक्रादि भगवत् आयुधों करके संस्कार किये हुए और भगवतके शरणको प्राप्त हुए ऐसे स्त्री शूद्रादिकोंकाभी मंत्रमें अधिकार है । क्योंकि–तृतीयस्कंधमेंही कहा है कि–“ श्वादोपि सद्यः सवनाय कल्पते ” चांडालभी तत्काल सोमयाग करनेके योग्य होता है. इस करके चांडालकाभी पूज्यपना बताया. तथा जो ब्राह्मण धन, अभिजन, रूप, श्रुत, ओज, तेज, प्रभाव, उद्यम, बुद्धि, तप, बल, योग इन द्वादश गुणोंकरके युक्त हो तोभी भगवानके चरणारविंदसे विमुख हो तो उन द्वादश गुणोंके भरेहुए ब्राह्मणसे

चांडाल श्रेष्ठ कहा है, क्योंकि–जिसने भगवतमें मन, वचन, कर्म, अर्थ, प्राण अर्पण किया है, ऐसा वह चांडाल अपने सर्व कुलको पवित्र करता है। और धनादिक अथवा ज्ञानादिक द्वादश गुणयुक्त अत्यंत गर्ववाला ब्राह्मण तो अपने आत्माको भी पवित्र नहीं करसकता है तो अपने कुलको तो कहांसे पवित्र करेगा? इस कारणसे भक्तिहीन ब्राह्मणके वे ज्ञानादिक द्वादश गुण गर्वको उत्पन्न करनेवालेही होते हैं। शुद्धिकेलिये नहीं होते हैं॥

प्रश्न–ब्राह्मणके ज्ञानादिक द्वादश गुण कौनसे हैं? उत्तर–

ज्ञानं च सत्यं च दमः श्रुतं च ह्यमात्सर्यं ह्रीस्तितिक्षानसूया।
यज्ञश्च दानं च धृतिः शमश्च महाव्रता द्वादश ब्राह्मणस्य॥

अर्थ–ज्ञान, सत्य, दम, श्रुत, अमात्सर्य, ह्री, तितिक्षा, अनसूया, यज्ञ, दान, धृति, शम ये द्वादश ब्राह्मणके महाव्रत हैं. ऐसे धनादिक अथवा ज्ञानादिक द्वादश गुणोंवाला ब्राह्मण है, परंतु भगवद्भक्तिसे रहित हो तो वह ब्राह्मण श्वपचसेभी अधम है ऐसा भागवतका वचन है. और वाल्मीकीय रामायणके आरण्यकांडमेंभी ऐसा कथन है कि–संस्कारके अयोग्य तिर्यच योनि जटायु गृध्र, भक्ष्याभक्ष्य मांसका खानेवाला था, सो भगवतके अर्थ जिसने अपना शरीर समर्पण किया था, उसके प्रभावसे उस जटायु गृध्रका वेदोक्त पितृमेध विधान करके श्रीरामचंद्र भगवानने संस्कार किया और उस जटायुके अर्थ वेदके मंत्रोंसे पिंडदान श्रीरामने अपने हाथोंसे किये। जैसे दशरथ पिताकी उत्तरक्रिया श्रीरामने की थी, वैसेही जटायुभक्तकीभी उत्तरक्रिया कर वैदिक याम्यसूक्तका जपभी किये थे. अब देखो विचार करो कि–जटायुपक्षी कोई ब्राह्मण नहीं था, परंतु श्रीरामने उसकी वेदोक्तमंत्रोंसे उत्तरक्रिया की थी इससे भगवद्भक्तिके प्रभावसे आभीर, कंक, पुल्कस, यवन, खस, श्वपचादिकभी पवित्र होकर ब्राह्मण समान शुद्ध होते हैं और भगवत भक्तिसे रहित जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यादिक हैं, वे चांडालके समान अशुद्धही होते हैं इति॥ २॥

अब राममंत्रके आदिमें रां यह बीज है, उस बीजके अर्थको प्रतिपादन करते हैं–

रामबीज मन्त्रार्थ।

यावद्वेदार्थगर्भं प्रणवि जगदुदाधारभूतं स बिन्दुं
सुव्यक्तं रामबीजं श्रुतिमुनिगदितोत्कृष्टषड्व्याप्तिभेदम्।

रेफारूढत्रिमूर्तिप्रचुरतरमहाशक्तिविश्वोन्निदानं
शश्वत्संराजते यद्विविधसकलसंभासमानप्रपंचम् ॥ ३ ॥

अर्थ–(यत् रामबीजं तत् शश्वत् राजते इत्यन्वयः।) रामतारक मंत्रके आदिमें स्थित जो रां यह बीज है सो बीज निरंतर प्रकाशता है। सो (यावद्वेदार्थगर्भ) जितने वेदके अर्थ हैं वे सकल अर्थ जिस बीजके गर्भमें रहते हैं।

प्रश्न–रां इस बीजमें सकल वेदके अर्थोंकी किस प्रकारसे प्रतीति होती है।

उत्तर–सर्व वेद और सविताशब्दसे अभिन्न भर्गशब्द करके अनेक प्रकारके माहात्म्यविशिष्ट सूर्यमंडलमें रहते हुए पुरुषोत्तम देव श्रीराम कहे जाते हैं. गायत्रीकरके सूर्य मंडलमें श्रीरामकीही उपासना करनी कही है. दूसरे कोईभी देवकी उपासना सूर्यमंडलमें समझनी नहीं. सो सनत्कुमारसंहितामें कहा है कि–

सूर्यमंडलमध्यस्थं रामं सीतासमन्वितम्[१] ।
नमामि पुंडरीकाक्षममेयं गुरुतत्परम् ॥

अर्थ–श्रीजानकी देवी करके निरंतर युक्त, सूर्यमंडलमें स्थित, कमलके-समान प्रसन्न और उज्ज्वल कर्णपर्यंत दीर्घ नेत्रोंवाले अपरिच्छेद्य स्वरूप रूप लीलावाले, वसिष्ठादि गुरुवर्गमें भक्ति परायण ऐसे श्रीराम परमात्माको मैं नमस्कार करता हूं ॥ इस प्रकारसे सीता सहित श्रीरामकी युगल उपासना सूर्यमंडलमें करनी कही है.

प्रश्न।

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती नारायणः सरसिजासन-संनिविष्टः। केयूरवान्मकरकुण्डलवान्किरीटी हारी हिरण्मयवपुर्धृतशंखचक्रः ॥

अर्थ–कमलके आसनपर बैठे हुए, बाजुबंदवाले, मकराकृति कुंडलवाले, किरीटवाले, हारवाले, शंखचक्रको धारण करनेवाले, और अत्यंत प्रकाशमान शरीरवाले, ऐसे ध्यान करने योग्य श्रीमन्नारायण सदा सूर्यमंडलके मध्यमें विराजते हैं । इस भविष्योत्तरपुराणके वचनसे सूर्यमंडलमें नारायण रहे हुए सिद्ध होते हैं और तुम तो श्रीरामको तहां कैसे बताते हो ?

---

१ सीतया श्रीजानकीदेव्या। सम्यक् नित्यम्। अनु निरंतरम्। इतम् युक्तम्।

उत्तर–" भवान्नारायणो देवः, महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः" इत्यादिकमें नारायण और रामकी एकता तो हमकथन करचुके हैं। यदि श्रीराम नारायण न होवें तो ब्रह्मा ऐसा क्यों कहे कि, तुम शंख चक्रधारी लक्ष्मीके पति नारायण हो. और महासमुद्रमें तुम नाभिकमलसे मेरेको उत्पन्न किये हो इस प्रकार नारायण और रामके अभेदका कथनसे सूर्यमंडलमें श्रीरामही विराजते हैं ॥

प्रश्न–गायत्रीमें कोई पुरुष तो विष्णुकी, कोई पुरुष ब्रह्माकी, कोई पुरुष सूर्यकी, तथा कोई पुरुष शक्ति गणपति आदिकी उपासना करनी कहते हैं. इस प्रकारसे मतावलंबियोंने झगडा मचाते हैं.परंतु सत्यार्थ कौनसा है, उसका शोधन नहीं करते हैं. इसवास्ते आप हमारे लिये गायत्रीका अर्थ करके, बताओ पीछे खबर पडेगी कि, गायत्री फलाने देवको प्रतिपादन करनेवाली है ।

गायत्री।

उत्तर– ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

तत् सवितुः वरेण्यं भर्गः देवस्य धीमहि धियः यः नः प्रचोदयात् ॥ इति (दश) पदच्छेदः ॥

सवितुर्देवस्य यद्वरेण्यं भर्गः तद्वयं धीमहि । कस्मै प्रयोजनाय ? यः सविता देवः सः नोऽस्माकं धियः प्रचोदयात् ॥ इत्यन्वयः ॥

अर्थ–सवितुर्देवस्य श्रीरामपरमात्माका, यद्वरेण्यं जो वरनेयोग्य, भर्गस्वरूप, तत् उस स्वरूपको, वयं हम, धीमहि ध्यान करते हैं, चिंतन करते हैं । कस्मै प्रयोजनाय किस प्रजोजनके अर्थ रामके स्वरूपका हम ध्यान करते हैं कि– नः हमलोगोंकी, धियः बुद्धियोंको, प्रचोदयात्–प्रेरणा करें इति ॥

विशेषार्थ यह है कि–सवितादेव श्रीराम परमात्माका जो स्वरूप है । सो कैसा है कि–वरेण्य[1] अर्थात् वरनेयोग्य और सर्वतेज मात्रके प्रकाशकपने करके सर्व तेजोंसे अतिश्रेष्ठ स्वप्रकाशरूप है । कि (भर्ग[2])अर्थात् रविबिंबमें स्थित

---

१ वर्तुं अर्हं वरेण्यं यत्स्वरूपं तद्वरेण्यं, यद्वा सर्वेषां तेजसां प्रकाशकत्वेन तेभ्यः सर्वेभ्योऽतिश्रेष्ठं स्वप्रकाशात्मकमित्यर्थः ।

२ रविबिंबांतस्थतेजः स्वरूपं, निरुपद्रवं निष्पापं निर्गुणं, शुद्धं, सकलदोषरहितं पक्कं, परमार्थस्वरूपं, विज्ञानस्वरूपं, यत् तद्भर्गः ।

तेजस्वरूप है और निरुपद्रव है, निष्पाप है, निर्गुण है, शुद्ध है. सकल दोष-रहित है, पक है, परमार्थस्वरूप है विज्ञानस्वरूप है ऐसा रामस्वरूपका हम चिंतन करते हैं, किस वास्ते कि–हमारी बुद्धियांको सो सविता देव श्रीराम परमात्मा प्रेरणा करें, अर्थात् ब्रह्मचर्य, विद्या, विज्ञान, सद्धर्म, जितेंद्रियत्व, और ब्रह्मानंदको प्राप्त होनेवाली अपने कृपाकटाक्षकरके करो. इस प्रयोजन-वास्ते इस स्वरूपका हम चिंतन करते हैं इति ।

प्रश्न–वरेण्य और भर्ग यह दो शब्द श्रीरामस्वरूपके वाचक आप कहते हो, सो किस ग्रंथमें प्रमाण है ?

उत्तर–सनत्कुमारसंहितामें कहा है कि–" भर्गं वरेण्यं विश्वेशं रघुनाथं जगद्गुरुम् " इस प्रकारसे गायत्रीकरके प्रतिपाद्य श्रीरामही हैं, अन्यदेव नहीं ।

प्रश्न–गायत्रीमें सविता और देव यह दो शब्द हैं, सो इन दोनों शब्दांको श्रीरामके वाचक किस प्रमाणसे सिद्ध करोगे? क्योंकि सविता तो सूर्यका नामहै।

उत्तर–"षूङ् प्राणिप्रसवे" सूयते चराचरं विश्वमिति सविता । षूङ् धातु प्राणि-योंके उत्पन्न अर्थमें है उस षूङ्धातुसे सविता शब्द हुआ है. और चराचर जग-तको उत्पन्न करनेवालेका नाम सविता है सो श्रीराम परमात्माही हैं। क्योंकि–सूर्यमें जगतको उत्पन्न करनेकी शक्तिका कथन कोईभी शास्त्रमें नहीं है इति । तथा ' रमु क्रीडायाम् ' रम धातुका राम शब्द और ' दिवु क्रीडादिषु ' दिव् धातुका देव शब्द है. यह दोनों शब्द एकही अर्थके प्रतिपादक होनेसे देव शब्दभी रामकाही वाचक सिद्ध होता है । जैसे कि–

रमन्ते योगिनोऽत्रेति रामः। तथा दीव्यन्ति रमन्ते योगि-नोत्रेति देवः । यद्वा दीव्यति रमतेन्तर्यामितया सर्वभू-तेषु स्वात्मनीति वा देवः । यद्वा देवयति जन्मादिदातृ-त्वेन रमयति भूतानीति देवः । यद्वा देवयति प्रलये स्व-कुक्षौ स्वापयति भूतानीति देवः । यद्वा चराचरे दीव्य-ति द्योतते व्याप्नोतीति देवः । यद्वा दीव्यते स्तूयते

---

१ ब्रह्मचर्यविद्याविज्ञानसद्धर्मजितेद्रियत्वपरब्रह्मानंदप्राप्तिमतीः स्वकृपाकटाक्षेण परमेश्वरः स्वशक्त्या कुर्यात् अस्मै प्रयोजनाय इति ।

ब्रह्मपुरःसरैः सुरैरिति देवः । यद्वा दीव्यति प्रकाशयति मोदयति खल्वानन्दयति सर्वं विश्वं स देवो रामः ॥

अर्थ--इस प्रकारसे जितना राम शब्दका अर्थ है उतनाही अर्थ देव शब्दकाभी है इस कारणसे रामशब्द और देवशब्द समानार्थक व्याकरणसे सिद्ध होते हैं, और जिसके विषयमें योगियोंका रमणत्व, तथा सर्व भूतोंमें अंतर्यामिपने करके जिसका रमणपना तथा सर्व प्राणियोंको जन्म स्थिति और प्रलयके देने करके. सर्व प्राणियोंको जिसका रमणकत्व, तथा प्रलय कालमें अपनी कुक्षिमें सर्वप्राणियोंको शयन कराना,चराचर भूतोंमें जिसका प्रकाशत्व और व्यापकत्व, तथा ब्रह्मादिक देवोंकरके जिसकी स्तुति करने,तथा सर्व जगत्को प्रकाश करने और आनंद देनेपना, इत्यादिक यह सर्व देव शब्दके हैं वेही राम शब्दकेभी हैं इति। और जगत्‌की उत्पत्ति स्थिति प्रलयको करने प्राणियोंको रमण करनेपना सूर्यका काम नहीं है. तथा योगिजन जिसमें रमण करते हैं सोभी सूर्य नहीं है. तथा प्रलय कालमें अपनी कुक्षिमें जगत्को शयन करानेवालाभी सूर्य नहीं है, तथा ब्रह्मादिक देवों करके स्तुति करने योग्यभी सूर्य नहीं है, तथा सर्व जगत्का अंतर्यामित्वभी सूर्यमें सिद्ध नहीं हो सकता है तथा सर्व विश्वको आनंद देना और मोक्ष देना यहभी सूर्यका काम नहीं है। क्योंकि, सूर्य तो भयवाला और जन्म मरणवाला जीव है. ऐसा वेदमें स्पष्ट कहा है कि " भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः " इस परमात्मादेवसे भय पायकर पवन गति करता है और इस परमात्माके भयसे सूर्यका उदय होता है. इस श्रुतिमें परमात्माके भयसे सूर्यका उदय होना लिखा है तो सूर्यको ईश्वरपना कहां रहा ? क्योंकि–जिसके हुकममें पवन, सूर्य, इंद्र, अग्नि, वायु आदि देव रहते हैं सोही वेदमें ईश्वर कहा है. हुकम उठानेवालेको ईश्वरता संभव नहीं इससे गायत्रीमें सविता शब्द परमात्माकाही वाचक सिद्ध होता है, और ऐसाभी है कि–स्वामी आपही भयवाला है तो अपने सेवकको अभयपद कहांसे देगा?क्योंकि 'भोजने यत्र संदेहो धनाशा तत्र कीदृशी ' इति न्यायात् । जिस ठिकाने भोजनकाभी संदेह है तौ उस ठिकाने धनकी आशा कैसी ? इस न्यायसे समझना कि–सूर्यादिक देव जब जन्ममरणवाले,भयवाले और हुकम उठानेवाले हैं तब मुक्ति और अभय मांगना कैसे संभवेगा ? क्योंकि–सूर्य चंद्रादि देव ईश्वरके ताबेदार हुकममें रहनेवाले हैं.

ऐसा और भी वेदभगवान् कहता है कि–

"एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः"

हे गार्गि ! इस अक्षर परात्मात्माके आज्ञारूपी हुकममें सूर्य और चंद्रमा धरे हुए रहते हैं इति । इस कारण गायत्रीमें भर्गशब्द, सविता शब्द और देव शब्द, परमात्माके वाचक व्याकरणकी रीतिसे सिद्ध होते हैं.

प्रश्न–गायत्रीमें सविता और देव शब्द परमात्माके केवल वाचक व्याकरणसे आपने सिद्ध किये परंतु वे पुराण सूत्र और धर्मशास्त्रका प्रमाण तो आया नहीं. और केवल व्याकरणसे सिद्ध करते हो सो बने नहीं । क्योंकि ? जो केवल व्याकरणकाही प्रमाण अंगीकार करीये तो, गद्धा, कुत्ता, बिलाव, बलद, भैंसा, सर्प, बिछू, स्त्री, अंधा, गांडी, आदिक शब्दभी केवल व्याकरणके जो बलसे परमेश्वरकेही वाचक अंगीकार करने पडेंगे. जैसे कि, "गर्दभः पुल्लिंगः– गर्दति वेदशब्दं कारयतीति गर्दभः" वेदशब्दके करानेसे परमेश्वरका नाम गर्दभ है १। "श्वा पु० श्वयति कोर्थः वेदध्वनिं प्रापयतीति श्वा" वेद ध्वनिको प्राप्त करानेवाला होनेसे ईश्वरका नाम श्वान है २ । बिडालः पु० बेडति शपति दुष्टान् इति बिडाल :" दुष्टजनोंके शाप देनेसे ईश्वरका नाम बिलाव है. ३ । वलदः पुल्लिङ्गः–भक्तजनान् बलं ददातीति बलदः" अपने भक्तजनोंको बलका दाता है, इससे ईश्वरका नाम बलद है." ४ । "महिषः पु० मह्यते जनैरिति माहिषः" जनोंके समुदाय करके पूज्य होनेसे ईश्वरका नाम महिष (भैंसा) है ५ । "अहिः पु० आहंति भक्तजनानां मपापानीति अहिः" भक्तजनोंके पापोंका नाश करनेसे अहि ऐसा नाम परमेश्वरका है. ६ । "वृश्चिकः पु० वृश्चति छिनत्ति भक्तजनपापानीति वृश्चिकः" भक्तजनोंके पापोंको छेदन करनेसे ईश्वरका नाम वृश्चिक (बिछू है) ७ । "स्त्री–स्त्रीलिंगः स्यते वेदध्वनिं कारयते इति स्त्री" इस पृथ्वीके ऊपर वेदध्वनिको करनेसे ईश्वरका नाम स्त्री है. ८। "अन्धः पु० अंधयाति कोर्थः चर्मचक्षुषा न पश्यतीति अंधः" चर्मचक्षुसे नहीं देखता है किंतु ज्ञानचक्षुसे देखता है इस वास्ते ईश्वरका नाम अंध है. ९ । "गांडी पु० ज्ञानग्रन्थिरस्यास्तीति गांडी" ज्ञानग्रंथिवाला होनेसे परमेश्वरका नाम गांडी है. १० । "अंघ्रिः पु० संसारवृक्षस्य अंघ्रिः कोर्थः मूलं तादिव यो वर्तते स अंघ्रिः" संसारवृक्षको मूलके तरह होनेसे ईश्वरका नाम अंघ्रि है. ११ । "अकिंचित्करः पु० न किंचित्करोतीति अकिंचित्करः" कृतकृत्य होनेसे किंचित्

मात्रभी कार्य ईश्वर नहीं करता है उससे ईश्वरका नाम अकिंचित्कर है. १२। "अकृत्यः पु० न विद्यते कृत्यं अस्य कृतकृत्यत्वात्"। "उल्लूकः पुं० उद्वलन्ति सर्वत्र समवेति व्याप्नोति वा इति उल्लूकः" सब ठिकाने व्यापक होनेसे ईश्वरका नाम उल्लूक है. १४ । कुकुरः पु० कौ पृथिव्यां भक्तजनप्रबोधाय वेदध्वनिं कारयतीति कुकुरः" पृथिवीमें भक्तजनोंके बोधकेवास्ते वेदकी ध्वनि करानेसे ईश्वरका नाम कुकुर है. १५ । "यमः पु० यमयति शुभाशुभकर्मानुसारेण जंतून् दंडयतीति यमः" शुभाशुभकर्मोंके अनुसार जीवोंको दंडके देनेसे ईश्वरका नाम यम है. १६। "भारवाहकः पु० जगतः भारं वहतीति भारवाहकः" जगत्का भारको वहन करनेसे ईश्वरका नाम भारवाहक है. १७। "विट् पु० विटति आक्रोशं करोति दुष्टानिति विट्" दुष्टोंके ऊपर आक्रोश करानेसे विट् है. १८ । "मंदः पु० मंदते मोदते ऐश्वर्यपदे इति मन्दः" अपने ऐश्वर्य पदमें नित्य खुशी रहनेसे ईश्वरका नाम मन्द है. १९। "विश्वकाकः पु० विश्वे काकः कोर्थः तिलकमिव वर्तते इति विश्वकाकः" पृथ्वीरूपी भामिनीके भालस्थलमें तिलककी तरह होनेसे भगवानका नाम विश्वकाक है. २०। "गरलं, नपुंसकं गिरति प्रलयकाले सर्वेषां शरीराणीति गरलम्" प्रलयकालमें सर्वजीवोंके शरीरोंका नाश करनेसे परमात्माका नाम गरल है. २१। "खलः पु० खलति सृष्टयादि रचनायां स्वस्वभावादिति खलः" सृष्टिके आदिकालमें अपने स्वभावसे खलायमान होनेसे परमेश्वरका नाम खल है" २२। "कुविन्दः पु० कुं पृथ्वीं विन्दति कोर्थः प्राप्नोति सर्वत्र व्यापकत्वात्" सर्वत्र व्यापक होनेसे सब पृथ्वीका लाभ हुआ है, उससे परमेश्वरका नाम कुविन्द है २३। "पाखंडी पु० पापं खण्डयतीति पाखंडी" भक्तोंके पापको खण्डन करनेसे ईश्वरका नाम पाखंडी है. २४। "भगन्दरः पु० भक्तजनानां योनिं दुष्टयोनिषु उत्पत्तिं दारयतीति भगन्दरः" भक्तोंकी दुर्गतिको दूर करनेसे ईश्वरका नाम भगन्दर है. २५। "अज्ञः पु० न जानाति स्वस्य आदिं इति अज्ञः" अपनी आदिको न जाननेसे परमेश्वरका नाम अज्ञ है. २६ । "असंगलः पु० नास्ति मंगलं प्रयोजनं यस्य स अमंगलः" किसीभी वातका प्रयोजन न होनेसे भगवानका नाम अमंगल है. २७। "चंडालः पु० चंडति दुष्टान् इति चंडालः" दुष्टजनोंके ऊपर कोप करनेवाला होनेसे ईश्वरका नाम चंडाल है. २८। "चौरः पु० चौरयति दुष्टानां सुखधनमिति चौरः" दुष्टोंका सुखरूप धनको ले लेनेसे ईश्वरका नाम चौर है. २९। "तुरगः पु० तुरेण वेगेन सर्वत्र व्याप्नोतीति तुरगः" वेगसे

सर्वत्र व्यापनेवाला होनेसे ईश्वरका नाम तुरग है. ३० । " दुःखं नपुंसकं दुःखयति दुष्टान् इति दुःखम् " दुष्टोंको सदा दुःख देनेवाला होनेसे ईश्वरका नाम दुःख है. ३१ । " दुर्जनः पु० दुष्टो जनो यस्माज्जायते कस्मात् ईश्वरस्य सर्वोत्पत्तिकारकत्वात् " दुष्टजनोंकी उत्पत्ति ईश्वरसे होनेसे ईश्वरका नाम दुर्जन है.३२ इत्यादिक हजारों शब्द ईश्वरकेही नाम केवल व्याकरणकी रीतिसे मानने पडेंगे. और वैसेही कलिकालके अनुचर पंथायियोंने अपने अपने पंथोंमें कल्पे हुए नामभी ईश्वरके मानने पडेंगे जैसे कि जैनमतवाले श्रावकोंने ईश्वरके जिन और अर्हन् आदिक कहते हैं।वे श्रावकभी उन नामोंको व्याकरणकी रीतिसेही सिद्ध करते हैं. परंतु वेद पुराण धर्मशास्त्रकी रीतिसे नहीं । जैसे कि– " जिनः पु० जयति रागद्वेषमोहादिशत्रून् इति जिनः " रागद्वेषमोहादिक शत्रुओंके जीतनेसे परमेश्वरका नाम जिन है. ३३ । " अर्हन् पु० चतुस्त्रिंशतिमतिशयान्सुरेंद्रादिकृतां पूजां वा अर्हतीति अर्हन् " अद्भुतरूप आदि चौंतीस अतिशयोंको योग्य तथा इंद्रादिकृत पूजाके योग्य होनेसे ईश्वरका नाम अर्हन् है. ३४ " तीर्थंकरः पु० तीर्यते संसारसमुद्रोऽनेनेति तत्, तीर्थं करोतीति तीर्थंकरः " जिसकरके संसारसमुद्र तरै, उस तीर्थको करनेवाला होनेसे ईश्वरका नाम तीर्थंकर है. ३५ "स्याद्वादी पु० स्यादिति अव्ययम् अनेकांतवाचकं ततः स्यादिति अनेकान्तं वदतीत्येवंशील: स्याद्वादी–स्याद्वेदोऽस्यास्तीति वा स्याद्वादी " सकल वस्तुतामें अपने स्वरूपकरके कथंचित् अस्ति है और पर वस्तुके स्वरूप करके कथंचित् नास्तिरूप है, ऐसे तत्त्वके प्रतिपादन करनेवाला होनेसे ईश्वरका नाम स्याद्वादी है. ३६ । इत्यादिक शब्दोंको ईश्वरके नाम श्रावकोंने माने हैं. वे व्याकरणकी रीतिसे सिद्ध करते हैं परंतु श्रुतिस्मृतियोंका प्रमाण नहीं दे सकते हैं ॥ और कबीरपंथी साहेब ऐसा नाम ईश्वरका ठहराते हैं परंतु इसमें कोईभी शास्त्रका प्रमाण नहीं है. उलटा साहेब ऐसा नाम लेनेसे पाप लगता है. क्योंकि साहेब यह शब्द यावनी (मुसलमानी) भाषाका है. और कबीर मुसलमान था, इससे साहेब साहेब करता था, हिंदुओंको ऐसा नाम लेनेसे दोष लगता है इस कारणसे शास्त्रमें निषिद्ध है कि–"न वदेद्यावनीं भाषां प्राणैः कंठगतैरपि" कण्ठमें प्राण आये होय तोभी यावनी भाषाको न बोलै. अर्थात् मरना कबूल है परंतु मुसलमानी भाषाको बोलना नहीं॥तैसेही श्रावकोंके देवका नाम लेनेमेंभी शास्त्रकी आज्ञा नहीं है । क्योंकि जब जैनोंके मंदिरमें जानेको निषेध है तब उनके देवोंका नाम लेनेमें शास्त्रकी आज्ञा कहांसे होगी. धर्मशास्त्रमें कहा है कि–" हस्तिना ताडयमानोपि न गच्छेज्जैनमंदिरम्"

मदोन्मत्त हाथी मारने लगे, तोभी अपना प्राण बचानेको जैनमंदिरमें न जावे, अर्थात् हस्तिके आगे मर जाना कबूल है, परंतु जैनके मंदिरमेंही जाना कबूल नहीं। इस प्रकारसे धर्मशास्त्रके जब उनके मंदिरमें जानेकीही निषिद्ध है तो मंदिरमें रहने और उनके देवोंका नाम लेनेका हुकुम किस प्रकारसे देगा? क्योंकि यह प्राणी जब जैनमंदिरमें जावेगा तब उनके देवोंको दर्शन करेगा. दर्शन करके उनका नाम पूछेगा ऐसा दर्शन करके नाम लेकर उभयलोकसे भ्रष्ट हो जायगा. इसलिये उनके मंदिरमें जाना मने किया है॥ और दादूपंथी दादूराम ऐसा नाम ईश्वरका ठहराया है सो वेभी शास्त्रके विरोधी है इस प्रकारसे पाखंडियोंने अपने अपने मन कल्पित ईश्वरके नाम ठहराया है परंतु परमेश्वरके वे नाम नहीं है। क्योंकि, विष्णुके सहस्रनामोंमें उन पाखंडियोंके कल्पित नामोंकी गणना नहीं है। विष्णुके हजार नामहैं, उन नामोंमें जिन अर्हन् स्याद्वादि तथा साहेब तथा दादु ऐसे नाम नहीं है इससे वे नाम अप्रामाणिक हैं और अपने अपने मन करके कल्पित हैं उन नामों करके किसीकाभी मोक्ष नहीं हुआ और नहीं होगा॥ हे गुरो! आपने गायत्रीमें सविता भर्ग और देव इन तीनों शब्दोंको व्याकरणसेही सिद्ध किये हैं, परंतु श्रुतिस्मृतियोंसे नहीं, इस कारण हे वेदांतशास्त्रसिद्धांतवादी! आप हमारे प्रति श्रुति स्मृतियों करके गायत्रीके सवितादि शब्दोंको सिद्ध करने योग्य हो॥ गायत्रीमें सूर्य, शक्ति, गणपति ब्रह्मादि देवोंकी उपासना कही है? किंवा विष्णुभगवानकी कही हैं? यह हमारा संदेह दूर करो॥

उत्तर–गायत्रीमें श्रीराम परमात्माकीही उपासना कही है, दूसरे कोईभी देवोंकी नहीं। सो सनकस्मृतिमें कहा है कि–

आदित्यमंडले ध्यायेत्परमात्मानमव्ययम्।
विष्णुं चतुर्भुजं रक्तपंकजासनमध्यगम्॥
किरीटहारकेयूरनूपुरैरुपशोभितम्।
श्रीवत्सवनमालाश्रीतुलसीकौस्तुभोज्ज्वलम्॥
हरिं पीताम्बरधरं शंखचक्रगदाधरम्।
प्रसन्नवदनं रत्नकुंडलैर्मंडिताननम्॥

सर्वरत्नसमायुक्तसर्वाभरणभूषितम् ।
एवं ध्यात्वा जपेन्नित्यं मन्त्रमष्टोत्तरं शतम् ॥

अर्थ--नाशसे रहित, चतुर्भुजावाले, लाल कमलके आसन पर बैठे हुए, शिरपर किरीट, कंठमें हार, भुजामें बाजुबंध, पगोंमें नूपुर करके शोभायमान, लक्ष्मी, वनमाला, तुलसी और कौस्तुभमणि करके देदीप्यमान, पीतांबर धारी, शंखचक्र गदाको धारण करनेवाला प्रसन्न मुख वाला, रत्नोंके कुंडलों करके शोभित मुखारविंद जिनका है, तथा सर्व प्रकारके रत्नाजटित सर्व आभरण करके शोभित और भक्तोंके पापहारी श्रीविष्णुभगवान्का रविमंडलमें ध्यान करके पीछे गायत्रीके एक सौ आठ जप नित्यप्रति करे। इति ॥ और श्रुतिमें भी कहा है कि--

" एतत्सवितुर्वरेण्यं ध्रुवमचलममृतं भर्गाख्यं
विष्णुसंज्ञं सर्वाधारं धाम ॥ "

अर्थ--यह सविताका तेज कैसा है कि--वरेण्य, ध्रुव, अचल अमृत और जिस तेजका नाम भर्ग और विष्णु ऐसी संज्ञा है, तथा सर्व चराचरका आधार रूप है, ऐसा सविताका तेज है इति॥ और "तत्तेजो विद्धि मामकम्" जो सूर्यमें तेज है सो तेज मेरा है ऐसा गीतामें गीताचार्य श्रीकृष्णजीने कहा है. इस वास्ते वह तेज विष्णुसंज्ञकही है इति । और गायत्रीमें जो सविताशब्द है, सो श्रीरामपरमात्माका वाचक है ऐसा याज्ञवल्क्यमुनिनेभी कहा है कि--

सविता सर्वभूतानां सर्वभावान्प्रसूयते ।
सवनात्पावनाच्चैव सविता तेन उच्यते ॥

अर्थ--सर्व भूतोंको उत्पन्न करनेवालेका नाम सविता है, सो सविता देव सर्व पदार्थोंको उत्पन्न करता है और उत्पन्न करनेवाला होनेसे तथा पावन करनेवाला होनेसे भी परमात्माका नाम सविता कहा है इति॥ ऐसा याज्ञवल्क्य धर्मशास्त्रके वचनसे सविता शब्द परमेश्वरका वाचक सिद्ध होता है. क्योंकि चराचर जगत्को उत्पन्न करनेवाला सूर्य है, ऐसा प्रमाण कोईभी शास्त्रमें नहीं मिलता है. जगतका कर्ता तो परमेश्वरही है, सूर्य नहीं. क्योंकि श्रुतिमें और व्याससूत्रमेंभी परमात्माको ही जगत्का कर्ता कहा है कि--

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते ।"
"जन्माद्यस्य यतः ॥"

अर्थ–जिस परमात्मा देवसे यह सर्व स्थावर जंगमरूप जगत् उत्पन्न होता है ॥ इस जगत्की उत्पत्ति स्थिति और लय जिस परमात्मासे है इति ।

विष्णुधर्मोत्तरपुराणमेंभी कहा है कि–

"प्रजानां च प्रसवनात्सवितेत्यभिधीयते ॥"

सर्व प्रजाको उत्पन्न करनेवाला होनेसे परमात्माका नाम सविता कहा है । इस प्रकारसे वेद, वेदान्त, धर्मशास्त्र, पुराण, व्याकरणादिकोंके महाप्रबल प्रमाणोंसे सविताशब्द श्रीरामका वाचक सिद्ध हुआ. ऐसा कथन हमारे विशिष्टाद्वैतका सिद्धांतमें है इति । और गायत्रीमें जो देवशब्द है सोभी परमात्माका वाचक है । ऐसा वेदमें कहा है–

" तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ।
एको देवः सर्वभूतेषु गूढः ॥ "

(देवम्) प्रकाशमान, (आत्मबुद्धिप्रकाशं) स्वविषया बुद्धिको प्रकाश करनेवाले ऐसे परमात्मा देवको मैं मुमुक्षु मोक्षकी सिद्धिके अर्थ आश्रय करता हूं । सो एक नारायणदेव सर्व भूतोंमें अन्तर्यामिरूपकरके गूढ रहते हैं ॥ इति ॥ और "उद्भवः क्षोभणो देवः" ऐसे पंचमवेदरूप महाभारतमें वेदव्यासभगवान्नेभी तीन सो चौहत्तरवां देव नामको विष्णुका वाचक कहा है ॥ इस प्रकार श्रुति, स्मृति, पुराण, संहिता आदिकोंके प्रमाणोंसेही सविता और देव.यह दोनों नाम श्रीरामपरमात्माकेही हैं. और आधुनिकोंने अपने अपने मनसे कल्पित हुए जो जिन, अर्हन्, तीर्थंकर,साहेब, दादुराम ईशामसी इत्यादि नाम हैं वे नाम विष्णुसहस्रनामोंमें न होनेसे कल्पित और अप्रामाणिक हैं ।

प्रश्न–गायत्रीमें देव और सविता यह दोनों शब्द परमात्माके वाचक आपने सिद्ध किये सो ठीक है, परंतु इन दोनों शब्दोंसे भर्गशब्दकी भिन्नप्रतीति होती है, क्योंकि, सविता देवका भर्गको हम चिन्तन करते हैं, इस रीतिसे षष्ठी विभक्तिके अर्थमें सविता और सविताका भर्ग अलग २ मालूम पडते हैं और जो आप अभेद कहो तो 'नीलो घटः' नील घट है इसकी तरह अभेदमें प्रथमा विभक्ति उचित है, षष्ठी विभक्तिका अर्थ यहां नहीं घटता है.

उत्तर-गायत्रीमें सविता और भर्ग इन दोनोंका औपाधिकभेद है, परमार्थसे भेद नहीं हैं । जैसे कि " राहोः शिरः " यहां राहुका शिर, इस षष्ठी विभक्तिसे राहु और शिरका औपाधिक भेदकी प्रतीति होती है, परंतु परमार्थसे अभेदही है, राहु और शिर अलग २ नहीं । जैसे "गुडस्य मधुरता" इहां गुड और गुडकी मधुरता इन दोनोंका भेद षष्ठी विभक्तिकी उपाधिसे मालूम पडता है परमार्थसे गुड और मधुरता भिन्न नहीं. वैसे गायत्रीमें सविता और भर्गभी भिन्न नहीं । इस प्रकारसे गायत्री करके श्रीरामही प्रतिपादन किये हुए हैं, क्योंकि-

" भवान्नारायणो देवः "

"महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः ।
रक्षां विधास्यन्भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ॥ "

इस प्रकारसे श्रीरामके प्रति ब्रह्माने कहे हुए वचनसे तथा उस उस स्थलमें बहुत वाक्योंकी एकवाक्यता करके अनन्तकल्याणगुणोंके राशि और जगत्के जन्म स्थिति प्रलयके कारणरूप परब्रह्म नामवाले सीतापति श्रीरामही उन उन रूपोंके धारण करनेसे नारायण, विष्णु, वासुदेव, वामन, नृसिंहादिनामोंके वाच्य हैं, अर्थात् नारायण, विष्णु, वासुदेव, वामन, नृसिंहादि नाम श्रीरामकेही वाचक हैं, इस प्रकारसे रां इस बीजमें यावद् वेदार्थगर्भपना सिद्ध हुआ इति ॥ फिर रां यह बीज कैसा है कि, (प्रणवी[1]) अर्थात् ओंकारवाला है, इस रांबीजमें प्रणव (ओंकार) निरन्तर है, इसलिये रांबीजका नाम प्रणवी है. इस रांबीजमें और ओंकारमें किंचित् मात्रभी भेद नहीं है. इस प्रणवका जप करनेसे तथा प्रणवके वाच्य श्रीरामका ध्यान करनेसे योगीके चित्तके एकाग्रताकी प्राप्ति करके, उस योगीको अत्यन्त समीप असंप्रज्ञातसमाधिका लाभरूप फल उत्पन्न होता है. ऐसा पतंजलि भगवान्ने योगशास्त्रमें दो सूत्रों करक कहा है कि-

" तस्य वाचकः प्रणवः ॥ १ ॥
[2]तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ २ ॥ "

---

१ प्रकृष्टतया नूयते स्तूयते उपास्यते इति प्रणवः स प्रणवोऽस्मिन्नित्यमस्तीति प्रणवी ॥ २ तद्भाष्यकारश्चाह-प्रणवस्य जपः प्रणवाभिधेयस्य चेश्वरस्य भावनं तदस्य योगिनः प्रणवं जपतः प्रणवार्थं च भावयतश्चित्तमेकाग्रं सम्पद्यते ॥

अर्थ–श्रीराम परमात्माका वाचक ओंकाररूप प्रणव है ॥ १ ॥ उस परमात्माका वाचक प्रणवका जो निरन्तर जप है, उस प्रणवके वाच्यरूप ईश्वरका जो ध्यान है उस जप तथा ध्यानको करनेवाले योगीका चित्त एकाग्रको प्राप्त होता है ॥ इति ॥ २ ॥ इस प्रकारसे प्रणवका जप तथा ईश्वरका ध्यान करके योगीका चित्त जब एकाग्र होता है, तब उस योगीके चित्तमें नौ प्रकारके चित्तविक्षेप और पांचप्रकारके अन्तरायभी उत्पन्न नहीं हो सकते हैं. ऐसा दो सूत्रों करके पतंजलि भगवानने कहा है कि–

"व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रांतिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥ ३ ॥ दुःखदौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वासप्रश्वासाविक्षेपसहभुवः ॥ ४ ॥"

अर्थ–व्याधि १, स्त्यान २, संशय ३, प्रमाद ४, आलस्य ५, अविरति ६, भ्रांतिदर्शन ७, अलब्धभूमिकत्व ८, अनवस्थितत्व ९ ये नौ योगके प्रतिपक्ष कहे जाते हैं ॥ ३ ॥ दुःख १, दौर्मनस्य २, अंगमेजयत्व ३ श्वास ४, प्रश्वास ५, ये पंच अन्तराय समाहितचित्तको होते नहीं, किंतु विक्षिप्तचित्तकोही होते हैं ४॥ यहां वात पित्तादिक धातुओंकी विषमता करके जो ज्वरादिक विकार हैं उनका नाम व्याधि है १। योगशास्त्रके वेत्ता गुरुओंने सिखाये हुयेभी शिष्योंमें जो आसनादिक कर्मोंकी अयोग्यता है उसका नाम स्त्यान है २। यह योग हमको सिद्ध करने योग्य अथवा नहीं है, इस प्रकार भाव अभावरूप दो कोटीयोंको विषय करनेवाला जो ज्ञान है, उसका नाम संशय है ३। समाधिका अनुष्ठान करनेका सामर्थ्य हो तोभी उस साधनका जो अनुष्ठान नहीं करता है उसका नाम प्रमाद है ४। कफादिक धातुओंकी वृद्धिकरके अथवा तमोगुणकी वृद्धिकरके शरीर चित्तमें जो गुरुत्व है, उसका नाम आलस्य है ५। कोई विषयविशेषमें जो चित्तकी निरंतर अभिलाषा है उसका नाम अविरति है ६। योगके असाधनोंमें भी जो योगसाधनत्वबुद्धि तथा योगके साधनोंमें जो योग असाधनत्व बुद्धि है, उसका नाम भ्रांतिदर्शन है ७। समाधिकी जो एकाग्र भूमिका है, उस भूमिकाका जो अलाभ अर्थात् क्षिप्त मूढ विक्षिप्तरूपताकी जो प्राप्ति है, उसका नाम अलब्धभूमिकत्व है ८। और उस भूमिकाको प्राप्त हुये भी अपनी यत्नताकी शीथलता करके उस भूमिकामें जो चित्तकी स्थिति नहीं होती है उसका नाम अनवस्थितत्व है ९।

यह नव प्रकारकें चित्तविक्षेप योगमल कहे जाते हैं इति ॥ ३ ॥ चित्तका बाधनरूप जो राजसपरिणाम है, उसका नाम दुःख है। सो दुःख आध्यात्मि-कादि भेदसे तीन प्रकारका है. वहां ज्वरादिक व्याधियोंसे उत्पन्न हुआ जो शरीर दुःख तथा काम क्रोधादि आधियोंसे उत्पन्न हुआ जो मानसदुःख है, वह दोनों प्रकारके दुःख आध्यात्मिक कहेजाते हैं, इत्यादिक त्रिविध दुःख द्वेषरूप विपर्ययका हेतु होनेसे समाधिका विरोधिही है. १ । इच्छा विघा-तादिक बलवान् दुःखका अनुभव करके जन्य जो चित्तका तामस परिणाम-विशेष है, उसको क्षोभ कहते हैं तथा स्तब्धीभावभी कहते हैं. उसका नाम दौर्मनस्य है, सो दौर्मनस्य कषायरूप होनेसे समाधिका विरोधीही है. २ । हस्तपादादिक अंगोंका जो कंपन है, उसको अंगमेजयत्व कहते हैं सो अंगमे-जयत्व आसनकी स्थिरताका विरोधी है ३ । और प्राणकरके बाह्यवायुका जो अंतर प्रवेश है उसका नाम श्वास है, सो श्वास समाधिका अंगभूत रेचकका विरोधी होता है ४ । और प्राणकरके भीतरके वायुका जो बाहिर निकालना है उसका नाम प्रश्वास है. सो प्रश्वास समाधिका अंगरूप पूरकका विरोधी होता है ५ इति । इन पूर्वोक्त दो सूत्रों करके कथनकिये हुए जो चतुर्दश अंतराय हैं वे विघ्नरूप अंतराय, ईश्वरप्रणिधान करके निवृत्त होते हैं ॥

सो योगसूत्रमें पतंजलि भगवानने कहा है कि-

"ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥"

अर्थ-ईश्वरमें जो कायिक, वाचिक, मानसिक, तीन प्रकारकी भक्ति है, उसका नाम ईश्वरप्रणिधान है. उस ईश्वरप्रणिधानसे इसयोगीको अत्यंत समीप असंप्रज्ञात समाधिका लाभ होता है, और सूत्रके अंतमें जो वाशब्द है सो तीव्र वैराग्यरूप उपायके साथ इस ईश्वरप्रणिधानके उपायका विकल्प बोधन करने-वास्ते है अर्थात् जैसे तीव्र वैराग्यसे उस समाधिका लाभ होता है, वैसे ईश्वर-प्रणिधानसेभी लाभ होता है सो तीव्र वैराग्य इस सूत्रमें कथन किया है कि-

" तीव्रसंवेगानामासन्नः ॥ "

तीव्र वैराग्यवान् पुरुषोंको अत्यंत समीप असंप्रज्ञात समाधिका लाभ होता है इति । जिस कारणसे उस भक्तिकरके प्रसन्न हुये ईश्वर, यह इष्ट वस्तु इस भक्तजनको प्राप्त होना चाहिये इस प्रकारका अनुग्रह अवश्य करते हैं। इस प्रकारसे प्रणवी रां बीजके वाच्य श्रीरामकी उपासना योगशास्त्रमें कही है.

और इस प्रणावि रां बीजमें र[1] अ म इन तीन अक्षरोंकी स्थिति है उनमें अकार अक्षर वेदादिकोंका कारण रूप है सो अभियुक्तोंने कहा है कि-

सर्वेऽर्था वेदगर्भस्था वेदाश्चाष्टाक्षरे स्थिताः ।
अष्टाक्षरश्च प्रणवे अकारे प्रणवस्थितिः ॥
यथैव वटबीजस्थः प्राकृतश्च महाद्रुमः ।
तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम् ॥

अर्थ-सब अर्थमात्र वेदोंके गर्भमें रहते हैं. और सर्व वेद अष्टाक्षर मन्त्रमें रहते हैं. और अष्टाक्षर प्रणवमें रहता है. प्रणवकी स्थिति अकार अक्षरमें है-जैसे अत्यंत सूक्ष्म वट वृक्षका बीज है, उस बीजमें प्राकृत वटका महान् वृक्ष रहता है, वैसेही रामबीजमें यह चराचर सर्व जगत् रहता है इति। और जितना फल चार वेदोंके पारायण करनेसे होता है, उतना फल रां बीजके जप करकेभी होता है. ऐसा व्यासवचन है कि-

विष्णोरेकैकनामानि सर्ववेदाधिकं मतम् ।
तादृङ्नामसहस्रेण रामनामसमं मतम् ॥

अर्थ-विष्णुके सहस्र नाम हैं, उनमेंसे एक एक नाम सर्व वेदोंसे अधिक मानाजाता है, अर्थात् चार वेदका पारायण करनेसेभी विष्णुके एक नामका अधिक फल है, और उतने विष्णुके हजार नामोंके तुल्य एक राम नाम माना है इति ॥ ऐसा शिवनेभी पार्वतीको कहा है कि-

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने ॥

अर्थ-हे वरानने ! राम राम राम इस प्रकारसे मनोहर श्रीराममें मैं रमण करता हूं. क्योंकि रामका जो एक नाम है, सो विष्णुके हजार नामोंके तुल्य हैं, अर्थात् विष्णुके सहस्र नामका पाठ करे अथवा एक रामनामका एक बार उच्चारण करे इन दोनोंका तुल्यही फल है इति । विष्णु कैसे हैं कि-

---

१ रेफो ज्योतिर्मयं तस्मात्कृतमाकारयोजनम् । मकारोभ्युदयार्थत्वात्सा मायेति प्रकीर्त्यते॥इति किञ्च वेदप्रतिपाद्यविशिष्टाद्वैतमपीत्यमत्र सिद्धं इति-
एक अकार रेफमें है, दूसरा अ, मिलके रा हुआ और मकारका अनुस्वार होनेसे रां बीज सिद्ध हुआ इति ॥

योगो ज्ञानं तथा सांख्यं विद्याः शिल्पादि कर्म च।
वेदाः शास्त्राणि विज्ञानमेतत्सर्वं जनार्दनात् ॥

अर्थ–योग, ज्ञान, तथा सांख्य, विद्या शिल्पादिक कर्म, वेद शास्त्र विज्ञान यह सर्व जनार्दन विष्णु भगवान्से उत्पन्न हुये हैं। ऐसे माहात्म्यवाले विष्णुके नामोंसे सहस्र गुण अधिक फल एक रामनामसे प्राप्त होता है इति। ऐसे पर ब्रह्म श्रीरामचंद्र मुमुक्षु और बुभुक्षुओंको निरंतर सेवन करने योग्य हैं। फिर कैसा है रां बीज कि (जगदुदाधारभूतं) अर्थात् स्थावर जंगमरूप प्रपंचका अत्यंत आधाररूप है. तहां श्रुति–

सदेव सौम्येदमग्र आसीत्। तदैक्षत बहुस्याम्।
तत्तेजोसृजत। यतो वा इमानि भूतानि जायंते॥

अर्थ–हे सौम्य श्वेतकेतो! यह नाम रूप विकारवाला जगत् अपनी उत्पत्तिसे पूर्व सदात्मकही हुआ था, सो सत् परमात्मा, बहुत रूप होनेकी इच्छा करता हुआ सो सत् तेजको सृजता भया, जिस सत् रूप परमात्मासे ब्रह्मादि स्तंब पर्यंत यह सर्वभूत उत्पन्न होते हैं इति॥ और तैसेही रामतापिनी उपनिषद्‌मेंभी कहा है कि–

सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ जातान्याभ्यां भुवनानि द्विसप्तस्थितान्येव। एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्॥

अर्थ–सीताराम तन्मय हैं सो पूजने योग्य हैं इन सीतारामसे तल १, अतल २, सुतल ३, वितल ४, महातल ५, पाताल ६, रसातल ७, भूर्लोक ८, भुवर्लोक ९, स्वर्लोक १०, महर्लोक ११, जनलोक १२, तपोलोक १३, सत्यलोक १४, ये चतुर्दश लोक उत्पन्न होकर स्थितिको प्राप्त हुये हैं. यह श्रीराम सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, अंतर्यामी, सर्वका योनि (कारण) हैं, और यह सीताराम, सर्व भूतोंके सृष्टि और प्रलयके कर्त्ता हैं इति।

प्रश्न--इस श्रुतिमें सर्वशब्द पूर्वक जो ईश्वर शब्दादिकोंका कथन है सो क्या अभिप्रायवाला है, क्योंकि--श्रीराम ईश्वर हैं, ऐसा कहना था परंतु सर्वेश्वर कहनेमें क्या तात्पर्य है?

उत्तर–अपने घरका ईश्वर गृहपति है, इंद्रलोकका ईश्वर इंद्र है. शिव कैलासका ईश्वर है. ब्रह्मा सत्यलोकका ईश्वर है. इस प्रकारसे यम, वरुण, कुबेर, सूर्य, चंद्रादिक सर्व अपने अपने स्थानोंके ईश्वर हैं. परंतु सर्वेश्वर इनमें कोई भी नहीं है, और श्रीराम तो पूर्वोक्त शिव ब्रह्मादिक सर्वके ईश्वर होनेसे सर्वेश्वर हैं और अपने अपने देशोंमें रहे हुए प्रत्यक्ष पदार्थोंका ज्ञान तो सब कोईको है, परंतु परोक्षपदार्थका ज्ञान किसीकोभी नहीं है. अर्थात् भूर्लोकमें रहनेवाले पातालादिक लोकोंमें रहे हुए पदार्थोंको नहीं जान सकते हैं यदि वे पुरुष जाननेवाले हैं तो भी सर्वज्ञ नहीं है. और तो श्रीराम, दृष्ट अदृष्ट भूत भविष्य वर्तमान गुप्त प्रगट आकाश पातालादिस्थ सर्व पदार्थोंको जानते हैं इस वास्ते श्रीरामको श्रुतिमें सर्वज्ञ कहा है, तथा अपने शिष्यों करके अपने अपने गुरु उपास्य है, और अपने अपने उपासकों करके ब्रह्मा शिवादि देवभी उपासना करने योग्य हैं, तथा पुत्रकरके पिता और स्त्रीकरके पति उपास्य है इस प्रकारसे वे ब्रह्मादिक उपास्य तो हैं परंतु सर्वोपास्य नहीं है और श्रीराम तो सर्वेश्वर होनेसे सर्वोपास्य हैं, जैसे अपने अपने घरोंकाही प्रकाशक दीपक है परंतु सो दीपक सर्व प्रकाशक नहीं. सर्वप्रकाशक तो एक सूर्यही है, तैसे दीपकस्थानीय सर्व देव हैं, और सूर्यस्थानीय श्रीराम हैं इति ॥ पद्मपुराणमेंभी कहा है कि—

त्वं विष्णुस्त्वं परं ब्रह्म योगिध्येयः सनातनः ।
त्वमेव सर्वदेवानामनादिनिधनोऽव्ययः ॥
त्वं हि नारायणः श्रीमान् सीता लक्ष्मीः सनातनी ॥

अर्थ–हेराम ! तुम विष्णु हो, तुम परब्रह्म हो, तथा तुम योगियों करके ध्यान करने योग्य हो, तथा सनातन हो, और सर्व देवोंके मध्यमें तुमही उत्पत्ति विनाशसे रहित हो, तथा अव्यय हो, और तुमही नारायण हो, तथा तुम श्रीमान् हो, और सीता सनातनी लक्ष्मी हैं इति । फिर अगस्त्यसंहितामें श्रीरामकोही परब्रह्म कहा है कि–

यथा घटश्च कलशः पदार्थस्याभिधायकः ।
तथा ब्रह्म च रामश्च नूनमेकार्थतत्परः ॥

अर्थ–जैसे घट और कलश घटादि पदार्थके वाचक हैं, वैसे ब्रह्म और राम

निश्चय करके एक अर्थमें तत्पर हैं, अर्थात् ब्रह्म और राम एकही हैं भिन्न नहीं इति । और रामतापिनी उपनिषद्में भी रामकोही सच्चिदानंद परब्रह्म कहे हैं॥

एवंभूतं जगदाधारभूतं रामं वन्दे सच्चिदानन्दरूपम् ॥

अर्थ-जगत्के आधारभूत तथा सच्चिदानंदरूप ऐसे रामको मैं वंदना करता हूं इति ॥ इस प्रकारके प्रमाणों करके जगत्का आधाररूप रां बीज है इति । फिर कैसा है रां बीज कि (सबिंदुं) अर्थात् बिंदु करके सहित है, सो बिंदु कैसा है कि-शब्दसृष्टि और अर्थसृष्टिका कारण है ।

प्रश्न-शब्दसृष्टि और अर्थसृष्टिका किस प्रकारसे कारण है ?

उत्तर-बिंदुसे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे सत्व रज तम इन तीन गुणोंवाला अहंकार, उस अहंकारसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गंध यह पंच तन्मात्रा, और पंच तन्मात्राओंसे पंच भूत उत्पन्न हुये. है जैसे कि शब्दसे आकाश, स्पर्शसे वायु, रूपसे तेज, रससे जल, और गन्धसे पृथिवी उत्पन्न हुई और उन पंचभूतोंसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है ॥ इति अर्थसृष्टि ॥ अब शब्दसृष्टिको सुन । बिंदुसे नाद उत्पन्न हुआ वह नाद परा, पश्यंती, मध्यमा और वैखरी इन चार वाक्रूप अवस्थाओंको अनुभव करके स्वर, वर्ण, पद, वाक्य रूप होता है । इति शब्दसृष्टि ॥

और स्मृतिमेंभी श्रीरामसेही जगत्की और ॐकारकी उत्पत्ति कहीहै कि-

अखण्डब्रह्मणो रामाज्जगतां प्रेरकात्तथा ।
प्रकृतिस्तन्महत्तत्त्वं ततोऽहं त्रिगुणात्मकः ॥
रामनामसमुत्पन्नः प्रणवो मोक्षदायकः ।
प्रणवं केचिदाहुर्वै बीजं श्रेष्ठं तथापरे ॥
तत्तु ते नामवर्णाभ्यां सिद्धमाप्नोति मे मतम् ॥

अर्थ-अखंड ब्रह्मरूप श्रीरामसे प्रथम प्रकृतिरूप मायाशक्ति उत्पन्न हुई उस प्रकृतिसे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे सत्वगुण, रजोगुण तमोगुण इन तीनों गुणोंवाला अहंकार और मोक्षदायक प्रणवभी रामनामसेही उत्पन्न हुआ ॥ तहां कोई पुरुष प्रणवको श्रेष्ठ कहते हैं और कोई पुरुष बीजको श्रेष्ठ कहते हैं परन्तु वे प्रणव और बीज तुम्हारे रकार मकार अक्षरोंसे सिद्ध होते हैं। ऐसा हमारा मत है इति । सो महारामायणमेंभी कहा है कि—

अंशांशै राभनाम्नश्च त्रयः सिद्धा भवंति हि ।
बीजओंकारसोहं च सूत्रमुक्तमिति श्रुतिः ॥

अर्थ-रामनामके अंशके अंशों करके तीन निश्चयकरके सिद्ध होते हैं, एक तो बीज और दूसरा ओंकार, तीसरा सोहं ऐसा सूत्र कहा है, सो श्रुतिभी कही है इति । और पद्मपुराणमें भी कहा है कि-

जपतः सर्ववेदांश्च सर्वमन्त्रांश्च पार्वति ।
तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं रामनाम्नैव लभ्यते ॥

अर्थ-महादेव कहते हैं कि, हे पार्वति ! सब वेदों तथा सब मंत्रोंको जपनेवाले पुरुषको जितना पुण्य फल होता है, उस फलसे कोटि गुणा अधिक फल एक रामनामके जपनेसेही प्राप्त होता है इति ॥ ऐसा राममंत्रका माहात्म्य है सो हम कह सक्ते नहीं.फिर बीज कैसा है कि-(सुव्यक्तम्[1]) अर्थात् जिस बीज करके यह चराचर जगत् सुंदर प्रकारसे प्रकाशमान होती है. और इस रां बीजमें वासुदेवादि चतुर्व्यूहावतारभी स्फुट प्रतीत हुआ दीखता है. वहां सीता समेत दो विभूतियोंके मालिक श्रीराम चार प्रकारकी मूर्तियोंकरके अवतार लिये हैं. उन दो विभूतियोंमें लीलाविभूतिमें अपनी की हुई धर्म अधर्मकी व्यवस्थाको भंग करनेको प्रवर्त हुए जो निरंकुश अधमप्राणी हैं उनका निग्रह करनेको आप त्रिपाद्विभूतिसे सकल ऐश्वर्य करके परिपूर्णही जब भूमीमें अवतार लेते हैं तब अवतार लिया ऐसा कहा जाता है; सो ब्रह्मानंद मूर्ति श्रीराम रेफरूप अर्द्धमात्रात्मक हैं, और बीजसे उत्पन्न हुआ जो ओंकार है उसके अ उ म् यह तीन अक्षर हैं. उन तीन अक्षरोंसे लक्ष्मण, शत्रुघ्न, और भरत, यह तीनों प्रगट हुये हैं । सो कहा है कि-

अकाराक्षरसंभूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः ।
उकाराक्षरसंभूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः ॥
प्रज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसंभवः ।
अर्द्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः ॥

---

१ सुष्ठु व्यज्यते प्रकाश्यते चराचरं येन तत्सुव्यक्तम् ।

अर्थ–ओंकारके अकार अक्षरसे विश्वनामा लक्ष्मण, उकारसे तेजस्वरूप शत्रुघ्न, मकारसे प्रज्ञारूप भरत प्रगट हुये, और अर्द्धमात्रात्मक ब्रह्मानंद मूर्ति श्रीराम प्रगट हुये इति । इस प्रकारसे ओंकाररूप श्रीराम लक्ष्मण शत्रुघ्न और भरत यह चार व्यूहरूप बीजमें रहते हैं इसकारण मुमुक्षुओंको उपासना करने योग्य हैं ।

प्रश्न–ओंकारके सब मिलकर कितने अक्षर हैं ?

उत्तर–षट् अक्षर हैं. रामतापिनीउपनिषद्में कहा है कि–

"अकारः प्रथमाक्षरो भवति । उकारो द्वितीयाक्षरो भवति । मकारस्तृतीयाक्षरो भवति । अर्द्धमात्रश्चतुर्थाक्षरो भवति । बिंदुः पंचमाक्षरो भवति । नादः षष्ठाक्षरो भवतीति ॥"

इसका अर्थ सुगम है । तहां प्रणवका अवयव जो अकार सो राममंत्रका प्रथम अक्षर है, और ओंकारके षट् अक्षरोंके मध्यमें अकार उकार मकार ये तीन अक्षर मूर्त्त हैं, और अर्द्धमात्रादिक तीन अमूर्त्त हैं, और नादसे पर शक्ति शांता भी प्रणवमें जानने योग्य है । इस प्रकार रां बीजही प्रणवरूप होनेसे ब्रह्मका वाचक धर्म अर्थ काम मोक्षका दाता उपासना करने योग्य है । इस प्रणवका अर्थ दो प्रकारका कुशलपुरुष वर्णन करते हैं. जैसे कि अकार ईश्वरका वाचक है, और मकार जीवका वाचक हैं इन दोनोंके संबंधका प्रापक उकार है इस प्रकारसे जीव और ईश्वर प्रणवका प्रथम अर्थ है। तथा आकारकी वाच्य सीता है और उकारके वाच्य श्रीराम हैं और मकार सीतारामके ज्ञानका वाचक है अर्थात् अकार उकारके वाच्य जो सीताराम है,उनके मनन (ज्ञान)से जीवोंकी मुक्ति होती है, क्योंकि "मन ज्ञाने" मन धातुका मननार्थक मकार है इस रीतिसे लक्ष्मीनारायण प्रणवका द्वितीय अर्थ है ॥

प्रश्न–सीता राम,प्रणवका द्वितीय अर्थ है,कि लक्ष्मी नारायण द्वितीय अर्थ है?

उत्तर"–सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवो नारायणः प्रभुः॥"

हे रामचंद्रजी ! यह सीता साक्षात् लक्ष्मी है और तुम विष्णु देव नारायण प्रभु हो । इस अगस्त्य ऋषिके वाक्यसे सीतारामका, लक्ष्मीनारायणके साथ स्वरूपका ऐक्यपना है ।

प्रश्न–स्वरूपसे ऐक्यपना है. परंतु विग्रह भेद है ।

उत्तर–प्रणवमें विग्रहके भेदका वाचक कोईभी चिन्ह नहीं दीखता है, और जो विग्रह भेद मानोगे तो 'गायत्रीका विवरणरूप रामायण' सर्व विद्वानोंको प्रसिद्ध है. और उसका अर्थ जानकी राम है, सो किस प्रकारसे घटेगा. और आचार्योंनेभी कहा है कि–

" गायत्रीमूलमन्त्रद्वयशरणागतिमन्त्रविवरणरूपं रामायणं व्याख्येयम् । "

इस प्रकारसे वे आचार्य क्यों कहते और " चतुर्वेदसमन्वितम् " इस प्रकारका सर्व वेदोंके अर्थका उपबृंहणका प्रतिज्ञा[1]नभी किस प्रकारसे संभवेगा ।

" इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत् । "

इस न्याय करके और–

" वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ।
चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् ।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् । "

इत्यादिक शास्त्रोंके साथ विरोध आवेगा इति । फिर (रां) बीज कैसा है कि–(श्रुतिमुनिगदितोत्कृष्टषड्व्याप्तिभेदम्) श्रुति और मुनियोंकरके कहेहुये सुन्दर नाम, रूप, गुण, स्वरूप, विभूति, आश्रित–इस षट् व्याप्तियोंके भेद जिस (रां) बीजमें हैं अब इन षट्व्याप्तियोंमेंसे प्रथम नामव्याप्ति कहते हैं ।

नामव्याप्ति ।

ऋग्वेदे स यजुर्वेदे तथैवाथर्वसामसु ।
पुराणे सोपनिषदे तथैव ज्योतिषेऽर्जुन ॥
सांख्ये च योगशास्त्रे च आयुर्वेदे तथैव च ।
बहूनि मम नामानि कीर्तितानि महर्षिभिः ।
गौणानि तत्र नामानि कर्मजानि च कानि च ॥

अर्थ–भगवान् अर्जुनके प्रति कहते हैं, हे अर्जुन ! ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, तथा अथर्वणवेद, तथा पुराणों, ज्योतिष तथा सांख्यशास्त्र, तथा योग-

---

1 अंगीकारभी ।

शास्त्र और आयुर्वेद, इन वेदादिक सर्वग्रन्थोंमें महर्षिलोकोंने हमारा नाम बहुत कीर्त्तन किये हैं, उन अनेक नामोंमें कोई गौण नाम हैं, और कोई गौण नाम कर्मजन्य हैं ॥ इस रीतिसे महाभारतके शांतिपर्व उत्तरार्द्धमें श्रीकृष्णभगवानने नामव्याप्ति कही है इति । फिर विष्णुरहस्यग्रन्थमें भी नाम व्याप्ति कही है कि—

वेदे रामायणे शास्त्रे पुराणे भारते तथा ।
आदौ मध्ये तथा चान्ते हरिः सर्वत्र कीर्त्यते ॥

अर्थ—वेदोंमें, रामायणमें, शास्त्रोंमें, पुराणोंमें, तथा भारतमें इन सब ग्रन्थोंके आदिमें मध्यमें और अंतमें सब ठिकाने हरिका कीर्त्तन किया है अर्थात इन सर्व ग्रंथोंमें एक हरिनामकाही कीर्तन किया हुआ है इति ॥ फिर यजुर्वेदमें तथा बृहदारण्यक उपनिषदमें ऐसा लिखा है कि--

यस्य नाम महद्यशः । ब्रह्मे तद्धि सर्वाणि नामानि बिभर्ति ॥

अर्थ--जिस परमात्माके नामका बहुत बडा यश है । और यह श्रीराम ब्रह्मही चराचरके सर्व नामोंको धारण करते हैं, क्योंकि भगवान् विश्वरूप हैं इसीलिये चराचर विश्वके जितने नाम हैं वह सब नाम विश्वरूप भगवानकेही हैं । इस रीतिसे भगवतके नाम असंख्यात होनेसे व्यापक हैं इति ॥ फिर गीता सनत्कुमारसंहिता और यजुर्वेदमें भी परमात्माके नामको ब्रह्मरूप करके कहा है कि—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म तारकं ब्रह्मसंज्ञकम् ।
नामैव ब्रह्मरूपेण श्रुतय आहुरिति ॥

अर्थ--(ओं) यह जो एक अक्षर परमात्माका नाम है सो ब्रह्म है । और परमात्माका जो राम ऐसा नाम है सो सर्व आश्रित जनोंका तारक है और उसकी ब्रह्मसंज्ञा है । तथा ईश्वरके नामकोही श्रुतियां ब्रह्मरूप करके कहती हैं इति ॥ इस प्रकार मन्त्रमें जो व्यापकता कही है सो शब्दद्वारक नहीं है किन्तु अर्थसे व्यापकता सिद्ध होती है. क्योंकि चराचरमें रमण करनेसे राम ऐसा परमात्माका नाम है. इसलिये रामनाममें अर्थसे व्यापकता प्रतीत होती है शब्दके रूपसे नहीं । जैसे यह जो ब्रह्म नाम है सो अर्थद्वारा व्यापक

है कुछ शब्दद्वारा व्यापक नहीं है ॥ और हे शिष्य ! यह जो राममंत्र है सो माहात्म्यसेभी दूसरे सब मंत्रोंसे अत्यंत श्रेष्ठ है ऐसा वृद्धमनुस्मृतिमें कहा है कि—

सप्तकोटिमहामंत्राश्चित्तविभ्रमकारकाः ।
एक एव परो मंत्रो राम इत्यक्षरद्वयम् ॥

अर्थ—वेदादिक सकल शास्त्रोंमें वडे वडे सात करोड मंत्र लिखे हुये हैं, वे सर्व मंत्र चित्तमें भ्रमको उपजानेवाले हैं, उन सप्तकोटि वडे वडे मंत्रोंके मध्यमें राम इन दो अक्षरवाला एक मंत्रही सब मंत्रोंसे श्रेष्ठ है॥ जो इसमें विश्वास न आता हो तो शिव, अगस्त्य,शरभंग, सुतीक्ष्ण आदि श्रीरामके परम भक्त हैं उन भक्तोंने किये हुये रामनाम माहात्म्यके ग्रंथोंका अवलोकन कर देखो इति॥

प्रश्न--हे गुरुजी ! कोई नास्तिक पंथोंवाले ऐसा कहते हैं कि, त्रेतायुगमें रामावतार हुआ है, तवसे सब लोक रामका नाम लेने लगे हैं. रामनाम कुछ अनादिकालसे नहीं है ।

उत्तर--अहो ! ऐसे कहनेवाले मूर्खोंके अग्रेसर अपनी मूर्खता आपही प्रगट करते हैं क्योंकि, वे मूर्खोंके शिरदार त्रेतायुगमेंही रामनामकी उत्पत्ति मानते हैं तो भला सतयुगमें सनकादिकोंने वाल्मीकिको रामनामका उपदेश किया था सो बात सब कोई जानते हैं, रामनामके प्रभावसे वाल्मीकिके हृदयमें ज्ञान-दीपक प्रगट हो जिसने शतकोटि ग्रंथात्मक रामायणको ब्रह्माके वरप्रसादसे२४ हजार ग्रंथमें रामायण किया है इस करके आदिकवि नाम प्रसिद्ध है ॥ और

"रामनामप्रभावेण स्वयंभूः सृजते जगत् ।"

रामनामके प्रभाव करके ब्रह्मा जगत्को उत्पन्न करता है. इत्यादिक शास्त्रोंके प्रमाणसे जगतसेभी प्रथम रामनामकी सिद्धि होती है. और—

"रामात्संजायते कामः कामाद्विश्वं प्रजायते ।"

श्रीरामपरमात्मासे काम उत्पन्न हुआ है और उस कामसे सब विश्व उत्पन्न होता है, इस रीतिसे सकल जगतके कारणरूप श्रीराम परब्रह्मकी त्रेतायुगमेंही उत्पत्ति माननेवाले निंदकोंके मुख तोडनेवास्ते यह प्रमाणरूप वज्र शस्त्रका दंडा है ॥ फिर प्रह्लाद कहते हैं कि—

रामनाम जपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकभेषजम् ।
पश्य तात मम गात्रसन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना ॥

अर्थ--अहो ! रामनाम जपनेवाले पुरुषोंको किसी प्राणीसेभी भय नहीं होता है, वह रामनाम कैसा है कि, अध्यात्म-अधिभूत और अधिदैव इन तीन प्रकारके सर्वदुःखोंके नाश करनेमें मुख्य औषधिरूप है, प्रह्लाद अपने पितासे कहते हैं कि हे तात ! तुमको विश्वास नहीं आता हो तो प्रत्यक्ष देखो कि मेरे शरीरमें तुमसे लगाया हुआ यह अग्निभी रामनामके प्रतापसे जलकी तरह शीतल होगया है ॥

हे रामद्वेषिक ! विचार करो कि--त्रेतायुगसे प्रथम जो सतयुग है. उस सतयुगमें प्रह्लाद भक्तने रामका भजन किया था, उसके द्वेषसे हिरण्यकशिपुने प्रह्लादभक्तको अग्निमें जलाना सुरु किया परंतु अग्निमेंसे प्रह्लाद भक्त अदग्ध निकलकर पूर्वोक्त रामनामका माहात्म्य अपने पितासे कहा था इसलिये रामनाम अनादि है और अवतारानंदके प्रवाहको वर्षनेवाला है और सर्व जनोंको ग्रहण करने योग्य है तथा सर्व आपत्को निवारण करनेवाला ऐसा भगवत्मंत्र असंख्यात होनेसे व्यापक है इति ॥ इति नामव्याप्ति ॥

प्रश्न–विग्रहको कर्माधीन होनेसे भगवत्को दिव्यमंगलविग्रहविशिष्टपना कौन प्रकारसे सिद्ध होवेगा ? ।

रूपव्याप्ति ।

उत्तर–भगवतके दिव्यमंगलविग्रहपनेको अनेक श्रुति स्मृतियों करके सिद्ध होनेसे तुम्हारे संदेहको अवकाश नहीं हैं, सो छांदोग्य उपनिषद्में लिखा है कि–

"य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेशः। आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णस्तस्य कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी ॥" इति ॥

अर्थ–जो यह (पुरुष) आदित्यमें सुवर्णमय, प्रकाशमानश्मश्रुवाला, प्रकाशमान केशोंवाला, नखशिखपर्यंत सबही प्रकाशरूप अर्थात् तेजोमय प्रकाशरूप जो पुरुष दीखता है, उस पुरुषके नेत्र गंभीर जलमें रहकर जलको पीनेवाला जो नालहै उसमें रहनेवाला और सूर्यकी किरणों करके प्रफुल्लित और अत्यंत निर्मल जो कमल है उस कमलके समान हैं ॥ हे वादि ! इस प्रकारसे भगवतका दिव्य मंगल विग्रहको श्रुतिने प्रतिपादन किया है । विग्रह दो प्रकारका है, एक तो

१ कं जलं पिबतीति कपिः नालं तत्र आस्ते तिष्ठतीति कप्यासं तेनाम्लानत्वं तस्य प्रतिपादितं तादृशं पुण्डरीकं यथा एवं तस्याक्षिणी इति ।

प्राकृत विग्रह है दूसरा अप्राकृत विग्रह है। उनमें प्राकृत विग्रह जो है सोही कर्माधीन होता है, और भगवतविग्रह तो अप्राकृत होनेसे कर्माधीन नहीं है।

प्रश्न–दशरथके घरमें रामने जन्म लिया है कि नहीं, और जो जन्म लिया है तो अजन्मा ईश्वर किस प्रकारसे है ?

उत्तर–हां ! जन्म तो लिया है, परंतु वह जन्म आविर्भावरूप है, अन्य जीवोंकी तरह कर्माधीन नहीं है। जैसे नट अनेक प्रकारके रूप धारण करता है परंतु उन रूपों करके नटका कुछ जन्म नहीं कहा जाता है। जब नट स्त्रीका वेष धारण करता है तब अज्ञानी लोग उस नटको स्त्री मानते हैं, परंतु वह नट अपने आपको स्त्री नहीं मानता है, और विवेकी पुरुषभी इस नटको स्त्री आदिक नहीं मानते हैं, किंतु उसको तत्वसे नटही जानते हैं। और नटने जो स्त्रीका वेष लिया है वह वेष कर्माधीन नहीं है किंतु यह स्त्री आदिक शरीर नटकी इच्छासे बनाहुआ है तैसे परमात्माभी स्वेच्छासे योगिलोगोंके सदृश रामकृष्णाद्यनन्त अवतार आश्रितरक्षणार्थ धारण करलेते हैं–

परमात्माके अवतारोंमें प्रमाण।

"इच्छागृहीताभिमतोरुदेहः। अजायमानो बहुधा विजायते। अपाणिपादो जवनो ग्रहीता।अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्।

"अजोपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥
बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
जन्म कर्म च मे दिव्यम्॥"

अर्थ–परमात्मा अपनी इच्छासे बहुत रूप ग्रहण करते हैं। परमात्मा अजन्मा हैं तथापि आश्रितोंके रक्षणार्थ बहुत प्रकारसे प्रगट होते हैं। जिस परमात्माके हस्त पाद नहीं हैं तथापि बहुत वेगवान हैं और बहुत ग्रहण करनेवाले हैं परमात्मा शरीररहित हैं तथापि सब नाशवानशरीरोंमें रहते हैं और महान् विभु हैं। गीतामें अर्जुनको भगवान् कहते हैं. हे अर्जुन ! मैं अज

और अव्ययात्मा और सब भूतोंका ईश्वरभी हूं तथापि अपनी प्रकृति (स्वभावको) आश्रय करके अपनेही रूपकरके स्वेच्छासे प्रगट होता हूं परन्तु मेरा जो अजत्व, अव्ययत्व आदिक सर्व पारमैश्वर्य प्रकारको नहीं छोडताहुआही प्रगट होता हूं ॥ मूल श्लोकमें (आत्ममायया) ऐसा शब्द है, सो मायाशब्द ज्ञानका पर्याय है । 'मायावयुनं ज्ञानम्' इस श्रुतिमें ज्ञानका पर्याय मायाशब्द कहा है॥ और अभियुक्तोंकाभी ऐसा प्रयोग है कि " मायया सततं वेत्ति प्राणिनां च शुभाशुभम्" ईश्वर प्राणियोंके शुभ और अशुभको माया करके निरंतर जानता है । इससे भगवान् ऐसा कहते हैं कि–मैं इतर जीवोंके समान कर्माधीन जन्मको ग्रहण नहीं करता, और अपने संकल्पसे देवादिरूपमें प्रगट होता हूं ॥ हे अर्जुन ! जो साधु वैष्णवाग्रेसर हैं उनका रक्षण करने और दुष्टजनोंका नाश करनेवास्ते तथा मेरा आराधनरूप जो धर्म है उसका आराध्यस्वरूप दिखाकर रक्षण करनेवास्ते, मैं देव मनुष्यादि रूपकरके युग युगमें प्रगट होता हूं । हे अर्जुन ! इस प्रकारसे हमारे और तुम्हाराभी जन्म असंख्यात व्यतीत हो गये हैं, उन सब जन्मोंको मैं ईश्वर सर्वज्ञ होनेसे जानता हूं और तू जीव अल्पज्ञ होनेसे नहीं जानता है । और हे अर्जुन ! मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं, अलौकिक हैं. उन मेरे जन्म और कर्मोंको जाननेवाला पुरुष इस वर्तमान देहका त्याग करके फिर जन्मको धारण नहीं करता है किंतु मेरेकोही प्राप्त होता है इति ॥ इस रीतिसे हे वादि ! दिव्यमंगलविग्रहरूपी परमात्माही अस्मदादिकोंको प्राप्य है । परमात्माका नित्य विग्रह स्थानादि सद्भावमें बहुत श्रुति आदि प्रमाण हैं । परमात्माका देह प्राकृत नहीं है–

न तस्य प्राकृता मूर्तिर्मांसमेदोस्थिसंभवा ।
न भूतसंघसंस्थानो देहोस्य परमात्मनः ॥

अर्थ–जैसे जीवोंके शरीर हाड मांस और रक्त आदिकोंकरके बने हुये प्राकृत शरीर है तैसे उसपरमात्माकी मूर्ति मांस मेद और अस्थि इनकरके बनी हुई प्राकृत पंचभूतोंके समूहकी आकृतिवाला] नहीं है किंतु शुद्धसत्त्वात्मक पंचोपनिषदाख्य दिव्यपंचभूतमय है । पंचोपनिषत्तत्व विरजा नदीके ऊपर भागमें है और नीचे प्रकृतिमण्डल है, बीचमें विरजानदी है, पंचोपनिषत्तत्त्व प्रकृतिमंडलके ऊपर है, सो " पादोऽस्य विश्वा-

---

१–" परमेष्ठी पुमान् विश्वो निवृत्तिः सर्व एव च । "
ये पांच पंचोपनिषद्मंत्र हैं । इन मंत्रोंमें प्रतिपादित दिव्य रूपवाला है ।

भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि " इस श्रुतिमें परमात्माकी संपत्तिमें प्रकृतिमंडल विभूति एकभागमें है, और परमपद विभूति तीन भागमें है। विरजाके नीचे प्राकृत पंचभूत मंडल है और विरजानदीके परे अप्राकृत दिव्यमंगल भाग है। ऐसा तत्त्वत्रयादिग्रंथोंमें पूर्वाचार्योंकरके वर्णित है। हे शिष्य ! इस प्रकारसे परमात्माका विग्रह (शरीर) प्राकृत पंचभूतोंका नहीं है, और कर्माधीनभी नहीं है, तथा कालकृत परिणामादि दोष दूषितभी नहीं है, वैकुंठादिस्थ परमात्माकी मूर्ति नित्य है, परमात्माकी नित्येच्छाधृत होनेसे यही नित्यमुक्तोपासित है, इसही रीतिसे राम कृष्णादि अवतारोंके विग्रहभी परमात्माकी नित्येच्छाधृत होनेसे नित्य हैं ऐसा महावाराहवाक्यसे सिद्ध होता है कि—

सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः ।
हीनोपादानरहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित् ॥
परमानंदसंदोहा ज्ञानमात्राश्च सर्वतः ।
सर्वे सर्वगुणैः पूर्णाः सर्वदोषविवर्जिताः ॥

अर्थ—उस परमात्माके सब अवतार (देह) नित्य, शाश्वत और हीन उपादानसे रहित हैं तथा प्रकृतिजन्यभी नहीं हैं; सर्वप्रकारसे परमानंद और ज्ञानमात्र हैं। तथा परमात्माके राम कृष्णादिकोंके सब रूप संपूर्ण गुणोंकरके पूर्ण अर्थात् अचिंत्य दिव्य अद्भुत नित्य निरवद्य निरतिशय औज्ज्वल्य सौंदर्य सौगंध्य सौकुमार्य लावण्य सौशील्य माधुर्य गांभीर्य औदार्य वात्सल्य यौवनादि अनंत कल्याणगुणोंकरके पूर्ण है, और कालकृत परिणामादि सर्व दोषों करके वर्जित हैं ॥

वादी प्रश्न—हे विशिष्टाद्वैतवादि ! राम कृष्णादि अवतारोंके शरीरोंको पंचभूतके मानिये तो क्या दोष है ?

उत्तर—बहुत दोष हैं सुन। प्राचीन ग्रन्थमें ऐसा दोष लिखा है कि—

यो वेत्ति भौतिकं देहं कृष्णस्य परमात्मनः ।
स सर्वस्माद्बहिष्कार्यः श्रौतस्मार्त्तविधानतः ।
मुखं तस्यावलोक्यापि सचैलं स्नानमाचरेत् ॥

अर्थ—जो पुरुष श्रीकृष्णपरमात्माके देहको पंचभूतोंकरके जानता है सो पुरुष सर्व श्रौत स्मार्त विधानसे बाहिर करने योग्य अर्थात् श्रौत स्मार्त कर्मोंको

करने न लायक है और परमात्माके शरीरको पांचभौतिक माननेवाले पुरुषका मुखभी नहीं देखना चाहिये। कदाचित् अजानसे उसका मुख देख लिया होय तो देखनेवाला पुरुष अपने अंगके वस्त्रोंसहित स्नान करके शुद्ध होता है इति॥

हे वादि! जीवोंके शरीर जैसे पंचभूतोंके हैं तैसे ईश्वरकाभी शरीर पंचभूतोंका कार्य और पुण्य पापादि कर्मोंके आधीन मानोगे तो उस ईश्वरमें और तुम हम जीवोंमें क्या विशेषता रही? किंतु कुछभी विशेषता न रही, और जब ईश्वरमें जीवोंसे विशेषता न रही तब ईश्वरके भजन भक्ति आदि करनेसे क्या प्रयोजन है? जीव और ईश्वर दोनों समान हो तो पूज्य पूजकभावभी नहीं बनेगा, इससे ईश्वरका शरीर पंचभूतोंका नहीं है। और जो वादी ऐसा कहे कि, ईश्वरका शरीर मायाकरके प्रगट होता है, सोभी कहना बने नहीं. क्योंकि ईश्वर विग्रह मायाकरके माननेसे विग्रहमें अत्यंत तुच्छत्वापत्ति दोष लगेगा। कदाचित् वादी ऐसा भी कहे कि, ईश्वरका विग्रह केवल चिन्मय है, सोभी कहना बने नहीं। क्योंकि चितिको साकारपनेका अयोग होनेसे। इसकारण हे मायावादि! ईश्वरका विग्रह प्राकृत पंचभूतोंका नहीं और मायाँरचितभी नहीं तथा परमात्माका विग्रह केवल चैतन्यमयभी नहीं है, किंतु चतुर्भुज द्विभुज आदिक जो परमात्माके रूप हैं वह पंचोपनिषत्तत्त्वात्मक दिव्यमंगलरूप हैं और ऐश्वर्यादि षड्गुणों करके पूर्ण हैं, तथा परमात्माकी नित्येच्छासे धारण किये हुये हैं इससे नित्य हैं। जैसे अस्मदादिकोंके शरीरोंसे जीवात्मा भिन्न तत्त्व है, तैसे चतुर्भुजादि दिव्यविग्रहसे परमात्मस्वरूपभी भिन्न तत्त्व है परंतु अवतार असंख्यात होनेसे और कालादि अपरिछिन्नत्वरूपसे परमात्मविग्रह व्यापक हैं। ऐसी परमात्मविग्रहकी व्याप्ति है। और इस परमात्माके दिव्यमंगलविग्रहसे जीवोंके प्राकृतशरीर जुदे हैं जैसे कि विश्वनामा जो जीव है उनके व्यष्टिशरीर स्थूल भूतोंके कार्यरूप है। और स्वप्नावस्थामें स्थित तैजस नामा जो जीव है उनके व्यष्टिशरीर सूक्ष्मभूतोंके कार्यरूप हैं। तथा विराट् नामा जो जीव है उसका समष्टिशरीर स्थूल भूतोंका कार्यरूप है और हिरण्यगर्भ नामा जो जीव है उसका समष्टि शरीर सूक्ष्म भूतोंका कार्यरूप है। इस प्रकारसे विश्व, तैजस, विराट् और हिरण्यगर्भ, इन जीवोंकेही स्थूल और सूक्ष्म भूतोंके भौतिक शरीर हैं। वे भौतिक शरीर परमात्माके नहीं हैं॥

वादि प्रश्न–परमात्माको निराकार माननेमें और रूपी न माननेमें क्या दोष है?

निराकारब्रह्मवादखण्डन ।

उत्तर–जो ईश्वरको रूपी नहीं माने तो ईश्वर जगत्का कर्ताभी सिद्ध नहीं हो सकेगा, क्योंकि जो निराकार होता है सो क्रियासे रहित निष्क्रियही होता है । जब ईश्वरको निराकार निष्क्रिय अंगीकार करोगे तो वह निष्क्रिय होनेसे जगत्की उत्पत्तिभी नहीं बनेगी. और शास्त्रमें वेदोंकी उत्पत्ति ईश्वरके श्वाससे लिखी है । अब जो ईश्वरकी मूर्ति अंगीकार न करे तो शरीरके विना श्वास कहांसे आया ? और मुखके विना वेदोंका उच्चारण किस प्रकारसे किया ? और ब्रह्माको उत्पन्न करके उसको परमेश्वरने वेद पढाये, ऐसा जो वेदमें लिखा है इसमें बाध आवेगा इति ॥

वादिप्रश्न–हे विशिष्टाद्वैतवादि ! हमारे केवल अद्वैतमतमें परमात्माका स्वरूप निर्विशेष सिद्ध किया है, सोही मत समीचीन है ?

उत्तर–निर्विशेष अद्वैतमत अप्रमाणिक होनेसे समीचीन नहीं है, क्योंकि निर्विशेष वस्तुमें षट्प्रमाणोंमेंसे एकभी प्रमाण नहीं लगता है । उस निर्विशेषमें रूपादिकोंका अभाव होनेसे प्रथम प्रत्यक्ष प्रमाणभी नहीं लगता है १ । तद्व्याप्य लिंगका अभाव होनेसे अनुमानप्रमाणभी नहीं लगता २ । तत्सादृश्यका अभाव होनेसे उपमानप्रमाणभी नहीं ३ । प्रकृति निमित्त जात्यादिकोंके अभावसे शब्दप्रमाणभी नहीं ४ । तद्विना अनुपपद्यमान अर्थका अभाव होनेसे अर्थापत्तिप्रमाणभी नहीं ५ । और भावरूपत्वकरके उसका आगोचरत्व होनेसे अनुपलब्धिप्रमाणभी नहीं ६ । इन षट् प्रमाणोंमेंसे एकभी प्रमाण निर्विशेषमें नहीं लगता है इसलिये सो निर्विशेष योगियों तथा मुमुक्षुओं और भक्तजनोंको ध्यान करनेयोग्य नहीं होनेसे कार्यका नहीं इति ॥

वादिप्रश्न–इनके कार्य कौन है ?

उत्तर–योगशास्त्रके कर्ता शेषावतार श्रीपतंजलि भगवानने जैसा ईश्वर प्रतिपादन किया है सोही ईश्वर भक्तादिकोंके ध्येय होनेसे कार्य है । सो इस सूत्रमें लिखा है कि–

"क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ।"

अर्थ–क्लेश कर्म विपाक और आशय इन चारोंकरके भूत भविष्यत् और वर्तमान इन तीनों कालमें संबंधसे रहित जो पुरुषविशेष है उसका नाम ईश्वर है. सोही ईश्वर योगी मुमुक्षु और भक्तजनोंको सेवने योग्य है। इसलिये ईशावास्य श्रुतिभी परमात्मोपासनमें प्रार्थना करती है कि—

"पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह तेजः। यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योसावसौ पुरुषः सोहमस्मि ॥"

हे निर्विशेषवादि ! परमेश्वरका स्वरूप निर्विशेष नहीं है किंतु परमात्माका स्वरूप विशिष्टाद्वैत है. जो चिदचिद्विशिष्टस्वरूप परमात्मा है सोही दिव्यमंगलमूर्तियोंको धारण करता है। जैसे वैडूर्यमणि रक्त पीत हरित आदिक वर्णोंसे युक्त हो रक्त पीतादिक रूपभेदको प्राप्त होता है तैसे परमात्माभी अपने भक्तजनोंके ध्यानवशसे अप्राकृत दिव्यमंगलमूर्तियोंको धारण करते हैं और भक्तजनोंके भक्तिवशसेही त्रिपाद्विभूतिसे इस एकपाद प्रकृतिमंडलमेंभी आते हैं इति।

वादिप्रश्न–शास्त्रोंमें परमात्माको निराकार कहा है और तुम तो उस परमात्माको साकार (आकार करके सहित) बताते हो सो मेरे मनमें नहीं आता है।

उत्तर–हे संशयात्मा ! शास्त्रमें जिस स्थानमें परमात्माको निराकार कहा हैं, उस ठिकानेपर पंच भूतोंके प्राकृत आकारसे रहित कहा है. कुछ अप्राकृत दिव्य मंगल आकारसे रहित नहीं कहा है। निराकार शब्दका अर्थ पंचभूतोंके प्राकृत आकारसे रहित है। क्योंकि, वैकुंठवासी परमात्माका स्वरूप साकारही शास्त्रोंमें प्रतिपादित है कि–

सव्यं पादं प्रसार्य श्रितदुरितहरं दक्षिणं कुञ्चयित्वा
जानुन्यादाय सव्येतरमितरभुजं नागभोगे निधाय।
पश्चाद्वाहुद्वयेन प्रतिभटशमने धारयन् शंखचक्रे
देवीभूषादिजुष्टो जनयति जगतां शर्म वैकुण्ठनाथः ॥

इस प्रकार चतुर्भुजत्वादि जो आकार है सो प्राकृत पंचभूतोंका आकार नहीं है, किंतु अप्राकृत पञ्चोपनिषन्मय आकार हैं। इससे निराकार शब्दकरके प्राकृत आकारकाही निषेध किया है। और वैकुंठके निवासी जो नित्यमुक्त हैं उनकेभी अप्राकृत आकारही कहा है कि,–

कूर्मादीन् दिव्यलोकं तदनु मणिमयं मण्डपं तत्र शेषं
तस्मिन्धर्मादिपीठं तदुपरि कमलं चामरग्राहिणीश्च।

विष्णुं देवीभूषायुधगणमुरगं पादुके वैनतेयं
सेनेशं द्वारपालान्कुमुदमुखगणान् विष्णुभक्तान् प्रपद्ये॥

इति ॥ कदाचित् तुम मायावादी अप्राकृत आकारकोभी नहीं मानोगे तो योगीजन अपने हृदयकमलमें किस वस्तुका ध्यान करेंगे? क्योंकि योगशास्त्रमें कहा है कि–

अदृश्ये भावना नास्ति दृश्यमानो विनश्यति ।
पक्षद्वयविहीनं हि सदा ध्यायंति योगिनः ॥

अर्थ–हे अदृश्यवादि ! जिसको तुम निर्विशेष वस्तु मानते हो उस निर्वि-शेषवस्तुमें प्रत्यक्षादिक षट् प्रमाणोंके नहीं लगनेसे अदृश्य है । उस अदृ-श्यमें योगी आदिकोंकी भावना नहीं होती है, और जो दृश्यमान प्राकृत पंचभूतोंका पदार्थ है सो नाशवान् है। इस कारणसे अदृश्य और दृश्य इन उभयपक्षसे रहित अप्राकृतरूपवाले परमात्माकाही योगीजन अपने हृदय कमलमें ध्यान करते हैं । सो कहाहै कि–

हृदयकमलमध्ये योगिचिन्त्यांघ्रिपद्मं कुवलयदलनीलं
कौस्तुभोद्भासिताङ्गम् । कुसुदमुखगणाढयं सच्चिदान-
न्दरूपं प्रणवकथितरूपं चिन्तयेच्छ्रीसहायम् ॥

इसलिये अप्राकृतरूपवाले परमात्मा हैं, ऐसा सिद्ध हुआ । ऐसे अप्राकृत दिव्यमूर्तिवाले श्रीरामचंद्र भगवान्ही सर्व मुमुक्षु जनोंको ध्येय पूज्य और सेव्य हैं । इस राम परमात्माके समान दूसरा कोईभी देव नहीं है । 'नास्ति रामस्य सदृशः' इत्यादि वचनों करके दिव्यमंगलमूर्ति श्रीरामही ध्येयरूप हैं ।

वादिप्रश्न–हे सिद्धांति ! तुम परमात्मा श्रीरामके रूपको व्यापक मानते हो सो स्वरूपकी तरह व्यापक मानते हो, कि दूसरी रीतिसे मानते हो ?

उत्तर–जैसे परमात्माका स्वरूप, देश, काल, वस्तु परिच्छेदसे रहित, अंतर बहिर्व्यापक है तैसे अप्राकृतमूर्ति व्यापक नहीं है, किंतु आश्रितजनरक्ष-णार्थ अनंत अवतार कंद होनेसे कालसंख्यादि अपरिच्छिन्न भावसे व्यापक है, सो श्रीरामपरमात्माके रूपकी व्यापकता रामायणमें ऐसी लिखी है कि–

वृक्षे वृक्षे हि पश्यामि चीरकृष्णाजिनांबरम् ।
गृहीतधनुषं रामं पाशहस्तमिवान्तकम् ॥
अपि रामसहस्राणि भीतः पश्यामि रावण ।
रामभूतमिदं सर्वमरण्यं प्रतिभाति मे ॥

अर्थ–इस वनके वृक्ष वृक्षमें वस्त्र और कृष्णमृगचर्मको धारण किये हुए तथा धनुषको धारण किये हुए और जैसे पाशको हस्तमें लेके काल खडा होय ऐसे रामको मैं देखता हूं । हे रावण ! मैं भय करके असंख्यात राम-मूर्तियोंको देखता हूं. और यह सब वन मेरेको रामरूपही भासता है । इस प्रकारसे श्रीरामरूपकी व्याप्ति सिद्ध होती है । इति रूपव्याप्तिः ॥

गुणव्याप्ति ।

ज्ञानशक्त्यादि गुणवाले श्रीरामकी गुणव्याप्तिमेंभी श्रुति स्मृतियोंका प्रमाण यह है कि–

" परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबल-क्रिया च । यः सर्वज्ञः सर्ववित् । "
समस्तकल्याणगुणात्मकोऽसौस्वशक्तिलेशोद्धृतभूतवर्गः।
तेजोबलैश्वर्यमहावबोधसुवीर्यशक्त्यादिगुणैकराशिः ॥

अर्थ–इस परमात्माकी सर्वोत्तम शक्ति, अनंतज्ञान अनंतबल अनंतक्रिया-वाली और सहज सुनी जाती है। परमात्मा सर्वज्ञ और सर्ववित् है । यह पर-मात्मा समस्त कल्याणगुणात्मक है, और अपनी शक्तिके लेशमात्रसे परमा-त्माने सकल ब्रह्मांडको धारण किया है. और तेज, बल, ऐश्वर्य, ज्ञान, वीर्य, शक्ति आदिक गुणोंके मुख्य राशिरूप परमात्मा हैं ॥ " सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुः " ' यह सीताजी लक्ष्मी हैं और श्रीराम रूप आप विष्णु हो ' इस उक्त रीतिसे विष्णु परब्रह्मनामवाले श्रीराम भगवानके अनंत गुण हैं. उन गुणोंका पार ब्रह्मादिक कोईभी देव नहीं पाते हैं। इस प्रकार ब्रह्माजी कहते हैं कि–

" यो वा अनन्तस्य गुणाननन्ताननुक्रमिष्यन्स तु बालबुद्धिः॥नान्तं विदाम्यहममी मुनयोऽग्रजास्ते माया-

बलस्य पुरुषस्य कुतोऽपरे ये ॥ गायन् गुणान् दशश-
तानन आदिदेवः शेषोधुनापि समवस्यति नास्य पारम् ॥

अर्थ–ब्रह्मा कहते हैं कि हे मुने ! जो पुरुष, भगवान्‌के अनंत गुणोंकी गणना करनेकी इच्छा करता है, सो पुरुष बालबुद्धि अर्थात् मूर्ख है । कदापि बहुत ज्ञानवान् पुरुष हो तो इस पृथ्वीकी संपूर्ण रजोंको गिन सके. परंतु भगवान्‌के गुणोंकी संख्या नहीं कर सकता है । भगवतके गुणोंके अंतको मैं भी नहीं जानता हूं तथा तेरेसे प्रथम उत्पन्न हुये जो ये मुनि हैं, वेभी भगवतके गुणोंके अन्तको नहीं जानते हैं तब मेरेसे तेरेसे और इन मुनियोंसे पीछे उत्पन्न हुये जो दूसरे पुरुष हैं वे तो कहांसे जानेंगे ? क्योंकि अस्मदादिकों अर्थात् हम तुम आदिकोंकी तो क्या वार्ता है परंतु जिस शेषके हजार मुख हैं ऐसा आदिदेव शेष अपने सहस्रमुखोंसे भगवत्‌के गुणोंका गान करता हुआभी इस परमात्माके गुणोंके पारको अबभी नहीं पाता है इति॥

वादिप्रश्न–कामधेनु चिंतामणि कल्पवृक्ष क्षीरसागर पूर्णचन्द्र इत्यादिकोंके जो गुण हैं वे प्रयोजनवाले हैं. जैसे कामधेनु चिंतामणि कल्पवृक्ष इन तीनोंमें मनोवांछित फल देनेके गुण हैं. वे गुण सब किसीको प्रयोजनके हैं. और क्षीरसागरमेंभी अनेक प्रकारके रत्नरूपी गुण भरे हैं. वेभी गुण प्रयोजनकेही हैं । और चंद्रमेंभी मुक्ताफल कर्पूरादिकोंकी उत्पत्ति करनेके गुण हैं वेभी प्रयोजनकेही हैं. वैसे सीतापति श्रीरामकें गुणोंका क्या प्रयोजन है ?

उत्तर–पूर्णकाम और आनंदके महासमुद्र ऐसे श्रीराम हैं उनके गुण धर्म अथ काम और मोक्ष इन चार पदार्थोंके हेतु अर्थात् संसारी जीवोंको धर्म अर्थ काम और मोक्षके देनेवाले हैं । जगत्‌की उत्पत्ति स्थिति और प्रलयरूप जो ईश्वरकी लीला है सो लीलाही जीवोंके मोक्षादिकोंकी साधकतामें प्रयोजन है॥

प्रश्न–ऐसा कहां लिखा है ?

उत्तर–श्रीमद्भागवतमें दशमस्कंधमें लिखा है कि–

बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् जनानामसृजत्प्रभुः ।
मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च ॥

अर्थ–ईश्वर, जीवोंके बुद्धि इंद्रिय मन और प्राणोंको अर्थ धर्म काम और मोक्षके अर्थ बनाते हैं ॥ इति ॥

वादीप्रश्न–“ साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ” इस श्रुतिमें ईश्वरको निर्गुण कहा है इसलिये ईश्वरको सगुण कहनेसे उक्त श्रुतिमें विरोध आवेगा ॥

उत्तर–जैसे 'मा हिंस्यात्सर्वभूतानि' इस श्रुतिमें सर्व जीवोंकी हिंसाका निषेध किया है और "अग्नीषोमीयं पशुमालभेत" इस श्रुतिमें जीवहिंसाका विधान है । इसलिये ऐसा अर्थ समझना कि–जहां श्रुतिमें जीवहिंसाका निषेध किया होय, वहां यज्ञसे भिन्न जीवहिंसाका निषेध समझना. सर्वत्र नहीं. क्योंकि यज्ञमें तो पशुओंको मारनेका वेदमें विधि लिखा है । इसलिये "मा हिंस्यात्सर्वभूतानि" इस वेदके वचन करके सर्वत्र जीवहिंसाका निषेध नहीं समझना, किन्तु यज्ञसे बाहर दूसरे सब ठिकाने हिंसा न करनी, परंतु यज्ञादिकमें विधान होनेसे करनी इति ॥ ऐसेही जहां ईश्वरको वेदमें निर्गुण कहा हो वहां प्राकृतगुणोंसे रहित परमात्मा है ऐसा अर्थ निर्गुणशब्दका समझ लेना परंतु सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सत्यकाम सत्यसंकल्प सर्वोपास्य आदिक अनंत कल्याणगुणोंका निषेध नहीं समझना । क्योंकि, निर्गुण शब्दकरके हेयगुणोंकाही निषेध वेदमें किया है कि–

"एष आत्मापहतपाप्मा विरजो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः" अर्थात् परमात्मा,पापसे रहित, रजसे रहित,मृत्युसे रहित, शोकसे रहित और क्षुधा तृषासे रहित हैं । इस रीतिसे हेयगुणोंका निषेध करके "यः सर्वज्ञः सर्ववित् सत्यकामः सत्यसंकल्पः" इस रीतिसे परमात्मामें वेदने कल्याणगुणोंका प्रतिपादन किया है । इससे निर्गुणशब्द करके प्राकृतगुणोंकाही निषेध समझना, कल्याण गुणोंका नहीं इति॥ इस रीतिसे 'विष्णोर्नुकं वीर्याणि' 'यो वा अनंतस्य गुणाननंतान्' इत्यादि श्रुतिस्मृतियोंकरके परमात्माके अनंत कल्याणगुणगणोंकी व्याप्ति सिद्ध होती है । इस लिये आश्रितोंके सर्वाभीष्टमूलभूत परमात्माके गुणगण असंख्यात होनेसे व्यापक हैं, दूसरी रीतिसे नहीं । इति गुणव्याप्तिः ॥

स्वरूपव्याप्ति ।

प्रश्न–श्रीरामपरब्रह्मका स्वरूप कैसा है ?

उत्तर–श्रीराम अखिल हेयगुणोंके विरोधी और असंख्येय कल्याणगुणोंके मुख्य विस्ताररूप हैं तथा सकलदोषसे रहित सकलजगत्व्यापक और सकलजगत्के शेषीभूत हैं । इसमें प्रमाण यह है कि–

सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म । वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं सर्वम् । य आत्मापहतपाप्मा विरजो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः । सत्यकामः सत्यसं-

कल्पः । एष सर्वेश्वर एष भूतपालः। न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते । निष्कलं निष्क्रियम् ॥

अर्थ–श्रीराम ब्रह्मरूप है, सत्य है, ज्ञानस्वरूप है, अनंत है इस श्रुतिकरके रामस्वरूप देश काल और वस्तु परिच्छेदसे रहित सिद्ध होता है । वृक्षके सदृश आकाशमें निश्चल रहते हैं, और उस परमात्मा करके यह विश्व व्याप्त है, परमात्मा हेय प्रतिभट है, पाप, रज, मृत्यु, शोक और क्षुधा पिपासासे रहित है, सत्यकाम है सत्यसंकल्प है, यह परमात्मा सर्वका ईश्वर है और यह परमात्मा भूतपाल है । इस परमात्माके समान और अधिक कोईभी नहीं दीखता है । यह परमात्मा निष्फल (अंशसे रहित है) और निष्क्रिय (क्रियासे रहित) सर्वकल्याणगुणाधार है, हेयप्रतिभट होनेसे निर्लिप्त है तथा ध्येय है मुक्तिप्रद है और कोईभी प्रकारके दोषमें आसक्त नहीं है, और सकलकल्याणगुणविशिष्टही परमात्मा सर्वत्र व्यापक है ॥ इति ।

वादिप्रश्न–हे विशिष्टाद्वैतसिद्धांति ! तुम कहते हो कि परमात्मा सर्वत्र व्यापक हैं तो भला अणुमें व्यापक है कि नहीं, क्योंकि अणु सर्वपदार्थोंसे अत्यंत सूक्ष्म है, इसलिये परमात्माकी अणुव्याप्ति कौनसी श्रुति वा स्मृतिकरके सिद्ध करते हो, सो कहना चाहिये ॥

उत्तर–हे मायावादि ! इस तुम्हारे प्रश्नके उत्तरमें अंतर्यामि ब्राह्मण वेदका भाग प्रमाण है । क्योंकि, जो विष्णुरूप परमात्मा उस अणुरूप जीवका अंतर्यामी है । जो जिसका अंतर्यामी होता है सो उसके भीतर प्रवेश करकेही होता है, कुछ बाहर रहनेवालेको अंतर्यामी नहीं कहते क्योंकि "अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः।" "अंतः प्रविष्टः शास्ता जनानाम्" अर्थात् सर्व जीवोंके अंदर प्रवेश करके परमात्मा सर्व जीवोंको अपने वशमें रक्खते हैं । इस श्रुति करके परमात्माका जीवोंमें प्रवेश और शास्तृता सिद्ध होती है इति ॥

वादिप्रश्न–जैसे कोई पुरुष अपने घरमें जब प्रवेश करता है तब वह पुरुष घरके बाहर नहीं रहता है वैसे परमात्माभी जब जीवोंके भीतर अंतर्यामी रूपसे प्रवेश किया तब बाहर रहे नहीं । ऐसा अर्थ पूर्वोक्त श्रुति करके प्रतीत होता है । इसलिये परमात्मा सर्वत्र व्यापक हैं; ऐसा तुम्हारा सिद्धांत सिद्ध हुआ नहीं ॥

उत्तर–"यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेपि वा ।
अंतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ।
स भूमिं सर्वतः स्पृत्वा अत्यतिष्ठद्दशांगुलम्॥ "

अर्थ–इस जगत्में जो कुछ चिन्मात्रभी वस्तु देखने सुननेमें आती है, उस सर्ववस्तुमात्राको बाहर भीतर व्याप्त होकर नारायण रहे हैं, इस श्रुतिकरके नारायण परमात्माकी व्याप्ति दो प्रकारसे सिद्ध है, एक तो अंतर्व्याप्ति और दूसरी बहिर्व्याप्ति । जैसे अणुवस्तुकी जो व्याप्ति है, सो उस अणु वस्तुका देशदिग्बंधही बहिर्व्याप्ति है । और उस अणुवस्तुसेभी अत्यंत सूक्ष्मरूप करके उस अणुवस्तुमें जो प्रवेश है, सो अंतर्व्याप्ति कही जाती है । इसलिये श्रीमन्नारायण दोनों व्याप्तियों करके अंदर और बाहर सर्वत्र व्यापक हैं, ऐसा श्रुतिका सिद्धांत है । और पुरुषसूक्तमेंभी ऐसाही कहा है,कि सो परमात्मा इस चराचर प्रकृतिमंडलको सर्व ओरसे व्याप्त होकर उस प्रकृतिमंडलसे बाहर दश अंगुल स्वरूपसे अधिक रहते हैं । इस मंत्रमें जो दश अंगुलका परमात्मा स्वरूप प्रकृतिमंडलसे बाहिर कहा है सो दश अंगुलही मत समझना,किंतु अपार समझना। क्योंकि यह वेदमंत्र ऐसे कहता है कि मेरेसे परमात्मस्वरूप इतनाही है ऐसी संख्या नहीं हो ' सकती । इससे दशअंगुल बताकरकेही थकित हुआ हूं. कुछ दश अंगुलही परमात्मरूप नहीं है, किंतु अपार है इति ॥

वादी प्रश्न–हे विशिष्टाद्वैतवादि ! जो तुम ईश्वरको स्वरूप करके सर्वत्र व्यापक मानते हो, उस मंतव्यमें बडा दोष आता है. कैसा कि नरकके कुंडोंमें मलमूत्रोंमें हाड मांसोंमें मदिरा आदि अति मलिन पदार्थोंमें परमेश्वर रहता है, ऐसा सिद्ध होवेगा । तब महापापी नारकी जीवोंकी तरह ईश्वरभी नरकोंमेंही पडा रहता है,ऐसा तुम्हारे मतमें सिद्ध होवेगा।तब ईश्वरने कौनसा पाप किया था कि, जिस करके ईश्वरकोभी कुम्भीपाक नरकमें रहना पडा ॥

उत्तर–यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥

अर्थ–जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक है. सर्ववस्तुओंकरके संयुक्त है तोभी अत्यंत सूक्ष्म होनेसे उन सर्ववस्तुओंके स्वभाव करके लेपायमान नहीं होता है तैसे परमात्माभी देव मनुष्य पशु पक्षी आदि शरीरोंमें सर्वत्र रहते हैं, परंतु अत्यंत सूक्ष्म होनेसे उन देहादिकोंके स्वभाव करके लिप्त नहीं होते हैं । इस

रीतिसे गीताके चतुर्दश अध्यायगत बतीसवां श्लोकरूप गीताचार्य श्रीकृष्ण भगवानके वचनसे यह अर्थ सिद्ध हुआ कि परमात्मा स्वरूप निर्दोष निर्लिप्तही सर्वत्र व्यापक है इति ॥ इस रीतिसे समस्त चराचरोंके कारण सर्व तत्वाश्रयमूर्ति (सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म) इत्यादिरूप वेदांतोंकरके वेद्यस्वरूपगुण श्रीराम परमात्मा है, सोही भगवान्, नारायण, वासुदेव, कृष्ण, विष्णु, केशव, माधव, हृषीकेश, अच्युत, जनार्दन, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, मुकुंद, मधुसूदन, वैकुंठ, हरि, महेश्वर, श्रीपति, श्रीजगन्नाथ आदिक सर्वशब्दोंके वाच्य और तीनों कालमें क्लेश कर्मविपाक आशय दूषणोंसे रहित पुरुष विशेष श्रीराम हैं, सो योगियोंको ध्येयस्वरूप हैं। सोही श्रीराम परमात्मा सर्वजगत्का रक्षण करने और अपने भक्तोंको आनंद देनेकेवास्ते कौसल्याके तनयरूप करके इस पृथिवीमें अयोध्यापुरीमें प्रगट हुये हैं ऐसा ज्ञान लौकिकजनोंको नहीं है ऐसा ज्ञान तो परम आप्त शिव अगस्त्य शरभंग सुतीक्ष्ण सनत्कुमार नारद वसिष्ठ आदिकोंकोही है और उन्होंने श्रीरामके स्तुति पूजन प्रार्थनादिक जो किये हैं सो अज्ञानसे नहीं किये हैं और सुकृतिवेष नरवरबुद्धिकरकेभी नहीं किये हैं किंतु यह श्रीराम साक्षात् परब्रह्महीं हैं ऐसी ज्ञानदृष्टि करके किये हैं। इस हेतुसे उनके वचन अस्मदादिकोंको अमृतवत् ग्रहण करने योग्य हैं । इस सदाचार करके श्रीरामके स्वरूपका ज्ञान मुनियोंकरके सिद्ध किया हुआ है ऐसा मानने योग्य है । इस रीतिसे हे मायावादि ! परमात्मा स्वरूपकरके सर्वत्र व्यापक है और नित्येच्छाधृत दिव्यमंगल विग्रह करके–

वैकुंठे तु परे लोके श्रिया सार्द्धं जगत्पतिः ।
आस्ते विष्णुरचिंत्यात्मा भक्तैर्भागवतैः सह ॥

त्रिपाद् विभूतिरूप श्रीवैकुंठ धाममें लक्ष्मीसहित और अपने भक्त भागवतों करके सहित विराजते हैं ऐसा विशिष्टाद्वैतसिद्धांतमें निश्चय किया हुआ है । इति स्वरूपव्याप्तिः ॥

विभूतिव्याप्ति ।

आश्रितोंके अर्थ अभिमत विभूतिद्वय परमात्माव्यतिरिक्त सर्वपदार्थ आश्रय होनेसे व्यापक है ॥ और गीतामेंभी कहा है कि–

नान्तोस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ।

भगवान् अर्जुनको कहते हैं–हे अर्जुन ! मेरी दिव्यविभूतियोंका अंत नहीं है अर्थात् अनंत हैं इससे काल संख्यादिकोंकरके अपरिच्छिन्न होनेसे विभूति द्वय व्यापक हैं इति । इति विभूतिद्वयव्याप्तिः ॥

आश्रितव्याप्ति ।

नित्य मुक्त मुमुक्षु आदिक भेद करके आश्रित लोक असंख्यात होनेसे और कालापरिछिन्न होनेसेभी जीवसमुदाय व्यापक है इस रीतिसे षड् व्याप्ति प्रतिपादक श्रीराम महामंत्र है । इति आश्रितव्याप्ति ॥

इस प्रकारके नाम, रूप, गुण, स्वरूप, विभूति और आश्रित इन षड्व्याप्तियोंका प्रतिपादन (रां) बीज है । और (रेफारूढत्रिमूर्ति) रां बीजमें जो रकार है उस रकारको आश्रय करके अ, अ, म. ये तीन अक्षर हैं, उनमें प्रथम अकार ब्रह्मारूप है, द्वितीय अकार विष्णुरूप है और तृतीय जो मकार है सो रुद्ररूप है । इस प्रकार मूर्तिशब्द करके तीन वर्ण कहे हैं ।

प्रश्न–दो अकार और तीसरा मकार, इन तीन अक्षरोंमें जगतकी उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करनेका सामर्थ्य है नहीं तो इन तीन अक्षरोंको ब्रह्मा विष्णु और रुद्ररूप कैसे हम मानें ?

उत्तर–(प्रचुरतरमहाशक्ति) अत्यन्त अधिक बडी, उत्पत्ति स्थिति प्रलय स्वभावशक्ति जिस रां बीजकी है ।

प्रश्न–उसमें कौन शास्त्र प्रमाण है ।

उत्तर–रामतापिनी उपनिषद् प्रमाण है कि–" रेफारूढा मूर्तयः स्युः शक्तयस्तिस्र एव च " इति रेफको आश्रय करिके तीन मूर्ति और तीन शक्ति रही हैं इति ॥ (विश्वोन्निदानम्) जगत्का उत्कृष्ट आदिकारण है । (विविधसकलसंभासमानप्रपंचम्) और जरायुज, अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज इन चार खानीवाले जीवोंके भेदकरके अनेकप्रकारका सकल स्थावर जंगमरूप प्रपंच जिस बीजमें भासता है ।

प्रश्न–बीजमें सकल जगत भासता है इस कथनमें क्या प्रमाण है ? ।

उत्तर–श्रुति प्रमाण है " रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम् " ' यह स्थावर जंगमरूप चराचररूप जगत् राम बीजमें रहता है ' इति । इस प्रकारसे ऐसे विशेषणों करके युक्त जो रां बीज है सो मुमुक्षुओं और योगियोंको उपासना करने योग्य है ।

प्रश्न–इसमें कौन शास्त्रका प्रमाण है ?

उत्तर–हारितधर्मशास्त्रमें कहा है कि–

रामित्येकाक्षरं रामं योगिनः समुपासते । इति ॥

रां ऐसा एकाक्षर रूप रामको योगिजन उपासते हैं इति ॥ और शिवसंहितामेंभी ऐसा कहा है कि—

तत्वमस्यादिवाक्यं तु केवलं मुक्तिदं यतः ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं चेदं तस्मादप्यतिरिच्यते ॥
रमन्ते योगिनो नित्यं यद्वा रमयति स्वकान् ।
निर्गुणं सच्चिदानन्दं सगुणं चेति कीर्त्यते ॥

अर्थ—तत्वमसि १ यह साम वेदके छांदोग्य उपनिषदका वाक्य है. अयमात्मा ब्रह्म २ यह अथर्वण वेदके मांडुक्य उपनिषदका वाक्य है. अहं ब्रह्मास्मि ३ यह यजुर्वेदके बृहदारण्यक उपनिषदका वाक्य है । प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म ४ यह ऋग्वेदके ऐतरेय उपनिषदका वाक्य है । इन तत्वमस्यादिक चार वेदोंके चार वाक्योंकरके उपासना करनेवालेको वह वाक्य अकेली मुक्तिकोही देते हैं और रां यह बीज तो स्त्री, पुत्र, धन, धान्य, अश्व, हस्ती राज्यादिरूप भोग और त्रिपादरूप मुक्तिको देता है. इस कारणसे चार वेदके तत्वमस्यादि चार वाक्योंसे यह रां बीज अत्यन्त श्रेष्ठ है. जिस राममें योगी रमण करते हैं, यद्वा राम आप अपने भक्तोंको रमण कराते हैं ऐसे निर्गुण सच्चिदानंद और सगुण ब्रह्म श्रीराम हैं इति । और इस रां बीजका अधिक अर्थ देखना हो तो हारीतस्मृति, रामतापिनी, पिप्पलायनसंहिता, अगस्त्यसंहिता और शिवसंहितामें देखलेना इति ॥ ३ ॥

इस प्रकारसे रां बीज समुदायका अर्थ कथन करके, अब उस बीजके अवयवरूप अक्षरोंके वाच्य अर्थको कथन करते हैं—

तत्राद्येन पदेन रेण भगवान्सीतापतिः प्रोच्यते
श्रीरामो जगतां गुणैकनिलयो हेतुश्च संरक्षकः ।
तच्छेषीपदतोऽप्यतो भगवतोऽनन्यार्हशेषत्वकं
व्यावृत्तिस्तु सुरांतरादिगतसत्तच्छेषताया मुहुः ॥ ४ ॥

अर्थ—राम बीजमें जो आदि पद रकार है, उस रकार पद करके सीतापति श्रीराम भगवान् कहे जाते हैं ॥

प्रश्न–श्रीराम इस तीन अक्षरात्मक पदका कैसा अर्थ है ?

उत्तर–जिनमें योगिजन रमण करैं, उसका नाम राम है. वा अपने भक्तोंको भुक्ति मुक्तिके देने करके रमण करानेसे राम ऐसा नाम है. वा आपही अन्तर्यामीपने करके चराचर भूतोंमें रमण करनेसे राम हैं। "रमयामास धर्मात्मा" इस पूर्वोक्त रीतिसेभी राम कहे जाते हैं. अथवा धर्म,अर्थ, काम और मोक्षके देनेसेभी राम कहे जाते हैं, वा चराचर प्राणी अप्राणीयोंमें प्रकाश करनेसे राम है। "न तत्र सूर्यो भाति, य एषोंतरादित्ये" जिस रामको सूर्य, चंद्र, तारा, बिजुली, अग्नि आदि ज्योति प्रकाश नहीं कर सकते हैं. और यह जो राम है, सो सूर्यमें रहकर सूर्यको प्रकाश करते हैं. इस रीतिसे सूर्य, चन्द्र, तारा, बिजुली, अग्नि आदि सर्व ज्योतियोंको प्रकाश करना, यही रामपदका अर्थ है। और श्रीरूपी सीताको रमण करनेसे श्रीराम कहे जाते हैं, वा श्रीके साथ आप रमण करते हैं, इससे भी श्रीराम ऐसा कहना चाहिये।

अनन्या च मया सीता भास्करेण प्रभा यथा ।
अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा ॥

अर्थ–जैसे सूर्यकी प्रभा सूर्यसे अलग नहीं है, हमसे सीता पृथक् नहीं ऐसे रामने कहा है. और जैसे सूर्यकी कांतिरूप प्रभा सूयेस भिन्न नहीं, तैसे मैं सीता रामसे जुदी नहीं हूं. ऐसे सीताने कही है इस रीतिसे श्रीरूपी सीता करके सहित होनेसे श्रीराम ऐसा नाम सिद्ध होता है ॥

प्रश्न–आपने श्रीरामको भगवान् कहे हैं, तो भगवान्शब्दका क्या अर्थ है, क्योंकि कोई वादिलोक, ऐसा कहते हैं कि, भग नाम स्त्रीकी योनिका है, योनि जिसके होय तिसका नाम भगवान् है और "भगं योनिर्द्वयोः" इत्यमरः। ऐसे अमरकोशमेंभी भग और योनि ये दो नाम स्त्रीके उपस्थ इंद्रियकेही हैं इससे भगवान् नाम स्त्रीकाही सिद्ध होता है ॥

उत्तर–हे शास्त्रोंके अजान! इहां भग नाम षट् ऐश्वर्योंका है, योनिका नाम नहीं है। मेदिनी कोशमें कहा है कि--"भगं श्रीयोनिवीर्येच्छाज्ञानवैराग्यकीर्तिषु" श्री १ योनि २ वीर्य ३ इच्छा४ज्ञान५वैराग्य६कीर्ति ७ ये सात नाम भगशब्दके हैं उनमें श्री, संपत् और शोभाका नाम है। योनि नाम कारणका है। वीर्य नाम पराक्रमका है। कीर्ति नाम यशका है. और इच्छा, ज्ञान, वैराग्य, ये तीन नाम प्रसिद्धही हैं। इसवास्ते वादियोंको कहना कि ऐश्वर्य १ वीर्य २ यश ३ श्री ४ वैराग्य ५ और ज्ञान ६ इन षट्कोंका नाम भग है,

इन षट् ऐश्वर्यों करके जो संपन्न होय उसका नाम भगवान् है। और वादी जो ऐसा कहै कि, अमरकोशकी रीतिसे भग नाम योनिका है, सो मिथ्या कैसे करोगे? तहां हम कहते हैं कि, भले मिथ्या मत हो, क्योंकि भगरूप योनि जिसके तुम रखने चाहते हो, उसका नाम भगवती रखियो, क्योंकि भगवती शब्दही स्त्रीलिंग होनेसे स्त्रीका वाचक है, जो भगवानकी स्त्री हो उसका नाम भगवती है जैसे देवकी स्त्री देवी ब्राह्मणकी स्त्री ब्राह्मणी, शूद्रकी शूद्री, नरकी नारी, चांडालकी चांडाली इत्यादिवत्। और भगवान् शब्द तो पुरुष वाचक पुल्लिंग शब्द है, उसके स्त्रीलिंग माननेसे लज्जाभी नहीं आती है?।

प्रश्न–जैसे शंभु भगवान्, प्रजापति भगवान्, इस रीतिसे दूसरे देवोंकोभी भगवान् कहे हैं और तुम श्रीराम भगवान् हैं ऐसे कहते हो तब तो भगवान् ऐसा नाम व्यभिचारी हुआ क्योंकि परमेश्वरका नाम भगवान् और दूसरे देवोंकेभी नाम भगवान्॥

उत्तर–दूसरे देव तो नाम मात्रही भगवान् हैं, परंतु उनमें भगशब्दवाच्य-षट् गुण विद्यमान नहीं हैं। जैसे किसी लौकिक पुरुषका नाम नारायण है तो क्या उस पुरुषमें नारायणके समान गुण हैं? किंतु नहीं है। विष्णुपुराणमें जैसा भगवान् शब्दका अर्थ किया है, सो सुनो–

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
वैराग्यस्याथ ज्ञानस्य षण्णां भग इतीरणा॥
उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामगतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥

अर्थ–संपूर्ण ऐश्वर्य, संपूर्ण वीर्य, संपूर्ण यश, संपूर्ण श्री, संपूर्ण वैराग्य और संपूर्ण ज्ञान इन षट्को भग कहते हैं. तिन समग्र ऐश्वर्यादिक छः गुणों करके जो सदा संपन्न हो उसको भगवान् कहना॥ तथा प्राणियोंकी उत्पत्ति और प्रलयको जो जानता है तथा प्राणियोंका बंध और मोक्षको जो जानता है तथा विद्या और अविद्याको जो जानता है सोही भगवान् है. ऐसा कहना॥

प्रश्न–ऐश्वर्य १ वीर्य २ यश ३ श्री ४ वैराग्य ५ ज्ञान ६ उत्पत्ति ७ प्रलय ८ अगति ९ गति १० विद्या ११ अविद्या १२ द्वादश गुण ब्रह्मा शिवादि देवोंमें हैं, कि नहीं?

उत्तर–नहीं हैं । क्योंकि, ब्रह्मादिक देव तो थोडा ऐश्वर्य, वीर्य, यश थोडी श्री, थोडा वैराग्य, ज्ञानवाले हैं, और श्रीराम भगवान् तो संपूर्ण वीर्य, ऐश्वर्य, यश, श्री, वैराग्य और संपूर्ण ज्ञान करके सदा निरंतर संपन्न हैं । जैसे नदी कूप तडाग सरोवर आदि जलाशय यद्यपि जलवाले तो हैं तथापि संपूर्ण जलवाले नहीं हैं । क्योंकि अनावृष्ट्यादि कालकरके उनमें जलका क्षय देखनेमें आता है और महासमुद्र तो सदा निरंतर जलकरके संपूर्ण भराही रहता है, किसीभी कालमें खाली नहीं होता है । वैसे थोडे ऐश्वर्य वीर्य यशवाले ब्रह्मा शिवादि देवभी अपने ऐश्वर्यादिकोंसे रहित हो जाते हैं ।

देखो, हिरण्यकशिपु और रावणादि दैत्य और राक्षसोंके राज्यमें सब देवोंके ऐश्वर्य वीर्य यश और संपत्तिको उन दैत्य और राक्षसोंने हरण कर लिये थे तब वे देव क्षीरसागरमें श्रीमन्नारायणको अपना दुःख जनाया कि हे भगवन्! हिरण्यकशिपु महाप्रबल दैत्यने हमारे धाम गाम सब छीन लिया और सबको कैद (बंधन)में डाल दिया है । ऐसे जब नारायणसे प्रार्थना की तब नारायणने नृसिंहादि अवतार लेकर हिरण्यादिकोंको मारकर उन देवोंको फिर अपनी २ विभूतियोंमें स्थापन किये।जो देवोंमें संपूर्ण वीर्य होता तो वे दैत्योंके वशमें काहेको होते, और जो देवोंमें संपूर्ण मोक्ष हो तो–

"आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोर्जुन ।"

पाताललोकसे ब्रह्मलोकपर्यंत चतुर्दश लोक सबही जन्म मरणवाले हैं और कोई देव प्रलय पर्यंत स्थायी हैं और कोई देव तो "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशंति" पुण्य क्षीण होतेही तुरंत मनुष्यलोकमें गिर पडते हैं, क्षणमात्रभी स्वर्गरूप मोक्षमें रहने नहीं पाते हैं इस कारणसे देवोंमें संपूर्ण मोक्ष नहीं है ॥

प्रश्न–प्रलयपर्यंत कौनसे देव रहते हैं ?

उत्तर–गिनती नहीं कर सकता हूं, परंतु भगवानने जिन जिन देवोंको प्रलयपर्यंत रहनेका अधिकार दिया है, उतनेही प्रलय पर्यंत रहते हैं, दूसरे नहीं।

प्रश्न–जीवोंको बंध और मोक्ष ब्रह्मा शिवादि देव कर सकते हैं या नहीं? ।

उत्तर–नहीं कर सकते हैं. क्योंकि, जिसके हुकुमसे चोरोंको कैदखाना मिलता है, उसके हुकुमसेही छूटताभी है तैसे श्रीराम भगवानके हुकमसे सब जीवोंको अपने अपने कर्मानुसार बन्ध और मोक्ष मिलते हैं ॥

वादी--हमारे इष्ट देव पार्वतीके पति जटाजूट कपालपाणि दिगंबरी शिवसे जीवोंका बंध और मोक्ष क्यों नहीं मानते हो ?

उत्तर–हम तो नहीं मानते हैं, परंतु तुम्हारे मतवाले श्रीधर स्वामीभी नहीं मानते हैं। क्योंकि, श्रीधरस्वामीने भागवतकी टीकामें स्कंदपुराणका ऐसा श्लोक लिखा है कि--

बंधको भवपाशेन भवपाशाच्च मोचकः ।
कैवल्यदः परं ब्रह्म विष्णुरेव सनातनः ॥

अर्थ–भव (संसार) पाशकरके जीवोंको बांधनेवाले तथा मुक्त करनेवाले और कैवल्य (मुक्तिको) देनेवाले ऐसे सनातन परब्रह्म विष्णुभगवान्ही हैं दूसरा कोईभी नहीं ॥

वादी–इस स्कंदपुराणका उदाहरण श्रीधरने अपनी टीकामें कहा होगा कुछ शिवजीने तो नहीं कहा है ॥

उत्तर–शिवनेभी हरिवंशपुराणमें ऐसा कहा है कि–

मुक्तिं प्रार्थयमानं मां पुनराह त्रिलोचनः ।
मुक्तिप्रदाता सर्वेषां विष्णुरेव न संशयः ॥

अर्थ–मुक्तिकी प्रार्थना करनेवाला हमको त्रिलोचन कहने लगे कि, सबको मुक्ति देनेवाले एक विष्णुही हैं, इसमें कुछभी संशय नहीं है ॥ इति ॥

प्राणियोंकी उत्पात्ति और प्रलयभी दूसरे देवोंसे नहीं हो सकते हैं, क्योंकि व्याससूत्रमें कहा है कि "जन्माद्यस्य यतः" इस जगत्की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय भगवानसेही होते हैं, और विद्या तथा अविद्याकोभी भगवानही सर्वज्ञ होनेसे जानते हैं दूसरा कोईभी देव सर्वज्ञ नहीं है इसलिये वे देव विद्या अविद्याको नहीं जानते हैं। क्योंकि सर्वजीव अविद्याके कार्य हैं इस वास्ते अपने कारण अविद्याको नहीं जान सकते हैं, इस रीतिसे सम्पूर्ण ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, वैराग्य, मोक्ष, उत्पात्ति, प्रलय, बंध, मोक्ष, विद्या, अविद्या इन द्वादश गुणोंकरके जो सदा संपन्न है, सोही भगवान् श्रीराम हैं दूसरा कोई नहीं ॥ और (सीतापतिः) अर्थात् अयोनिजा, और विदेह राजाके तपोबलसे प्राप्त हुई तथा विपुल संपात्तिकी वृद्धि करनेवाली तथा अपने प्रियके तुल्य ऐश्वर्य, शील, वय, कुल, आचारादिवाली ऐसी जो सीता है उस लक्ष्मीरूपसीताके पति है (गुणैकनिलयः) शौर्य, वीर्य, माधुर्य, कृतज्ञत्व, दृढव्रतत्व, सर्वज्ञत्व, सौलभ्यत्व आदि गुणोंके मुख्य मंदिर रूप हैं। (जगतां हेतुः) जगत्के कारण हैं ॥

प्रश्न–कारण कितने प्रकारके हैं ।

उत्तर–" निमित्तोपादानसहकारिभेदात् त्रिविधम् । "

निमित्तकारण १ उपादानकारण २ सहकारिकारण ३ इस भेदसे तीन प्रकारके कारण हैं।

प्रश्न–निमित्तादिकारणोंका लक्षण कहिये ?

निमित्तकारण।

" तत्र संकल्पविशिष्टवेषेण निमित्तत्वम् ।
यथा घटस्य दंडादि ॥ "

वहां संकल्पविशिष्टवेषकरके श्रीराम इस जगत्के निमित्त कारण हैं। जैसे घटकी उत्पत्तिमें दंड चक्र चीवरादिक निमित्तकारण हैं॥

उपादानकारण।

" सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टवेषेणोपादानत्वम् । यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तदुपादानम् । यथा घटादेर्मृदादि ॥"

सूक्ष्म चित् अचित् विशिष्टवेषकरके श्रीराम इस जगतके उपादान कारण हैं। जिस कारणमें मिला हुआ कार्य उत्पन्न होता है, वह उपादानकारण कहा जाता है। जैसे घट शरावादिकोंका मृत्तिका उपादानकारण है, सो घटादिकार्य मृत्तिका कारणमें मिला हुआही उत्पन्न होता है॥

सहकारिकारण।

" सहकारिभूतकालाद्यंतर्यामितया सहकारित्वम् । "

सहकारिभूत जो कालादिक पदार्थ हैं उन कालादि पदार्थोंके अंतर्यामिपने करके श्रीराम इस जगत्के सहकारि कारण हैं इति॥ इस जगतके निमित्त-कारण, उपादानकारण और सहकारिकारणभी श्रीरामकोही है।यदि संदेह हो तो वैदिकप्रमाण कहता हूँ सुन–

ॐ भृगुर्वै वारुणिर्वरुणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति । सोऽब्रवीद्राम एव परं ब्रह्म रामादन्यन्न किंचन। यत एते रामादेवोत्पद्यंते। राम एव विलीयंते । राम एव स्थितिं वसंति तस्माद्राम एव विभुरिति ॥

अर्थ–वरुणका पुत्र भृगु अपने पिता वरुणके पास जाकर बोला कि, हे भगवन् ! हमारे लिये आप ब्रह्मका उपदेश देओ । वरुण पिता बोले कि,

रामही पर ब्रह्म हैं, रामसे दूसरा कुछभी नहीं है। क्योंकि, यह चतुर्दशलोक रामसेही उत्पन्न होते हैं. और राममेंही लीन होते हैं, तथा राममेंही स्थिति करते ह। इस कारणसे रामही विभु हैं इति ॥

व्यासके पिता पराशर मुनिनेभी अपनी स्मृतिमें लिखा है कि–

राम एव परं ब्रह्म परमात्माभिधीयते।
रामात्परतरं नास्ति यत्किंचित्स्थूलसूक्ष्मकम् ॥
ब्रह्मविष्णुशिवाः सर्वे इन्द्रोग्निर्वरुणो यमः।
सूर्यश्चन्द्रश्च खं भूमिराकाशस्त्वनिलो ह्यपः ॥
सर्वे ते रामचन्द्रस्य तेजसा संप्रतिष्ठिताः।
भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं रामसमुद्भवम् ॥

अर्थ–श्रीरामही पर ब्रह्म परमात्मा है जो कुछ स्थूल और सूक्ष्म वस्तु है सो रामसे पर नहीं है। क्योंकि–ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, अग्नि, वरुण, यम, सूर्य, चंद्र, स्वर्ग, भूमि, आकाश, पवन, जल ये सब श्रीरामचन्द्र भगवान्के तेज करके रहते हैं तथा भूत भविष्य और वर्तमान ये तीनों काल तथा इन तीनों कालमें जो कुछ हुआ, होगा और है सो सब श्रीरामसेही उत्पन्न हुआ है इति ॥ आनन्दसंहितामेंभी कहा है कि–

आनन्दो द्विविधः प्रोक्तो मूर्तश्चामूर्त एव च।
अमूर्तस्याश्रयो मूर्तः परमात्मा नराकृतिः ॥

अर्थ–आनन्द दो प्रकारका है, एक तो मूर्त है और दूसरा अमूर्त आनन्द है। उनमें अमूर्त आनंदका आश्रय मूर्त आनंद है सो नराकृति मूर्त आनन्द श्रीराम परमात्मा है इति ॥ तथा पद्मपुराणमेंभी कहा है कि–

रामान्नास्ति परो देवो रामान्नास्ति परं व्रतम्।
नहि रामात्परो योगो नहि रामात्परो मखः ॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या यस्यांशा लोकसाधकाः।
तमादिदेवं श्रीरामं विशुद्धं परमं भजेत् ॥

अर्थ–रामसे बडा कोईभी देव नहीं । रामसे श्रेष्ठ कोई व्रत नहीं । रामसे योगभी श्रेष्ठ नहीं । रामसे यज्ञभी श्रेष्ठ नहीं । और लोकके साधक ब्रह्मा विष्णु और महेश जिस रामके अंश हैं, उस आदिदेव विशुद्धमूर्ति श्रीरामको यह मुमुक्षु पुरुष भजन करे इति ॥ पंचरात्रमेंभी कहा है कि, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन चार मूर्तियोंके परमकारण श्रीराम हैं और चौवीस अवतारकी मूर्तियोंके आश्रयभी श्रीरामही हैं, सो राम मेरा शरण हैं इति ॥ वाल्मीकीरामायणमेंभी ब्रह्मा श्रीरामको कहता है कि, आप महासमुद्रमें शयन करते हुए अपनी नाभीकमलसे प्रथम मेरेको उत्पन्न किये हो । फिर अयोध्या-कांडमें कहा है कि, श्रीराम सूर्यकेभी सूर्य है । अग्निके अग्नि हैं । प्रभुके प्रभु हैं । श्रीके श्री हैं । कीर्तिके कीर्ति हैं । क्षमाके क्षमा हैं और देवताओंके परम दैवत है । और सत्य, धर्म यश गुणोंकरके रामके समान कोईभी है नहीं तो विशेष तो कहांसे होगा । और (संरक्षकः) अर्थात् सुंदर प्रकारसे रक्षा करने-वाले हैं और श्लोकमें जो चकार है इससे संहर्ताभी हैं । (तच्छेषी) उस जीव वर्गके शेषी हैं । तथा रां बीजमें रहा जो दूसरा अकार है उस अकार-पदकरके भगवान् श्रीरामका अनन्यशेषित्व तथा जीवोंका अनन्यार्हशेषत्व कथन किया है अर्थात् भगवान् श्रीरामही जीववृंदके अनन्यशेषी हैं, ब्रह्मा-दिक देवगण शेषी नहीं हैं, ऐसे शेषभूत जीववृन्दोंकरके शेषी श्रीरामही सदा अवश्य उपास्य हैं इति ॥ अब ब्रह्मादि सकल जगत्का कारणभूत रकार करके पितृपुत्रादि नवविध संवन्ध प्रतिपादन करते हैं–

नवविधसंवन्ध ।

पितृपुत्रत्वसंबन्धो जगत्कारणवाचिना ।
रक्ष्यरक्षकभावश्च रेण रक्षकवाचिना ॥

अर्थ–जगत्का त्रिविधकारणवाचि रकार करके पिता और पुत्र भाव संवन्ध कहा है अर्थात् श्रीराम ब्रह्मादिजगत्के पिता हैं और ब्रह्मादिजगत् पुत्र हैं १ । और रक्षकवाची रकार[1] करके रक्ष्य[2] रक्षक[3] भाव संबंध कहा है अर्थात् जगत् रक्ष्य (रक्षण करने योग्य) है और श्रीराम रक्षक (रक्षण करनेवाले) हैं २ । इस कारणसे जगत् और रामका रक्ष्य रक्षक भाव संबंध कहा है ॥

---

१ रक्षतीति रः रक्ष पालन । २ रक्षितु योग्यो रक्ष्यः । ३ रक्षति पालय-तीति रक्षकः ।

शेषशेषित्वसंबन्धश्चतुर्थ्या लुप्तयोच्यते ।
भार्याभर्तृत्वसंबन्धोप्यनन्यार्हत्ववाचिना ॥
अकारेणापि विज्ञेयो मध्यस्थेन महामते ।
स्वस्वामिभावः संबन्धो मकारेणाथ कथ्यते ॥
आधाराधेयभावोपि ज्ञेयो रामपदेन तु ।
सेव्यसेवकभावस्तु चतुर्थ्या विनिगद्यते ॥

अर्थ–र शब्दसे उत्तरलुप्त चतुर्थीविभक्ति करके जीवोंका और रामका शेष-शेषी भाव संबंध कहा है, जीव शेष है, और राम शेषी हैं ३ । हे महामते ! अनन्यार्हवाचि मध्यस्थ अकार करके भार्याभर्तृत्वसंबंध जाननेयोग्य है ४ । ज्ञातावाचि मकार करके स्वस्वामिभाव संबंध कथन किया है, स्व नाम जीवका है, स्वामी नाम रामका है, उन दोनोंका स्वस्वामिभाव संबंध है ५ । रामपद करके राम और जीवका आधार आधेय भाव संबंध जानने योग्य है, राम आधार है और जीव आधेय है ६ । आय इस चतुर्थी विभक्ति करके सेव्यसेवकभाव संबंध कहा है, श्रीराम सेव्य है, और जीव सेवक है जीवोंको अवश्य सेवने योग्य श्रीराम हैं ऐसे चतुर्थी विभक्ति कहती है ॥७॥

नमःपदेनाखण्डेन त्वात्मात्मीयत्वमुच्यते ।
षष्ठ्यन्तेन मकारेण भोग्यभोक्तृत्वमप्युत ॥

अर्थ–नमः ऐसा अखंडपदकरके आत्मा और आत्मीयत्व संबंध कहा है । आत्मा नाम जीवका है और आत्मीय नाम ईश्वरका है, उन दोनोंका आत्मा आत्मीयभाव संबंध है ८ । अब नमःशब्दकी सखंडताका अभिप्राय लेकर कहते हैं कि, षष्ठी विभक्ति अंतवाला मकार करके भोग्य भोक्तृत्व संबंध कहा है । भोग्य जीव है भोक्ता श्रीराम हैं ९ ॥ इति ॥४॥

जीवस्वरूप ।

ज्ञानानन्दस्वरूपोऽन्वगतिसुखगुणो मे न वेद्योऽणुमानो
देहादेरप्यपूर्वो विविदितविविधस्तत्प्रियस्तत्सहायः ।

नित्यो जीवस्तृतीयेन तु खलु पदतः प्रोच्यते स्वप्रकाशो
जिज्ञासूनां सदेत्थं शुभनतिसुमते शास्त्रवित्सज्जनानाम् ॥५॥

अर्थ–तीसरा जो मकार पद है, उस करके जीव कहा है। सो जीव कैसा है कि (जिज्ञासूनां सदा वेद्यः) जिज्ञासु पुरुषोंको सदा जानने योग्य है। (ज्ञानानंदस्वरूपः) ज्ञान और आनंद स्वरूप है। (अवगतिसुखगुणः) ज्ञान और आनंद गुणवाला है। (अणुमानः)[1] "एषोणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः" यह आत्मा अणुपरिमाणवाला है सो आत्मा ज्ञानइंद्रिय तथा कर्मइंद्रियोंका विषयभूत नहीं है। किंतु अत्यंत सूक्ष्म अणुपरिमाणवाला जीवात्मा केवल मनकरके जानने योग्य है। तथा "वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च" शत विभाग करके सौ प्रकारसे कल्पना किया हुआ जो बालके अग्रका शतवां भाग है, उस शतवां भाग जितना जीव है, इस प्रकारसे मध्यम परिमाणसे तथा महत्परिमाणसे रहित जीव अणुपरिमाणवाला श्रुतियोंके प्रमाणोंकरके सिद्ध है॥ (देहादेरपूर्वः) चौवीश तत्वोंका समूहरूप देहादिकसे अलग है। (विविदितविविधः)[2] बद्ध मुक्तादि भेद करके अनेक प्रकारका है। (तत्प्रियः)[3] उस परमात्माका प्रिय है। (तत्सहार्यः)[4] सो परमात्मा मोक्षादिकोंमें जिसका सहाय है। (नित्यः) सर्वदा एकरूप अविनाशी है। "नैनं छिंदंति शस्त्राणि" इत्याद्युक्तेः। इस जीवको पृथ्वी तत्वके विकाररूप शस्त्र छेदन नहीं करते हैं, और अग्निकरके जले नहीं, जल करके गले नहीं, तथा पवन करके सूखे नहीं ऐसा जीव नित्य और सनातन है। इस रीतिसे गीताचार्य श्रीकृष्ण भगवान्का अखंड सिद्धांत है। (स्वप्रकाशः) स्वकरकेही प्रकाशमान है। दीपक अग्नि आदिकोंकी तरह अन्यकरके प्रकाशमान नहीं है। इस प्रकारके दश विशेषणोंवाला जीव (शास्त्रवित्सज्जनानाम्) हे शुभनतिसुमते! शास्त्रोंके पढे हुए और सज्जन ऐसे जिज्ञासुओंको जानने योग्य है। शास्त्रोंके ज्ञानसे रहित और असज्जन ऐसे पुरुषोंको जानने अयोग्य है इति ॥ ५ ॥

इस प्रकारसे रकार आदिक पदोंके अर्थका क्रमसे प्रतिपादन करके अब उसके वाक्यार्थको निरूपण करते हैं–

---

१ अणुः मानं परिमाणं यस्य सोऽणुमानः। २ विविदितश्चासौ विविधश्च बद्धादिभेदादनेकधा। ३ तस्य परमात्मनः प्रियस्तत्प्रियः। ४ स परमात्मा सहायो मोक्षादौ यस्य सः तत्सहायः॥

मवाच्योहं रवाच्याय शेषभूतोस्मि सर्वदा ।
इतीत्थमेव बोध्योज्ञैर्वाक्यार्थस्तद्विवित्सया ॥ ६ ॥

अर्थ–मंत्र पदार्थके ज्ञानपूर्वक वाक्यार्थको जाननेकी इच्छा करके मंत्रार्थको जाननेवाले विद्वानोंकरके ऐसेही वाक्यार्थ जानने योग्य है । (मवाच्योहं) मकार करके वाच्य जो मैं जीव हूं सो जीव (रवाच्याय) रकार करके वाच्य जो श्रीराम हैं उनके अर्थही सर्वकालमें शेषभूत हूं अर्थात् मैं जीव श्रीरामके अर्थही शेष हूं, ब्रह्मादिक देवोंके अर्थ नहीं हूं । श्रीराम शेषी है और मैं शेष हूं इति ॥ ६ ॥

राम, इसमें तीन पदका पदार्थ बोधन पूर्व वाक्यार्थ स्पष्ट करके, अब चौथे पदार्थको कहते हैं–

रामायेति चतुर्थेन श्रिया देव्यास्तु सर्वदा ।
चेतनाचेतनानां च रमणाश्रयतेर्यते ॥ ७ ॥

अर्थ–रामाय इस चतुर्थी विभक्ति अंतवाला चौथा पदकरके श्रीदेवीके रमणकी आश्रयता तथा चेतन अचेतनरूप विश्वके रमणकी आश्रयता सर्वदा प्रतिपादन की है, अर्थात रामाय इस पदककरके श्रीराम लक्ष्मीको और विश्वको सर्वकालमें रमण करनेवाला है ॥

प्रश्न–श्रीशब्दका कैसा अर्थ है ?

उत्तर–ब्रह्मादि[1] देवगण जिसको सेवते हैं, इससे श्री ऐसा नाम है १ । श्रिञ् धातु सेवार्थमें होनेसे वा अपने आश्रितोंके दोषोंका हनन करनेसे श्री नाम है २। श्रृ धातु हिंसार्थवाला होनेसे वा सर्वविज्ञापन भगवंतको सुनावै अथवा आप सुने उसका नाम श्री है ३ । अपने पति श्रीरामको आप सेवे, और दूसरे जनोंकरके सेवा करावे, उसका नाम श्री है ४ । वा सर्व जगत्की माता होनेसे वात्सल्यका अतिशयसे रावणादिककोभी हितार्थका बोध करनेसे श्री नाम है । " लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा कमला श्रीर्हरिप्रिया " इत्यमरः । लक्ष्मी, पद्मालया, पद्मा, कमला, श्री, हरिप्रिया ऐसे अमरकोशमें श्री नाम लक्ष्मीका

---

१ ब्रह्मादिगणैः श्रियते सेव्यते इति श्रीः श्रिञ् सेवायाम् । शृणाति आश्रितदोषान् हिनस्तीति श्रीः श्रृ हिंसायाम् । सर्वविज्ञापनं भगवंतं श्रावयति स्वयं वा श्रृणोतीति श्रीः इत्यादि।

कहा है तोभी "सीतालक्ष्मीर्भवान् विष्णुः" इस वाल्मीकिवचनसे सीता और लक्ष्मीका अभेदही है, भेद नहीं है ॥ ७ ॥

सस‍र्वविधबंधुत्वं सर्वप्राप्यत्वमेव च ।
सर्वप्रापकता तेन तथा चोभयलिङ्गता ॥ ८ ॥

अर्थ–'रामाय' इस पद करके श्रीरामका सर्वप्राप्यत्वभी प्रतिपादन किया है, अर्थात् जैसे जाति, गुण शौचादिकों करके रहित निषाद, गृध्र, शिवरी वानरादिकोंको श्रीराम प्राप्त हुए तैसे सर्वप्राणियोंको कंठमणिकी तरह श्रीराम अत्यंत सुलभपनेसे प्राप्त होने योग्य हैं । कीदृशं (सर्वप्राप्यत्वम् ।) श्रीरामका सर्वप्राणियोंको प्राप्यपना कैसा है कि (ससर्वविधबंधुत्वं) सर्वप्रकारके बंधुपने करके सहित है । श्रीरामकाही सर्वप्रकारका बंधुपना सर्व जीवोंका आश्रय करने योग्य है । सो सर्व प्रकारका बंधुत्व रामायणमें कहा है कि "भ्राता भर्ता च बंधुश्च पिता च मम राघव" हे राघव ! मेरे भ्राता, भर्ता बंधु और पिता तुमही हो ॥ और पंचरात्रागममेंभी कहा है–

पिता माता सुहृद्बंधुर्भ्राता पुत्रस्त्वमेव मे ।
विद्या धनं च कामश्च नान्यत्किंचित्त्वया विना ॥
जन्मप्रभृति दासोस्मि शिष्योस्मि तनयोस्मि ते ।
त्वं च स्वामी गुरुर्माता पिता च मम माधव ॥

अर्थ–हे भगवन् ! मेरे पिता, माता, सखा, कुटुंब, भ्राता और पुत्र तुमही हो तथा मेरे विद्या, धन और कामभी तुमही हो । तुम्हारे विना मेरे दूसरा कुछभी नहीं है ॥ हे माधव ! जबसे मैं जन्म लिया है तबसे मैं तुम्हारा दास शिष्य और पुत्र हूं और तुम मेरे स्वामी, गुरु, माता और पिता हो ॥ तथा श्रीरामकी सर्वप्रापकताभी इस रामाय पदकरकेही प्रातिपादन की है, अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष,इन सर्व पदार्थोंको जो प्राप्त करे, उसका नाम सर्वप्रापक है । ऐसे श्रीरामही सर्व प्रापक हैं । दूसरा कोईभी देव सर्वप्रापक नहीं, कोई कोई देव एक दो फलके देनेवाले शिव ब्रह्मादिक देव हैं, और राम तो सर्वप्रापक हैं, जैसे आम्रका वृक्ष आम्रफलको देता है, और कदली, जांबू, खर्जूर, पनस आदिक वृक्ष, अपने अपने एक एकही फलको देते हैं, मनोवांछित सर्व प्रकारके फलोंको नहीं देते हैं, और कल्पवृक्ष तो मनो-

वांछित सर्व प्रकारके फलोंको देता है वैसे श्रीरामभी सर्वप्रापक हैं मनोवांछित सर्व प्रकारके फलोंको प्राप्त करनेवाले हैं ॥

और वैसेही श्रीरामकी उभयलिंगताभी प्रतिपादन किया है ॥

पदेनैवोच्यते सत्यानन्दचिद्रूपता तथा ।
यावद्विभूतिनेतृत्वं रामपादाब्जसन्नते ॥ ९ ॥

अर्थ–हे रामपादाब्जसंनते! उस 'रामाय' पद करकेही श्रीरामकी सत् चित् आनंदरूपताभी कही है, तथा जितनी विभूतियां हैं, उन सर्व विभूतियोंका नेतृत्वभी श्रीरामकाही कहा है और सर्व विभूतियोंके नायक श्रीराम हैं इति९॥

रागादिकारणे बन्धौ तेनैव विनिवर्त्यते ।
बन्धुत्वप्रतिपत्तिश्च भासमानाऽविचारतः ॥१०॥

अर्थ–जैसे भ्रम करके छीपमें रूपा भासता है, वैसे रागादिकोंके कारणरूप भ्राता पुत्र कलत्र मित्र आदिकोंमें 'ये हमारे बंधु हैं' ऐसा जो प्रतीत होता है, सो बंधुपनेका निश्चय रामाय इस पद करके जब दूर हो जाता है तबही उस पुरुषको श्रीरामभी सर्वप्रकारके बंधु होते हैं इति ॥ १० ॥

तच्चतुर्थ्या स्वानुरूपकैंकर्यप्रार्थनोच्यते ।
विषयांतरसेवापि प्राप्ता च विनिवर्त्यते ॥ ११ ॥

अर्थ–तथा राम पदके आगे जो आय यह चौथी विभक्ति है उस करके स्वानुरूपकैंकर्य अर्थात् जीवके योग्य, जीवके स्वामी श्रीरामकी सेवाकी याचना आय पदकरके कही हैं और प्राप्त हुई. जो विषयांतरकी सेवा, अर्थात् ब्रह्मा, शिव आदिक देवोंकी रागसे प्राप्त भई जो सेवा है, सो सेवाभी आय पदसे निवृत्त हो जाती है । इस जीवको ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये कि, हे भगवन्! तुम्हारीही सेवा मेरे अनुरूप (योग्य) है, ब्रह्मा शिवादि देवोंकी सेवा मेरे योग्य नहीं है इति ॥ ११ ॥

अब दो श्लोकों करके अर्थपंचकको कहते हैं–

बीजेनैवाथ जीवस्य स्वरूपं प्रतिपाद्यते ।
रामायेति परस्यापि चतुर्थ्या तत्फलस्य च ॥ १२ ॥

उपायस्य त्वखण्डेन नमःशब्देन चोच्यते ।
सखण्डेन मकारेण षष्ठयंतेन विरोधिनः ॥ १३ ॥

अर्थ–रां इस बीज करके जीवके स्वरूप, और राम पद करके परमात्माके स्वरूप तथा आय पदकरके प्राप्तिके फलका स्वरूपको प्रतिपादन किया है ॥ नमः इस अखंड पद करके प्राप्तिके उपायका स्वरूप कहा है । तथा षष्ठयंत सखंड मकार करके प्राप्तिके विरोधि स्वरूपको कहा है ॥ १३ ॥

अर्थप्रश्चक ।

प्राप्यस्य ब्रह्मणो रूपं प्राप्तुश्च प्रत्यागात्मनः ।
प्राप्त्युपायं फलं प्राप्तेस्तथा प्राप्तिविरोधि च ॥ १४ ॥

अर्थ–इस प्रकारसे प्राप्त होने योग्य ब्रह्मका स्वरूप १, प्राप्त होनेवाले जीवका स्वरूप २, प्राप्तिका उपाय ३, प्राप्तिका फल ४, और प्राप्तिका विरोधि ५ इस रीतिसे इन अर्थपंचकोंके स्वरूपोंको यथार्थ जो जानता हैं सोही परमैकांति वैष्णव है, और इनके स्वरूपोंको जो नहीं जानता है, सो बाहिरसे केवल वैष्णव वेषधारी है । जैसे भेड वाघंबरको पहिरकर बाहरसे सिंह बनी है परंतु वह भेड भीतरसे सिंह नहीं है तैसे तिलक छाप मालादिक चिह्नोंको धारण करके बाहिरसे वैष्णव बने हैं, परंतु वे वैष्णव भीतरसे नहीं हैं वे तो वेषधारीवैष्णव हैं, ज्ञानीवैष्णव नहीं हैं ॥ १४ ॥

प्रश्न–हे स्वामिन् ! राममंत्रकर तात्पर्यार्थ कौनसा है १, वाक्यार्थ कौन है २, प्रधानार्थ कौन है ३, तथा अनुसंधानार्थ कौनसा है ४ ? ।

उत्तर–तात्पर्यार्थोऽशेषवेदशास्त्राभिरुचिसंश्रयः ।
वाक्यार्थः प्राप्यसंबंधिस्वरूपाभिनिरूपणम् ॥ १५ ॥
तारकस्य प्रधानार्थः स्वस्वरूपनिरूपणम् ।
संबंधानुसंधानमनुसंध्यर्थ इष्यते ॥ १६ ॥

अर्थ–संपूर्ण वेद और शास्त्रोंकी रुचिका जो संशय है सो तारकका तात्पर्यार्थ कहा है १। प्राप्य भगवत श्रीरामके संबांधि स्वरूपका जो प्रतिपादन है

---

१ अर्थपंचकका अर्थ विस्तार हमारे पूर्वाचार्य शठकोपस्वामिकृत सहस्रगीति आदिग्रंथोंमें देख लेना ।

सो तारक मंत्रका वाक्यार्थ कथन किया है. २ । जीवके स्वरूपका जो प्रतिपादन है सो तारक मंत्रका प्रधानार्थ कहा है ३ । जीव और परमात्माके अनेक विधसंबंधका जो दिने दिने अनुभव है, सो तारक मनुका अनुसंधानार्थ कहा है इति ॥ १५ ॥ १६ ॥ "जाप्यं तत्तारकाख्यं" इस श्लोकसे लेकर इहांतक तारक श्रीमंत्रराजके अर्थका यथामति प्रमाणसहित मैंने निरूपण किया है, सो निर्मत्सर मुमुक्षुओंको निरंतर अनुसंधान करने योग्य है ॥ इति प्रथमरहस्यम् ॥

इति श्रीभगवद्रामानुजचरणपाथोजषट्पदेन श्रीमत्पंडितगोपाळदासेन विरचिते श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकरे राममंत्राख्यप्रथमरहस्यव्याख्याने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

अथ द्वितीयं रहस्यम् ।

उक्त्वेत्थं तारकार्थं तु द्वयार्थः प्रतिपाद्यते ।
विमत्सराः प्रपश्यन्तु प्रगृह्णंत्ववयन्तु च ॥ १ ॥

अर्थ—अब द्वितीय रहस्यको कहते हुए श्रीगुरु शिष्यके प्रति श्रीरामद्वयमंत्रके अर्थको कहते हैं, ऐसे हे शिष्य ! पूर्वोक्तरीतिसे तारक मंत्रके अर्थको कथन करके अब हम श्रीरामद्वयके अर्थको निरूपण करते हैं, हे विमत्सर ! तुम इस मंत्रको नेत्रोंसे देखो और शब्दसे प्रकृष्ट करके ग्रहण करो, तथा अर्थसे जानो ॥ १ ॥ अब मन्त्रके वाक्यादिकोंको कहते हैं—

द्वयमन्त्रविवरण ।

श्रीरामद्वयमन्त्रमद्भुततमं वाक्यद्वयं षट्पदं
बाणाक्षिप्रमिताक्षरं तु भवता वेद्यं दशार्थान्वितम् ।
युक्तं तत्रिपदैस्तु तत्र सुमते पूर्वं शुभस्यास्पदं
वाक्यं पञ्चदशाक्षरं तदनुदिग्वर्णात्मकं तूत्तरम् ॥ २ ॥

अर्थ-हे सुंदरबुद्धिवाले ! श्रीरामद्वयमंत्र तुम्हारे जानने योग्य है । द्वय-मन्त्र कैसा है कि (वाक्यद्वयं) दो वाक्य जिसमें हैं। (षट्पदं) जिसके षट्पद हैं। (बाणाक्षिप्रमिताक्षरं) बाण पांच, अक्षि दो, यह दोनों अंक "अंकानां वामतो गतिः" इस रीतिसे मिलकर पच्चीस अक्षरोंवाला है। (दशार्थान्वितम्) पुरुषकाररूप सीता आदिक दश अर्थोंकरके युक्त है। (तत्र पूर्वं त्रिपदैर्युक्तं) उस मन्त्रका प्रथम अर्द्ध (भाग) तीन पदोंवाला है। (पंचदशाक्षरं) जिस पूर्ववाक्यमें पंदरह अक्षर हैं। और उसका उत्तरार्द्ध (दिग्वर्णात्मकम्) दिक् दश अक्षरोंवाला है। ऐसा भागद्वयरूप यह मन्त्र (शुभास्पदं) परम मंगलका स्थान मोक्षको देनेवाला है ॥ २ ॥

इस प्रकार मंत्रके वाक्यादिकोंके विभागको कथनकर उन वाक्योंके अर्थ बोधके लिये पद, नाम और अर्थका प्रतिपादन करते हैं—

सर्वाधीश्वरस्याप्तिहेतुरत्राभिधीयते ।
सीता पुरुषकारार्था श्रीत्यनेन पदेन तु ॥ ३ ॥

अर्थ-इस श्रीरामद्वयमंत्रमें श्रीपदकरके पुरुषकारके अर्थ सीता कही है। और ब्रह्मादि स्थावरपर्यंत जगतके ईश्वर श्रीरामकी प्राप्तिमें सीताही कारण है।

अयं भावः-"आश्रितदोषान् शृणाति नाशयति तत्प्रार्थनाः स्वयं शृणोति निजपतिं रामं श्रावयति अहितमपि हितान् श्रावयतीति श्रीः"

इत्यादि व्युत्पत्ति करके श्रीपदसे आश्रितोंके दोषोंको नाश करनेवाली और उन आश्रितोंकी प्रार्थनाको आप सुननेवाली और अपने पति श्रीरामको सुनानेवाली तथा आश्रितोंके अहितकोभी हितकरके सुनानेके स्वभाववाली तथा ब्रह्मादि देवोंकरके सेवा की हुई तथा संपूर्ण ब्रह्माण्डके पूर्ण करनेमें सामर्थ्यवाली तथा परम करुणावाली तथा निरंतर दयावाली, ऐसा भगवती सीता श्रीरामके प्राप्तिकी हेतु (कारण है) इति ॥ ३ ॥

मता पुरुषकारस्य नित्यसम्बन्ध उच्यते ।
रामचन्द्रेति पदतो वात्सल्यादिगुणस्य च ॥ ४ ॥

---

१ पुरुषकारः अर्थः प्रयोजनं यस्याः सा पुरुषकारार्था । वा पुरुषकाराय इयं पुरुषकारार्था ॥

अर्थ—और नित्ययोगमें विहित मतुप् प्रत्यय करके सीतारूपी पुरुषकारका सर्वेश्वर भगवान् श्रीरामके साथ नित्य संवन्ध कहा है। "अनन्या च मया सीता भास्करेण प्रभा यथा" इस उक्त रीतिसे जैसे--प्रभा और सूर्यका नित्य संबंध है, वैसे सीता और रामका नित्य संबंध है। तथा जातिका और व्यक्तिका जैसे समवाय संबन्ध है, तैसे सीता और श्रीरामका नित्य संवन्ध कहा है॥ 'रामचन्द्र' इस पदकरके श्रीराममें वात्सल्य, स्वामित्व, सौशील्य, सौलभ्य, सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तित्व, अवाप्तसमस्तकामत्व, दया, कृपा, अनुकंपा, करुणा, सौंदर्य, सौहार्द, क्षमा इत्यादिक अनन्त कल्याणगुणोंका नित्य संबन्ध है। इन वात्सल्यादि गुणोंका लक्षण और प्रयोजन भी क्रमसे कहताहूं—

वात्सल्य।

"आश्रितदोषास्मर्तृत्वं वात्सल्यत्वम्"

अपने आश्रितोंके दोषोंका स्मरण न करनेका नाम वात्सल्य है। जैसे—माता अपने पुत्रके दोषको मनमें नहीं लाती है पुत्र अपनी माताके गर्भमें लात मारे, माताके ऊपर मल मूत्र कर दे दूसराभी कुछ काम बिगाड दे तोभी माता स्नेहवशसे पुत्रके दोषोंको नहीं संभालती है वैसे रामभी अपने भक्तोंके दोषोंको नहीं स्मरण करते हैं। रामायणमें कहा है कि--

न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥

अपने भक्तने सैकडों अपराध करे हों तथापि उन अपराधोंको श्रीराम मनमें नहीं धरते हैं॥ ऐसा भागवतमेंभी कहा है--

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥
नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन्येषां गतिरहं परा॥
ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥

अर्थ--दुर्वासा ऋषिको वैकुंठपति वोले कि, हे द्विज! अभिमानको छोडकर जिसका अपराध तैंने की है उसकेही पगोंमें पड। क्योंकि मैं मेरे भक्तोंके आधीन हूं इस कारण मैं परतन्त्रके सदृश हूं। मैं भक्तजनोंको प्रियहूं साधु

और भक्तों करके मैं ग्रस्त हृदयवाला हूं । हे ब्रह्मन् ! मेरे भक्त और साधुओंके विना मैं आत्माकीभी स्पृहा नहीं रक्खता हूं और मेरी आत्यंतिकी लक्ष्मीकोभी नहीं इच्छाकरता हूं। जिन मेरे साधु और भक्तोंका परमगति रूप मैं हूं क्योंकि जो साधु और भक्त अपने स्त्री,घर, पुत्र, कुटुंब, प्राण, धन, यह लोक, परलोक इन सबका परित्याग करके मेरे शरणको प्राप्त हुये हैं, उनको मैं त्यागनेको कैसे सहन करूं, कदापि नहीं करूंगा इति ॥

इस वात्सल्य गुणका प्रयोजन यह है कि, यदि भक्तके मनमें 'यह अपराध बन गया है, भगवान् जाने मेरा क्या करेंगें ' ऐसा जो भगवत् जनित भय है, उस भयका दूरकरनाही प्रयोजन है॥ ऐसा वात्सल्यगुण दूसरे देवोंमें नहीं है । क्योंकि, दूसरे देवोंका किसीने थोडाभी अपराध किया होय तो उस अपराधीको सत्यानाश कर डालते हैं । जैसे गोकुल नन्दगांवमें नन्दजीने इंद्रका पूजन और यज्ञ नहीं किया, उतनेमेंही इंद्र सब गोकुलका समूल नाश कर डालता था, परंतु श्रीकृष्ण भगवान्ने गोकुलको बचालिया ॥ और भगवत्को तो कोई भक्त नैवेद्य धरो या मत धरो, पूजन करो या मत करो, भगवान् किसीकाभी बुरा नहीं चाहते हैं। जैसे ब्रह्माकी सभामें भृगुऋषिने ब्रह्माको प्रणाम नहीं किया तब ब्रह्माने भृगुको मारनेका हुकम दिया था। और शिव अपने शरीरमें राख चुपडके बैठे थे भृगु आये तब शिव उठकर मिलने लगे, भृगुने राखोडिया शिवको अपवित्र जानकर छूना नहीं, ऐसा जब कहा तब शिव त्रिशूल लेकर भृगुको मारने लगे, तब पार्वतीने बचालिये और भगवत्की छातीमें लातभी भृगुने मारी तथापि भृगुके अपराधको मनमें नहीं लाये ॥ ऐसा वात्सल्य गुण श्रीराममेंही है ॥ इति वात्सल्यगुणः ॥

स्वामित्व ।

'स्वव्यतिरिक्तसमस्तवस्तुमात्रे स्वकीयत्वाभिमानः स्वामित्वम्।'

अपनेसे भिन्न समस्त वस्तु मात्रमें स्वकीयत्वका जो अभिमान है, उसका नाम स्वामित्व गुण है ॥ सो कहा है कि–

" स्वत्वमात्मनि संजातं स्वामित्वं ब्रह्माणि स्थितम् " इति॥

स्वपना आत्मामें रहा है, और स्वामीपना ब्रह्ममें स्थित है । इस उक्तिसे भगवतमेंही स्वामित्वगुण सिद्ध होता है, यह स्वामित्वगुण अन्य देवोंमें नहीं है इति । यह स्वामित्व गुणका प्रयोजन यह है कि–

"मत्कार्यमवश्यं करिष्यतीति प्रत्ययाय स्वामित्वम् "

स्वामी मेरा कार्य अवश्य करेगा इस विश्वासके अर्थ स्वामित्वगुण है। इति स्वामित्वगुणः ॥

सौशील्य ।

"हीनदीनमलिनबीभत्सकुत्सितादिभिरप्यालिंगन-
संभाषणादिकर्तृत्वं सौशील्यम् " ॥

हीन, दीन, मलिन, बीभत्स, कुत्सित आदिक प्राणियोंकेभी साथ आलिंगन संभाषणादिकोंके करनेपनेका नाम सौशील्य गुण है । यह रामायणमेंभी कहा है–

शोणितोत्सिक्तसर्वाङ्गं क्रव्यादं च जटायुषम् ।
अङ्कमारोप्य पप्रच्छ संचस्कार च तं मृतम् ॥

अर्थ–श्रीरामभगवान् रुधिर करके सर्व अंग अत्यंत भीजा हुआ और मांसको खानेवाला जटायुको अपनी गोदमें बैठाकर पूछने लगे, और उस मरे हुए जटायुका संस्कारभी वेदमंत्रोंसे भगवान् किये । इति सौशील्यगुणः ॥

सौलभ्य ।

"न मांसचक्षुरभिवीक्षते इत्युक्त्या मांसचक्षुरविषयस्य
तद्विषयतामापद्य नित्यसन्निहितत्वं सौलभ्यम् ॥"

अर्थ–' मांसदृष्टिवाला पुरुष परमात्माको नहीं देखता है ' इस उक्ति करके मांस चक्षके अविषयरूप परमात्मा हैं सो मांसचक्षुकी विषयताको प्राप्त होकर जो निरंतर निकट रहते हैं उसका नाम सौलभ्य गुण है । यह सौलभ्य गुण भागवतमें भी कहा है कि–

अहं वो माधवो जातः सुहृतः सर्वदेहिनाम् ।

अर्थ–तुम्हारा और सर्व जीवोंका सदा पास रहनेवाला सखा मैं माधव नाम करके प्रगट हुआ हूं ॥ और अन्यत्रभी कहा है कि–

नारायणः परः साक्षाद्वैकुण्ठनिलयः सदा ।
अर्चावतारतां प्राप्तो भक्तानां हितकाम्यया ॥

---

१ हिंसक । निर्दय.

अर्थ–सदा वैकुंठ धाममें रहनेवाले सबसे पर ऐसे साक्षात् नारायण अपने भक्तोंके हितकी कामना करके इस मनुष्यलोकमें अर्चावतारको प्राप्त हुये ॥ इस सौलभ्य गुणका प्रयोजन यह है कि–

"भगवद्दौर्लभ्यभयनिवृत्तिरस्य प्रयोजनम् ॥ "

भगवानके दुर्लभपनाके भयकी निवृत्ति, इस सौलभ्यगुणका प्रयोजन है ॥

सर्वज्ञत्व।

"सदावस्तुमात्रविषयकत्रैकालिकज्ञानवत्त्वं सर्वज्ञत्वम् ॥"

अर्थ–निरंतर वस्तुमात्रको विषय करनेवाला जो त्रैकालिक ज्ञानवान्पना है उसका नाम सर्वज्ञत्व है ॥ हे शिष्य ! यदि तू ब्रह्मा शिव आदिक देवों तथा वसिष्ठ, कश्यप, याज्ञवल्क्य, उद्दालक, मार्कंडेय, लोमश आदिक ऋषियोंको भी सर्वज्ञ मानोगे तो वे सर्वज्ञ तो हैं परंतु ईश्वरकी तरह भूत भविष्य और वर्तमान इन तीनोंकालमें(तमाम)वस्तुमात्रका प्रत्यक्ष और निरंतर हाथके आमलाकीमाफक उनको ज्ञान नहीं है, क्योंकि उनको कोई पुरुष जब अपने पूर्व जन्मका वृत्तांत पूछता था तब वे ऋषि मुनि दो घटिकापर्यंत ध्यान धरके पूछनेवालेको उत्तर करते थे। ब्रह्मांडपुराणमें कहा है कि, गोकुल नगरका एक वैखानस नामका राजा था, उसने स्वप्नमें अपने पिताको नरकमें पडे हुए देखकर अपने पिताका नरकसे उद्धार करनेकी चिंतासे पर्वतमुनिके समीप जाकर बोला, मेरे पिताको किस पापसे नरकमें पडना हुआ, और उसका उद्धार किस उपायसे होवेगा–

एतं मे संशयं ब्रह्मन् प्रष्टुं त्वां च समागतः।
एवं श्रुत्वा नृपवचः पर्वतो मुनिसत्तमः ॥
ध्यानस्तिमितनेत्रोसौ भूतं भव्यं विचिन्तयन्।
मुहूर्तमेकं ध्यात्वा च प्रत्युवाच नृपोत्तमम् ॥

अर्थ–इस मेरे संशयको तुम्हारे प्रति पूछनेको मैं आया हूं। इस प्रकार राजाके वचनको सुनकर मुनियोंमें श्रेष्ठ पर्वतमुनि ध्यान करके अपने नेत्रोंको मीच लिये, और उस पिताका पूर्वजन्मके कर्मोंका चिंतन करते हुए दो घडी ध्यान करके फिर वैखानस राजाको उसके पिताके पूर्व जन्मके वृत्तांतको कहे ॥

तथा भविष्यत् पुराणमेंभी ऐसाही लिखा है कि, एक महीजित नामका राजा पुत्ररहित था, वह पुत्रप्राप्तिके वास्ते लोमशऋषिके पास जाकर अपना अपुत्रपनेका दुःखको लोमशकेप्रति कह सुनाया । तब–

इति तस्य वचः श्रुत्वा मुहूर्त्तं ध्यानमास्थितः ।
प्रत्युवाच मुनिर्ज्ञात्वा तस्य जन्म पुरातनम् ॥

अर्थ–उस राजाके वचनको सुनकर लोमश मुनि दो घटी पर्यंत ध्यान लगाय पीछे ध्यानसे उस राजाके पूर्वजन्मके वृत्तांतको जानकर, महीजित राजाको लोमश मुनि उपाय बताये ॥

इस रीतिसे देव ऋषि आदिक सर्वज्ञ तो हैं परंतु भूत भविष्य और वर्तमान इन तीनों कालके गुप्त प्रगट पदार्थ मात्रको एकही कालमें प्रत्यक्ष निरंतर अखंड जानतेही रहै ऐसे नहीं हैं. जब उनको कोई पुरुष पूछता है तब ध्यान करके दो घडीमें ढूंढ लेते हैं । इसवास्ते वे युक्त सर्वज्ञ नहीं हैं, किंतु युंजान सर्वज्ञ हैं॥और श्रीराम तो कैसे सर्वज्ञ हैं कि,जैसे अपने हाथमें आमलाको धरकर देखिये तो संपूर्ण आमला दृष्टिके नीचे आनेसे उस आमलाका एकभी अंग अपने अजानमें नहीं रहता है और हाथीको पूर्व दिशामें खडे होकर देखिये तो हाथीके पश्चिम भागमें क्या जानै क्या चिह्न है सो नहीं दीखता है, और श्रीरामपरमात्मा तो हस्तामलककी तरह निरंतर वस्तुमात्रको जानतेही रहते हैं. इस कारणसे श्रीराम युक्त सर्वज्ञ हैं । इस युक्तसर्वज्ञका लक्षण यह है कि–

यो वेत्ति युगपत्सर्वं प्रत्यक्षेण सदा स्वतः ॥

जो राम परमात्मा सदा प्रत्यक्ष करके वस्तुमात्रको एक कालमें आपसे जानते हैं । इस उक्तिसे श्रीरामही सर्वज्ञ हैं ॥ और ऐसाही वाल्मीकि आदिक ऋषियोंनेभी श्रीरामकोही सर्वज्ञ कहे हैं–

अज्ञातं नास्ति ते किंचित्त्रिषु लोकेषु राघव ॥

अर्थ–हे राघव!तीनों लोकमें राईमात्र वस्तुभी तुम्हारे अजानमें नहीं है ॥

प्रश्न–वसिष्ठमुनि ब्रह्माके समान होनेसे सर्वज्ञ हैं । क्योंकि, योगवासिष्ठ ग्रंथमें ऐसा कहा है कि रामने वसिष्ठसे ज्ञान पाया है ॥

उत्तर–योगवासिष्ठ ग्रंथको प्रमाण ग्रंथोंमें कोई भी आचार्योंने नहीं माना है, योगवासिष्ठ ग्रंथ तो कुछ त्रेतायुगका प्राचीन नहीं है. आत्मपुराणादि ग्रंथोंकी तरह आधुनिक है । योगवासिष्ठ ग्रंथमें ग्रंथकर्ताने राम और वसिष्ठका

संवाद लोकोंके विश्वासार्थ रक्ख दिया है. इस वास्ते योगवासिष्ठग्रंथ अप्रामाणिक है । और लोमश पर्वतादिक ऋषियोंकी तरह वसिष्ठभी युंजान सर्वज्ञ हैं । कुछ युक्त सर्वज्ञ नहीं । ऐसा भागवत नवम स्कंधमें लिखा है कि, एक दिन सूर्यवंशी सौदासराजा वनमें शिकार करने गया था. उस वनमें विचरते हुए राजाको दो राक्षसोंसे भेट हो गई । राजाने एक राक्षसको मार डाला, और उसके दूसरे भाईको जीवता छोड दिया । वह राक्षस अपने भ्राताका वैर लेनेको पाचकका वेष लेकर राजाके रसोईखानेमें रसोई करता रहा।। और जब वसिष्ठमुनि भोजन करने आये तब उस पाचक (रसोईया) ने मनुष्यका मांस सिद्धकर वशिष्ठको परोस दिया । तब वसिष्ठजीने–

परिवेक्ष्यामाणं भगवान् विलोक्याभक्ष्यमंजसा ।
राजानमशपत् क्रुद्धो रक्षो ह्येवं वै भविष्यसि ॥

अर्थ–उस अभक्ष्य मनुष्यके मांसको देखकर क्रोधायमान वसिष्ठ भगवान उस सौदास राजाको शाप दिये कि ‘ तू राक्षस हो जायगा ’।। अब जो वसिष्ठ मुनि सर्वज्ञ होते तो राजाको शाप क्यों देते ? जानते नहीं कि,यह तो राजाके रसोईखानेमें पाचकका वेष लेकर राक्षस अपने भ्राताका वैर लेनेको रहा है और इस राक्षसनेही हमारेको मनुष्यका मांसभी परोसा है, इसमें राजाका कुछ अपराध नहीं । इस राक्षस रसोइयाकोही शाप देना रहा । इस प्रकारका वृत्तांत वसिष्ठको उस समय मालुम नहीं पडा, पीछेसे जब राजाने कहा तब खबर पडी, इसवास्ते अठासी हजार ऋषि मुनि कोईभी सर्वज्ञ नहीं थे ऐसा सिद्ध हुआ इति ।।

प्रश्न–ब्रह्मादिक देव सर्वज्ञ थे कि, नहीं ?

उत्तर–नहीं थे । क्योंकि, गोकुलमें ब्रह्माने भगवानके वत्सोंका हरण किया था सो अज्ञानसेही कियां था, और इंद्रनेभी अपने अज्ञानसेही सप्त दिवस पर्यंत गोकुलके नाशार्थही महा मुसलधार वृष्टि की थी । अब जो ब्रह्मा और इंद्र सर्वज्ञ होते तो भगवानके साथ इतना जुल्म नहीं करते । यह जुल्म अज्ञानसेही बना था, ऐसा दशम स्कंधभागवतमें प्रमाण है ।। और महाभारतमेंभी कहा है कि, दमयंतीके स्वयंवरमें दमयंतीके वरनेको इंद्रलोकसे इंद्र अग्नि आदिक देव आये थे,और दमयंती तो नल राजापरही आसक्त थी । इस कारणसे सर्व देवादिकोंका त्याग करके नलराजाकोही वरण की ।। निर्णय करो कि जो इंद्र अग्नि आदिक देव सर्वज्ञ होते तो दमयंतीके स्वयंवरमें निराश

होनेका काहेको आते ? नहीं आते. जानते नहीं कि, दमयंती तो नलराजा विना किसीकोभी नहीं वरेगी इति ॥ इस कारणसे निरंतर युक्त सर्वज्ञ तो श्रीराम राघवही है, उनके विना दूसरा कोई नहीं । सर्वज्ञगुणका प्रयोजन यह है कि–

" अस्य सर्वज्ञत्वानुसंधानस्य भगवान् ममार्तिं जानाति
न वा जानीयाच्चेत्तां निवारयेदिति फलम् ॥ "

भगवान् मेरी पीडाको जानते हैं कि नहीं जानते हैं ? जो जाने तो उस मेरी पीडाका निवारण करें ऐसा इस सर्वज्ञत्वके अनुसंधानका फल है ॥ इति सर्वज्ञत्वगुणः ॥

सर्वशक्तित्व ।

" कर्तुमकर्तुं जगदन्यथाकर्तुं सामर्थ्यत्वं सर्वशक्तित्वम् ।"

करनेको न करनेको जगत्को अन्यथा (दूसरे प्रकारसे) करनेको जो सामर्थ्यपना है, उसका नाम सर्वशक्तित्वगुण है ॥ इस प्रकारका सामर्थ्य-रूप सर्वशक्ति श्रीराममें ही है. दूसरेमें नहीं । इस रामके सर्वशक्तिपनेको रामायणमें कहा है कि–

संहृत्य वा पुनर्लोकान् विक्रमेण महायशाः ।
शक्तः स पुरुषव्याघ्रः स्रष्टुं पुनरपि प्रजाः ॥

अर्थ–महायशवाले श्रीरामचंद्र भगवान् इन चराचर सर्व लोकोंको अपने पराक्रमसे संहार करके, फिरभी पुरुषोत्तम श्रीराम, इस सर्व प्रजाको उत्पन्न करनेमें समर्थ हैं । इस प्रकारके शत्रुके वचन करके श्रीरामका सर्वशक्तित्व गुण स्पष्ट प्रतिपादन किया है ॥ इति सर्वशक्तित्वगुणः ॥

अवाप्तसमस्तकामत्व ।

" विभूतिद्वयशेषित्वात्सकलभोग्यपरिपूर्णत्वम्
अवाप्तसमस्तकामत्वम् ॥ "

अर्थ–त्रिपाद् विभूति और भोग विभूति इन दो विभूतियोंका शेषिपना होनेसे सकल भोग्य पदार्थोंकरके जो परिपूर्णपना है, उसका नाम अवाप्तस-मस्तकामत्व गुण है ॥ गीतामें भगवानभी कहा है कि–

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त्त एव च कर्मणि ॥

अर्थ–जैसे घरके स्वामीको घरमें रहे हुए सर्व पदार्थ प्राप्तही हैं वैसे सर्व ब्रह्मांडका स्वामी जो मैं कृष्णभगवान् हूं, सो मेरेको ब्रह्मांडमें रहे हुए सर्व पदार्थ प्राप्तही हैं । कोईभी पदार्थ अप्राप्त नहीं, और लोकमेंभी पूर्व अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिकेवास्तेही प्रयत्न करते हैं. प्राप्तिकी प्राप्तिकेवास्ते कोईभी प्रयत्न नहीं करता है । इस कारणसे तीनों लोकमें कोईभी पदार्थके वास्ते हमारेको किंचित् मात्रभी कर्तव्य नहीं है, तौभी मैं वेदविहित कर्मको करता हूं. त्याग नहीं करता हूं इति । और इस गुणका फल यह है कि–हर्षादिकके कारणरूप राज्यादिक पदार्थोंके विद्यमान हुए भी श्रीराममें जो निरंतर अविक्रियपनेका लाभ है, सो इस अवाप्तसमस्तकामनाका फल है ॥ इंति अवाप्तसमस्तकामत्वगुणः ॥

दया ।

'स्वार्थमनपेक्ष्य परदुःखनिराचिकीर्षया परदुःखदुःखित्वं दया ॥'

अर्थ–स्वार्थकी इच्छा नहीं करके परके दुःखको दूर करनेकी इच्छा करके जो परके दुःख करके आपको दुःखिपना है, उसका नाम दया है ॥ रामायणमेंभी कहा है कि–

व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखितः ।
उत्सवेषु च सर्वेषु पितेव परितुष्यति ॥

अर्थ–श्रीराम मनुष्योंको दुःखकी प्राप्ति हो तो आप अत्यंत दुःखित होते हैं और मनुष्योंको आनंदकी प्राप्ति हो तो पिताकी तरह अत्यंत संतोषको प्राप्त होते हैं, इस प्रकारका दयागुण भगवान् राममेंही है ॥ " देङ् पालने " देङ् धातु पालन अर्थमें है, इस धातुसे दयाशब्द हुआ है । श्रुतिमेंभी दयाशब्द देङ्धातुकाही कहा है–

देङ्धात्वर्थमादाय निर्मितो यो हरेर्गुणः ।
दयाख्यः श्रुतिविख्यातो नित्यो ह्येष स्वरूपतः ॥

अर्थ-दया जिसका नाम, ऐसा जो हरिका गुण है सो दया गुण देङ् धातुको लेकर बनाया है । यह दया गुण श्रुतिमें विख्यात है और यह दयागुण स्वरूपसे नित्य है ॥ इति दयागुणः ।

कृपा ।

रक्षणे सर्वभूतानामहमेव परो विभुः ।

अर्थ-सर्व प्राणियोंके रक्षणमें मैंही अत्यंत समर्थ हूं. इस प्रकारसे सामर्थ्य साधनका नाम कृपा है । " कृपू सामर्थ्ये " कृपू धातुभी सामर्थ्य अर्थवाला है, उस कृपू धातुका कृपा शब्द हुआ है ॥ इति कृपागुणः ।

अनुकंपा ।

तेषामेवानुकंपार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥

अर्थ-श्रीवासुदेवनें अर्जुनको कहा है कि, हे अर्जुन ! मेरेको प्रीतिपूर्वक भजनेवाले मेरे भक्तोंके अनुकंपाके अर्थही मैं उनके अज्ञानसे उत्पन्न हुआ । जन्ममरणरूप संसारका उन भक्तोंकी बुद्धिमें स्थित हो करके प्रकाशमान ज्ञानदीप करके नाश करता हूं । इस प्रकारसे भगवान्‌का अनुकंपा गुणको आप भगवान्‌नेही अर्जुनको कहा है ॥ इति अनुकंपागुणः ।

करुणा ।

अत्यंतमृदुचित्तत्वमश्रुतपातादिकृद्द्रवत् ।
कथं कुर्यां कदा कुर्यामाश्रितार्तिनिवारणम् ॥

अर्थ-नेत्रोंमेंसे आंसुओंको बहने करके चित्तका अत्यंत कोमलपना और मेरे भक्तों और आश्रितोंकी पीडाका निवारण मैं कैसे करूं और कब करूं ? इस प्रकारकी जो इच्छा है उसका नाम करुणागुण है इति। इससे अधिक करुणागुणका विवेचन करना होय तो रामायणमें देख लेना । क्योंकि " रामस्यैवं स्वभावोयं दृष्टो रामायणे स्फुटः " इस प्रकारसे रामचंद्र भगवान्‌का यह करुणास्वभाव स्पष्ट रीतिसे रामायणमें देखा है । इति करुणागुणः ।

---

१ विभातीति विभुः । यद्वा विभवतीति विभुः ।
अर्थ-शोभनेसे वा समर्थ होनेसे विभु नाम है ।

सौन्दर्य ।

अङ्गेन येन येनैव दृष्टमात्रेण पश्यताम् ।
सुखमुत्पद्यते सद्यः सौन्दर्यं तत्र तत्र च ॥

अर्थ–भगवत्के जिस जिस मुखादिक अंगोंके देखनेसे देखनेवाले प्राणियोंको तत्काल सुख उत्पन्न होता है, वह उस उस अंगमें सौंदर्यगुण जानना ॥

सौहार्द ।

स्वप्रीतेः स्वप्रपत्तेश्च कारणं करुणाम्बुधेः ।
हेत्वन्तरानपेक्षं हि सौहार्दं शाश्वतं हरेः ॥

अर्थ–करुणानिधि भगवान्की स्वप्रीतिका और स्वप्रपत्तिका शाश्वत सौहार्द गुणही कारण है । दूसरा कोईभी कारण नहीं । और भागवतमेंभी इस प्रकारसेही कहा है कि–

नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वासुरात्मजाः ।
प्रीणनाय मुकुन्दस्य न व्रतं न बहुज्ञता ॥

अर्थ–प्रह्लाद असुर बालकोंको उपदेश करते हैं कि, हे असुरात्मजाः ! मुकुन्द भगवान्को प्रसन्न करनेके वास्ते ब्राह्मणत्व, देवत्व, ऋषित्व और चांद्रायण प्राजापत्यादिक बहुत ज्ञानपनाभी समर्थ नहीं है । भगवान्के प्रसन्न करनेमें तो एक भक्तिरूपी सौहार्दही कारण है। इति सौहार्दगुणः ॥

इस प्रकारसे श्रीराम भगवान्में वात्सल्यादिक अनन्त कल्याण गुण विद्यमान हैं।

प्रश्न–श्रीरामद्वयमन्त्रमें रामके आगे चन्द्रशब्द है, रामशब्दका अर्थ तो मैंने आपसे सुना है परंतु चन्द्रशब्दका कैसा अर्थ है सो कहो ॥

उत्तर–" चदि आह्लादे दीप्तौ च " अर्थात् चदि धातुसे चन्द्रशब्द हुआ है, चन्द्रपदका ऐसा अर्थ है कि, सकल जनोंको निरवधिक आनन्दका देनेवाला और प्रकाशका करनेवाला है । श्रुतिमेंभी कहा है कि, इस परमात्माका आनंदकी एक मात्राको लेकर यह सकल जगत् जीवता है, दूसरे कोईभी पदार्थमें आनन्द नहीं है, जगत्में सर्व पदार्थ दुःखरूपही हैं परंतु श्रीराम आनंदसागर है उस आनन्दसागरमेंसे आनंदका किंचित् कणिकामात्र इस जगत्में है, इस करके सर्व जगत् आनंद पाता है, इस रीतिसे चंद्रशब्दमें आनन्द श्रुतिसे सिद्ध होता है, और प्रकाशपनाभी श्रुतिसेही सिद्ध होता है कि " न

तत्र सूर्यो भाति ॥ तस्य भासा सर्वमिदं विभाति " राम परमात्मामें सूर्य, चन्द्र, तारा, बिजुली, अग्नि आदिक कोईभी प्रकाश नहीं करते हैं, उलटे उस परमात्माके प्रकाश करके यह सूर्य चन्द्रादिक प्रकाशते हैं । इस श्रुतिसे चन्द्र शब्दमें सर्वका प्रकाशकारकपनाभी सिद्ध होता है ॥ इसवास्ते रामचंद्र शब्दका मन्त्रमें कथन किया है ॥

प्रश्न-मन्त्रमें चरणशब्द है उसका कैसा अर्थ है ?

उत्तर-"चराति प्रापयति आश्रितान् चतुर्वर्गं इति" अपने आश्रितोंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पदार्थोंकी जो प्राप्ति करता है उसका नाम चरण है। प्राप्ति अर्थवाला चर धातुका चरणशब्द हुआ है ॥ ऐसे भगवत्के चरणोंको सेवनेवाले प्राणियोंके संपूर्ण मनोरथ पूर्ण होते हैं इसमें क्या कहना है । परंतु देखो कि, जिन चरणोंकी पादुकाके सेवनेसेही भरतके सकल मनोरथ पूर्ण हुवाहै तो किमुत चरणाश्रयेणेति वक्तव्यमित्याशयः॥ ग्रंथकी गौरवताके भयसे इस मन्त्रका संपूर्ण अर्थ यहां नहीं लिखा है, परन्तु इस मंत्रका माहात्म्य किंचित् लिखा है ।

प्रश्न-मन्त्रके अंतमें जो नमःपद है, उसका कैसा अर्थ है ?

उत्तर-नमःपद करके भगवत्की प्राप्तिके विरोधिरूप कामक्रोधादिसे उत्पन्न हुआ जो अन्तराय है उस अन्तरायके अभावका कथन है ॥

प्रश्न-इस द्वयमन्त्रके तात्पर्यार्थ, वाक्यार्थ, प्रधानार्थ और अनुसंधानार्थ कौन कौनसा है ?

उत्तर-तात्पर्यार्थोऽस्य विज्ञेय आचार्यरुचिसंश्रयः ।
वाक्यार्थस्तु मताभिज्ञैरेष निर्णीयते बुधैः ॥ ५ ॥
प्राप्यप्रापकसंबन्धिस्वरूपाभिनिरूपणम् ।
प्रधानार्थस्तु तद्युग्मकैंकर्यस्य प्रधानता ॥ ६ ॥
स्वदोषाभ्यनुसंधानमनुसंध्यर्थ उच्यते ।
एवमेवानुसंधेयं मोक्षकामैरहर्दिवम् ॥ ७ ॥

अर्थ-आचार्यकी रुचिका संशय इस द्वयमंत्रका तात्पर्यार्थ है ऐसा बुधजन महर्षियोंने निश्चय किया है। प्राप्य नाम रामका है तथा प्रापक नाम मुमुक्षु जीवका है, इन दोनोंके स्वरूपका निरूपण इस मंत्रका वाक्यार्थ है। सीता और रामके युगल कैंकर्यका प्रधानपना इस मंत्रका प्रधान अर्थ है। और अपने

आत्माके रागादिक दोषोंका जो संपूर्ण अनुसंधान है सो इस मंत्रका अनुसंधान अर्थ कहा है ॥ इस प्रकारसे मोक्षकी कामनावाले मुमुक्षुओंको दिन दिन अनुसंधान करने योग्य है ॥

प्रश्न–मुक्ति कितने प्रकारकी शास्त्रमें कही है ?

उत्तर–वेद, पुराण, स्मृतियों और आगम, इतिहासादि ग्रंथोंमें चार प्रकारकी मुक्ति निश्चय की हुई है ॥

प्रश्न–कौन कौनसी चार प्रकारकी मुक्ति है ?

उत्तर–सालोक्य मुक्ति १, सारूप्यमुक्ति २, सामीप्यमुक्ति ३, सायुज्यमुक्ति ४ ये चार प्रकारकी मुक्तियां हैं ।

प्रश्न–सालोक्य आदि मुक्तिका लक्षण कैसा है ?

मुक्तिनिर्णय ।

उत्तर–अपने इष्ट देवके लोकमें जाकर रहनेका नाम सालोक्य मुक्ति १, अपने इष्ट देवके सरीखे रूपको प्राप्त होनेका नाम सारूप्य मुक्ति २, अपने इष्ट देवके समीपमें रहनेका नाम सामीप्यमुक्ति३और अपने इष्ट देवके सरीखे भोग होनेका नाम सायुज्य मुक्ति, इन चारप्रकारकी मुक्तियोंको श्रीवैकुंठधामको अर्चिरादिमार्ग करके जानेवाले देवरूपी श्रीवैष्णवही प्राप्त होते हैं और वैकुंठमें न जानेवाले दूसरे मतधारी वादियोंको यह वैकुंठकी मुक्ति महान् दुर्लभ है । क्योंकि, उन वादियोंने अपने अपने मतमें अपनी अपनी रुचिके अनुसार इनसे रहित दूसरी मुक्ति मानी हैं । क्योंकि, अद्वैतवादीके मतमें संसार-दुःखकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्तिको मोक्ष कहते हैं । अद्वैतवादी कहता है कि, मुक्त पुरुषका जब शरीर पडता है तब उस पुरुषके प्राण, शरीरमेंही लीन होते हैं, कहींभी लोकान्तरमें नहीं जाता है, ऐसी मुक्ति अद्वैतमतमें मानी है । और नास्तिकोंने देहके नाशको मुक्ति मानी है, जो इस स्थूल शरीरका नाश है सोही मुक्ति है, दूसरा कोई लोकलोंकांतरमें जाने आनेका कुछ भी नहीं है और शून्य वेदांतका एकदेशीने खंजिय पंजियमें मुक्ति मानी है, दिगंबर और शून्यवोधनेभी ऐसेही मुक्ति मानी है । नैयायिकने श्रोत्र १, चक्षु २, घ्राण ३, त्वचा ४, रसना ५, मन ६, शब्द ७, रूप ८, गंध ९, स्पर्श १०, रस ११, संकल्पादि १२, क्षुधा १३, तृषा १४, शोक १५, मोह १६, जरा १७, मृत्यु १८, सुख १९, दुःख २०, शरीर २१, इन एकविंशति दुःखोंका जो नाश है सोही मुक्ति है, ऐसे नैयायिक मानते हैं, कितनेक लिंग भंगको मुक्ति मानते हैं, कितनेक वादि अविद्याकी निवृत्तिको मुक्ति

मानते हैं, कितनेक स्वरूपकी प्राप्तिको मोक्ष मानते हैं। सांख्यमतवाले प्रकृति पुरुषके विवेक करके पंचविंशति तत्त्वोंको जाने, उसको मोक्ष कहते हैं। और जैन मतवालेने सिद्धाशिलामें जानेको मोक्ष मानी है ॥ इस प्रकारसे वेद वेदांतके प्रमाण विना अपनी अपनी रुचिके अनुसार मुक्तियां मानी हैं ये सब वेदबाह्य हैं ॥

सालोक्यादिमुक्तिदशामें मुक्त पुरुषोंके अप्राकृत और शुद्ध प्रकाशमान, शरीर मन, इंद्रियादिक रहते हैं। यह ही वेदांताचार्य श्रीव्यास भगवान्‌का सिद्धांत है, सो अपने शारीरक सूत्रमें दिखाया है कि–

"भावं बादरिराहह्येवम्"

अर्थ–मुक्त लोकोंके शरीर है ऐसा बादरि आचार्य कहते हैं। इसवास्ते मुक्तिमें शुद्ध मन, शुद्ध इंद्रिय और अप्राकृत नामरूप तथा शुद्ध संकल्पमय शरीर तथा प्राणादिकोंकी शुद्ध शक्ति इत्यादिक सब रहते हैं ॥

वादिप्रश्न–हमारे शांकर सिद्धांतमें मुक्तिमें इंद्रिय, मन, प्राण, शरीरादिक कुछभी नहीं रहते हैं और मुक्तिका कोई नियमित स्थानभी नहीं है, कि कहां जाना है तथा खबरभी नहीं पडती है कि मैं फलाना मुक्त पुरुष अब ब्रह्मानंदका अनुभव करता हूं। जैसे नदी, समुद्रमें मिलकर नहीं जानती है कि मैं फलानी नदी हूं ऐसे ब्रह्ममें लीन हुआ मुक्त पुरुषभी कुछभी नहीं जानता है। इस प्रकारसे नाम, रूप, मन, इंद्रिय, शरीरादिकोंके अभावको हम अद्वैतवादी मुक्ति मानते हैं ॥

उत्तर–ऐसी जडवत् अभान अवस्थाको मुक्ति मानते हो, सो तुम अपने घरमेंही मान्य करो, परंतु जैसे पत्थरकी शिला जड होनेसे कुछभी नहीं जानती है, तैसी अभान अवस्थावाली मुक्तिको वेद वेदांत पुराण स्मृति इतिहासादिक ग्रंथोंमें कहीं भी स्वीकार नहीं की है। इस पत्थर समान अभान अवस्था मुक्तिको तुम्हारे घरमेंही रक्खो और चलाओ परंतु वेद वेदांतके सिद्धांतमें मानी हुई और अमृतके समुद्र समान आनंदकी भरी हुई ऐसी हमारे विशिष्टाद्वैतमतकी मुक्तिके आगे तुम्हारी मुक्तिकी इच्छा किसको होय? किंतु किसीकोभी नहीं होती है। क्योंकि, जब मुक्तिमें मन इंद्रिय आदिक कुछभी नहीं हैं तब ब्रह्मानंदका अनुभव किस करके करते हैं इस वास्ते यह तुम्हारा इंद्रियादिकका अभावरूप मुक्तिका जो मानना है सो इस वेदांतके शारीरक सूत्रसे विरुद्ध है कि–

"भावे जाग्रद्वत् ॥"

अर्थ–मुक्त पुरुषोंके अप्राकृत शरीर रहते हैं। उस शरीरोंमेंही मुक्त पुरुष जाग्रत् दशाकी तरह ब्रह्मका अनुभव करते हैं॥ जैसे मृत्तिकाकी हांडी अशुद्ध है और मणिकी हांडी शुद्ध है तैसे पंचभूतोंके शरीर अशुद्ध हैं और अप्राकृत इच्छामय मुक्तोंके शरीर शुद्ध हैं। उन शुद्ध शरीर, मन, इंद्रियों करकेही ब्रह्मका अनुभवको मुक्तलोग करते हैं॥ ऐसा वेदांतशास्त्रके शारीरकसूत्रमें मुक्त पुरुषोंको और भी नवीन शरीरधारणकाभी प्रमाण है कि–

"प्रदीपवदावेशस्तथाहि दर्शयति॥"

अर्थ–जैसे एक दीपकमेंसे अनेक दीपक होते हैं तैसे मुक्त पुरुष अनेक शरीर धारण करके ब्रह्मका अनुभव करते हैं॥ इस प्रकारसे, हे वादी! वेदांत सिद्धांत करके विशिष्टाद्वैतासिद्धांतमें जो चार मुक्ति कही हैं, उन सर्व मुक्तियोंमें शुद्ध मन और शुद्ध इंद्रिय सदा बने रहते हैं, और इच्छामय शरीर रहता है, एक शरीरका इच्छा होय तो एक शरीर रहता है, और जो अनेक शरीरकी इच्छा करे तो अनेक हो जाते हैं॥ इस वेदांतसिद्धांतके आगे तुम्हारी अभाव मुक्तिका पता नहीं लगेगा और मुक्त पुरुष अनेक शरीरोंके धारण करनेमें भी प्रमाण है कि–

"स एकधा भवति द्विधा भवति त्रिधा भवतीति॥"

अर्थ–इस छांदोग्य उपनिषदमें कहा है कि, मुक्त जीव अपने संकल्पमात्रसे एक दो तीन इस रीतिसे अनेक प्रकारका हो जाता है, अर्थात् दिव्य शरीर अनेक धारण कर लेता है और अपनी इच्छासे एक शरीरका धारण करके दूसरे शरीरोंको छोडभी देता है॥

वादिप्रश्न–हे विशिष्टाद्वैत सिद्धांती! वैकुंठको छोडकर अपनी इच्छासे दूसरे लोकोंमें जा सकता है कि–

"स स्वराट् भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवतीति॥"

अर्थ–सायुज्यादि मुक्तिको प्राप्त हुये जो मुक्त पुरुष है सो स्वतंत्र होता है और उस मुक्त पुरुषका भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक इत्यादि सर्व लोकोंमें यथेच्छ संचार होता है, अर्थात् वह मुक्त पुरुष जिस जिस लोकमें जानेकी इच्छा करता है उस उस लोकमें चला जाता है, उसको कोईभी रोक टोक नहीं कर सकता है इस प्रकारसे छांदोग्य उपनिषदमें कहा है इति॥

वादिप्रश्न–मुक्त लोक सर्वत्र विचरते हैं, ऐसा बनाव इस सृष्टिमें कोई दिन बना था ? जो बना होय तो कहो ॥

उत्तर–हमारे आदि आचार्य श्रीशठकोपस्वामी अपने शरीरका त्याग करके श्रीवैकुंठलोकमें पधारे थे, तदनंतर साढे तीन हजार वर्षमें श्रीनाथमुनि प्रगट हुये, उनने श्रीशठकोपस्वामीकी जब उपासना की तब नाथमुनिको श्रीशठकोप स्वामीने साक्षात् वेदार्थ द्राविडरूप प्रबंधका उपदेश किया था, सो प्राकृत नाम रूपसे रहित मुक्त रूप करकेही किया था, पीछे नाथमुनिने पुंडरीकाक्ष स्वामीको उपदेश किया । इस प्रकारसे हमारी गुरुपरंपरा मुक्त पुरुषोंसेही चली आती है ऐसा बनावका वेदमें प्रमाण है कि, "शुको मुक्तः वामदेवो मुक्तः" इस श्रुतिमें शुकदेव और वामदेव दोनोंको मुक्त कहे हैं ॥ शुकदेवजी सायुज्य मुक्तिको प्राप्त हुये पीछेही इस संसारमें भगवत् आज्ञासे आकर परीक्षित्को उपदेश किया है ॥ इस वृत्तांतका विस्तार महाभारतके मोक्ष धर्ममें तथा बृहन्नारदीय पुराणके पूर्वार्द्धमें लिखा है, वहां देख लेना ॥ और भागवतके तृतीय स्कंधमें तथा वराहपुराणादिक दूसरे पुराणोंमेंभी कहा है कि, श्रीवैकुंठ लोक चौदह लोकसे पर है, वहां परब्रह्म श्रीपति विष्णुभगवान् रहते हैं तथा भगवान्के विष्वक्सेनादिक पार्षदभी वैकुंठमें रहते हैं । इन सब वैकुंठवासियोंके शरीर और इंद्रियांभी है परंतु इन सबोंके अप्राकृत नाम रूप हैं और मन तथा इंद्रियादिकभी शुद्ध हैं मलिन नहीं हैं । मलिन मन इंद्रियोंकरके तो विषयोंकाही अनुभव होता है ब्रह्मानंदका अनुभव नहीं होता है और शुद्ध मन इंद्रियोंकरके मलिन विषयोंके भोग नहीं किये जाते हैं। जैसे लोहेकी दरांती पारशके स्पर्शसे सोनाकी हो गई, उस सुवर्णकी दरांतीसे घास नहीं कटेगा, किंतु लोहेकी मलिन दारांतीसेही घास कटता है वैसे शुद्ध मन इंद्रियादिकोंसे मलिन विषयोंके भोग नहीं हो सकते हैं ॥

मुक्तिमें शुद्ध मन और इंद्रियादिक रहते हैं, ऐसा कठोपनिषद्के दूसरे अध्यायकी छठी वल्लीमें दशवें मंत्रमें कहा है कि––

यदा पंचावतिष्ठंते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टेत तामाहुः परमां गतिम् ॥

जब मनसाहित पांच ज्ञान इंद्रिय परमेश्वरमें स्थिर होकर सदा रमण करते हैं, और जब बुद्धिभी ज्ञानसे विरुद्ध चेष्टा नहीं करती है उसको परम गति (मोक्ष) कहते हैं इति ॥

वादिप्रश्न–सायुज्यादिमुक्तिमें अप्राकृतरूप और शुद्धमन इंद्रिय आदिक बने रहते हैं, ऐसा वेद वेदांतोंके प्रमाणोंसे तुमने सिद्ध कर दिया, परंतु उनको जन्म मरण नहीं होता है, इसमें कौन प्रमाण है ॥

उत्तर–" अनावृत्तिः शब्दात् अनावृत्तिः शब्दात् ॥

अर्थ–वेदांत शास्त्रके शारीरक सूत्रमें कहा है कि–मुक्त हुऐ पीछे संसारमें नहीं आता है और श्रुतिमेंभी कहा है कि, मुक्ति हुये पीछे मुक्त पुरुष फिर संसारमें नहीं आते हैं ॥

वादीप्रश्न–इस कहनेमें पूर्वापर विरोध आता है । क्योंकि पूर्व कथनमें तुम ऐसा कह आये हो कि, भूर्लोक आदिक सब लोकोंमें मुक्त पुरुष जाते है, और अब ऐसा कहते हो कि, संसारमें मुक्त पुरुष नहीं आते हैं ।

उत्तर–वहारे वहा ! इस विद्वत्ताकी क्या बढाई करिये ? हे वादी ! दुराग्रह मत कर, हमारे कथनमें पूर्वापर विरोध नहीं है, किंतु यह तुम्हारी बुद्धिकाही भ्रम है । क्योंकि, जहां कैदखानेमें अपराधी कैदी लोक पडे हैं, वहां निरपराधी अधिकारी लोकभी उन कैदियोंके देखनेको आते हैं, तो क्या वे अधिकारी भी कैदी हो गये और क्या वे अधिकारी कैदियोंकी माफक पराधीनपनेसे उस कैदखानेमें आये हैं? नहीं नहीं, वे अधिकारी लोक अपनी इच्छासे ही आये हैं और कैदी लोक तो अपनी इच्छासे नहीं आये हैं, किंतु चोरी आदिक कर्माधीनपनेसे परवश होकर आये हैं तैसे मुक्त पुरुषभी अपनी इच्छासे संसारमें सर्वत्र विचरते हैं, परंतु बद्ध जीवोंकी तरह कर्मोंके पराधीनपनेसे नहीं विचरते हैं ॥

वादिप्रश्न–जब वैकुंठमें रहनेवाले मुक्त पुरुष वैकुंठधामसे दूसरे लोकमें कदाभी नहीं जावे तब उनकी हम सची मुक्ति मानें ?

उत्तर–हे वादी ! तू तुम्हारे मतमें मानी हुई मुक्तिके सदृश इस सालोक्यादिमुक्तिको मानना चाहता है परंतु वह वैकुंठवासी अपनी इच्छासे सब लोकोंमें संचार करते हैं, जैसे–चक्रवर्ति महाराजा अपने स्थानसे दूसरे सब लोकोंमें स्वेच्छासे विचरता है तो क्या विचरनेसे चक्रवर्तिपना मिटकर दरिद्री हो गया ? वैसे वैकुंठवासी मुक्त पुरुषभी अपने वैकुंठ स्थानसे लोकांतरमें जानेसे बद्ध और पराधीन नहीं होते हैं ॥

वादिप्रश्न–भूर्लोक भुवर्लोक स्वर्गलोक इत्यादिक लोकोंमें रहनेवाले पुरुष वैकुंठमें जा सकते हैं कि, नहीं ?

उत्तर–हे वादी ! वैकुंठ क्या रस्तेमें पडा है कि सब कोई वहां जा सकेंगे। वैकुंठ तो कैसा है कि–

ब्रह्मादीनामसाध्यं तु साध्यं वै भक्तिशालिनाम्॥

ब्रह्मादिक देवोंकोभी श्रीवैकुण्ठ धाम मिलना असाध्य है, और भक्तिमान् पुरुषोंकोही साध्य है, ऐसा शास्त्रका सिद्धांत है॥ जब ब्रह्मादिकोंकोभी वैकुंठ दुर्लभ है, तब ब्रह्माकी सृष्टिको दुर्लभ होय उसमें क्या कहना है ? इति॥

वादिप्रश्न–हमारे मतमें ऐसा सिद्धांत है कि, निर्गुण ब्रह्मज्ञानी उस ब्रह्मकी एकतारूप मुक्तिको जब प्राप्त होते हैं, तब उनको वैकुंठादिक लोकोंमें जानेका अभाव होजाता है और उनके नामरूपकाभी. अभाव हो जाता है । जैसे तेजमें तेज और आकाशमें आकाश मिल जाता है तैसे ब्रह्ममें मिल जाते हैं। ऐसा सिद्धांत क्या अत्यंत खोटा है ? ॥

उत्तर--इस अभावरूप आत्माकी सत्यानाशी मुक्तिको पत्थरकी शिलाके दृष्टांतसे हम पूर्व कह चुके हैं । तुम विशेषरूप आत्माके सामान्य होनेको मुक्ति मानते हो, इस करके आत्माका अभान रूप सत्यानाशही करते हो, क्योंकि वेदमें कहा है कि, " पुरुषत्वे चाविस्तरात्मा." वृक्ष, पाषाणादिक योनियोंमें आत्मा विशेषरूप नहीं है, और इस पुरुषदेहमें तो विशेषरूप आत्मा प्रगट है, उस प्रगट आत्माको अत्यंत प्रगट तो तुम क्या करो, परंतु उलटा तेजमें तेजकी माफक सामान्य करनेकी इच्छा करते हो ॥ अहो ! विशेष आत्माको सामान्यबनानेमें परिश्रम क्यों करते हो?क्योंकि,कर्मोंके वशसे जब शिला, वनस्पति आदिकोंके शरीर मिलेंगे, तब आपही सामान्य भावकी प्राप्ति हो जायगी ॥ हे वादी ! निर्गुण ब्रह्मकी उपासनाभी नहीं बन सकती है । क्योंकि, षट् प्रमाणोंमेंसे किसी भी प्रमाणका विषयभूत नहीं होनेसे ऐसे ब्रह्मकी सिद्धि नहीं हो सकती है, इस कारणसे उस ब्रह्मके अस्तित्वमेंभी संशयही है इति॥ इस अभाव मुक्ति आदिकका अधिक खंडन देखना होय तो श्रीभाष्य श्रुतप्रकाशिकादि सद्ग्रथोंमें देख लेना ॥ इति मुक्तिनिर्णयः ॥

द्वयमन्त्रमहिमा ।

हे शिष्य ! पूर्वोक्त चार प्रकारकी मुक्तिको देनेवाला द्वयमंत्ररत्न है, उसको दिनमें क्षण क्षणमें मुमुक्षु पुरुषोंको चिंतन करना योग्य है इस द्वयमंत्रका महिमा वेद, पुराण, स्मृति आदिक ग्रंथोंमें अनेक प्रकारसे इस मंत्रका महिमा कथन किया हुआ है,परंतु संक्षेपसे कहते हैं श्रवण कर। पद्मपुराणमें कहाहै कि–

मामेकं च श्रिया युक्तं भक्तियुक्तो नरोत्तमः ।
द्वयेन मंत्ररत्नेन मत्प्रियेण भजेत्सदा ॥
अचिरान्मत्प्रसादेन मल्लोकं च स गच्छति ।
दुर्वृत्तो वा सुवृत्तो वा मूर्खः पण्डित एव वा ॥
लक्ष्मीं च मां सुरेशं च द्वयेन शरणागतः ।
मल्लोकमचिराल्लब्ध्वा मत्सायुज्यं स गच्छति ॥

अर्थ–ब्रह्माके प्रति श्रीमन्नारायण कहते हैं कि, हे ब्रह्मन् ! भक्तियुक्त और नरोंके मध्यमें जो उत्तम पुरुष है वह लक्ष्मीसे हमको अत्यन्त प्रिय जो द्वय है उस मन्त्र करके हमारेको भजनेवाला पुरुष हमारी प्रसन्नतासे शीघ्रही हमारे वैकुंठ लोकको प्राप्त होता है ॥

प्रश्न–ऐसे महान् मन्त्रमें महान् पुरुषोंकाही अधिकार है कि सब किसीका है?

उत्तर–जो कोई दुष्ट वृत्तवाला हो अथवा सुंदर आचारवाला हो अथवा मूर्ख हो अथवा पंडित हो परंतु हमको और लक्ष्मीको द्वय मंत्रकरके शरणको प्राप्त होता है वह पुरुष तत्कालही हमारे वैकुंठको प्राप्त होकर मेरी सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होता है । ब्रह्मा कहते हैं, हे भगवन् ! महा अद्भुत इस मन्त्ररत्नका सबसे प्रथम आपने किसको उपदेश किया था? श्रीमन्नारायण बोले कि–

पुरा मंत्रद्वयं ब्रह्मन् विष्णुलोके पुरे शुभे ।
तस्मिन्नन्तःपुरे लक्ष्म्यै मया दत्तं सनातनम् ॥

हे ब्रह्मन् ! सबसे प्रथम मैंने इस सनातनद्वयमंत्रको सुन्दर अंतःपुरमें रहनेवाली लक्ष्मीको दिया था ॥

सर्वमन्त्रफलान्यस्य विज्ञानेन भवन्ति वै ।
ऋष्यादिकं करन्यासमंगन्यासं च वर्जयेत् ॥
सर्वपापक्षयकरं सर्वपुण्यविवर्द्धनम् ।
श्रीकरं लोकवश्यं च सद्यः संसारतारकम् ।
मानसं वाचिकं पापं कायिकं च त्रिधा कृतम् ।

द्वयस्मरणमात्रेण नाशं याति सुनिश्चितम् ॥
द्वयोपदेशपूर्वेण सर्वकर्म समाचरेत् ।
द्वयाधिकारी न भवेत्सर्वमन्त्रेषु नार्हति ॥

अर्थ–हे ब्रह्मन् ! इस मन्त्रके जाननेसे सर्व मन्त्रोंके फल प्राप्त होते हैं और इस मन्त्रको जपनेवाला पुरुष इस मन्त्रके ऋष्यादिन्यास तथा करन्यास और अंगन्यासकोभी न करे॥ और यह मंत्र ब्रह्महत्या, गोहत्या, भ्रूणहत्या, स्त्रीहत्या आदिक सर्व पापोंका क्षय करनेवाला सर्व पुण्योंकी वृद्धि करनेवाला, शोभा और संपत्तिको करनेवाला तथा तत्काल संसारका तारक है। और हे ब्रह्मन् ! मन वाणी काया करके किया हुआ तीन प्रकारका पापभी इस द्वय मंत्रके स्मरण मात्रसे निश्चय नाशको प्राप्त होता है ॥ और हे ब्रह्मन् ! प्रथम इस मंत्रका शिष्यको उपदेश कर पीछे दूसरे सब कर्मोंका आरंभ करे। क्योंकि जबतक द्वयमंत्रका अधिकारी नहीं होता है तबतक सर्व मंत्रोंमें योग्य अधिकार नहीं होता है ॥ फिर धर्मशास्त्र पराशर स्मृतिमें ऐसे कहा है कि–

उच्चारणान्मनोरस्य सर्वसिद्धिफलं भवेत् ।
अनधीत्य द्वयं मंत्रं न विप्रो न च वैष्णवः ॥
कुलजो वा तपस्वी वा वेदवेदाङ्गपारगः ।
यज्ञदानपरो वापि सर्वतीर्थोपसेवकः ॥
व्रती वा सत्यवादी वा यतिर्वा ज्ञानवानपि ।
द्वयाधिकारी न भवेत्तं प्रयत्नेन वर्जयेत् ॥

अर्थ–व्यासजीके पिता पराशर मुनि कहते हैं कि, इस शरणागतिमंत्रका उच्चारण करनेसे अणिमा आदिक सर्व सिद्धियोंका फल प्राप्त होता है और जो कोई ब्राह्मण वा वैष्णव इस द्वयमंत्रको नहीं पढकर रहता है सो ब्राह्मण नहीं है और वह वैष्णवभी नहीं है किंतु वह केवल नटकी माफक स्वांगधारी है॥

यदि वह पुरुष कुलवान्, तपस्वी, वेद और वेदोंके षट् अंगोंका पढा हुआ, यज्ञ दानादिमें तत्पर हो, सर्वतीर्थोंका सेवन करनेवाला हो कृच्छ्र चांद्रायण प्राजापत्य, नक्तभोजन आदिक व्रतोंका करनेवाला अथवा सत्यवादी, जितें-

द्रिय ज्ञानवान्भी हो परंतु द्वयमन्त्रका अधिकारी न हो तो उसको प्रयत्न करके श्रौतस्मार्तादि कार्योंमें वर्जन करे । इस प्रकारसे पराशरस्मृतिमें कहा है ॥

प्रश्न–यह मंत्र कबसे चला है और इस मंत्रका क्या फल है ?

उत्तर–सर्वेषामेव मंत्राणां प्रथमं गुह्यमुत्तमम् ।
मंत्ररत्नं नृपश्रेष्ठ सद्योमुक्तिफलप्रदम् ॥
सर्वैश्वर्यप्रदं पठ्यं सर्वेषां सर्वकामदम् ।
यस्योच्चारणमात्रेण परितुष्टो भवेद्धरिः ॥

अर्थ–सात करोड मंत्रोंके मध्यमें यह मंत्र सबसे प्रथम है तथा अत्यंत गुह्य है और सब मंत्रोंसे अत्यंत उत्तम है और हे नृपश्रेष्ठ ! यह मंत्ररत्न तत्काल मुक्ति फलको देनेवाला और सर्व प्रकारके ऐश्वर्योंका देनेवाला तथा सब मनुष्योंमें पठन करने योग्य और सर्वप्रकारकी मनकी कामनाओंको देनेवाला है । इस मंत्रके उच्चारणमात्रसेही भगवान् प्रसन्न होते हैं । इस प्रकारसे हारीत स्मृति धर्मशास्त्रमें कहा है इति ॥

प्रश्न–इस मंत्रका उपदेश कौन कौनसी जातिवाले मनुष्योंको करना कहा है?

उत्तर–इस मंत्रके अधिकारी हारीतस्मृतिमें कहा है कि–

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथेतराः ।
तस्याधिकारिणः सर्वे सर्वशीलगुणा यदि ॥
पंचसंस्कारसंपन्नाः श्रद्धावन्तोऽनसूयकाः ।
भक्त्या परमया विष्णोर्युक्तास्तस्याधिकारिणः ॥

अर्थ–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और स्त्री तथा अनुलोमज प्रातिलोमज संकीर्ण आदिक ये सर्व जातिवाले पुरुष जो सर्व शीलगुणवाले हो तो इस मंत्रके सबही अधिकारी हैं । तथा पंचसंस्कारों करके संपन्न हो वेद ईश्वर, और गुरु इन तीनोंमें श्रद्धावंत हो, तथा असूया दोष करके रहित हो तथा विष्णुकी परम भक्ति करके युक्त हो ऐसे गुणोंवाले सर्व जातिके पुरुष इस मंत्रके अधिकारी हैं । और स्कंदपुराणमेंभी इस मंत्रका माहात्म्य कहा है कि–

द्वयाख्यं रामचन्द्रस्य मंत्ररत्नमनुत्तमम् ।
पंचविंशाक्षरं विद्वान् स याति परमां गतिम् ॥

अर्थ–श्रीरामचंद्र भगवान्‌का पचीस अक्षरोंवाला अति उत्तम मंत्ररत्न द्वयको जो पुरुष जानता है सो पुरुष परम गति मोक्षको पाता है इति ॥ और विश्वंभर उपनिषद्‌मेंभी इस मंत्रका महिमा कहा है कि–

“ यो दाशरथेर्द्वयाख्यं मन्त्राणां प्रवरं मन्त्ररत्नमधीते ।
स सर्वान्कामानश्नुते इति ॥ ”

अर्थ–जो पुरुष सर्व मन्त्रोंमें श्रेष्ठ ऐसा दाशरथि रामके द्वय मंत्ररत्नको पढता है सो पुरुष सर्व कामोंको भोगता है इति ॥ और भगवान् भाष्यकारनेभी कहा है कि–

“ द्वयमर्थानुसन्धानेन सह सदैवं वक्ता यावच्छरीरपातम् ”

जहांतक शरीर रहे तहांतक उस द्वयमंत्रकी आवृत्ति करे इति ॥ और इस मन्त्रके अर्थको वाल्मीकी मुनिने रामायणके सात कांडोंमें चौवीस हजार ग्रन्थ करके किया है ॥ इस रामायणकोही दीर्घशरणागति मन्त्रकरके आचार्य लोग निर्धारण कहते हैं–

“ रामायणं दीर्घशरणागतिः ” इत्यभियुक्तैरुक्तम् । तत्र बालकाण्डेन श्रीमच्छब्दार्थ उक्तः । अयोध्याकाण्डेन नारायणशब्दार्थः । कल्याणगुणानामनुवर्णनात् । आरण्यकाण्डेन “ ते तं सोममिवोद्यन्तम् ” इत्यादिना दिव्यमङ्गलविग्रहवर्णनात् चरणशब्दार्थः । किष्किन्धाकाण्डसुन्दरकाण्डाभ्यां शरणशब्दार्थः । युद्धकाण्डेन प्रपद्य इत्यस्यार्थः । उत्तरकाण्डेन मुक्तिफलकीर्तनादुत्तरखण्डार्थः ॥

इस शरणागत मन्त्रके षट पद हैं. उनमें प्रथम पदका अर्थ बालकांडमें कहा है ॥ दूसरे पदका अर्थ अयोध्याकांडमें कहा है । तीसरे पदका अर्थ आरण्यकांडमें कहा है । चौथे पदका अर्थ किष्किंधाकांड और सुंदरकांडमें प्रतिपादन किया है । पंचम पदके अर्थ युद्धकांडमें बताया है और षष्ठम पदके

अर्थको उत्तरकांड करके प्रतिपादन किया है इस प्रकारसे छः पदोंके अर्थ रामायणके चौवीस हजार श्लोकोंकरके अलग २ सात कांडोंमें बताये हैं इति[1]॥ तथा श्रीमद्भागवतमें व्यासभगवान्‌नेभी इस मन्त्र द्वयको अर्थके ऐसे बताया है कि-

यस्यामलं नृपसदःसु यशोऽधुनापि
गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम् ।
तन्नाकपालवसुपालकिरीटजुष्टं
पादाम्बुजं रघुपतेः शरणं प्रपद्ये ॥

अर्थ-यहां 'पादांबुजं रघुपतेः शरणं प्रपद्ये ' इस चतुर्थ पाद करके मन्त्रके पूर्वार्द्धके अर्थ प्रतिपादन किया है ॥ और ' यस्यामलं नृपसदःसु यशोधुनापि गायन्त्यघघ्नमृषयः ' इतने श्लोक करके मन्त्रके उत्तर खंडका अर्थ प्रतिपादन कहा है ॥ और श्रीरामचंदजीका सर्वोत्कृष्टपनेको कथन करनेकी इच्छावाले व्यास मुनिने (नाकपालवसुपालकिरीटजुष्टं) इतने पद करके, नमः शब्दके अर्थका प्रतिपादन किया है ॥

प्रश्न-इस मन्त्र करके यह जीव भगवत् शरणको किस प्रकारसे प्राप्त होता है ?

उत्तर-माता, पिता, दारा, पुत्र, बांधव, सखा, व्यवहारी, गुरु, रत्न, धन, धान्य, क्षेत्र, गृह, सर्वधर्म, सर्वकाम इत्यादिक सर्वपदार्थोंका परित्याग करके हे विभो मैं ! तुम्हारे चरणोंके शरणको प्राप्त हुआ हूं ॥ इस प्रकारसे द्वयमन्त्र करके शिष्यको गुरु भगवत् शरणमें प्राप्त करते हैं । जहांतक गुरु इस मन्त्रका उपदेश नहीं करते हैं तहांतक यह जीव भगवत् शरणको प्राप्त नहीं होता है किंतु विमुखही रहता है । पचीश अक्षरात्मक षट् पदवाला यह मन्त्र जिसको नहीं आता होय तो उसको गुरुभी नहीं करना । ऐसा श्रुति स्मृति पुराण आदिकोंकी आज्ञा है इति ॥ इति द्वितीयरहस्यम् २॥

इति श्रीमद्रामानुजपरमाचार्यचरणपंकजमधुपेन श्रीमत्पंडितगोपाल-
दासेन विरचिते श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकरे द्वयमन्त्राख्यद्वितीय-
रहस्यव्याख्याने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

---

१ इस शरणागतिका विवरण वाल्मीकिरामायण युद्धकाण्ड १९ सर्ग-' **परित्यक्तामया लङ्का** ' इत्यादि विभीषण शरणागतिमें विशेष देखलेना ।

अष्टमोऽध्यायः।

श्रीरामानंदस्वामी अपने शिष्य सुरसुरानंदको प्रथमरहस्य राममन्त्र और द्वितीयरहस्य मन्त्ररत्न इन दोनों रहस्योंका उपदेश करके अब चरममन्त्ररूप तृतीय रहस्यका उपदेश करते हैं–

चरम मंत्र।

उक्तेत्थं शृणु मन्त्ररत्नविवृतिः सन्मानसाभीष्टदं
सद्वेद्यं सकृदेव प्रेति चरमं निर्णीतवाक्यार्थकम्।
रामीयं हि तदीयमन्त्रनिरतैरुद्बोधनीयं परं
द्वात्रिंशत्प्रमिताक्षरं मनुपदं द्व्यर्द्धं जगद्विश्रुतम् ॥ १ ॥

अर्थ–इस उक्त प्रकारसे मन्त्ररत्नकी व्याख्याका कथन किया। अब हे गुरुभक्त शिष्य ! वाक्यार्थ निर्णयसहित जिसका ऐसा श्रीरामचन्द्र भगवान्‌का सकृत् इस चरम श्लोक मन्त्रको श्रवण कर । कैसा चरम श्लोक कि (सद्वेद्यं) महात्मा पुरुषों करके अवश्य जानने योग्य है । (सन्मानसाभीष्टदं) सज्जन पुरुषोंके मनोवांछितको पूर्ण करनेवाला है। (तदीयमंत्रनिरतैः उद्बोधनीयम्) रामचन्द्र भगवान्‌के मन्त्रराज, मन्त्ररत्न चरममन्त्र इत्यादिक जो मन्त्र हैं उन मन्त्रोंमें प्रीतिवाले महज्जनोंकरके अत्यन्त बोधन करने योग्य है। (द्वात्रिंशत्प्रमिताक्षरं) बत्तीस अक्षर संख्यावाला है। (मनुपदं) चतुर्दश पदात्मक है। (द्व्यर्द्धं) पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध भेदसे दो अर्द्ध (खंड) है। (जगद्विश्रुतम्) चतुर्दश लोकोंमें प्रसिद्ध है॥ १ ॥

इस प्रकारसे चरम मन्त्रके अक्षरों और पदोंका विचार करके अब उस चरम श्लोकके अर्थको कथन करते हैं–

अत्रोपायांतरस्यार्थो निवृत्तिः प्रतिपाद्यते ।
सकृदित्येवकारेण तूपायनिरपेक्षता ॥ २ ॥

अर्थ–इस तृतीय रहस्यमें अथवा इन चतुर्दश पदोंके मध्यमें (सकृत्) इस प्रथम पद करके उपायांतरकी निवृत्तिका कथन किया है अर्थात् यज्ञ, दान, तीर्थादिकरूप उपायांतरकी आशा नहीं करके जो भगवत् शरणा-

गति है, सोही उपासक पुरुषोंके धर्म अर्थ काम और मोक्षकी साधिका है। और इस मन्त्रमें (एव) दूसरा पद है, उस करके उपायकी निरपेक्षताका प्रतिपादन किया है, अर्थात् देवतांतरकी उपासनाकी इच्छा और दानादि॰ककी इच्छाका अभाव प्रतिपादन किया है। यज्ञ, दान, व्रत, तीर्थ आदिक उक्त उपायोंकी आशासे रहित जो भगवत् शरणागति है सोही उपासकोंकी मुक्ति और सर्वार्थ साधनमें अत्यन्त बलवान् उपाय है॥ २॥

प्रपन्नायेति पदतस्तूपायस्थानमुच्यते ।
उपायत्वं भगवतस्तवेति पदतस्तथा ॥ ३ ॥
अस्मीत्युपायस्वीकारः सुमते मतकोविदैः ।
समाप्त्यर्थेतिशब्देन तूपायानन्यतोच्यते ॥ ४ ॥

अर्थ–(प्रपन्न) इस तृतीय पद करके उपायके स्थानका कथन किया है। अर्थात् प्रपत्तिको करनेवाला जो उपासक है उस उपासकके अर्थ अत्यन्त बलवान् षट् प्रकारकी शरणागतिरूप उपायके आश्रयका कथन है। (तव) इस चतुर्थ पद करके प्रपत्तिके फलको देनेवाले और तेज,ओज, महिमा, कृपा, सत्यसंकल्प आदि गुणोंके समुद्र श्रीरामचंद्र भगवान्को उपायपना कहा है अर्थात् शरणागति फलके दाता श्रीरामही उपायरूप हैं॥ और हे सुमते! श्रीवैष्णव मतको जाननेवाले विद्वानोंने (अस्मि) इस पंचम पद करके उपायका अंगीकार प्रतिपादन किये हैं, और समाप्ति अर्थवाला (इति) इस षष्ठम पद करके उपायांतरके अभावका कथन किया है, अर्थात् शरणागतिके किये पीछे मोक्षके सब उपाय समाप्ति हो जाते हैं, इस शरणागतिसे दूसरा कोईभी उपाय नहीं है॥ ४॥

चकारतोनुक्तसमुच्चयार्थतो निगद्यते त्वन्य उपाय आत्मवित् ।
उपायसंसेव्यधिकारिरूपं पदेन वै याचत इत्यनेन ॥ ५ ॥
अभयमित्यथ प्राप्य प्रतिबन्धकवारणम् ।
सर्वभूतेभ्य इत्येव प्राप्यस्य प्रतिबन्धकम् ॥ ६ ॥

---

१ इति हेतुप्रकरणप्रकर्षादिसमाप्तिषु।
हेतु, प्रकरण, प्रकाश, समाप्ति इतने अर्थोंमें इति शब्द है ऐसा कोशमें कहा है।

अर्थ–और नहीं कहे हुए अर्थोंका समुच्चय अर्थ जिसका है ऐसा जो सप्तम पद (चकार) है, उस चकार पद करके अन्य उपायका प्रपत्ति करके बोध करनेके अर्थ अनुवाद कथन किया है । और हे परमात्माको जाननेवाले शिष्य ! (याचते) इस अष्टम पद करके सकल अर्थोंकी साधक शरणागतिरूप परम उपायका प्रतिपादन किया है ॥ ५ ॥ और (अभयम्) इस नवम पदकरके प्राप्यरूप भगवत्‌की प्राप्तिमें जो प्रतिबंधक हैं उनके निवारणका प्रतिपादन किया है, अर्थात् मैं अपराधोंका करनेवाला, पापात्मा जाति वर्ण आश्रमों करके हीन, उचित कर्मोंको नहीं करनेवाला, वेदबाह्य निंदित हूं, सो मैं श्रीनिवास भगवंत श्रीरामको कब और कैसे प्राप्त होऊंगा. इस प्रकारके संशयादिक विरोधियोंकी प्रवृत्तिका विघात प्रतिपादन किया है । (सर्वभूतेभ्यः) इस दशम पद करके भगवत्‌की प्राप्तिमें जो प्रतिबंधक हैं, उन प्रतिबंधकोंको स्वरूपका कथन किया है ॥ यहां ऐसा आशय है कि, सर्वभूतेभ्यः इस प्रकारकी पंचमी विभक्ति और चतुर्थी विभक्ति दोनों होती हैं । वहां पंचमी विभक्तिके पक्षमें ऐसा अर्थ होता है कि–सर्वभूतेभ्यः अर्थात् सर्वभूतमात्रसे अभय कर देता हूं मेरे शरणको प्राप्त हुये प्राणीको किसीसेभी भय नहीं रहता है ।

प्रश्न–दूसरे भूतमात्रसे भगवान् अभय करते हैं, परंतु अपनेसे अभय करते हैं कि नहीं ?

उत्तर–सर्वभूतेभ्यः । यहां सर्वशब्दका ग्रहण करनेसे सर्वभूत मात्रसे और अपनेसेभी तथा दूसरे प्रतिवन्धक मात्रसे अभयको देता हूं. ऐसे स्वमुखसे श्रीरामने आपही कहा है । और चतुर्थीविभक्तिके पक्षमें ऐसा अर्थ होता हैं कि, केवल विभीषणकोही मैं अभय नहीं देता हूं किंतु सर्वभूतेभ्यः अर्थात् अनन्य शरणागतिको प्राप्त हुये जो पशु, पक्षी, सरीसृप, देव मनुष्यादिक जीव हैं उन सर्व जीवोंको मैं राघव अभय देता हूं ॥

प्रश्न–भगवतने अपनेसे अभय किसको किया था ?

उत्तर–स तं निपतितं भूमौ शरण्यः शरणागतम् ।
वधार्हमपि काकुत्स्थः कृपया पर्य्यपालयत् ॥

अर्थ–इंद्रपुत्र जयंत भगवतके भयसे सर्व लोकोंमें भटकता हुआ जब भगवतके चरणोंमें आकर गिरा तब भूमिमें पडा हुआ तथा वध करने योग्य भी था तथापि शरणागत हुआ उस इंद्रपुत्र जयंतको शरणागत-

वत्सल श्रीराम कृपाकरके पालन किये, अर्थात् उस वायसको अभय किये ऐसाही दंडकवासी महर्षि जन और विभीषण आदि बहुत शरणगत लोगोंको रक्षण किये थे इति ॥ ६ ॥

दद्दामीति पदेनाथोपायस्य सर्वशक्तिता ।
एतदित्येव पदतो संशयत्वमितीर्यते ॥ ७ ॥
निर्भरत्वानुसंधानं ममेति प्रतिपाद्यते ।
व्रतमेतत्पदेनाथो तद्दाढर्यमभिधीयते ॥ ८ ॥

अर्थ-(ददामि) इस एकादशवां पदकरके प्रपत्तिके फलदाता श्रीरामकी सर्वशक्तिता सर्वार्थसाधकता वर्णन की है ॥ (एतत्) इस बारहवाँ पदकरके उक्तार्थका असंशयपना कहा है, अर्थात् पूर्व कहे हुये अर्थमें संशय नहीं है ॥ (मम) इस तेरहवाँ पदकरके निर्भरत्वके चिंतनका प्रतिपादन किया है, अर्थात् शरणको प्राप्त हुआ जो मेरा दास है, उस दासका पोषण पालन मेरे अवश्य करने योग्य है, इस प्रकारकी चिंताका प्रतिपादन किया है ॥ और पाठके क्रमसे अर्थका क्रम बलवान् होता है, इस न्याय करके अर्थमें अंतका (व्रतम्)यह पद है और पाठमें मम यह अंतका पद है,परंतु अर्थका क्रम बलवान् होनेसे अर्थमें व्रत पद अंतमें लिया है, इस अंतके व्रत इस चतुर्दशवाँ पदसे पूर्व तेरह पदोंकरके कहे हुए अर्थका दृढपना पुष्टपना निश्चयपना कहा है इति ॥ ७ ॥ ८ ॥

प्रश्न-इस चरम मंत्रका तात्पर्यार्थ, वाक्यार्थ, प्रधानार्थ और अनुसंधानार्थ कौन कौनसे हैं ?

उत्तर-तात्पर्यार्थोऽस्य विज्ञेयः शरण्यरुचिसंश्रितम् ।
तत्प्रापकस्वरूपस्य वाक्यार्थोथ निरूपणम् ॥ ९ ॥
प्रधानार्थस्तु ईश्वरस्वरूपस्य निरूपणम् ।
निर्भरत्वानुसंधानमनुसंध्यर्थ उच्यते ॥ १० ॥

अर्थ-श्रीरामकी प्रसन्नताका जो संश्रय है, वह इस चरमश्लोकका तात्पर्यार्थ है, उस प्रापकके स्वरूपका जो निरूपण है, सो वाक्यार्थ है, ईश्वरके स्वरूपका जो निरूपण है, सो प्रधान (मुख्य) अर्थ है, और दासके पोषणकी जो

चिंता है, सो अनुसंधान अर्थ कहा है ॥ इस प्रकारसे इस चरमश्लोक करके सकल अर्थोंके साधनका परम उपायरूप और सर्वदेश, सर्वकाल, सर्वजाति सर्व अवस्थादिकोंको उचित प्रपत्तिका कथन किया है ॥ ९ ॥ १० ॥

प्रश्न–आपने षट्प्रकारकी प्रपत्ति (शरणागति) पूर्व कही है, सो कौन कौनसी है ?

छः प्रकारकी शरणागति।

उत्तर–आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रतिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा ॥
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः ॥ ११ ॥

अर्थ–आनुकूल्यसंकल्प १, प्रातिकूल्यवर्जन २, रक्षणाविषयक विश्वास ३, गोप्तृत्ववरण ४, आत्मनिक्षेप ५, कार्पण्य ६, इस प्रकारके भेदसे षट् प्रकारकी शरणागति है ॥ ११ ॥ यह षट्प्रकारकीभी कायिकी, वाचिकी, मानसी भेदसे तीन प्रकारकी है यह तीन प्रकारकी शरणागति भागवतके दशमस्कंधमें ब्रह्मस्तुतिमें कही है कि–

तत्तेनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुंजान एवात्मकृतं विपाकम्। हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ॥ १२ ॥

अर्थ–अपने किये हुए कर्मफलको भोगता हुआ तुम्हारी निरवधिक दयाको क्षण क्षणमें चिंतन करता हुआ तुम्हारेको मन वचन और काया करके प्रपत्तिको करता हुआ जो जीवता है सोही उपासक पुरुष मुक्तिरूप वस्तुमें अंशका भागी होता, इस प्रकारसे ब्रह्माने श्रीकृष्णको कहा है। इस श्लोकमें नमः शब्द करके प्रपत्तिही कही है। पूर्वोक्तकायिकादिप्रपत्तियोंको कहताहूँ सुनो।

कायिकीप्रपत्ति।

स तं निपतितं भूमौ शरण्यः शरणागतम्।
वधार्हमपि काकुत्स्थः कृपया पर्यपालयत् ॥

भूमीमें साष्टांग पडा हुआ काग (जयन्त) को देखकर भगवान् कृपा करके उसका रक्षण किये। इस रीतिसे काकने कायिकी शरणागति की थी।

वाचिकीप्रपत्ति ।

सर्वलोकशरण्याय राघवाय महात्मने ।
निवेदयत मां प्राप्तं विभीषणमुपस्थितम् ॥ १३ ॥

अर्थ–सर्व लोकोंका रक्षण करनेवाले महात्मा श्रीराघवके प्रति कहो कि– सर्व कुटुंबका त्याग करके विभीषण तुम्हारे शरण आया है ऐसी मेरी प्रार्थना श्रीरामको निवेदन करो ॥ इस प्रकारकी वाचिकी प्रपत्ति विभीषणने की थी ॥

मानसीप्रपत्ति ।

स तु नागवरः श्रीमान् नारायणपरायणः ।
तमेव शरणं देवं गतः सर्वात्मना तदा ॥ १४ ॥

अर्थ–महाभारतमें कहा है कि. वह हस्तिवर श्रीमान् गजेंद्र, जब अपने कुटुंब और सजातियों सहित बलहीन हुआ तब अपने मनसे नारायण ही रक्षक हैं ऐसा निश्चय कर उस नारायण देवकोही संपूर्ण मन करके शरणको प्राप्त हुआ इस रीतिसे गजेंद्रकी मानसी प्रपत्ति कही है इति ॥ १४ ॥ और वह षट् प्रकारकी शरणागतिभी सात्विकी राजसी तामसी भेदसे एक एक प्रपत्ति तीन तीन प्रकारकी है । इस रीतिसे उन प्रपत्तियोंके अष्टादश भेद हैं, उनका अत्यन्त विस्तारको देखना होय तो भारद्वाजसंहितामें देख लेना । इस प्रपत्तिधर्ममें वर्ण, आश्रम आदिकोंका नियम नहीं है सो शास्त्रमें कहा है कि–

बालमूकजडांधाश्च पंगवो बधिरास्तथा ।
सदाचार्येण संदिष्टाः प्राप्नुवंति सदागतिम् ॥ १५ ॥

अर्थ–बाल, तरुण, वृद्ध, मूक, जड, अंध, पंगु, बधिर, जाति, कुजाति, कुलीन, अकुलीन, वर्णी, अवर्णी, आश्रमी, अनाश्रमी, रूपवान्, अरूपवान्, आचारी, अनाचारी, पंडित, मूर्ख, पशु, पक्षी, देव, मनुष्य, नर, नारी, नपुंसक आदिक सर्व प्राणिमात्रका इस शरणागतिधर्ममें अधिकार है, और मोक्ष रूपफलभी सबको समानही मिलता है ॥ २५ ॥ गीतामेंभी कहा है कि–

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ १६ ॥

अर्थ–हे अर्जुन ! अनेक वर्ण धर्म हैं, अनेक आश्रम धर्म हैं, तथा अनेक सामान्य धर्म हैं उन सर्वधर्मोंका परित्याग करके तू एक मेरे शरणको प्राप्त हो

मैं तेरेको उन धर्मोंका त्यागजन्य पापोंके प्रायश्चित्तके विनाही सर्व पापोंसे मुक्त करूंगा, तू शोच मत कर॥ १६॥

प्रश्न—'सर्वधर्मान्परित्यज्य' इस वचन करके धर्मका त्याग करना, और अधर्मोंका त्याग नहीं करना, ऐसा अर्थ प्रतीत होता है।

उत्तर—सर्व शास्त्रोंमें अधर्मका त्याग तो किया हुआ है, परन्तु वर्णाश्रमके धर्मोंका निषेध उन शास्त्रोंमें नहीं किया है, इस कारण श्रीकृष्ण भगवान्ने शरणागतिधर्ममें सर्वधर्मोंकाही त्याग कहा है। क्योंकि, वर्णाश्रमके धर्म और प्रपत्तिके धर्म अलग २ हैं, एक म्यानमें दो खड्गोंकी माफक एक धर्ममें दो धर्म नहीं समा सकते हैं, और जैसे दो नावके ऊपर एक पुरुष बैठे तो पार नहीं उतरता है, किंतु नदीके बीचमेंही विनाशको प्राप्त होता है तैसे प्रपत्ति धर्ममें वर्णाश्रमादिधर्मोंका असंभव होनेसे निषेध किया है। ऐसा अभिप्राय है कि, दूसरे शास्त्रों करके तो अधर्मका निषेध किया हुआ है और श्रीकृष्ण करके वर्णाश्रमके धर्मोंका निषेध हुआ। इस प्रकारसे शरणागति धर्ममें धर्म अधर्म दोनोंका त्याग सिद्ध होता है। "कृतस्य करणं नास्ति" इस न्याय करके श्रीकृष्णने किया हुआको नहीं किया है इस वास्ते 'सर्वधर्मान्परित्यज्य' इस वचनसे धर्म और अधर्म इन दोनोंका त्याग कहा है इति॥

प्रश्न—वर्णाश्रमोंके धर्मोंका त्याग करनेसे पापकी उत्पत्ति होती है, और पापोत्पत्तिसे नरकादिक दुःखोंकी प्राप्ति होती है, इस कारण शरणागतिधर्ममें मोक्ष किस प्रकारसे होगा?

उत्तर—अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

इस प्रकारसे प्रपत्ति धर्ममें सर्व पापोंसे मुक्त करनेका श्रीकृष्णने प्रतिज्ञापूर्वक अपने शिर रक्खा है॥ जैसे अश्वमेधयज्ञमें यजमानपुरुष स्नान संध्यादिक नित्यकर्मोंका यज्ञकी समाप्तिपर्यंत त्याग करता है, उस नित्य कर्मके त्यागसे उत्पन्न हुआ जो पाप है उस पापका तथा अन्य पापोंका नाश करके वह अश्वमेधयज्ञ यजमान पुरुषको स्वर्गादिकसुखोंकी प्राप्ति करनेको समर्थ है वैसे शरणागतिभी वर्णाश्रमोंके त्यागजन्य पापोंका तथा दूसरे पापोंका नाश करके शरणागत पुरुषको मोक्ष देनेको समर्थ है। इति॥

प्रश्न—शरणागति धर्म, कौन देशमें और कौनसे कालमें लेना कहा है तथा उस प्रपत्तिको कौन विधिसे धारण करना और उसका क्या फल है?

उत्तर—सूत्रमें सूत्रकारने ऐसा कहा है कि—

" प्रपत्तेर्देशनियमः कालनियमः प्रकारनियमोऽधिकारिनियमः फलनियमश्च नास्तीति " ॥

अर्थ—भगवतके चरणोंको वरनरूप प्रपत्तिको अयोध्या आदिक पवित्र देशोंमेंही करना, दूसरे मरु आदिक देशोंमें नहीं करना ऐसा देशका नियम नहीं है।एकादशी द्वादशी आदिक पुण्यकालमेंही प्रपत्ति करना, दूसरे दिनोंमें नहीं करना ऐसा कालकाभी नियम नहीं है और इस विधिसे करना, दूसरी रीतिसे नहीं करना, ऐसा प्रकारका नियम, ब्राह्मणही अधिकारी है, दूसरा नहीं ऐसे अधिकारीकाभी नियम, और शरणागति करनेसे मोक्षही फल मिलता है दूसरे फल नहीं मिलते हैं, ऐसा फल नियम भी नहीं है, किंतु सर्वदेश सर्वकाल प्रपत्ति की जाती है, और ब्रह्मादि स्तंवपर्यंत सर्व प्राणिमात्र इस प्रपत्तिके अधिकारी हैं, तथा मोक्ष आदिक सर्व मन इच्छित फलोंको देती है, तथा इस शरणागतिका एक प्रकारका नियमभी नहीं है, किंतु मानसी, वाचिकी, कायिकी, तथा सात्विकी, राजसी, तामसी भेदोंसे अनेक प्रकारकी हो जाती हैं इति ॥ इस प्रकारसे अर्थसहित, अभिप्रायसहित, प्रमाणोंरहित, परमार्थरूप, परममंगलायन, परममोक्षसाधक, ऐसे मंत्रराज तारक, द्वय मंत्र रत्न, चरममंत्र, इन तीनों रहस्योंका परम जप्यत्व करके जन्ममरणरूप संसारभयकी निवृत्तिको इच्छाकरनेवाले मुमुक्षु वैष्णवोंको अवश्य अनुष्ठान करने योग्य है इति ॥ इति तृतीयं रहस्यम् ॥ ३ ॥

इति श्रीभगवद्रामानुजाचार्यचरणपंकजदासेन श्रीमत्पंडितगोपालदासेन विरचिते श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकरे चरममंत्राख्यतृतीयरहस्यव्याख्यानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ।

ध्यानस्वरूप ।

इस प्रकारसे तीन रहस्यरूपी परम जाप करने योग्य तीन मंत्रोंका कथन कर अब " किं ध्यानम् " इस तीसरे प्रश्नके उत्तरका उपदेश करते हैं—

अथोच्यते महाप्राज्ञ ध्यानं ध्येयस्य चिंतनम् ।
बुधैरात्मरतेर्नित्यं जितप्राणैर्जितेन्द्रियैः ॥ १ ॥

अर्थ–हे महाप्राज्ञ महामते ! उन (जितेन्द्रियैः) पंच विषयोंसे पंच-इंद्रियोंको जीतकर अपने वशमें रखनेवाले (जितप्राणैः) तथा प्राणायामपरायण (आत्मरतैः) और परमात्मामें अनुरागवाले ऐसे बुध जनोंने नित्य क्षण क्षणमें भगवतका जो चिन्तन कहा है, उसका नाम ध्यान है इति । " ध्यै चिंतायाम् " ध्यै धातुका चिंतन अर्थ है । उस ध्यै धातुसे ध्यानशब्द सिद्ध हुआ है ॥ १ ॥

अब जिस श्रीराम परमात्माका बुधजन, ध्यान करते हैं, उस श्रीरामके ध्यान विषयक स्वरूपको कहते हैं–

रामस्वरूपध्यान ।

विकचपद्मदलायतवीक्षणं विधिभवादिमनोहरसुस्मितम् ।
जनकजादृगपाङ्गसमीक्षितं प्रणतसत्समनुग्रहकारिणम् ॥ २॥
मुनिमनःसुमधुव्रतचुंबितस्फुटलसन्मकरन्दपदांबुजम् ।
बलवदद्भुतदिव्यधनुःशराऽऽमहितजानुविलंबिमहाभुजम् ॥ ३ ॥
परार्ध्यहाराङ्गदचारुनूपुरं सुपद्मकिञ्जल्कपिशङ्गवाससम् ।
लसद्घनश्यामतनुं गुणाकरं कृपार्णवं सद्धृदयाम्बुजासनम् ॥ ४ ॥
प्रसन्नलावण्यसुभ्रून्मुखाम्बुजं नरं शरण्यं शरणं नरोत्तमम् ।
सहानुजं दाशरथिं महोत्सवं स्मरामि रामं सहसीतया सदा॥५॥

अर्थ–खिले हुए कमलकी पांखडी सरीखे विशाल नेत्रोंवाले और लक्ष्मण तथा सीता करके सहित सर्वोत्तम दाशरथि श्रीराम परमात्माको सदा तैल-धारावत् विच्छेदसे रहित मैं स्मरण करता हूं ऐसा चौथा श्लोकके साथ इस श्लोकका अन्वय है (जनकजादृगपांगसमीक्षितम्) जनकपुत्री श्रीजानकीके सुंदर लावण्य वात्सल्यादि गुणयुक्त नेत्र कोण करके सादर देखे हुए, (विधि-भवादिमनोहरसुस्मितम्) ब्रह्मा शिव आदिकोंकेभी मनको हरनेवाला सुंदर मन्द हास्यवाले (प्रणतसत्समनुग्रहकारिणम्) प्रपन्न संतजनोंको सर्वभूतोंसे अभयरूप अनुग्रहके करनेवाले, मुनिजनोंके मनरूपी भ्रमर करके चुंबन किये हुए, और विकसायमान तथा मकरंद युक्त चरणकमलवाला, अत्यंत बल युक्त तथा चिह्नों करके अद्भुत तथा अप्राकृत तथा शारंग धनुष और बाणोंकरके

सर्वत्र पूजे हुए ऐसे जानुपर्यंत लंबायमान महाभुजावाला (परार्ध्यहारांगदचारुनूपुरम्) परार्ध्य संख्या मूल्यवाले हार, बाजूबंद और सुंदर नूपुर और (सुपद्मकिंजल्कपिशंगवाससम्) शोभायमान कमलके केशर सरीखे पीले वस्त्रको धारणकरनेवाला (लसद्घनश्यामतनुम्) प्रकाशमान घनश्याम मूर्ति जिनकी है ॥ (गुणाकरम्) वात्सल्यादि गुणोंके खानिरूप हैं (कृपार्णवम्) कृपाके समुद्र हैं (सद्धृदयांबुजासनम्) सन्त जनोंका हृदय कमल जिनका आसन है॥ (प्रसन्नलावण्यसुभृन्मुखांबुजम्) क्षण क्षणमें नवीन सुंदरपनेको अच्छी तरहसे धारण करनेवाला मुख जिनका है ॥ (शरण्यम्) शरणागतोंके पालन करनेमें तत्पर हैं (शरणं) रक्षण करनेवाला (महोत्सवम्) दुःखजन्य विकारसे रहित हैं इति ॥ ५ ॥

इस प्रकारसे श्रीराम परमात्माकी मूर्तिका ध्यान संक्षेपसे कथन किया है, और जो विस्तारसे अनुभव करना होय तो सनकादिसंहितामें विस्तारसे कहा है वहां देख लेना ॥ इति ध्यानम् ॥

'मुक्तेः किं साधनम्' मुक्तिका क्या साधन है इस चतुर्थ प्रश्नके उत्तरको अब कहते हैं-

एवं तेऽभिहितं ध्यानं शृणु तन्मुक्तिसाधनम् ।
मुमुक्षूणां परं वेद्यं विधेयं सुमहामते ॥ ६ ॥

अर्थ-श्रीरामचंद्र परमात्माको पानेके साधनोंको अब कहते हैं कि, हे सुमहामते ! तुमको ध्यान मैंने उक्त प्रकारसे कहा, और अब तुमने जो मुक्तिका साधन पूछा था उस मुक्तिके साधनको सुन । कैसा है मुक्तिका साधन कि (परम्) सब साधनोंसे अत्यन्त उत्तम है । (मुमुक्षूणां विधेयम्) मुक्तिकी इच्छा वाले पुरुषोंको विधान करने योग्य है । (वेद्यम्) मुमुक्षु पुरुषोंको जानने योग्य है । इति ॥ ६ ॥ वहां; मुक्तिके साधनोंमें प्रथम पंचसंस्कारों करके संस्कार किये हुए पुरुषोंकाही मुक्तिमें अधिकार है, इस कारणसे वैष्णवोंके संस्कार कारक तापादि पंच संस्कारोंको कहते हैं ।

पंचसंस्कार ।

तप्तेन मूले भुजयोः समङ्कनं चक्रेण शंखेन तथोर्ध्वपुण्ड्रम् ।
श्रुतिश्रुतं नाम च मंत्रमाले संस्कारभेदाः परमार्थहेतवः ॥७॥

अर्थ-गुरु, अग्निमें तप्त किया हुआ भगवतका सुदर्शन (चक्र) करके शिष्यके दक्षिण भुजाके मूलमें तथा पांचजन्य शंख करके वाम भुजाके मूलमें

विधिसे अंकित करनेका नाम तापसंस्कार कहा है। यह तापसंस्कार चार संस्कारोंसे प्रथम किया जाता है, इससे इसको प्रथम संस्कार कहते हैं। तथा श्वेतादि मृत्तिका करके द्वादश अंगोमें ऊर्ध्वपुंड्र तिलकोंका यथाविधि मंत्र करके धारण करनेका नाम ऊर्ध्वपुंड्रसंस्कार है। इसको द्वितीय संस्कार कहते हैं। गुरु अपने शिष्यका नारायणदास रामदास केशवदास आदिक नाम धरनेका नाम नामसंस्कार है। यह तृतीय संस्कार है। तथा तारकादि मंत्रोंका उपदेश करनेका नाम मंत्रसंस्कार है। यह चौथा संस्कार है। और गुरु अपने शिष्यको विधिसे तुलसीकी तथा कमलकी माला धारण करानेका नाम मालासंस्कार है। सो पंचम संस्कार है। यह पांचों संस्कार मोक्षके कारण हैं इति ॥ ७ ॥ इस प्रकार अनुक्रम और शास्त्रोंमें भी कहा है कि–

तापः पुण्ड्रं तथा नाम मंत्रो यागश्च पंचमः।
अमी परमसंस्काराः परमैकान्तिहेतवः ॥ ८ ॥

अर्थ–प्रथम ताप, पीछे पुंड्र, ता पीछे नाम, मंत्र और याग, ये पांच संस्कार परमैकांतिके हेतु हैं, ऐसा भारद्वाजसंहितामें अनुक्रम बताया है। उस अनुक्रमको छोडकर आज कालके बने हुए साधु लोक ऊर्ध्वपुंड्रको प्रथम संस्कार गिनते हैं, और तिस संस्कारकी इस श्रुतिकोभी बोलते हैं कि–

"हरेः पादाकृतिमात्मनो हिताय मध्याच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं यो धारयति स परस्य प्रियो भवति स पुण्यवान् भवति स मुक्तिभाग्भवति" इति ॥

तात्पर्य–यह द्वितीय संस्कारकी श्रुति है परन्तु इसको प्रथम संस्कारकी श्रुति मानते हैं। और दूसराभी एक बडा भारी अज्ञान है, कौनसा कि, यह श्रुति अथर्वणवेदकी है सो इसको यजुर्वेदकी श्रुति कहते हैं ॥ इति ॥

१–तापसंस्कार।

धृतोर्ध्वपुंड्रः कृतचक्रधारी विष्णुं परं ध्यायति यो महात्मा। स्वरेण मन्त्रेण सदा हृदि स्थितं परात्परं यन्महतो महांतम्। इति श्रुतेः। प्रथमस्तापसंस्कारः ॥ १ ॥

अर्थ–जो मुमुक्षु पुरुष, प्रतिष्ठा अर्चन होम अग्नि ताप आदिको करके संस्कार किया हुआ ऐसा जो पांचजन्य शंख सहित सुदर्शन चक्रको धारण

करके तथा मृत्तिकासे ऊर्ध्वपुण्ड्रोंका धारण करके विष्णुका ध्यान करता है, सो पुरुष महात्मा अर्थात् जन्म मरणसे मुक्त होता है ॥

प्रश्न–इस श्रुतिमें शंख और मृत्तिका यह दो शब्द हैं नहीं। और आप तो अर्थमें शंख सहित चक्रका धारण और मृत्तिकासे पुंड्रोंका धारण कहते हो ?

उत्तर–इस श्रुतिके समान अर्थवाली अथर्वण वेदकी श्रुतिमेंसे इन दोनों शब्दोंकी प्राप्ति हुई है। वह अथर्वणवेदकी श्रुति यह है कि–

धृतोर्ध्वपुंड्रो दरचक्रधारी मृदा विष्णुं ध्यायति यो महात्मा।
स याति नाकं दुरितान् विधूय विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ॥

अर्थ–जो मुमुक्षु पुरुष शंख और चक्रका धारण करके तथा मृत्तिकासे ऊर्ध्व पुण्ड्रोंका धारण करके विष्णुका ध्यान करता है सो महात्मा सर्व पापोंका नाश करके जिस मोक्षको वीतराग संन्यासी जाते हैं उस मोक्षको प्राप्त होता है।इस श्रुतिमें जो दरशब्द है सो शंखका नाम है। इस प्रकारसे शंख चक्र और ऊर्ध्वपुंड्रोंका धारण करनेवाला, संन्यासीयोंके समान मुक्तिको प्राप्त होता है, ऐसा अथर्वणवेदमें कहा है इति ॥

प्रश्न–मुमुक्षु जिस विष्णुका ध्यान करता है, वह विष्णु कैसे हैं कहां रहते हैं और विष्णुका किसकरके ध्यान करता है ?

उत्तर–विष्णु परात्पर हैं अर्थात् इस संसारी जीवोंसे ब्रह्मा शिव आदिक पर हैं और उनसेभी पर विष्णु हैं ॥ (परम्) अर्थात् अवधिसे और अतिशयसे रहित असंख्य कल्याण गुणोंके भंडाररूप होनेसे सर्वोत्कृष्ट हैं. और (महतो महांतम्)सबसे महान् (बडे) आकाशादिक हैं, और उनसेभी विष्णु बडे हैं ॥ (हृदि स्थितम्) अपने भक्तके स्नेहवशसे उस आश्रितकी उपासनाके अर्थ हृदयरूप गुहामें रहते हैं॥ऐसे विष्णुको स्वर[1] ओंकार मंत्र करके ध्यान करता है। श्रुतिमें कहा "यद्वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः" इत्यादि श्रुतियोंमें स्वर शब्दका प्रणवमें प्रयोग प्रसिद्ध है।

प्रश्न–विष्णुका ध्यानको मुमुक्षु कब करता है।

उत्तर–जहांतक जीवे तहांतक दिन प्रति नियमित कालमें करता है ॥ इति तापसंस्कारश्रुत्यर्थः ॥ १ ॥

---

१ ओंकार करके।

अब द्वितीय पुंड्रसंस्कारको लिखते हैं–

२–पुण्ड्र संस्कार ।

"हरेः पादाकृतिमात्मनो हिताय मध्यछिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं यो धारयति स परस्य प्रियो भवति स पुण्यवान् भवति स मुक्तिभाग्भवति" इति श्रुतेर्द्वितीय ऊर्ध्वपुंड्रसंस्कारः ॥ २ ॥

अर्थ–जैसा भगवान्के चरणका आकार है तैसा आकारवाला और मध्यमें छिद्रवाला ऐसा ऊर्ध्वपुंड्रको जो मुमुक्षु वैष्णव धारण करता है सो मुमुक्षु वैष्णव परमात्माको अत्यंत प्रिय होता है और ऊर्ध्वपुंड्रके धारण करनेसे वह वैष्णव पुण्यवान् होता है । तथा मुक्तिका भागी होता है । जैसे पिताके धन धान्य आदिक पदार्थोंका भागी पुत्रही होता है वैसे विष्णुपदरूप मुक्तिका भागीभी ऊर्ध्वपुंड्रोंके धारण करनेवाला वैष्णवही होता है । दूसरा अवैष्णव पुरुष उस मुक्तिका भागीदार नहीं होता है ॥ इति ऊर्ध्वपुंड्र नाम द्वितीयः संस्कारः ॥ २ ॥

३–नामसंस्कार ।

पशुपुत्रादिकं सर्वं ग्रहोपकरणानि च ।
अंकयेच्छंखचक्राभ्यां नाम कुर्याच्च वैष्णवम् ॥

अर्थ--पशु, पुत्र, भार्या, यान, वाहन, भूमी आदिक सर्वको तथा घरके उपकरण जो चमस, उलूखल, पात्र, वस्त्र, अन्न आदिक इन सबको प्रथम शंख चक्र करके अंकित कर पीछे उन पशु पुत्र भार्यादिकोंका वैष्णव नाम धरे । इस प्रकारसे शांडिल्यस्मृतिमें नामसंस्कार कहा है। और इस नामसंस्कारमें जो श्रुतिका प्रमाण चाहते हो तो यह श्रुति है कि--

ब्रह्मदासा ब्रह्मदासा ब्रह्माहमेति कितवाः ।
अकारवाच्यस्य श्रीमन्नारायणस्य मकारवाच्यात्मा दासः॥
इति तृतीयं नामसंस्कारः ॥ ३ ॥

४–मन्त्र संस्कार ।

"य एतत्तारकं ब्रह्मणो नित्यमधीते स पाप्मानं तरति स मृत्युं तरति स भ्रूणहत्यां तरति स ब्रह्महत्यां तरति स

वीरहत्यां तरति ससर्वंहत्यां तरति स सर्वंसंसारं तरति स सर्वं तरति सो विमुक्तात्माश्रितो भवति स महान्भवति सोऽमृतत्वं च गच्छति" श्रुतिः ॥

अर्थ–जो वैष्णवपुरुष श्रीराम परब्रह्मके इस तारक मन्त्रका नित्य जप करता है, सो वैष्णव पापको तरता है, तथा मृत्युको तरता है, तथा भ्रूण-हत्या, ब्रह्महत्या, वीरहत्या आदिक सर्व हत्याओंको तरता है तथा सर्वसंसारको तर जाता है, और जे जे मुक्तिके प्रतिबंधक हैं उन सबको तरता है, तथा सो आश्रित पुरुष जीवन्मुक्त हो जाता है तथा सबसे महान् होता है, और मोक्षको प्राप्त होता है ऐसा अथर्वण वेदमें कहा है। इति मन्त्रसंस्कारः ४॥

५-मालासंस्कार।

"शंखचक्रधरो विद्वान्मालां तुलसिजां दधत् ।
स जीवन्मुक्त इत्येवं कमलादिधृक् तथा"॥ इति श्रुतिः ।

अर्थ–शंख और चक्रको धारण करनेवाला विद्वान् ऐसा जो वैष्णव है, सो वैष्णव, तुलसीकी मालाको तथा कमलादिककी मालाको धारण करता हुआ जीवन्मुक्त है अर्थात् जीवता हुआही मुक्त है ऐसा श्रुतिमें कहा है। इति मालासंस्कारः ॥ ५ ॥ हे शिष्य ! इस प्रकारसे पंच संस्कारोंको मैंने तेरे तांई संक्षपसे निरूपण किया, और अब इन पंच संस्कारोंको अनेक श्रुति-स्मृतियोंके वचनों करके न्यारे न्यारे, विस्तार सहित और विधिसहित निरूपण करता हूं सो तू श्रवण कर।

प्रश्न–हे स्वामिन् ! इस जगतविषे यह शंख और चक्रकी छाप लेनेका जो ताप संस्कार है सो कबसे चला है।

उत्तर–हे शिष्य ! इस जगतमें वेद अनादि कालके हैं क्योंकि ईश्वरने प्रथम वेदोंको उत्पन्न करके ब्रह्माको पढाये, और ब्रह्मा वेद पढकर पीछे जगतका उत्पन्न किया, इस जगतमें सबसे प्रथम वेद उत्पन्न हुये हैं और उन वेदमें शंख चक्रकी छाप लेनेका लिखा हुआ है इसलिये यह तापसंस्कारभी इस जगत्में अनादि कालसे चला आता है।

प्रश्न–शंख चक्रकी छाप नहीं लेवे तो क्या होय ?।

उत्तर–जो गुरुके पाससे शंख चक्रकी छाप नहीं लेवे तो उस प्राणीकी मुक्तिभी नहीं होती है। ऐसा वेदमें कहा है कि–

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते। प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते। शृतास इद्वहंतस्तत्समासतः।इति॥

अर्थ–(हे ब्रह्मणस्पते) चतुर्मुखवाला जो ब्रह्मा है उस ब्रह्माके भी आप पति हो, उस ब्रह्माको नियममें रक्खनेवाले हो । इस कारणसे आप (प्रभुः) चराचर सर्व जगत्को नियममें रखनेवाले आप समर्थ हो । (विश्वतः गात्राणि पर्येषि)सब जीवोंके शरीरोंको अंतर्यामिरूपसे व्याप रहे हो ऐसे सब जीवोंके प्रभु तुम हो । इस कारणसे तुम्हारा सुदर्शन चक्रभी तुम्हारे दासरूप आस्तिकोंके अंगमें अंकनरूप करके व्याप्त है । ऐसे तुम्हारे सुदर्शन करके जो पुरुष (अतप्ततनूः) अग्निमें तप्त किया हुआ चक्र करके जिस पुरुषका शरीर नहीं तपा है अर्थात् चक्रकी छाप जिसने नहीं लिया है,सो पुरुष (आमः)अपरिपक है, जिसके पाप नष्ट नहीं हुये हैं इस कारण वह अचक्रधारी पुरुष (त्वां नाश्नुते) तुम्हारेको नहीं प्राप्त होता है मोक्षको नहीं पाता है ॥ और (इदं वहंतः) इस अग्नितप्त चक्रको धारण करनेवाले पुरुष तो (शृतासः) पक्व हैं जिनके पाप मात्र (पक) नाश होगये हैं । वे निष्पापी पुरुष तो (तत्समासतः) उस परब्रह्मको प्राप्त होते हैं । श्रुतिमें ऐसा अन्वय और व्यतिरेक मोक्षमें कथन किया है अर्थात् तप्तचक्रको धारण करनेवाला पुरुष मोक्षको प्राप्त होता है, इसका नाम अन्वय है, और तप्तचक्रको नहीं धारण करनेवाला पुरुष मोक्षको नहीं प्राप्त होता है इसका नाम व्यतिरेक है ॥ ऐसे अन्वय व्यतिरेक करके चक्रका मोक्ष और मोक्षके अभावमें प्रयोजकपनाको प्रतिपादन करनेवाली इस श्रुतिकरके मुमुक्षुओंको तप्तचक्रके चिह्नको अवश्य धारण करना योग्य है ।ऐसा विधि कहा है । और यह श्रुति ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, इन तीनों वेदोंमें पठन की हुयी है. इसलिये तीनों वेदोंका ऐसीही आज्ञा है कि, अग्निमें तप्त किये हुए चक्र करके अंकित हुये विना प्राणीका मोक्ष नहीं होता है । इति॥

प्रश्न–इन तीन वेदकी श्रुतिमें पवित्रशब्द करके आपने चक्रका अर्थ ग्रहण किया है, सो पवित्रशब्दसे चक्रका कौनसे ग्रंथमें कहा है ?

उत्तर–वेदके शब्दोंका कोश निघंटु ग्रन्थमें पवित्र नाम चक्रकाही कहा है कि–

" सुदर्शनं सहस्रारं पवित्रं चरणं पविः " इति ॥

अर्थ–सुदर्शन, सहस्रार, पवित्र, चरण और पवि । इतने नाम चक्रके हैं इति । और श्रीशास्त्रमेंभी कहा है कि–

पवित्रं चरणं चक्रं लोकद्वारं सुदर्शनम् ।
पर्यायवाचका ह्येते चक्रस्य परमात्मनः ॥

अर्थ–पवित्र, चरण, चक्र, लोकद्वार और सुदर्शन, इतने परमात्माके चक्रके पर्यायवाचक हैं । तथा पद्मपुराणके उत्तरखंडके द्वितीय अध्यायमेंभी कहा है कि–

पवित्रं चरणं नेमिः पविश्चक्रं सुदर्शनम् ।
सहस्रारं प्राकृतघ्नं लोकद्वारं महौजसम् ।
नामानि विष्णुचक्रस्य पर्यायेण निबोध मे ॥

अर्थ–पवित्र, चरण, नेमि, पवि, चक्र, सुदर्शन, सहस्रार, प्राकृतघ्न, लोकद्वार और महौजस । इतने विष्णुचक्रके नामोंको पर्याय करके अर्थात् नामांतर करके जान इति ॥ ऐसे अनेक प्रमाणोंसे पवित्रशब्द चक्रका वाचक सिद्ध होता है ॥

प्रश्न–इस तीन वेदकी श्रुतिमें तप्तचक्र करके तप्तशरीर करना, ऐसा स्पष्ट अर्थ मालूम नहीं पडता है ।

उत्तर–अरे वितंडावाद करनेवाले ! इस श्रुतिका स्पष्ट अर्थको जनानेमें हजारों श्रुति स्मृति और पुराणोंके वचन हैं। जैसे कि पद्मपुराणमें इस श्रुतिका अर्थ चक्र धारणमें स्पष्ट रीतिसे कहा है कि—

चरणं पवित्रं विततं पुराणं वाङ्मयं शुभम् ।
तेन चक्रेण सन्तप्तास्तरेयुः पातकाम्बुधिम् ॥
तेनातप्ता तनूर्येषां न ते यांति परं पदम् ।
तेन तप्ता तनूर्येषां ते प्रयांति परं पदम् ॥

अर्थ–चरण, पवित्र, वितत, पुराण, वाङ्मय और शुभ, ऐसे नामोंवाला जो चक्र है, उस चक्र करके तप्त हुये पुरुष पापोंके समुद्रको तरते हैं । और उस चक्र करके जिन पुरुषोंके शरीर नहीं तप्त हुये हैं वह पुरुष मोक्षको नहीं

प्राप्त होते हैं, और उस चक्र करके जिन पुरुषोंके शरीर तप्त भये हैं, वे पुरुष परम पदको प्राप्त होते हैं। इस प्रकारसे पद्मपुराणमें इस श्रुतिका व्याख्यान बहुत विस्तारसे किया हुआ है । इति ॥

प्रश्न–हे ज्ञाननिधे गुरो ! ब्राह्मण और ब्राह्मणोंके भिक्षुक शंकराचार्य ऐसा कहते हैं कि, शंखचक्रकी छाप लेनेका वेदमें नहीं कहा है, इसलिये वैदिक धर्म नहीं होनेसे ब्राह्मणोंको तप्त शंखचक्रका धारण योग्य नहीं। जो वेदमें और धर्मशास्त्रमें तप्तशंख चक्रकी विधि हो तो धारण करना चाहिये ॥ इस कारणसे उन ब्राह्मणोंको बतानेकेलिये दो चार दूसरे श्रुतिभी इस ग्रंथमें लिखना चाहिये ॥

उत्तर–यजुर्वेदकी कठशाखामेंसे यह दो मन्त्र यहां लिखते हैं। इन दोनों मन्त्रोंमें तप्त चक्रका धारण करना कहा है कि–

चरणं पवित्रं विततं पुराणम् । येन पूतस्तरति दुष्कृतानि । तेन पवित्रेण शुद्धेन पूताः । अति पाप्मानमरातिं तरेम ॥ १ ॥ लोकस्य द्वारमर्चिमत्पवित्रम् । ज्योतिष्मद् भ्राजमानं महस्वत् । अमृतस्य धारा बहुधा दोहमानम् । चरणं नो लोके सुधृतां दधातु ॥ २ ॥

अर्थ–इन मन्त्रोंके व्याख्यानमें धानुष्क यज्वा त्रिवेदि भाष्यकारने चरण शब्द, सुदर्शन चक्रका वाचक अपने भाष्यमें कहा है, और भट्टभास्करनेभी अपने ज्ञानभाष्यमें चरणशब्द सुदर्शन देवताका वाचकही कहा ॥ चक्रकी याचना करनेवाले कहते हैं कि, जिस अग्नितप्त चक्रके अंकन करके (पूतः) पवित्र हुआ जो पुरुष है, सो पुरुष (दुष्कृतानि तरति) पापोंको नाश करता है । सो चरण (चक्र) कैसा है कि (पुराणम्) अनादि कालका ह, (विततम्) आस्तिक जनोंमें अग्नितप्त अपने संयोगजन्य चिन्हरूप करके व्याप्त है, पुराण और वितत इन दो शब्दों करके आस्तिक जनोंमें तप्त चक्रका धारण अनादि कालसे है ऐसा सिद्ध हुआ । (पवित्रम्) अपने संयोगसे दूसरोंको शुद्ध करनेवाला है, ऐसा पवित्र और शुद्ध, उस चक्र करके (पूताः) पवित्र हुए हम, (अरातिम्) शत्रुको अर्थात् भगवत् प्राप्तिरूप मोक्षका प्रतिबन्धक पापोंको (अतितरेम) अत्यन्त उल्लंघन करे (विनाश करे) इति १

और (लोकस्य द्वारम्) वैकुंठ लोककी प्राप्तिका उपाय रूप, (अर्चिष्मत्) ज्वाला करके युक्त, (पवित्रम्) अपनी ज्वालासे पुरुषोंको अंकित करके विशेष शुद्धिका कारणरूप, (ज्योतिष्मत्) किरणोंवाला, (महस्वत्) प्रभारूप तेज करके युक्त, (भ्राजमानम्) देदीप्यमान है । (अमृतस्य धारा बहुधा दोहमानं) अनेक प्रकारसे अमृत, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, भक्तिरूप, धाराओंको कामधेनुके सदृश भक्त जनोंको सम्पादन करनेवाला है । ऐसा (चरणं–दधातु) चक्र, हमारेको परम पद वैकुंठमें स्थापन करें, ॥ २ ॥

प्रश्न–इन दोनों मन्त्रोंमें चक्रशब्द और उस चक्रको अग्निमें तप्त करके शिष्यके भुजामें गुरु अंकित करे, ऐसा स्पष्ट शब्दोंसे अर्थ मालूम नहीं पडता है ।

उत्तर–इन मन्त्रोंके अर्थको स्पष्ट रीतिसे बृहद् हारीत स्मृतिके अष्टम अध्यायमें श्रौत भगवत् धर्मकी दीक्षाविधिमें कहा है कि–

आज्यं हुत्वा ततश्चक्रं तदग्नौ प्रतपेद्गुरुः ।
चरणं पवित्रमिति तच्चक्रेणाङ्कयेद्भुजम् ॥

अर्थ–अग्निमें घृतका होम कर उस अग्निमें गुरु चक्रको तप्त करे। पीछे चरण पवित्र ऐसा नामवाला उस तप्त चक्र करके शिष्यकी भुजाको अंकित करे।। और इस प्रकारसेही, शुक्ल यजुर्वेदके शतपथब्राह्मणमें याज्ञवल्क्य और कात्यायनके संवादरूप दशम अनुवाकमें सायुज्य, सालोक्य आदि परम पुरुषार्थकी कारणता करके तप्तचक्रका चिह्न और ऊर्ध्वपुण्ड्रके धारणका विधान कहा है कि–

देवासः पितरो येन विधृतेन बाहुना सुदर्शनेन प्रयताः स्वर्गं लोकमायन् । येनाङ्किता मनवो लोकसृष्टिं वितन्वन्ति । ब्राह्मणास्तद्वहन्ति अग्निना वै होत्रा तप्तं चक्रं द्विभुजे धार्यमित्यूर्ध्वपुण्ड्रमालिखेत् । तस्माद्विरेखं भवति पुनरागमनं न याति । ब्रह्मणः सायुज्यं सलोकतां जयति य एवं वेद ॥

अर्थ–देव और पितर अपने दक्षिण और वामबाहुमें धारण किया हुआ, जिस सुदर्शन चक्र करके पवित्र हो स्वर्ग लोकको प्राप्त हुये । और चतुर्दश

मनुभी जिस सुदर्शन चक्र करके अंकित हुए लोककी सृष्टिका सामर्थ्यको प्राप्त होते हैं। तथा ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणभी उस तप्त चक्रको धारण करते हैं। उस हेतुसे कल्प ग्रन्थकी रीति करके होम करनेवाला होता पुरुषको भी तप्त चक्रका धारण विधिसे करना योग्य है ॥ और ऊर्ध्वपुण्ड्रको नासिकाके मूलसे केश पर्यन्त लिखे। ऐसा लिखनेसे द्विरेखारूप ऊर्ध्वपुण्ड्र होता है॥ ऐसे तप्तचक्र और ऊर्ध्वपुण्ड्रका धारण करनेवाला पुरुष परब्रह्म श्रीनारायणकी सायुज्य और सालोक्य मुक्तिको साध लेता है। फिर वह पुरुष जन्म मरणरूप संसारमें नहीं आता है॥ ऐसे जो पुरुष जानता है सोभी मोक्षको पाता है॥ और ऐसेही अथर्वण वेदकी सुदर्शन उपनिषदमेंभी कहा है कि–

निचिक्षेप[1] सुषेणं[2] भिद्यमानं मध्ये बाहुमदत्सुदर्शनम्।
विष्णोरिदं भूरिदं भूरितेजः प्रधर्षति[4] दिवा नक्तं बिभृयुस्तं[5]ज्जना[6]सः॥

अर्थ–दक्षिण और वाम बाहुके मध्यमें सुदर्शन चक्रको जो पुरुष धारण नहीं करता है वह नाना प्रकारके पापोंको अपने आत्मामें ही रखता है दूर नहीं करता है और अत्यंत तेजयुक्त बहुत फलको देनेवाला विष्णुका यह चक्र, पापोंका नाश करता है, इस हेतुसे भगवतजन सुदर्शन चक्रको रात दिन धारण करने योग्य है इति॥ और ऋग्वेदमेंभी कहा है कि–

चक्रं बिभर्ति वपुषाभितप्तं बलं देवानाममितस्य विष्णोः।
स एति नाकं दुरिता विधूय प्रयान्ति यद्यतयो वीतरागाः॥

अर्थ–जो पुरुष देवोंका रक्षण करनेवाला, व्यापक विष्णु भगवानका तप्त चक्रको शरीरमें धारण करता है वह पुरुष पापोंको जडसे नाश करके परम पद वैकुंठको प्राप्त होता है॥ जैसे इस लोक, परलोकके सकल भोगकी तृष्णासे रहित वीतराग संन्यासी जिस मोक्षको प्राप्त होते हैं, उस मोक्षको तप्तचक्रको धारण करनेवालाभी प्राप्त होता है॥ जैसे संन्यासियोंको संन्यासाश्रम मुक्तिका

---

१ स्वात्मनि स्थापितवानेव नतु परिहृतवान्। २ षो अंतकर्मणि, अंतकरं बाह्याभ्यंतरबाधकजातं, शत्रुजातं पापजातं चेति यावत्। ३ नानाप्रकारम् ४ अभिभवति, हिनस्तीति यावत धृश, प्रसहने। प्रसहनमभिभवः। ५ ततो हेतोः ६ जनाः॥

साधन है, वैसे तप्तचक्रधारण करनेवाले पुरुषोंकोभी तप्त चक्रका धारण मोक्षका साधन है, ॥ फिर सामवेदमें और ऋग्वेदमेंभी कहा है कि–

चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥

अर्थ–पंचाग्निविद्यामें पंचमी आहुतिमें शरीरके आरंभ वास्ते प्रवर्ते हुए जो पंच भूत सूक्ष्म हैं, उनमें जलका अधिक भाग होनेसे इस शरीरको जलका उर्मि (तरंग रूप) कहा है। ऐसा जलका तरंगरूप इस शरीरको (सच-मानः[1]) सेवन करता हुआ और संसार दुःखसे निवृत्तिकी इच्छावाला और (गोविंदुः द्रप्सः) गोविंदका अंशरूप यह जीव । (गोविंदुः आयुधानि बिभ्रत्) गोविंदके शंख चक्रादि आयुधोंको धारण करता हुआ अपने आत्माको संसारसे उद्धार करनेको समर्थ होता है। और अपने संबन्धी शिष्यादिकोंकोभी (विभृत्वा) शंख और चक्रका धारण कराके उनकोभी संसार दुःखसे उद्धार करने समर्थ होता है। और (चमूषत्[2]) सभामें बैठता है। अन्तकालमें जब इस जीवको विष्णुके पार्षद लेने आते हैं तब यह जीव नित्यसूरि जो विष्व-क्सेन गरुडादिक हैं उन पार्षदोंकी सभामें बैठता है (श्येनः[3]) अत्यंत श्रेष्ठ वैकुंठ लोकके प्रति अर्चिमार्ग करके जाता है। (महिषः[4]) अतिशय करके महान् होता है, देव मनुष्यों करके पूजित होता है॥ ऐसा यह जीव (तुरीयं धाम विवक्ति) कर्मवश्य जीवोंको प्राप्त होनेका संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्धरूप तीन स्थानोंसे परे चौथा वासुदेवको प्राप्त होता है। इस रीतिसे संसारकी निवृत्तिपूर्वक परमपदकी प्राप्तिकी कामनावाला पुरुष गोविंदके शंखचक्रादि आयुधोंका धारण करे। ऐसा विधि इस श्रुतिने कहा है इति॥

प्रश्न–ब्राह्मण कौनसी भुजापर चक्रको धारण करे, और कौनसी भुजापर शंखको धारण करे, ऐसा प्रकार कोई वेदके मंत्रमें कहा है कि नहीं ?

उत्तर–अथर्वणकी महोपनिषदके अंतर्गत ब्रह्मसूक्तमें कहा है कि–

दक्षिणे तु भुजे विप्रो बिभृयाद्वै सुदर्शनम् ।
सव्ये तु शंखं बिभृयादिति ब्रह्मविदो विदुः ॥

---

१ सच सेवने सेवने च। २ चम्वां नित्यसूरिपरिषदि सीदतीति चमूषत्। ३ शंसनीयं गच्छतीति श्येनः। ४ मह पूजायां मह्यते इति महिषः।

अर्थ–ब्राह्मण सुदर्शन चक्रको दक्षिण भुजामेंही धारण करे। और श्रीपांचजन्य शंखको वाम भुजामेंही धारण करे। ऐसे ब्रह्मविद् जानते हैं, अर्थात् वेदकी दूसरी शाखावालेभी शंखचक्रके धारण करनेकी विधिको ऐसेही जानते हैं ॥ और भारद्वाजसंहिताके द्वितीय अध्यायमें कहा है कि–

केचित्तु चक्रशंखौ द्वौ प्रतप्तौ बाहुमूलयोः।
धारयंति महात्मानश्चक्रमेकं तु वा परे॥

अर्थ–कितनेक ऋषिलोग अग्नितप्त शंख और चक्र और दोनोंको अपने बाहुमूलमें धारण करते हैं, और दूसरे कितनेक महात्मा एक चक्रकोही धारण करते हैं. इसमें इतनाही कारण है कि, जैसे राजाके चपडास आदिक राजचिह्नोंको धारण करनेवाला पुरुषही राजाका भृत्य कहा जाता है जिस पुरुषके चपडास आदिक राजचिह्न नहीं हैं, उसको राजाभी अपना भृत्य करके नहीं मानता है वैसे विष्णुके आयुध चक्र, शंख, गदा, पद्म, धनुष खड्ग आदिको धारण करनेवाला पुरुषही विष्णुका दास कहा जाता है, और विष्णुभी उसको अपना दास करके मानते हैं दूसरेको नहीं मानते हैं॥ इस कारणसे चक्रको अथवा शंखको अथवा शंख चक्र इन दोनोंको अथवा शंख, चक्र, गदा, पद्म, इन चारोंको धारण करे॥ इसमें ऐसा नियम नहीं है कि, एकके धारण करनेसे विष्णुका दास नहीं होता है,किंतु एकके धारण करनेसेभी विष्णुका दास कहा जाता है और बहुतके धारणसेभी विष्णुकाही दास कहा जाता है। और एक दोके धारण करनेसे थोडा फल होता है और बहुतके धारणसे बहुत फल होता है, ऐसाभी नियम नहीं है परंतु इतनाही तात्पर्य है कि, जबतक विष्णुके शंख चक्रादिक आयुधोंको यह प्राणी धारण नहीं करता है, तबतक विष्णुका यह दास है ऐसा निश्चय नहीं होता है। सो विष्णुतत्त्वसंहिताके अंतके पटलमें कहा है कि–

चक्रादिधारणं पुंसां परसंबन्धवेदनम्।
पातिव्रत्यनिमित्तं हि वलयादिविभूषणम्॥

अर्थ–जैसे स्त्रीका चूडी आदिक भूषण सौभाग्यको जनानेवाला है, अर्थात् जिस स्त्रीके हाथोंमें चूडी पहिरी हुई होती है उस स्त्रीकोही धनीवाली सुहागिनी कहते हैं, और जिस स्त्रीके हाथोंमें चूड़ी नहीं होती हैं उस स्त्रीको विना धनीकी विधवा कहते हैं॥

वैसे शंख चक्रादिकका धारण भी भगवतके संबंधको जनानेवाला है अर्थात् इस पुरुषने विष्णुके शंख चक्र धारण किया है इस कारणसे यह पुरुष विष्णुका है दूसरे किसीका नहीं है, ऐसे संबन्धको जनानेवाला है ॥ और जैसे धनी विनाके छोटे वृक्षके विरवाको बकरी, ऊंट आदिक जनावर खाजाते हैं और उस वृक्षका कोई धणी जो हो तो इस वृक्षको बकरी ऊंट आदिक पशु नहीं खासकते हैं तैसे शंख चक्रको जो कोई प्राणी धारण करता है उस पुरुषके धणी विष्णुभगवान् हो जाते हैं, इसलिये उस पुरुषको यम आदिक देव पीडा नहीं कर सकते हैं । इति ॥

प्रश्न–विष्णुके शंख, चक्र, गदा, पद्म, खड्ग, धनुष, बाण, छूरी, पाश आदिक अनेक आयुध हैं उन सबको अथवा इनमेंसे अपनी इच्छा जो हो उसको धारण करनेमें कुछ बाध है कि नहीं ?

उत्तर–जो भगवतके अधिक आयुधोंको धारण करनेकी शक्ति हो तो पंच आयुधोंसे अधिक धारण न करे । ऐसा पद्मपुराणमें कहा है कि–

शंखचक्रगदाखड्गशार्ङ्गादन्यैर्हरेरपि ।
न लक्षणैर्दहेदङ्गं नान्यद्दग्धोऽर्हति क्रियाम् ॥
ललाटे तु गदा धार्या मूर्ध्नि चापं ततः परम् ।
नंदकं चैव हृन्मध्ये शंखचक्रे भुजद्वये ॥

अर्थ–शंख, चक्र, गदा, खड्ग और धनुष इन पंच आयुधोंसे अधिक हरिकेभी दूसरे आयुध हैं तौभी उन करके अंगको अंकन न करे । जो प्राणी इन पंच आयुधोंसे अधिक दूसरे आयुधोंसे चिह्नित होता है वह क्रियाके योग्य नहीं रहता है ॥ इस कारणसे विष्णुकेभी दूसरे आयुधोंको न धारण करे । किंतु इन पांच आयुधोंकोंही धारण करे ॥

प्रश्न–इन पंच आयुधोंको कौन कौनसे स्थानोंमें धारण करना ?

उत्तर–ललाटमें गदा, मस्तकमें धनुष, हृदयमें खड्ग और वाम दक्षिण भुजामें शंख और चक्रका धारण करे । इस रीतिसे अधिकसे अधिक पंच आयुधोंकाही धारण करना कहा है । इन पांचोंमेंसे थोडे धारण करे तो दोष नहीं और इन पांचसे अधिक धारण करे तो दोष है ॥

प्रश्न–ब्राह्मण लोक ऐसा कहते हैं कि, जिस ब्राह्मणके शरीरमें अग्निकरके दग्ध किया हुआ दीखता हो उस ब्राह्मणको यज्ञ योगादि वैदिक कर्ममें

नहीं लेना चाहिये तब दग्ध शरीरवाला वह ब्राह्मण अपवित्र होता है यज्ञादि-कार्यमें उसको लेनेका शास्त्रने मनाई किया है ॥

उत्तर–उन ब्राह्मणोंका यह कहना सत्य है, परंतु जिस ब्राह्मणने सन्निपात ज्वर आदिकोंके कारणसे ढांम लिया होय, अथवा विष्णुके शंख चक्रादि आयुधोंका त्याग करके दूसरे देवोंके आयुधोंसे अपना शरीरको अंकित कराया हो उस ब्राह्मणको यज्ञादिक वैदिक कर्ममें वरना नहीं चाहिये ॥ ऐसे शास्त्र कहता है, कुछ विष्णुके शंख चक्रादि आयुधोंको धारण करनेकी शास्त्रमें मनाई नहीं है । सो पद्मपुराण कहता है कि–

प्रतपेच्छंखचक्राभ्यां हुत्वा होमं विधानतः ।
अन्यैर्न दाहयेद्गात्रं ब्राह्मणो हरिलांछनात् ॥

अर्थ–शास्त्रकी विधिसे होम करके पीछे अग्नितप्त शंख और चक्र करके अपना शरीरको तप्त करे । और हरिके शंख, चक्र, गदा, खड्ग और धनुष इन पंच आयुधोंके विना दूसरे आयुधोंसे ब्राह्मण अपने गात्रको तप्त न करे ॥

प्रश्न–शरीरमें अग्निका दाग न लेना चाहिये ऐसे कहनेवाले ब्राह्मण विष्णुकेभी शंखचक्रादिकोंको न धारण करे तो क्या दोष है ?

उत्तर–ब्राह्मणादिक हर कोई जातिवाला पुरुष जो विष्णुके तप्त शंख चक्रका धारण न करे तो उसको मनुष्यभी नहीं कहना और देवभी नहीं कहना किंतु दैत्य कहना चाहिये ऐसा बृहद्ब्रह्मसंहितामें लिखा है कि–

अनायुधासो असुरा न देवा इति वै श्रुतिः ।
इहामुत्र च तेषां वा आसुरो भाव उच्यते ।
आसुरो विद्यते भावो यावदेषां द्विजन्मनाम् ॥
न तावदधिकारोस्ति ममाराधनकर्मणि ।
नाधिकारोऽर्चने यावन्मोक्षाशा विद्यते कुतः ॥

अर्थ–जो पुरुष अनायुध अर्थात् भगवत्के तप्त शंख चक्रादि आयुधोंके धारण करनेसे रहित हैं, वे पुरुष असुर हैं, देव नहीं हैं । ऐसे श्रुति कहती है । जो पुरुष जबतक तप्त शंख चक्रादिकोंका धारण नहीं करते हैं, तबतक उन पुरुषोंका इस लोक और परलोकमें असुरभाव कहा है । और जबतक इन ब्राह्मणादि द्विजोंका असुरभाव रहता है, तबतक उनका मेरे आराधन कर्ममें अधि-

कार नहीं है, और जबतक मेरे अर्चनमें अधिकार नहीं है तबतक मोक्षकी आशाभी कहांसे होय ? ॥

प्रश्न–ब्राह्मणोंकोही शंख चक्रका धारण करना कहा है कि, दूसरे वर्णों-कोभी तप्त शंख चक्रका धारण करना शास्त्रमें कहा है ?

उत्तर–भारद्वाजसंहितामें ऐसा लिखा है कि–

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो नारी तथेतरः ।
चक्राद्यैरंकयेद्गात्रमात्मीयस्याखिलस्य च ॥

अर्थ–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, नारी तथा दूसरे संकीर्णादि जाति अपने शरीरको तप्तचक्रादि आयुधोंकरके अंकित करे, तथा दूसरे सबको अपने घरमें शंख चक्रादिकों करके अंकित करे । परंतु शंख चक्रादिकोंके चिह्नोंसे रहित कोईकोभी रहने नहीं दे क्योंकि पापोंकी निवृत्ति तथा भगवतके एकांतिपने और सर्व कर्मोंकी सिद्धिके अर्थ चक्रादि चिह्नोंका धारण करना योग्य है ॥

प्रश्न–कौनसी विधिसे कौनसे समय शंख चक्रादि आयुधोंको धारण करना चाहिये ?

उत्तर--पद्मपुराणमें ऐसा कहा है कि–

द्वादश्यां श्रवणे वापि कस्मिंश्चिद्वैष्णवे दिने ।
शयन्यां चैव बोधिन्यां चक्रतीर्थे तथैव च ।
शंखचक्रविधानेन वह्निपूतो भवेन्नरः ॥

अर्थ–द्वादशी, श्रवण नक्षत्रके दिन, रामनवमी, जन्माष्टमी, नृसिंहचतुर्दशी आदिक हरकोई विष्णुसंबंधी दिवसमें आषाढ शुद्ध शयनी एकादशीके दिन, कार्तिक शुद्ध एकादशीके दिन, वा चक्रतीर्थमें शंख चक्रके विधान करके, अग्नि-तप्त शंख चक्रादिकोंका धारण करे ॥

तप्तचक्रसंस्कारविधि ।

सुवर्णके शंखचक्र करावे अथवा रूपाके वा ताम्रके वा कांसाके अथवा लोहेके शंख चक्र करावे ॥ उसमें सुदर्शन चक्रको द्वादश आरा षट् कोण और त्रिवलय सहित करावे । पीछे भगवतका षोडशोपचारसे पूजन करके भगवा-न्के आगे शंख चक्रको पंचामृतसे स्नान कराय " यदक्षरे परे व्योमन् । शन्नो मित्रः शंवरुणः " इन दो वेदकी ऋचाओंका उच्चारण कर शंख चक्रका

पूजन करे और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिकसे शंखचक्रका अर्चनकर पीछे कुशके आसन पर गुरु बैठकर स्वगृह्योक्तविधिसे अग्निस्थापन कर उसमें पुरुषसूक्त करके अथवा राममन्त्र करके वा मन्त्रद्वय करके अग्निमें घृतकी षोडश आहुति देवे । अधिक आहुति देना हो तो एक हजार आठ आहुति देवे वा एकसौ आठ देवे ॥ और "वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम" इस मन्त्रको पढकर अग्निके आगे पुरुषसूक्तसे भगवानकी स्तुति कर पीछे–

सुदर्शन महाज्वाल कोटिसूर्यसमप्रभ ।
अज्ञानांधस्य मे देव विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय ॥

इस मन्त्रको पढकर अग्निमें सुदर्शन चक्रको तप्त करे । उसके पीछे–

पाञ्चजन्य निजध्वानध्वस्तपातकसञ्चय ।
पाहि मां पापिनं घोरसंसारार्णवपातिनम् ॥

इस मन्त्रको पढकर पांचजन्य शंखको अग्निमें तप्त करे । पीछे–

सुदर्शनाय विद्महे महाज्वालाय धीमहि ।
तन्नश्चक्रः प्रचोदयात् ॥

इस सुदर्शनगायत्रीको गुरु पढकर शिष्यके दक्षिण बाहु मूलमें अग्नितप्त सुदर्शनसे अंकित करे । पीछे–

पाञ्चजन्याय विद्महे पावमानाय धीमहि ।
तन्नः शंखः प्रचोदयात् ॥

इस पांचजन्य गायत्रीको गुरु पढके शंखको शिष्यके वामबाहुके मूलमें अंकित करे ॥

और गरुडसंहितामें शंखचक्र धारण करनेकी विधि गरुडको भगवानने कही है कि, हे गरुड ! तू श्रुति स्मृतिरूपी जगत्का उपकारक ऐसा मेरा वचनको सावधान हो सुन ॥ सर्व कर्मोंका अधिकार पवित्र पुरुषकोही कहा है । जो पुरुष मेरे आयुधोंको धारण करता है उस पुरुषकाही नियम करके पवित्रता होती है । और मेरे शंखचक्रादि आयुधोंके धारण करनेसे हजार अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है, तथा दशहजार वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त

१--२यह दोमन्त्र खिलश्रुति है. जैसे यज्ञोपवीतधारणमंत्र.

होता है ॥ इसलिये शख चक्रको पंचामृतसे स्नान कराय गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिक उपचारोंसे भक्तिपूर्वक अर्चन करके ".सुदर्शन नमस्तेस्तु पांचजन्य नमोस्तु ते" इस मंत्रसे शंख चक्रको वारंवार नमस्कार करे ॥ उसके पीछे अग्निका पूजन करके वेदादि मंत्रोंसे अग्निमें षोडश आहुतिका होम कर उस अग्निमें चक्र और पांचजन्यको स्थापन करे। पीछे अग्निमेंसे तप्तचक्रको लेकर-

उच्चारयन्निमं मंत्रं हृदये मां विचिंतयेत् ॥
सुदर्शन महाज्वाल कोटिसूर्यसमप्रभ ।
अज्ञानान्धस्य मे देव विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय ।
इमं मंत्रं समुच्चार्य दक्षिणं बाहुमंकयेत् ॥

फिर 'सुदर्शन महाज्वाल' इस मन्त्रको उच्चारण करके गुरु, अपने शिष्यके दक्षिण बाहु मूलमें अंकित करे। फिर-

पांचजन्य निजध्वानध्वस्तपातकसञ्चय ।
पाहि मां पापिनं घोरसंसारार्णवपातिनम् ।
इमं मंत्रं समुच्चार्य दहेत्सव्यभुजं तथा ॥

इस मंत्रको उच्चारण करके शिष्यका वाम भुजामूलमें अङ्कन करे ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे गरुड ! इस प्रकारके विधिसे शंख चक्रका जो धारण करता है वह पुरुष तीनों लोकमें संदेहसे रहित मेरा भक्त प्रसिद्ध होता है अर्थात् यह विष्णुका भक्त है ऐसा जानकर तीनों लोकमें उसको कोईभी नहीं छेडता है न अटकावताहै ॥ हे गरुड ! शंख चक्रके चिह्नवाले पुरुषको जो कोई दान देता है उसको अनंतगुण फलकी प्राप्ति होती है । और जिस किसीके शरीरमें सुदर्शन दीखता है उसको तैंतीस कोटि देव नमस्कार करते हैं ॥ और वह शंख चक्रको धारण करनेवाला अत्यंत शुद्धिको पाता है तथा हजार अश्वमेध यज्ञ और दश हजार वाजपेययज्ञके फलको और अवधिसे रहित तपके फलको पाता है तथा निःशंक भगवत् भक्तपना प्राप्त होता है, और उसको सर्व देव वन्दना करते हैं और वह पुरुष सर्व कार्यमें अधिकारको पाता है इति ॥

प्रश्न-इस जगत्में प्रथम किसने शंखचक्र धारण किये थे, और नैमिषारण्य

क्षेत्रमें अठाशी हजार ऋषिमंडल इकट्ठे हुये थे, उनमें कौनसे कौनसे ऋषि इस रामानुजसिद्धांतके शंखचक्ररूपी ताप संस्कारको धारण किये थे ?

उत्तर–पद्मपुराणके उत्तर खंडमें वसिष्ठमुनिसे दिलीप राजा ऐसेही प्रश्न किया कि–

भगवन्भवता प्रोक्ताः सर्वधर्मा विशेषतः ।
वर्णाश्रमयुता धर्मा नित्यनैमित्तिकक्रियाः ॥
राजधर्माश्च यज्ञाश्च तीर्थदानव्रतादिकम् ।
श्रुता मुने मया श्रेष्ठा अक्षयस्वर्गभोगदाः ॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि मोक्षमार्गं सनातनम् ।

अर्थ–हे भगवन् ! आप मेरेको विशेष करके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णके धर्म और गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी इन चार आश्रमोंके धर्मभी कहे हैं । तथा नित्य क्रिया और नैमित्त क्रियाभी आपने कही । तथा राजधर्म यज्ञ, तीर्थ दान, व्रत आदिक सर्व, हे मुने ! मैंने आपके मुखसे सुने हैं ॥ परंतु वे सर्व अक्षय स्वर्गभोगको देनेवाले हैं ॥ इस कारण अब मैं सनातन मोक्ष मार्गको सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ ऐसा दिलीपका वचनको सुनकर वासिष्ठ बोले कि–

साधु पृष्टं त्वया राजन्सर्वलोकहितैषिणा ।
वक्ष्यामि परमं गुह्यमेकं संसारतारकम् ॥

अर्थ–हे राजन् ! सर्व लोकके हित (कल्याण) की इच्छा रक्खनेवाला तुमने अच्छा पूंछा, परम गुह्य संसारका मुख्य तारकको मैं कहता हूं । पीछे वसिष्ठ बोले कि, हे राजन् ! ब्रह्माने ऐसेही भगवान्को पूछा, तब भगवान् ब्रह्माको बोले कि हे ब्रह्मन् ! मेरे शंख चक्रको विधिसे अग्निमें तप्त करके धारण किये विना मेरे वैकुंठलोककी प्राप्ति नहीं होती है ॥

एवमुक्त्वा विधातारं देवदेवो हरिः पिता ।
स्वचक्रेणांकयित्वा तं तस्य मन्त्रं ददौ स्वयम् ॥

अर्थ–देवोंके देव और ब्रह्माके पिता हरि विधाताके प्राति इस प्रकार कहकर पीछे अपने सुदर्शन चक्र करके ब्रह्माको अंकित कर पीछे उसको

मन्त्रका उपदेश दिये ॥ यह नारायण और ब्रह्माका संवाद है । इस संवादको मैं तुमको कहा । और इस संवादको ही नैमिषारण्यक्षेत्रमें अठाशी हजार ऋषिमंडलको नारद कहते हैं कि–

सर्वलोकेश्वरो देवो ब्रह्मा मम पिता प्रभुः ।
ममापि विधिवन्मन्त्रं प्रददौ मुनिसत्तमाः ॥
तस्माद्यूयं मुनिश्रेष्ठा धारयित्वा सुदर्शनम् ।
नारायणपदद्वन्द्वं गच्छध्वं शरणं द्विजाः ॥
इत्युक्त्वा मुनयः सर्वे नारदेन महर्षिणा ।
द्वयाधिकारिणो भूत्वा याता विष्णोः परं पदम् ॥

अर्थ–हे मुनिसत्तमाः ! जैसे नारायण हमारे पिता ब्रह्माको विधिसे शंख चक्रसे अंकित करके मन्त्र दियेथे, वैसे लोकके ईश्वर और प्रभु हमारे पिता ब्रह्मदेव, मेरेकोभी विधिसे शंख चक्रके लांछन पूर्वक मन्त्र दिये । इस प्रकारसे ब्रह्माको नारायणने तप्त शंख चक्र लगाये, और ब्रह्माने (मैं) नारदको तप्त शंख चक्र लगाये । इस कारण हे मुनिश्रेष्ठाः ! तुमभी मेरेसे सुदर्शनको धारण करके, हे द्विजाः ! नारायणके दोनों चरणोंके शरणको प्राप्त हो जाओ । इस प्रकार महर्षि नारदने सर्वर्षियोंको जब कहा वे सर्व ऋषि तप्त शंख चक्रके धारण पूर्वक द्वयमंत्रके अधिकारी होकर विष्णुके परम पदको गये ॥ इस रीतिसे—

शौनकादिमहर्षीणां नैमिषारण्यवासिनाम् ।
नारदः प्रददौ मन्त्रं प्रपत्तिं शरणागतिम् ॥

अर्थ--नैमिषारण्य क्षेत्रके निवासी महर्षियोंको नारद मुनि तप्त शंख चक्रके संस्कारपूर्वक मंत्र दे और नारायणकी शरणागतिको देते भये ॥

तस्मात्त्वमपि राजर्षे विष्णुसायुज्यमिच्छसि ।
दीक्षामार्गविधानेन धारयित्वा सुदर्शनम् ॥
नारायणपदद्वंद्वं तदेकं शरणं व्रज ॥

अर्थ--हे राजर्षे दिलीप ! इस कारण तू भी विष्णुकी सायुज्य मुक्तिको इच्छाकरनेसे दीक्षाके विधान करके तप्तशंखचक्रका धारण करके एक नारायणपदयुगलके शरणको प्राप्त हो जा ॥ इति ॥

प्रश्न–ब्रह्माको नारायणने तापादि संस्कार किये. और ब्रह्माने नारदको और नारदने नैमिषारण्यमें अठाशी सहस्र ऋषियोंको तापादि संस्कार करके मंत्रका उपदेश किया और सबको श्रीवैष्णव बना दिये। इस रीतिसे पाद्मोत्तर खंडका प्रमाण देकर हमारा संशय आपने निवृत्त किया, परंतु अब तैंतीस कोटि देव बाकी रहे। उन्होंने तप्तशंखचक्रका धारण किया था कि नहीं ?

उत्तर–स्कंदपुराणमें ऐसा लिखा है। सनत्कुमारको पृथुराजाने पूछा कि–

सुदर्शनस्य माहात्म्यं वैष्णवानां महामुने ।
वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ परं कौतूहलं हि मे ॥

हे महामुने ! सुदर्शन चक्रका और वैष्णवोंका माहात्म्य कहनेको आप योग्य हो। हे सर्वज्ञ ! मेरेको सुननेका बहुत उत्साह है ॥ ऐसा पृथुराजाका वचन सुनकर सनत्कुमार बोले कि--

सुदर्शनो नाम राजा शत्रुभिश्च पराजितः ।
हृतराज्यः क्षीणबलो भरद्वाजमुवाच ह ॥

हे पृथो ! सुदर्शन नामा एक राजा था, उस राजाको शत्रुओंने जीतकर राज्य ले लिया। तब राज्य और बल करके क्षीण हो वह सुदर्शन राजा भरद्वाज ऋषिको बोला कि–

ब्रूहि विप्र जयो मह्यमीदृशस्य भवेत्कथम् ।

हे भरद्वाज विप्र ! ऐसा राज्य रहित हमको जय किस प्रकारसे होगा? सो आप कहो ॥ भरद्वाज बोले कि--

वृत्रेण निर्जिताः सर्वे पुरा देवाः सवासवाः ।
हृतं राज्यं बलाद्दैत्यैर्देवाः सर्वे जनेश्वर ॥
ब्रह्मादयोऽग्नयः सर्वे शंकरप्रमुखास्तथा ।
शरण्यं शरणं जग्मुर्नारायणमनामयम् ॥

अर्थ--हे जनेश्वर सुदर्शन ! पूर्व कालमें एक वृत्र दैत्य प्रकट हुआथा। उसने इंद्रादिक सर्व देवोंको जीत बलात्कारसे इंद्रका राज्यभी हर लिया। तब ब्रह्मा, अग्नि, शंकर, इंद्र आदिक सब देव श्रीनारायणके शरण गये ॥ और बोले कि–

त्राहि त्राहि जगन्नाथ वृत्रेण निहता वयम् ॥

हे जनार्दन ! वृत्रासुरसे मारे हुए हमलोग तुमारे शरण आये हैं, आप हमारा रक्षण करो तीन लोकका पति वृत्रासुर होकर बैठा है, जिस प्रकारसे हमारा बाध नहीं होवे, वैसे करो ॥ ऐसा देवोंका वचन सुनकर नारायण बोले, कि--

ममायुधैः स्वदेहांस्तु लांछयित्वा सुरोत्तमाः ।
युध्यतां समरे दैत्यैर्मत्प्रसादेन भूयसा ॥
ममायुधांकितैर्देहैर्भवतां सुरशत्रवः ।
क्षयं यास्यंति समरेष्वनायासेन लीलया ॥

अर्थ--हे सुरोत्तमाः ! मेरे आयुध शंख चक्रादिकोंसे अपने शरीरको चिह्न करके दैत्योंके साथ युद्ध करो मेरी अत्यंत कृपा करके और मेरे आयुधोंसे चिह्नित तुम्हारे शरीरों करके तुम्हारे शत्रु सहजमें लीलासेही नाशको प्राप्त हो जायंगे ॥

एवमुक्ते प्रणेमुस्तं ब्रह्मरुद्रपुरोगमाः ।
तप्तचक्राद्यायुधैस्ते चिह्नं देहेष्वतन्द्रिताः ॥
धारयंतो मुदा युक्ता वृत्रस्य जयकांक्षिणः ।
हत्वा वृत्रं गता देवाः स्वस्थानं च मुदान्विताः ॥

अर्थ--इस प्रकार श्रीनारायण कहातेही वे ब्रह्मा रुद्र इंद्र वरुण कुबेर आदिक देव, श्रीनारायणको साष्टांग प्रणाम कर सावधान हो सब देव अपने देहोंमे अग्नितप्त शंख चक्रादिक आयुधोंके चिह्नको धारण करके निर्भयपनेसे आनंदयुक्त हो वृत्रासुरको जीतनेकी इच्छा कर उनके साथ युद्ध कर वृत्रासुरको मार अपने स्वर्गलोकमें रहने लगे ॥

ततःप्रभृति ब्रह्माद्याः सर्वे देवाः सवासवाः ।
ऋषयः सिद्धगंधर्वाः पाताले पन्नगेश्वराः ॥
वह्नौ तप्तं हरेश्चक्रं शंखं चैव विधानतः ।
धारयंतो मुदा युक्ताः कर्म चक्रुरतंद्रिताः ।

अर्थ–उस दिनसे ब्रह्मा आदिको लेकर इंद्र सहित सब तैंतीस कोटि देव और अठाशी हजार ऋषि तथा सिद्धलोक, गंधर्वलोक और पातालमें तमाम नागलोग इत्यादिक सब कोई अग्निमें शंख और चक्रको विधिसे गरम करके धारण करते हुए आनंदयुक्त होके कर्मोंको करने लगे ॥

तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र कुरु कृष्णायुधांकितम् ।
स्वदेहं सर्वसंग्रामेष्वजेयस्त्वं भविष्यसि ॥

अर्थ–हे राजेंद्र! इस कारणसे तूभी कृष्ण भगवानके शंख चक्रादि आयुधोंसे अपने शरीरको अंकित कर सर्व संग्रामोंमें अजेय हो जायगा, अर्थात् कोईसेभी जीतनेमें नहीं आवेगा ॥ इस प्रकारसे पृथुको सनत्कुमार और सुदर्शन राजाको भरद्वाज शंख चक्र धारण करनेका उपदेश किये ॥ और इस प्रकारसेही वेदके शतपथब्राह्मणमें लिखा है कि गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ, कश्यप तथा स्वायंभु मनु आदि चौदह मनु, इन सबने अग्निमें शंख चक्र तप्त करके धारण किये थे ॥

प्रश्न–शंकराचार्यके मतवाले शिवभक्त शंख चक्रका धारण करनेमें द्वेष क्यों करते हैं ?

उत्तर–शंकर मतवाले श्रुति स्मृतियोंका विचार नहीं करते हैं । केवल अपने मतके आग्रह और आसक्ति करके शंखचक्रोंके धारण करनेमें मिथ्या द्वेष करते हैं। वे अपने धर्ममें राग रक्खते हैं और वैष्णव धर्ममें द्वेष रक्खते हैं। इतनाही निंदाका कारण है ॥ और शंकरमतवालेभी ज्ञानी पुरुष तो शंख चक्रका धारण करना अंगीकार करते हैं परंतु आग्रही और अज्ञानी विष्णुका द्रोह करते हैं । क्योंकि द्वारकामें शंकर मठकी गादीके आचार्योंने शंखचक्रके धारण करनेमें आज्ञा की हुई है ॥ आनंदवन संन्यासिने रामार्चनचंद्रिका नामका ग्रंथ बनाया है । उस ग्रंथके पंचम पटलमें शंख चक्र धारण करनेमें श्रुतिस्मृतियोंके अनेक प्रमाण दिये हुए हैं ॥ तथा दूसरा अच्युताश्रम संन्यासिभी अपने किये हुए रामनाम माहात्म्य नामके ग्रंथमें षष्ठप्रकरणमें शंख चक्रके धारण करनेमें अनेक श्रुति स्मृतियोंके प्रमाण बताये हैं ॥ इस रीतिसे शंकर मतके महान् प्रसिद्ध आचार्य आनंदवन और अच्युताश्रम इन दोनोंने रामार्चनचंद्रिकामें तथा रामनाममाहात्म्यमें शंख चक्रका धारण करना स्वीकार किया है, तौ इनके शिष्य कबूल नहीं करे तो उसमें हमारेको क्या हानि है ? उलटा अपने आचार्यका मतको न माननेवाले उन शिष्योंकोही महान् दोष है ॥

प्रश्न–रामार्चनचंद्रिकाग्रंथमें तथा रामनाममाहात्म्यमें किस प्रकारसे आनंदवन और अच्युताश्रमने स्वीकार किया है ?

उत्तर–उन्होंने अपने ग्रंथोंमें ऐसा लिखा है कि–

शौनकोक्तप्रकारेण तप्तचक्रादिधारणम् ।
कर्तव्यं वैष्णवैः सर्वैः संप्रदायानुरोधतः ॥

अर्थ–शौनकने बनाया हुआ प्रकार करके संप्रदायानुसार अग्नि तप्त चक्रादिकोंका धारण सर्व वैष्णवोंको करना योग्य है ॥ इस प्रकारसे रामार्चनचंद्रिकावालेने अपनी कारिकामें कहकर पीछे उसके प्रमाणमें इस रीतिसे श्रुति स्मृतियोंका प्रमाण लिखा है कि " अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते " यह श्रुति तीनों वेदमें है । इसका अर्थ पीछे लिख आये हैं ॥

स होवाच याज्ञवल्क्यः तस्मात्पुमानात्महिताय प्रेम्णा
हरिं भजेत् । सुश्लोकमौलेर्वर्माण्यग्निना संदधत ॥

अर्थ–वह याज्ञवल्क्य ऋषि कहने लगे कि, इसलिये पुरुष अपने आत्माके हितके वास्ते प्रेम करके भगवानको भजे । और सुश्लोक शिरोमणि परमात्माके शंख चक्रादि आयुधोंको अग्निमें गरम करके धारण करे. इति यजुर्वेदश्रुतिः ॥ फिर ऋग्वेद सामवेदका प्रमाण लिखता हूँ कि " प्रते विष्णो अब्जचक्रे " इस श्रुतिकाभी अर्थ पीछे लिख आये हैं ॥ और अथर्वण वेदकी श्रुतिका प्रमाण लिखता हूँ कि–

उरुक्रमस्य चिह्नैरंकिता लोके सुभगा भवाम ॥

अर्थ–त्रिविक्रम भगवान्के शंख चक्रादि चिन्होंसे अंकित होकर इस लोक परलोकमें हम बडे भाग्यवान् हो जांयगे ॥ फिर पद्मस्मृतिका प्रमाण लिखता हूँ कि–

अग्निहोत्रं यथा नित्यं वेदस्याध्ययनं यथा ।
ब्राह्मणस्य तथैवेदं तप्तचक्रादिधारणम् ॥

अर्थ–जैसे ब्राह्मणको अग्निहोत्र और वेदका पढना नित्य है वैसे तप्त चक्रादिकोंका धारण करनाभी नित्य है ॥ इस रीतिसे सैकडों श्रुति स्मृतियोंका प्रमाण देकर शंकर मतवाले महात्मा आनंदवन और अच्युताश्रमने शंखचक्र

धारण करनेका सिद्धांत अपने ग्रंथोंमें लिख दिया है। और दूसरेभी ग्रंथोंमें इनके परंपरावालोंने श्रुति स्मृति पुराणादिकोंके वचनों करके शंख चक्रके चिन्ह स्थापन किये हैं॥

प्रश्न–शिवभक्तोंको शिवपुराण बहुत प्रिय रहता है उस पुराणमें तप्त शंख-चक्रादिकोंके धारण करना लिखा हो तो शिवभक्तकोभी शंखचक्रका धारण अंगीकार करना पडेगा॥

उत्तर–शिवपुराणके मतधारी आचार्योंने शंख चक्रका धारण करना स्वीकार किया है तो दूसरे क्यों नहीं करेंगे? और शिवनेभी शंखचक्रका धारण किया है तो उसके भक्त क्यों नहीं करेंगे॥ और शिवपुराणमेंभी शंखचक्रका धारण करना लिखा है कि–

श्रावका वासुदेवस्य तथैव नटनर्त्तकाः।
अन्ये च वैष्णवास्तत्र सर्वे चक्रेण लांछिताः॥
सुदर्शनेन यस्याङ्गं लांछितं तु भवेत्सदा।
देहे तस्य वसेन्नित्यं श्रिया युक्तः स्वयं हरिः॥

अर्थ–वासुदेव भगवान्‌के सेवन नट, नर्त्तक और दूसरे वैष्णव वे सब तहां चक्र करके लांछित हैं जिस पुरुषका शरीर सदा सुदर्शन चक्र करके लांछित होता है उस पुरुषके देहमें नित्य लक्ष्मीसहित हरि आप निवास करते हैं॥ और शिवने पार्वतीको ऐसा कहा है कि–

यज्ञो दानं तपो होमो भोजनं पितृतर्पणम्।
चक्रलांछनहीनस्य विप्रस्य विफलं भवेत्॥

अर्थ–यज्ञ, दान, तप, होम, भोजन, पितृतर्पण इत्यादिक कर्म चक्रके चिन्हसे रहित ब्राह्मण करे तो निष्फल हो जाते हैं॥

प्रश्न–ऐसा शिवका वचनको उल्लंघन करके शिवके भक्त वैष्णवोंकी निंदा करते हैं, उनको शिवजी क्या कहते हैं?

उत्तर–शिव ऐसा कहते हैं कि, हे पार्वति! शंखचक्र ऊर्ध्वपुंड्रादिकोंको धारण करनेवालेकी निंदा जो पुरुष करता है सो महा चांडाल है वह रौरव नरकमें जायगा इति॥

प्रश्न–शिवने कौन कौनको महापापी गिने हैं?

उत्तर—ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वंगनागमः ।
चक्रांकितस्य निंदा च पंचैते त्वतिपातकाः ॥
यः पुत्रः पितरं द्वेष्टि तं विद्यादन्यरेतसम् ।
चक्रांकितं तु यो द्वेष्टि तं विद्यादंत्यरेतसम् ॥

अर्थ—ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्णादिककी चोरी, गुरुकी स्त्रीका मैथुन, चक्रांकितकी निंदा इन पांच कर्मोंके करनेवाले महापातकी कहे हैं ॥ और जो कोई पुत्र अपने पिताका द्वेष करता है, उसको दूसरेका बीज जाने ॥ और जो पुरुष चक्रके चिह्नवाले वैष्णवका द्वेष करता है उसको चांडालका बीज जाने ।-ऐसे शिवने पार्वतीको कहा है. इसलिये अधिक क्या कहें । अब शंखचक्रादिकके धारण करनेसे मोक्षफलकी प्राप्ति होती है और नहीं धारण करनेसे “ अनायुधासो असुरा न देवाः ” इति श्रुतेः असुर भावकी प्राप्ति इस श्रुतिने कही तथा महापातकोंकी प्राप्तिसे महारौरवादि नरकोंकी प्राप्ति होती है । और चक्रधारीका रक्षणभी चक्र करता है, नहीं माने तो दुर्वासाको पूछ देखो ॥

प्रश्न—स्वर्गमें तैंतीस कोटि देव, पातालमें नाग और मृत्युलोकमें अठाशी हजार ऋषि, इन सबने तप्त शंख चक्रादिकोंका धारण किया है । इस कारणसे स्वर्ग मृत्यु और पाताल इन तीनों लोकमें श्रीवैष्णव धर्म व्याप्त है, ऐसा सिद्ध हुआ ॥ अब मेरे मनमें थोडासा संशय उत्पन्न होता कि, इस मृत्युलोकमें चक्रवर्ती राजा बहुत होगये हैं, उन्होंने श्रीवैष्णव धर्मके चिह्न, शंख चक्र धारण करके वैष्णव हुये थे कि नहीं? ऐसा मेरेको कुछ मालूम नहीं पडता है ॥

उत्तर—ध्रुव, अंबरीष, शर्याति, ययाति, शिबि, रंतिदेव, शशबिंदु, भगीरथ, भीष्म, विदुर, दुष्यंत, भरत, पृथु, मांधाता, उत्तानपाद, रुक्मांगद, प्रह्लाद, बलि. विभीषण इत्यादिक हजारों राजालोग—

चक्रांकितभुजाः सर्वे त्यक्त्वा भोगाननेकशः ।
अध्रुवेण ध्रुवं प्राप्ता आराध्य कमलापतिम् ॥

अनेक भोगोंका त्यागकरके नाशवान् शरीरसे कमलापति विष्णुका आराधन करके और अपने भुजाओंमें चक्रका धारण करके मोक्षको प्राप्त हुये ॥

प्रश्न–श्रीमद्भागवतकी कथा मैंने बहुत सुनी है परंतु उसमें कहींभी शंख चक्रका माहात्म्य मेरे सुननेंमें नहीं आया ॥

उत्तर–श्रीमद्भागवतके बहुत ही स्थलोंमें शंख चक्र धारण करनेका माहात्म्य है, परंतु शंकरमतमें आसक्त श्रीधरस्वामीने अपनी की हुई भागवतकी टीकामें श्लोकोंके अर्थका अनर्थ किया है. इस कारणसे शंख चक्रका माहात्म्य स्फुट मालूम नहीं पडता है ॥

प्रश्न–किस प्रकारसे श्रीधरस्वामीने अर्थका अनर्थ किया है ?

श्रीमद्भागवत श्रीधरीटीकाका खण्डन ।

उत्तर–भागवतके दशमस्कंधके चालीसवां अध्यायमें अक्रूरकृत स्तुतिके श्लोकमें–

अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाभिहितेन ते ।
यजंति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्तिकम् ॥

अर्थ–तुम्हारा कहा हुआ विधि अर्थात् श्रीपंचरात्रोक्त विधि करके (संस्कृतात्मानः)–

“ तापः पुंड्रस्तथा नाम मन्त्रो यागश्च पञ्चमः ।
अमी परमसंस्काराः पारमैकान्त्यहेतवः ॥ ”

इन तापादि पंच संस्कारों करके संस्कारवाले पुरुष । क्योंकि पंचरात्र शास्त्रमें इन पंच संस्कारोंकोही प्राधान्य करके कहे हैं इससे संस्कृतात्मशब्द करके तापादि पंच संस्कारही कहे हैं ॥ और श्रीधरने ऐसा लिखा है कि, वैष्णव और शिवदीक्षा करके दीक्षावाले । ऐसा (संस्कृतात्मानः) इस शब्दका अर्थ किया है, सो उलटा अर्थ है क्योंकि संस्कार नाम दीक्षाका नहीं है पंचसंस्कारोंका नाम है ॥ फिर तृतीय स्कंधके प्रथमाध्यायमेंभी विदुरकी तीर्थयात्रामें–

पुरेषु पुण्योपवनाद्रिकुञ्जेष्वपंकतोयेषु सरित्सरःसु ॥
अनंतलिङ्गैः समलंकृतेषु चचार तीर्थायतनेष्वनन्यः ॥
अन्यानि चेह द्विजदेवदेवैः कृतानि नानायतनानि विष्णोः ।
प्रत्यंगमुख्यांकितमन्दिराणि यद्दर्शनात्कृष्णमनुस्मरन्ति ॥

अर्थ-(अनन्यः) अनन्य भक्त अर्थात् "अनन्याश्चितयंतो मां" इस रीतिसे अनन्य भक्त विदुर सिद्ध होते हैं,(अनंतलिंगैः) विष्णुके चिह्न जो श्रीमत्सुदर्शनादिक दिव्य आयुध करके (समलंकृतेषु) अर्थात् शंख चक्रादिक भगवच्चिह्नोंको धारण किये हुए भगवत्भक्तोंसे अलंकृत तीर्थ, आयतन पुरादिकोंमें विदुर अनन्य भक्त विचरते भये । क्योंकि अनन्यभक्त देवतांतरभक्तोंके आश्रमोंमें नहीं जाता है, जो जावै तो अनन्यपना नहीं रहता है ॥ और दूसरे श्लोककी ऐसी व्याख्या है कि, इस सरस्वतीके विषयमें (द्विजदेवदेवैः कृतानि) भगवत्के दिव्य आयुधोंके धारण करनेसे जिनको देव संज्ञा प्राप्त हुई है उनका नाम द्विजदेवदेव है । उन्होंने प्रतिष्ठा किये हुए विष्णुके नाना आयतन हैं । विष्णुतत्वसंहितामें लिखा है कि-

एवं विज्ञापिताः शिष्याश्चक्रलिङ्गसमन्विताः ।
देवा एव भवन्त्येते नान्येषां कर्मकारकाः ॥

शंखचक्र धारण करनेवाले देव होजाते हैं, इसलिये दूसरोंके कर्म करनेवाले नहीं रहते हैं और देवकी प्रतिष्ठा करनेका अधिकारभी वैष्णवोंकोही है दूसरोंको नहीं है. जिस देवकी प्रतिष्ठा वैष्णव पंडित करता है उसमेंही देवपना आता है, दूसरेमें नहीं । ऐसा हारितादि धर्मशास्त्रोंमें कहा है कि-

श्रोत्रियो विष्णुभक्तस्तु गृहस्थः शास्त्रवित्तमः ।
चक्रलिङ्गधरो विप्रः प्रतिष्ठां कर्तुमर्हति ॥

अर्थ-गृहस्थाश्रमवाला वेदपाठी, विष्णुभक्त, शास्त्रवेत्ता और चक्रके चिन्हको धरनेवाला ऐसा ब्राह्मण देवप्रतिष्ठाको. करने योग्य है ॥ फिर पराशरसंहितामेंभी कहा है कि-

देवतान्तरभक्तो वा समबुद्धिरथापि वा ।
नास्तिको वेदहीनो वा न प्रतिष्ठां समाचरेत् ॥

अर्थ-दूसरे देवोंका भक्त, समबुद्धिवालाभी, और वेदहीन, नास्तिक प्रतिष्ठाको न करे ॥ इस रीतिसे द्विजदेव नाम वैष्णवोंका है । तथा (प्रत्यंगमुख्यांकितमंदिराणि आसिषेव) अंग अंगके प्रति शास्त्रने नियम करके बताये जो पंच अंग हैं उनमें शंख चक्रादिकोंके चिन्हवाले जो श्रीवैष्णव हैं, उनके मन्दिरोंको विदुरभक्त सेवन किये इति ॥ इन श्लोकोंकी श्रीधरने ऐसी अन्यथा

व्याख्या की है कि (अनंतलिंगैः) अर्थात् लिंग नाम मूर्तिका है ऐसे श्रीधरने कहा है सो मिथ्या अर्थ है, क्योंकि लिंगशब्दको मूर्तिका वाचक कोईभी शास्त्रमें प्रसिद्ध नहीं है । लिंग नाम तो चिह्नकाही है " अन्ये पुराणा लिंगान्यंगे तत्रायुधान्यर्पयन्ते" इस श्रुतिमें लिंग नाम चिन्हकाही कहा है । मूर्तिका वाचक लिंगशब्द श्रीधरने शंख शक्रके चिन्होंको उडानेवास्ते रक्खा है । क्योंकि जो लिंगशब्दका मूर्तिवाचक अर्थ मानिये तो (तीर्थायतनेषु) इहां तीर्थ पद व्यर्थ और असंगत अर्थवाला हो जायगा ॥ और दूसरेभी दोषकी प्राप्ति होती है कि साक्षात् तीर्थ वन अद्रि कुंज आदि स्थानोंमें मन्दिरके विना भगवन्मूर्तिका रहना अशास्त्रीय और अनाचार सिद्ध होता है । और जो वादि ऐसा कहे कि आयतनशब्द करके मन्दिरकी सिद्धि होती है । तो तीर्थ पदकी अनावश्यकता होती है । और श्रीधरने (अनन्यः) इस पदका एकाकी, ऐसा अर्थ किया है सो न्याय अर्थ नहीं है । क्योंकि इहां भक्त प्रकरण हैं इसलिये " अनन्याश्चिन्तयन्तो माम्, " भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया " इत्यादि वचनोंसे अनन्य भक्त विदुर हैं और पूर्व श्लोकमें (सहस्रमूर्तिः) ऐसा पद है उसका अर्थ श्रीधरने ब्रह्म रुद्रादि अनेक मूर्ति, ऐसा अर्थ किया है, सो वैष्णव ग्रन्थ श्रीमद्भागवतके मतको न जाननेसे किया है (बहुमूर्त्यैकमूर्तिकम्) इत्यादि स्थलोंमें वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध आदिरूप करके बहु मूर्ति, और नारायणरूप करके एक मूर्ति । इस रीतिसे व्यूह विभवादि अनन्त भगवद् अवतार मूर्ति प्रसिद्ध हैं । उनको छोडके ब्रह्मरुद्रादि अनेक मूर्ति करके भगवत्का वर्णन करना अज्ञान मूलक है ॥ और श्रीधरने (द्विजदेवैः) इस पदका अर्थ (ऋषिभिः) ऐसा किया है सोभी अज्ञानमूलही है । क्योंकि, द्विजदेव शब्द करके ऋषियोंका कथन कोईभी ठिकाने नहीं देखा है । क्योंकि द्विजदेव ऐसा नाम तो श्रीवैष्णवोंका शास्त्रके बलसे सिद्ध होता है । और श्रीधरने आयतन शब्दको क्षेत्रका वाचक कहा है और प्रत्यंगशब्दको आयुधोंका वाचक कहा है तथा मुख्य शब्दको चक्रका वाचक कहा है । सो सब कहना मिथ्या है । क्योंकि आयतन नाम भगवत्के मंदिरका है । क्षेत्रका नहीं है । और प्रत्यंग शब्दभी आयुधोंका वाचक कोईभी शास्त्रमें नहीं लिखा है, किंतु अंगोंका नाम है । और मुख्य शब्दभी चक्रका नाम नहीं है, किंतु ललाट, मस्तक, हृदय और दो बाहु यह पांच स्थान अंगमें मुख्य कहे हैं । इस कारणसे श्रीधरकी व्याख्या वैष्णवशास्त्रका मर्मके अज्ञानसे और अपने मतके अभिनिवेशसे की हुई है । और भागवतके एका-

दशस्कंधके एकादशवां अध्यायमें (मल्लिंगमद्भक्तजनदर्शनस्पर्शनार्चनं) ऐसा लिखा है, उसका अर्थ ऐसा है कि, मेरे लिंग जो चक्रादि दिव्य आयुधोंके चिन्ह जिनमें हैं अर्थात् ऐसे मेरे भक्त जन हैं, उनके दर्शन स्पर्शन और अर्चन करै इति । और श्रीधरनें लिंगशब्द प्रतिमाका वाचक ठहराया है, सो कोईभी शास्त्रमें नहीं है । फिर एकादशस्कन्धके छवीसवां अध्यायमें कहा है-

मल्लक्षणमिमं कायं लब्ध्वा मद्धर्म आस्थितः ।
" मल्लक्षणं-मम लक्षणानि चक्रादिदिव्यायुध-
चिह्नानि यस्मिंस्तथाभूतं कायम् ॥

मेरे चक्रादिक दिव्य आयुधोंके चिन्ह जिसमें हैं ऐसा शरीरको पाकर मेरे भक्ति योग धर्ममें आस्थावाला होवे । क्योंकि चक्रादि चिह्नोंको धारण किये विना भगवत् धर्ममें प्रवेश करनेका अधिकार नहीं होता है । और श्रीधरने (मल्लक्षणं मत्स्वरूपं लक्ष्यते येन तं) मेरे स्वरूपका जिस करके लक्ष्य होता है ऐसा शरीर है । ऐसा अर्थ किया है सो नहीं बने । क्योंकि लक्षण नाम चिन्हका है और लिंग नाम चिन्हका हैं यह दोनों शब्द चिन्हवाचक पर्याय शब्द हैं, ऐसा भीष्मपर्वमें कहा है कि-

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च कृतलक्षणैः ।
अर्चनीयश्च सेव्यश्च पूजनीयश्च माधवः ॥
सात्वतं विधिमास्थाय गीतः संकर्षणेन यः ॥

अर्थ-संकर्षण भगवानने जो विधि गायन किया है उस पंचरात्रकी विधिमें स्थित हो अपने शरीरोंमें शंख चक्रादिकोंके चिन्ह जिन्होंने धारण किये हैं ऐसे जो ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं उन करकेही माधव लक्ष्मीपति अर्चनीय, सेव्य, और पूजनीय हैं । शंख चक्रादि चिन्होंसे रहित जो पुरुष हैं उन करके लक्ष्मीपति अर्चनीय, सेव्य और पूजनीय नहीं हैं ॥

प्रश्न-अर्चन, सेवन और पूजन इन तीन शब्दोंका अर्थ किस प्रकारसे समझना चाहिये ?

उत्तर-नाना प्रकारके पदार्थ सामग्री भोगराग करके जो बाहर विष्णुका संपूर्ण आराधन करना है उसका नाम अर्चन है । अपने हृदय कमलके भीतर लक्ष्मीपतिका जो आराधन है उसका नाम पूजन है । भगवतके मंदिरमें झाडू

देना, लीपना और तुलसी, पुष्प, फल आदिकोंका लाना ऐसी जो परिचर्या करनी, उसका नाम सेवन है । इन तीनोंमें पंचरात्रकी विधिवाले श्रीवैष्णवोंकाही अधिकार है दूसरोंका नहीं । इस श्लोकमें लक्षण नाम चिन्हका कहा है,इस कारणसे वैष्णवोंको श्रीधरकी की हुई व्याख्या आदर करने योग्य नहीं है।

प्रश्न—अहो गुरुजी ! मैं धन्य हूं । शंकर मतवाले कहते थे कि, शंख चक्रकी छाप लेनेका धर्म जो वैष्णवोंने चलाया है सो अनादि धर्म नहीं और वेद, पुराण, धर्मशास्त्र इतिहासादिकोंमें भी लिखा हुआ नहीं है । ऐसा शैवादि दुर्वादियोंका दुर्वादरूपी अंधकारको आपने वेदादिक सत् शास्त्रोंके प्रमाणरूपी सूर्य करके नाश करदिया । और मैं भी ऐसा जानता था कि, द्वारकामें पीपा भक्तने शंखचक्रकी छाप लेनेका मार्ग चलाया है यह मेरा संशयभी अत्यंत दूर होगया है । तथापि हे भगवन् ! इस ग्रंथकी दीर्घताके भयसे आपने अत्यंत थोडे ग्रंथोंका प्रमाण निरूपण किया है ऐसा मेरेको भासता है । इससे हे स्वामिन् ! जिन जिन ग्रंथोंमें शंख चक्र धारण करनेका विधान लिखा हुआ है। उन ग्रंथोंके नाम मेरेको सुनाने चाहिये ।

उत्तर—जिन ग्रंथोंके श्लोकोंका मैंने वांचके अनुभव किया है उनके नाम लिखता हूं सुन–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वणवेद, वाष्कलशाखा, मैत्रायणीशाखा, शतपथशाखा, कठशाखा, पवमानसूक्त, निघंटु, त्रिवेदीभाष्य, ज्ञानयज्ञाख्यभाष्य, विष्णुतत्वसंहिता, श्रीविष्णुमंदिरसंहिता, कालोत्तरसंहिता, पाद्मसंहिता, बृहद्ब्रह्मसंहिता, भरद्वाजसंहिता, सनत्कुमारसंहिता, विहगेश्वरसंहिता, वसिष्ठसंहिता, विष्णुतत्वसंहिता, पराशरसंहिता, पारमेश्वरसंहिता, विष्वक्सेनसंहिता, पुष्कलसंहिता, शांडिल्यस्मृति, वृद्धमनुस्मृति, हारीतस्मृति, सनकस्मृति, पाराशरस्मृति, यमस्मृति, शंखस्मृति, मनुस्मृति, वृद्धपराशरमृति, बृहद्धारीतस्मृति, पद्मस्मृति, विष्णुस्मृति, व्यासस्मृति, वाल्मीकीयरामायण, पंचरात्र, महाभारत, इतिहाससमुच्चय, पद्मपुराण, भागवतपुराण, नारदीयपुराण, विष्णुपुराण, वराहपुराण, वामनपुराण, बृहन्नारदीयपुराण, भविष्यपुराण, मार्कंडेयपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, कूर्मपुराण, स्कंदपुराण, लिंगपुराण, अग्निपुराण, मत्स्यपुराण, शिवपुराण, आदित्यपुराण, ब्रह्मांडपुराण, हरिवंश, श्रीविष्णुधर्म, श्रीशास्त्र, शिल्पिशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, विष्णुरहस्य, नारदीयपद्धति, विष्णुतत्वसंग्रह, भागवतमाहात्म्य, काशीखंड, रामार्चनचंद्रिका, रामनाममाहात्म्य, ब्रह्मपुराण, विष्णुयामल, गरुडपुराण, स्मृतिसंग्रह, पिप्पलायनिशाखा, नैगमेयीशाखा, शेषधर्म इन सब ग्रंथोंमें अग्निमें गरम करके भगवतके शंख चक्रादि आयुधोंको

धारण अच्छी तरहसे लिखा हुआ है। इसवास्ते तप्त शंखचक्रका धारण करना अनादिकालसे चला आता है। इसको तापसंस्कार कहते हैं। जैसे अग्निमें तपायाहुआ सुवर्ण अपने सर्व मल मात्रका त्याग करके निर्मल अवस्थाको प्राप्त होता है वैसे इस तापसंस्कार करके तप्त किया हुआ जीवभी अपने अनेक जन्मोंके पापोंको दग्ध करके निर्मल होता है और भगवत्कृपाका पात्र होता है तथा वैदिकादि कर्मोंमें अधिकारी होता है और इस शंख चक्रके चिह्नवालेको जो कोई भोजन करावे दान देवे उसको अनंत गुण फल होता है. इस कारणसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी इन सब वर्णाश्रमियोंको अवश्य करके अपने आत्माका मोक्षके अर्थ तप्त शंखचक्रादिकोंका धारणरूप ताप संस्कार करना चाहिये॥ और इस तप्त शंखचक्रादिरूप ताप संस्कारसे जो वर्णाश्रमवाले रहित हैं, अर्थात् शंखचक्रको नहीं धारण करते हैं उन पुरुषोंको ऊपर लिखे हुये सर्व ग्रंथ धिक्कार और निंदा करते हैं, जैसे पराशरस्मृतिमें लिखा है कि–

विना यज्ञोपवीतेन विना चक्रस्य धारणात्।
विना द्वयेन वै विप्रश्चांडालत्वमवाप्नुयात्॥
शंखचक्रोर्ध्वपुंड्रादिरहितो ब्राह्मणाधमः।
स जीवन्नेव चांडालः सर्वधर्मबहिष्कृतः॥

अर्थ–जो ब्राह्मण यज्ञोपवीतसे, तथा चक्रके धारणसे और मंत्रद्वयसे रहित है सो ब्राह्मण चांडालत्वको प्राप्त होता है और तप्त शंख चक्र और ऊर्ध्वपुंड्रोंका धारण तथा तुलसी और कमलकी मालाका धारणसे जो रहित होता है, सो ब्राह्मण नहीं है किंतु वह ब्राह्मणोंमें अधम है, और वह जीवता हुआ चांडालही है, इस कारण वह ब्राह्मण सर्व धर्मोंसे बहिष्कृत है, उसको यज्ञादिक कर्मों तथा दान, तर्पण, श्राद्ध, भोजन, संस्कार, विवाह आदि कर्मोंमें लेना नहीं॥ और पद्मपुराण ऐसे कहता है कि, शंख चक्र चिह्नसे रहित जो पुरुष है उसके पूजन वंदना दर्शन, स्पर्शन और संभाषण करनेवाला पापका भागी होता है॥ फिर विष्णुधर्मके बैयाशीवां अध्यायमें लिखा है कि–

भवतां भ्रमतामत्र विष्णुसंश्रयमुद्रया।
विनाज्ञाभङ्गकृन्नैव भविष्यति नरः क्वचित्॥

अर्थ–अपने दूतोंको यमराजा कहते हैं कि, इस लोकमें सर्वत्र तुम फिरते हो, और अनेक जीवोंको पकडकर मेरे पास लाते हो परंतु मेरी आज्ञाका भंग कोई नहीं करता है, और कोई करेगाभी नहीं, तथापि विष्णुके शंख चक्रादि चिह्नोंको धारण करके विष्णुभगवानको तन मन वचन करके शरणको जो पुरुष प्राप्त हुये हैं, उन वैष्णवोंके विना दूसरे ठिकाने तुम्हारेको मेरी आज्ञा प्रवर्त करनी चाहिये, परंतु उन श्रीवैष्णवोंके विषयमें मेरी आज्ञा प्रवर्त नहीं करनी. इस प्रकारसे शंख चक्रके चिह्नवाले श्रीवैष्णवोंको यमपुरीमें लानेका अपने दूतोंको यम राजाने मना किया है। इस कारणसे यमदूत यमराजाका हुकुम वैष्णवोंपर नहीं बजा सकते हैं, कदापि भूलसे बजाने जावे तो यमराजाकी आज्ञाका भंग हो जाता है, अजामिलवत् सर्वत्र समझ लेना इति ॥

वादीप्रश्न–अंतःकरणमें जो राग, द्वेष, काम, क्रोध, मद, मोह, अहंकार, तृष्णा, असूया, निंदा, पैशुन्य आदि दुर्गुण रहे हैं, उनका त्याग करके महाभागवत और महावैष्णवपनेको प्राप्त होते हैं। क्योंकि भागवत आदि ग्रंथोंमें प्रह्लाद, नारद, युधिष्ठिर, उद्धव आदि परम भागवतोंका गुण और लक्षण कहे हुये हैं उन गुणोंके धारकको वैष्णव कहना चाहिये । शंख चक्रके चिह्नोंका क्या प्रयोजन है ?

उत्तर–हे वादी ! तुम्हारा प्रश्न ऐसा है कि–एक स्त्री बोली कि, मैं हाथोंमें चूडियां नहीं रक्खूंगी चूडियां रखनेसे क्या होता है, मेरा जो पातिव्रत धर्म है सो तो मेरे मनसे पालनेका है, मैं अपने पतिके साथ क्रोध कपट ईर्षा आदिक नहीं करूंगी, ऐसा बोलनेवाली स्त्रीके वचन समान है । पद्मपुराणमें लिखा है कि–

वैष्णवा द्विविधाः प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरतस्तथा ।
बाह्यास्तु शंखचक्राभ्यामन्तरा वीतरागतः ॥
यद्बाह्याभ्यन्तरं सम्यक् तद्वैष्णवमुदाहृतम् ॥

अर्थ–वैष्णव दो प्रकारके कहे हैं, बाहरसे और भीतरसे । उसमें शंख चक्रके चिह्न करके तो बाहरसे जानना और वीतरागसे अर्थात् मनमें वैराग्य गुणसे अंतर वैष्णव जानना। जो बाहर और भीतर सुंदरपनेसे हो उसको वैष्णव कहते हैं, इनमें जो बाहरसे वैष्णव हो और भीतरसे नहीं हो तोभी वैष्णव नहीं, और जो भीतरसे हो और बाहरसे नहीं हो तोभी वैष्णव नहीं इस

कारणसे बाहर और भीतर दोनों प्रकार अच्छी तरह होनेसेही वैष्णव ऐसा पद सिद्ध होता है ॥ क्योंकि पतिव्रता जो जब सिद्ध होवेगी कि बाहरके अंगमें कंकण आदि आभूषणोंको धारण करके, क्रोध कपटादिक भीतर दुर्गुणोंका त्याग करके जब पतिको सेवेगी तबही पतिव्रता कही जायगी इति ॥ हे वादी! तेरे सरीखा एक ब्राह्मण बोला कि, मैं तो उपवीत और शिखा नहीं रक्खूंगा मेरे मनसे काम क्रोधादिकोंका त्याग करके गायत्रीका जाप करूंगा इति । फिर एक संन्यासी कहने लगा, मैंभी त्रिदंड नहीं धारण करूंगा और संन्यासी बना रहूंगा ऐसे तूभी कहता है । क्योंकि चोटी और जनेऊ विना ब्राह्मण नहीं कहा जाता है, और त्रिदंडोंके विना संन्यासी नहीं कहा जाता है, वैसे शंख चक्रके चिह्न विना वैष्णवभी सिद्ध नहीं हो सकता है किंतु बाहरसे शंख चक्रादिकोंके चिह्न और अंतरमें वीतरागादिक गुण इन दो प्रकारसेही वैष्णव कहा जाता हैं, इसलिये अंतर और बाहर दोनों प्रकारोंको अवश्य धारण करना चाहिये ॥ इति तापसंस्कारः ॥ १ ॥

इति श्रीमद्रामानुजचरणाश्रितेन श्रीमत्पंडितगोपालदासेन विरचिते श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकरे तप्तशंखचक्रादिधारणाख्यप्रथमसंस्कारविधिकथने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः ।

श्रीमते रामानुजाय नमः ।

सर्वमंगलमांगल्यं सर्वोपद्रवनाशनम् ।
वंदे रामानुजार्यस्य नित्यं पादांबुजद्वयम् ॥ १ ॥

अर्थ-सर्व मंगलमात्रके मांगल्यरूप और सर्व उपद्रव दुःखदायक विघ्नोंको नाश करनेवाले ऐसे श्रीरामानुज आर्यके दोनों चरणारविंदोंको मैं वंदना करता हूं ॥ १ ॥

अथ द्वितीयपुंड्रसंस्कारविधि ।

पूर्व अध्यायमें कही रीतिसे गुरु अपने शिष्यका ताप संस्कारको करके पीछे ऊर्ध्व पुंड्र संस्कारको करे । शिष्यको उत्तर मुख अथवा पूर्व मुख बैठाके

पीछे गुरु अपने वाम हस्तमें श्वेत मृत्तिकाको जलसे घिसकर उसमें रां इस बीजको लिखकर दोनों हस्तोंका संपुट करके राममंत्रको दश वार जपे । पीछे (ओं कं केशवाय नमः) इन मंत्रका उच्चारण करके अपने दक्षिण हस्तकी तर्जनी अंगुलिसे–

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।
आरुह्य मम गात्राणि सर्वपापं प्रमोचय ॥ २ ॥

अर्थ--इस तिलकके मंत्रसे शिष्यके ललाटमें दंडाकार सूधा और हरिके पादकी आकृति सरीखा नासिकाके दोभाग छोडके तीसरे भागसे मत्थेके केश पर्यंत दो अंगुल अथवा तीन अंगुल चौडा और बीचमें छिद्र सहित ऊर्ध्व पुंड्रको धारण करे ॥ ऐसेही उदर आदिक दूसरे एकादश स्थानोंमें उस पुंड्रकी नारायण आदिक मूर्तियोंका चिंतन करके (उद्धृतासि) इस मंत्रकरके चौडा और लंबा जो शास्त्रने बताया है उस प्रकारसेही सब पुंड्रोंका शिष्यके अंगोंमें गुरु धारण करे । पीछे द्वादश पुंड्रोंके मध्यमें लक्ष्मी महाराणीका रूप हरिद्राकी श्रियोंका (ओं श्रीं श्रियै नमः) इत्यादिक मंत्रोंसे धारण करे । ऐसे ऊर्ध्वपुंड्र संस्कारको धारण करनेसे देवपूजन, मंत्रजाप, गायत्रीजाप, वेदपाठ, अग्निहोत्र, दान, होम, तर्पण, भोजन, तप, तीर्थ, व्रत, उपवास आदिक नित्य नैमित्तिक सर्व कर्म सफल होते हैं और वह ऊर्ध्वपुंड्रोंका धारण करनेवाला विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है ॥ इस प्रकारसे गुरु अपने शिष्यका ऊर्ध्वपुंड्ररूप द्वितीय संस्कारको करके, पछि शिष्यको गुरु ऐसी शिक्षा करे कि हे शिष्य ! जहांतक तू जीवे तहांतक प्रातःकालमें और सायंकालमें नित्य ऊर्ध्वपुड्रोंका प्रथम धारण करके पीछे संध्या, पूजा, जप, तप, दान, तर्पण, होम, भोजन, व्रत आदिक कर्मोंको करना इति ॥

प्रश्न--प्रातःकालमें और सायंकालमें पुंड्रोंका धारण कौन विधिसे करे और वह विधि कौन कौनसे शास्त्रोंने फरमाया है ?

उत्तर-हारीतस्मृति और भरद्वाजसंहितामें लिखा है कि--

स्नात्वा शुभजले सम्यक् धौतवस्त्रं च धारयेत् ।
कुशासने समाविश्य प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ॥ ३ ॥
आचम्य धारयेत्पुंड्रान् मृदा शुभ्रेण पूर्ववत् ।
अंतरालेषु सर्वेषु हरिद्रां धारयेच्छ्रियम् ॥ ४ ॥

तत्तत्पुंड्राणि तन्मूर्तिं ध्यात्वा मंत्रेण धारयेत् ।
ललाटे भुजयुग्मे तु हृदये कंठकूबरे ॥ ५ ॥

अर्थ--प्रातःकाल और सायंकालमें पवित्र जलमें सुन्दर स्नान करके पीछे धोयाहुआ शुद्ध वस्त्रको धारण करे। पीछे कुशके आसनपर पूर्व मुख अथवा उत्तर मुख बैठकर द्वि वा त्रि आचमन करके श्वेतमृत्तिकासे ऊर्ध्वपुंड्रोंका पहलेकी तरह धारण करे । और उन सब पुंड्रोंके मध्यमें हरिद्राकी श्रीको धारण करे और उस उस पुंड्रोंको केशवादिक मूर्तियोंका ध्यान करके (उद्धृतासि) इस मंत्रसे ललाटमें दोनों भुजामें हृदयमें और कंठमें धारण करे ॥ ३–५ ॥

प्रश्न--हे गुरो ! केशर, कस्तूरी, अगर, मृत्तिका, चंदन, रक्तचंदन, बिल्वमूल, जल, भस्म आदिक द्रव्यों करके आडा ऊभा और चांदला आदिक तिलक अनेक मतधारी लोक करते हैं, परंतु इन द्रव्योंमें अत्यन्त श्रेष्ठ और भुक्ति मुक्तिका देनेवाला और विष्णु भगवानकी प्रीतिका करानेवाला कौनसा द्रव्य है ?

उत्तर–केशर, कस्तूरी तथा अगर चंदन, रक्तचंदन, बिल्वमूल, जल, भस्म आदिक कोईभी द्रव्यसे ऊर्ध्वपुंड्रोंका धारण न करे, किंतु पंचमृत्तिकासेही ऊभा तिलक करना चाहिये । ऐसा ब्रह्मांडपुराणमें ब्रह्माको भगवानने कहा है–

पर्वताग्रे नदीतीरे मम क्षेत्रे विशेषतः ।
सिंधुतीरेऽथ वल्मीके तुलसीमूलमाश्रिते ॥
मृद एतास्तु संग्राह्या वर्जयेदन्यमृत्तिकाः ॥

अर्थ–एक तो पर्वतोंके शिखर ऊपरकी मृत्तिका लेनी अर्थात् वृषभ पर्वत यादवपर्वत, नारसिंह पर्वत वेंकट पर्वत इत्यादिक पर्वतोंके शिखरकी मृत्तिका लेनी १ ॥ दूसरा नदियोंके तीरकी मृत्तिका अर्थात् गंगा, यमुना, सरस्वती, शरयू, गोदावरी आदिक पवित्र नदियोंके तीरकी मृत्तिका लेनी २ ॥ तीसरी मृत्तिका मेरे क्षेत्रोंकी अर्थात् श्रीरंगक्षेत्र, कूर्मक्षेत्र, वराहक्षेत्र, हरिक्षेत्र प्रयाग द्वारका आदिक मेरे क्षेत्रोंसे मृत्तिका लेनी ३ ॥ चौथा मृत्तिका समुद्रके तीरकी लेनी ४ ॥ और पांचवी मृत्तिका तुलसीके क्याराकी लेनी ५ ॥ ऐसा भगवान् कहते हैं । यह पंचमृत्तिकोंकाही ग्रहण और इनकी विना दूसरी मृत्तिकाओंका त्याग करे ।

प्रश्न–इन पंच स्थानोंसे कौनसे रंगकी मृत्तिका लेनी चाहिये ?

उत्तर–चार वर्णकी मृत्तिका ब्रह्मांडपुराणमें लेनेका कहा है और उनका अलग२ फलभी कहा है कि–

श्यामं शान्तिकरं प्रोक्तं रक्तं वश्यकरं तथा।
श्रीकरं पीतमित्याहुः श्वेतं मोक्षकरं शुभम् ॥

अर्थ–श्याम रंग शांति करनेवाला, लाल रंग वश करनेवाला, पीला रंग लक्ष्मीको देनेवाला और श्वेत रंग मोक्षका देनेवाला है । इस प्रकारसे चार रंगके चार फल कहे हैं, जिस पुरुषको मोक्षकी इच्छा तथा विष्णुकी प्रीतिका संपादन करनेकी इच्छा हो सो पुरुष श्वेतमृत्तिकाकोही इन पंच स्थानोंसे ग्रहण करे। और शांतिकी कामनावाला श्यामवर्णकी मृत्तिका, वश करनेकी कामनावाला रक्त वर्णकी मृत्तिका और शोभा अथवा संपत्तिकी कामनावाला पीत वर्णकी मृत्तिकाको ग्रहण करे ॥

प्रश्न–ऊर्ध्वपुंड्र तिलक सोना चांदी पीतल तांबा आदिक धातुकी शलाकासे तिलक करना चाहिये कि काष्ठ तृणादिककी शलाकासे अथवा हाथकी अंगुलियोंसे तिलक करना चाहिये सो कृपा करके कहो ॥

उत्तर–कोईभी धातुकी तथा काष्ठ तृणादिककी शलाकासे तिलक करनेका शास्त्रमें लिखा नहीं है,किंतु अंगुलियोंसेही तिलक करनेका शास्त्रमें कहा है. इस लिये अंगुलियोंका नियम और उसका फल भी सुनो।पद्मपुराणमें लिखा है कि–

शान्तिदाऽनामिका प्रोक्ता मध्यमायुःकरी भवेत्।
अंगुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तस्तर्जनी मोक्षदायिनी ॥

अर्थ–अनामिका अंगुलि शांतिको देनेवाली ह । मध्यमा अंगुलि आयुष्यकी करनेवाली है । अंगुष्ठा पुष्टिका देनेवाली है और तर्जनी अंगुलि मोक्षकी देनेवाली है इसी प्रकारसे चार अंगुलियोंका अलग २ फल पद्मपुराणमें कहा है। इस कारण मोक्षकी इच्छावाले पुरुषको सदा तर्जनी अंगुलीसेही तिलक करना चाहिये। शांतिकी कामना हो तो अनामिकासे, आयुष्यकी कामना हो तो मध्यमासे और पुष्टिकी कामना हो तो अंगुष्ठासे तिलक करे ॥

प्रश्न–कितने तिलक धारण करनेका शास्त्रकी आज्ञा है ?

उत्तर–अधिकसे अधिक त्रयोदश तिलक धारण करनेकी शास्त्रकी आज्ञा

है। तेरह तिलकोंसे अधिक करे तो दोष है, और तेरह तिलकोंसे कमती करे तो कुछ बाधा नहीं। इन तिलकोंका स्थान और देवभी यथाक्रम सुनो।

द्वादशतिलकविधि।

ललाटे केशवं ध्यायेन्नारायणमथोदरे।
वक्षःस्थले माधवं च गोविन्दं कण्ठकूबरे॥
विष्णुं च दक्षिणे कुक्षौ बांहौ च मधुसूदनम्।
त्रिविक्रमं कन्धरे तु वामनं वामपार्श्वके॥
श्रीधरं वामबाहौ च हृषीकेशं तु कन्धरे।
पृष्ठे तु पद्मनाभं च त्रिके दामोदरं न्यसेत्॥
तत्प्रक्षालिततोयेन वासुदेवेति मूर्धनि।
एवं द्वादशपुण्ड्राणि ब्राह्मणः सततं धरेत्॥

अर्थ—नीचे लिखे क्रमसे स्थान और देव जानलेना--

१--ओं कं केशवाय नमः। इस केशवमंत्रसे ललाटमें
२--ओं नं नारायणाय नमः। इस नारायण मन्त्रसे उदरमें
३—ओं मं माधवाय नमः। इस माधव मंत्रसे हृदयमें
४—ओं गों गोविंदाय नमः। इस गोविंद मंत्रसे कंठमें
५—ओं विं विष्णवे नमः। इस विष्णु मंत्रसे दक्षिण कुक्षिमें
६—ओं मं मधुसूदनाय नमः। इस मधुसूदन मंत्रसे दक्षिण बाहुमें
७—ओं त्रिं त्रिविक्रमाय नमः। इस त्रिविक्रम मंत्रसे दक्षिणस्कंधमें
८—ओं वं वामनाय नमः। इस वामन मंत्रसे वाम कुक्षिमें
९—ओं श्रीं श्रीधराय नमः। इस श्रीधर मंत्रसे वाम बाहुमें
१०—ओं हृं हृषीकेशाय नमः। इस हृषीकेश मंत्रसे वामस्कंधमें
११—ओं पं पद्मनाभाय नमः। इस पद्मनाभ मंत्रसे पीठमें
१२—ओं दं दामोदराय नमः। इस दामोदर मंत्रसे कंठके पीछे तिलकरे.
१३--ओं वं वासुदेवाय नमः। इस वासुदेव मंत्रसे मस्तक उपरि तिलक करे.[1]

१--इस तेरहवां तिलकको कोई तिलककेरूपसे करते हैं. कोई 'शेषं शिरसि धारयेत्' इसप्रमाणसे बचेहुएको मस्तकमें लगालेते हैं।

इस ऊपर लिखी हुई रीतिसे ब्राह्मणोंको तिलक धारण करना चाहिये। इन तेरह तिलकोंके परिमाण पद्मपुराणमें लिखा है कि--

तिलकोंके परिमाण।

ललाटे भुजयुग्मे तु पृष्ठयोः कंठकूबरे।
धारयेदूर्ध्वपुंड्रं तु चतुरंगुलमायतम्॥
कुक्षौ तत्पार्श्वयोः प्रोक्तमायतं तु दशांगुलम्।
बाह्वोर्वक्षस्थले पुण्ड्रमष्टांगुलमुदाहृतम्॥

अर्थ--ललाट,दक्षिणस्कन्ध,वामस्कंध, पीठ, कंठके पीछे, कंठ इन छः अंगोंमें चार चार अंगुल लंबे तिलक, उदर, दक्षिण कुक्षि, वामकुक्षि इन तीन अंगोंमें दश दश अंगुल लंबे तिलक और हृदय, दक्षिणबाहु, वामबाहु इन तीन अंगोंमें आठ आठ अंगुल लंबे तिलक करने कहे हैं॥ मरीचिसंहितामें ऊर्ध्वपुंड्रका लक्षण ऐसा कहा है कि–

अंगुलं द्व्यंगुलं वापि मध्याच्छिद्रं प्रकल्पयेत्।
अंगुलं पार्श्वमेकं तु ऊर्ध्वपुंड्रस्य लक्षणम्॥

अर्थ--एक अंगुल अथवा द्वि अंगुल सब तिलकोंके बीचमें छिद्र रक्खे और एक एक अंगुलके दोनों पार्श्व रक्खे, ऐसा सब ऊर्ध्वपुंड्रोंका लक्षण कहा है॥इस रीतिसेही सब तिलकोंका धारण और लक्षण पद्मपुराणमेंभी कहा है कि–

अंतरालं द्व्यंगुलं स्यात्पार्श्वौ ह्यंगुलमात्रकौ।
मृदा शुभ्रेण विलिखेत्पुंड्रमृजुतरं शुभम्॥

अर्थ–ऊर्ध्वपुंड्रोंके मध्यमें दो अंगुलका अंतर और दोनों पार्श्व एक एक अंगुलमात्रके रक्खे इस प्रकार तिलक श्वेतमृत्तिकासे अत्यन्त सूधा सर्व अंगोंमें लिखे इति॥

प्रश्न–ऊर्ध्वपुंड्रोंके धारण करनेका प्रयोजन कहो और ऊर्ध्वपुंड्रशब्दका अर्थ कैसा है सो कृपा करके कहो।

उत्तर–ऊर्ध्वपुंड्रका प्रयोजन और ऊर्ध्वपुंड्र शब्दका अर्थ यह दोनों नारद पुराणमें कहे हैं सो सुन–

ऊर्ध्वपुण्ड्रशब्दका अर्थ ।

ऊर्ध्वगत्यां तु यस्येच्छा तस्योर्ध्वं पुंड्रमुच्यते ।
ऊर्ध्वं गत्वा तु देवत्वं संप्राप्नोति न संशयः ॥
ऊर्ध्वं नयति यत्पुंड्रं प्राणिनः पापकारिणः ।
तस्याख्या ह्यूर्ध्वपुंड्रेति तस्मात्तद्धारयेद्द्विजः ॥

अर्थ–जिस पुरुषको ऊपर जानेकी इच्छा है, उस पुरुषको ऊर्ध्वपुंड्र धारण करनेका कहा है, और ऊपर जाके देवपनेको प्राप्त होता है, इसमें कुछभी संशय नहीं। ऊर्ध्वपुंड्र धारण करनेका प्रयोजन यह है कि, पाप करनेवाले प्राणियोंको जो पुंड्र ऊपर ले जाता है, इस कारणसे इसका नाम ऊर्ध्वपुंड्र है, इसलिये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों वर्ण ऊर्ध्वपुंड्रको धारण करे॥ इस नारदपुराणके वचनसे अर्थापत्ति करके ऐसा अर्थ भासमान होता है कि, जब ऊँचीगतिमें पापियोंको लेजानेसे ऊर्ध्वपुण्ड्र ऐसा नाम सिद्ध होता है, तब आडी गति अर्थात् नीची गतिको जो पुण्ड्र प्राणियोंको प्राप्त करे, इसलिये तिर्यक् पुण्ड्र ऐसा नामभी सिद्ध होता है, अर्थात् आडा तिलक करनेसे जन्म मरण रूप संसारकी नीची गतिमेंही रहता है ऐसा समझ लेना।

प्रश्न–केशर कस्तूरी आदिक द्रव्योंकरके ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करनेका मने किस वास्ते करते हो ?

उत्तर–हम नहीं मन करते हैं किंतु ब्रह्मरात्रसंहिता मने करती है कि–

चन्दनं प्राणिगन्धं च श्रीपत्रमगरुस्तथा ।
राजसं द्रव्यमेवैतद्वदन्ति ब्रह्मवादिनः ॥
पञ्चगव्यं च बिल्वं च श्रीपत्रं भस्म तोयकम् ।
तामसं द्रव्यमेवैतत् सात्विक्यः पञ्चमृत्तिकाः ॥

अर्थ–चंदन, कस्तूरी, श्रीपत्र और अगर ये राजस द्रव्य हैं, ऐसा ब्रह्म-वादी लोक कहते हैं। पंचगव्य, वेल, श्रीपत्र, भस्म और जल ये तामस द्रव्य हैं। और पांच प्रकारकी मत्तिका सात्विक द्रव्य है ॥ इस कारणसे मुमुक्षु पुरुष चन्दन कस्तूरी आदिक राजस द्रव्योंका त्याग करे और केवल जलसे तिलक न करे, तथा भस्मसेभी तिलक न करे, क्योंकि जल और भस्म आदिक

तामसी द्रव्य हैं इसलिये राजस तामसद्रव्योंका त्याग करके वैष्णव मुमुक्षुओंको पंचप्रकारकी मृत्तिकासेही ऊर्ध्वपुण्ड्रोंका धारण करना उचित है ॥

प्रश्न–राजस तामस द्रव्योंका तिलक किसको करनेका कहा है ?

उत्तर–चन्दनं प्राणिगन्धं च श्रीपत्रमगरुस्तथा।
शूद्रेणैव सदा धार्यं भस्म तोयं क्रमेण च ॥

अर्थ–चंदन, कस्तूरी, बेलपत्र, अगर, भस्म और जल ये द्रव्य अनुक्रमसे सदा शूद्रोंका धारण करने योग्य हैं ॥ इति ॥

प्रश्न–जो शूद्र हरिभक्त हो और मुक्तिकी इच्छावाला हो तो इन राजस तामस द्रव्योंका त्याग करे कि नहीं ?

उत्तर–पारमेश्वर संहितामें कहा है कि–

श्वेतमृत्तिकया वापि श्यामया पीतयापि वा।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं द्विजैर्धार्यं वैष्णवैश्च विशेषतः ॥

अर्थ–श्वेतमृत्तिका अथवा श्याममृत्तिका अथवा पीत मृत्तिका करके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन द्विज जातिवालोंको ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये। और शूद्रादिक दूसरी जातिवाले वैष्णवोंकोभी श्वेत पीत और श्याम मृत्तिका करकेही ऊर्ध्वपुण्ड्रोंको धारण करना चाहिये। अर्थात् हरिभक्त जो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तथा शूद्र आदि दूसरीभी जातिवाले हैं इन सबको मृत्तिकासेही तिलक करने योग्य हैं। क्योंकि भगवान्‌काभी वचन है कि–

सर्ववर्णेषु मद्भक्ताः कुर्वीरन्नूर्ध्वपुण्ड्रकम्।
ब्राह्मणाश्च विशेषेण जपहोमपरायणाः ॥

अर्थ–सर्ववर्णोंमें रहे हुए मेरे भक्तोंको और जपहोमपरायण ऐसे ब्राह्मणोंको विशेष करके ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना। ऐसा ब्रह्मांडपुराणमें कहा है ॥

प्रश्न–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन सर्ववर्णोंमें रहनेवाले हरिभक्तोंका प्रतिदिवस ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करनेका तो सिद्ध हुआ परन्तु गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी इन चार आश्रमवालोंको ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करनेका कोई शास्त्रमें कहा है कि नहीं ?

उत्तर–ब्रह्मांडपुराणमें कहा है कि–

गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थस्तथा यतिः।

अवश्यं धारयेत्पुण्ड्रं पुण्यमूर्ध्वं सुशोभनम् ॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा धार्यं विप्रेण ब्रह्मवादिना ।
उद्धृतासीति मन्त्रेण वैष्णवेन विशेषतः ॥

अर्थ–गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी, शुभ और सुन्दर ऐसा ऊर्ध्वपुण्ड्रको अवश्य, धारण करेऔर ब्रह्मवादि ब्राह्मण और विशेष करके वैष्णव ऊद्धृतासि इस मन्त्रसे मृत्तिका करके ऊर्ध्वपुण्ड्रका धारण करे । इस प्रकारसे चार वर्ण और चार आश्रम तथा चांडाल पर्यंत हरिभक्तवैष्णवोंको ऊर्ध्वपुंड्रकाही धारण करना शास्त्रमें कहा है और आडा तिलक तथा चांदला आदिक तिलकोंको धारण करनेका शास्त्रने मने किया है ॥

प्रश्न–जैसा आग्रह ब्राह्मण और संन्यासी लोक आडा तिलक ऊपर रक्खते हैं तैसा आग्रह दूसरी जातिवाले कोईभी नहीं रखते हैं, इस वास्ते ब्राह्मण और संन्यासियोंको त्रिपुंड्र धारण करनेका कोई शास्त्रमें निषेध किया है कि नहीं ?

उत्तर–सैकडों ग्रंथोंमें त्रिपुंड्रका निषेध किया हुआ है लिख नहीं सकते हैं, परंतु उनमेंसे थोडे ग्रंथोंका प्रमाण इहां हम लिखते हैं । अग्निवैश्यसूत्रमें ऐसा कहा है कि–

त्रिपुण्ड्रधारण निषेध ।

त्रिपुंड्रं ब्राह्मणो विद्वान् लीलयापि न धारयेत् ।
धारयेत्प्रयतः सम्यगूर्ध्वपुंड्रं तु नित्यशः ॥

अर्थ–विद्वान् ब्राह्मण लीला करकेभी त्रिपुंड्र धारण न करे । और प्रयत्न पूर्वक नित्य अच्छी रीतिसे ऊर्ध्वपुंड्रका धारण करे । इस श्लोकमें जो तुशब्द है सो दूसरे आकारके पुण्ड्रको न धारण करनेका कहता है और नित्य शब्द सो दूसरा आश्रम ग्रहण करनेमें आवे तोभी ऊर्ध्वपुण्ड्रही धारण करना ऐसी सूचना करता है ॥

प्रश्न–संन्यासीको त्रिपुंड्र धारण करनेका कौनसा शास्त्र मने करता है ?

उत्तर–सर्व धर्मशास्त्रकी स्मृतियोंमें मनुस्मृति श्रेष्ठ है उसमें मने किया है कि–

ऊर्ध्वपुंड्रं मृदा धार्यं यतीनां च विशेषतः ।
भस्मचन्दनगन्धादीन् वर्जयेद्यावदायुषम् ॥

अर्थ–संन्यासियोंको विशेष करके मृत्तिकासे ऊर्ध्वपुंड्र धारण करना योग्य है और संन्यासी जहांतक जीवे तहांतक भस्म चंदन और गंधादिकोंका त्याग

करे इति ॥ इस श्लोकमें भस्मका त्याग बतानेसे त्रिपुंड्रकाभी त्याग होचुका। क्योंकि त्रिपुंड्र करनेका द्रव्य भस्मही है इससे कारणके अभावसे कार्यकाभी अभाव होचुका। पारमेष्ठीसंहितामें कहा है कि–

सर्वैः श्वेतमृदा कार्यमूर्ध्वपुंड्रं यथाविधि।
ऋजूनि सान्तरालानि अङ्गेषु द्वादशेष्वपि॥
उद्धृतासीति मन्त्रेण वैष्णवेन विशेषतः॥

अर्थ–सबको श्वेत मृत्तिकासे सूधा और बीचमें जगह रक्खकर बारह अंगोंमें ऊर्ध्वपुंड्र विधि प्रमाणसे धारण करने चाहिये। और उद्धृतासि इस मन्त्र करके वैष्णव तो विशेष करके धारण करे॥ विष्णुस्मृतिमेंभी कहा है कि–

उपवीतं शिखाबन्धमूर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम्।
अपवित्रकरं कर्म विप्रस्य विफलं भवेत्॥

अर्थ–जिस ब्राह्मणके उपवीत शिखा तथा ऊभा तिलक नहीं है उस ब्राह्मणका किया हुआ कर्म अपवित्र और निष्फल होता है इस वास्ते यज्ञोपवीत, शिखा और ऊर्ध्वपुंड्र (ठाडा तिलक) जरूर करना चाहिये॥ दक्षस्मृतिमें कहा है कि--

स्नात्वा ललाटे तिलकं मृदा कुर्यादतन्द्रितः।
पाषण्डपतितादीनां दर्शनस्यापनुत्तये॥

अर्थ--पाखंडी और पापियोंके दर्शन करनेसे जो पाप लगता है उस पापकी निवृत्तिके अर्थ स्नान करके ललाटमें मृत्तिकासे तिलक करे आलस न करे अर्थात् पापी पाखंडियोंके देखनेसे जो पाप होता है सो खडे तिलकसे रहित जो पुरुषकोही लगता है उस पापको मिटाना होय तो सूधा तिलक करे॥ भार्गवपुराणमेंभी लिखा है कि--

यज्ञो दानं जपो होमो भोजनं पितृतर्पणम्।
सर्वे भवन्ति विफला ऊर्ध्वपुण्ड्रं विना कृताः॥

अर्थ -प्रथम नित्य ऊर्ध्वपुंड्र तिलक करके पीछे ध्यान, होम, जप, यज्ञ, दान, भोजन, तर्पण, व्रतादिक कर्म करनेसेही ये सकल कर्म सफल होते हैं, तिलक विना सर्व क्रिया निष्फल होती है। जैसे भस्मकी ढेरीमें दीहुई घृतकी आहुति

कोईभी देवको प्राप्त नहीं होती है किंतु निष्फल होती है, वैसे ऊभा तिलक विना पुण्य कर्मभी निष्फलही होता है ॥

प्रश्न–हे भगवन् ! इस लोकमें कबीर पंथिया, नाककी डांडीसे लेके मत्थेके केश पर्यंत मुसल सरीखा डांडा खडा करके उसको खडा तिलक मानकर वैष्णव कहलाते हैं सो उचित है या नहीं ?

उत्तर–वे तो कलिकालके भांड और गुरु तथा शास्त्रसे विमुख हैं । जैसे भांड अनेक प्रकारके सांग अपने मनसेही घरलेता है वैसे सब पंथायी लोक मनमुखी हैं अपने मनमें आवे वैसा सांग रच लेते हैं; शास्त्र और गुरुओंसे वे सब पंथायी विमुख हैं ।

प्रश्न–कौन कौनसे पंथायी गुरु और शास्त्रसे विमुख हैं ।

उत्तर–इस पुस्तकके छः अध्यायमें लिखे हुए सब विमुख हैं ।

प्रश्न–वे तो अपने अपने गुरुओंको मानते हुए मालुम पडते हैं विमुख किस प्रकारसे हैं ?

उत्तर–जो वे गुरुमुखी हैं तो हम पूछते हैं कि, कबीरका गुरु कौन, दादूका गुरु कौन, नानकका गुरु कौन, और उनके गुरु कौन और उनके गुरु कौन हैं ऐसा जब पूछते हैं तब उनके गुरुओंका पता नहीं लगता है । वे पंथोंके चलानेवाले नगुरेही मालुम पडते हैं, इस वास्ते इन विमुखोंका तिलक आदिक वेष कल्पित है. और हमारे श्रीवैष्णव धर्ममें जो जो चिह्न है सो सब वैदिक हैं और यह श्रीवैष्णव धर्म,श्रीमन्नारायणने चलाया है कोई मनुष्योंका चलाया नहीं है इसलिये श्रीमन्नारायणके शिष्योंकी परंपरामें जैसा तिलक चला आता है वैसा तिलक हम कहते हैं सुन–

अनर्थकारी तिलक ।

वर्तुलं तिर्यगच्छिद्रं ह्रस्वं दीर्घं तनूत्तरम् ।
वक्रं विरूपं बद्धाग्रं छिन्नमूलं पदच्युतम् ॥
अशुभ्रं रूक्षमारक्तं तथा नांगुलिकल्पितम् ।
विगंधं चाप्यसंख्यं च पुंड्रमाहुरनर्थकम् ॥

अर्थ–ऐसे तिलक अनर्थके करनेवाले हैं कि, वर्तुलं–अर्थात् गोल चांदला १। तिर्यक्–आडा तिलक २। अच्छिद्रं–बीचमें छिद्रसे रहित ३। ह्रस्वं–छोटा, आधे ललाटमें ४ । दीर्घ–मुखसे अधिकप्रमाण ५। तनूत्तरं–दोनों लकीर भिन्न भिन्न आकार ६ । वक्रं–बांका ७ । विरूपं–सुंदर आकारसे रहित ८। बद्धाग्रं–ऊप-

रसे दोनों लकीर एकठीकरके बांधा हुआ ९ । छिन्नमूलं-सिंहासनरूपी मूलसे रहित १० । पदच्युतं-भगवान्‌के चरणकी आकृतिसे रहित ११ । अशुभ्रं-सफेद मृत्तिकासे रहित । रूक्षं-जलके विना सूखी मृत्तिकासे किया हुआ१३ । आरक्तं-लाल रंगवाला १४ । अनंगुलिकलिपतं-अंगुली विना शलाकादिकसे किया हुआ १५ । विगंधं-कुंकुमकी श्रीसे रहित १६ । असंख्यं-संख्यासे रहित १७ ॥ इन सतरह तिलक अनर्थोंके करनेवाले हैं ॥ और महोपनिषदमें लिखा है कि-

ऊर्ध्वपुण्ड्रधारककी प्रशंसा ।

धृतोर्ध्वपुंड्रः परमेशितारं नारायणं सांख्ययोगाधिगम्यम् ।
ध्यात्वा विमुच्येत नरः समस्तैः संसारपाशैरिह चैति विष्णुम् ॥

अर्थ--ऊर्ध्वपुंड्र तिलकोंको धारण करके सांख्य और योगशास्त्रसे जाननेमें आवें ऐसे परमेश्वर नारायणका ध्यान करके इस जन्ममेंही मनुष्य संसारपाशसे मुक्त होता है और विष्णुको पाता है इति ॥

प्रश्न-कितनेक ब्राह्मण ऐसा कहते हैं कि, संध्यावंदन यज्ञ अग्निहोत्र इत्यादिक जितने वैदिक कर्म हैं उनमें आडा तिलक ब्राह्मणोंको करना चाहिये ॥

उत्तर-वे ब्राह्मण अपने मनसे ऐसी बातें बनाकर गप्पा मारते हैं परंतु हारीत ऋषिने ऐसे मिथ्या भाषण करनेवाले ब्राह्मणोंको ऐसी शिक्षा कहीहै कि-

ऊर्ध्वपुंड्रविहीनस्तु संध्याकर्म समाचरेत् ।
तत्सर्वं राक्षसैर्नीतं नरकं स च गच्छति ॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं श्रुतिनोदितम् ।
ऊर्ध्वपुंड्रविहीनस्य सर्वं तन्निष्फलं भवेत् ॥

अर्थ-जो कोई ब्राह्मण ऊर्ध्वपुंड्रोंको नहीं धारण करके संध्याकर्म करे तो उसके संध्याकर्मको राक्षस ले जाते हैं और वह संध्याकर्म करनेवाला नरकमें जाता है ॥ नित्य, नैमित्तिक, काम्यकर्म, वेदमें ये तीन प्रकारकेही कर्म कहे हैं, उनमें अग्निहोत्रादि नित्य कर्म हैं, स्वर्गकी कामनासे यज्ञादिक कर्म करे सो काम्य कर्म है, अपने माता पिता आदिकोंके निमित्तसे द्वादशाहसंवत्सरी श्राद्धादिक कर्म करे सो नैमित्तिक कर्म है ऐसे तीन प्रकारके कर्म वेदभगवानने कहे हैं ॥ जो ब्राह्मण ऊभा तिलकको नहीं धारण करके

इन तीन प्रकारके वैदिक कर्मोंको करे तो उस ब्राह्मणके वे तीनों कर्म निष्फल होते हैं इति ॥ और ब्रह्माण्डपुराणमें भगवत् वचनभी ऐसा है कि–

> यः करोत्यूर्ध्वपुण्ड्रं तु संध्यावाहनकर्मसु ।
> तेनाहं सुलभो ब्रह्मन्नेकास्मिन्नेव जन्मनि ॥
> यावज्जीवमिदं पुण्यमूर्ध्वपुण्ड्रं दधाति यः ।
> जन्मन्यनन्तरे मुक्तिं सद्यः प्राप्नोति दुर्लभाम् ॥
> मदाराधनकाले च सदा यज्ञादिकर्मणि ।
> अवश्यं धारयेदेतदूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजोत्तमः ॥

अर्थ–हे ब्रह्मन् ! जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदिक जो कोई मनुष्य संध्या आवाहन कर्ममें ऊभा तिलकोंको धारण करता है उस पुरुषको मैं एक जन्ममेंही प्राप्त होता हूं और जो कोईभी मनुष्य जहांतक जीवे तहांतक ऊभा तिलकोंका धारण करता है सो प्राणी इस जन्मके पीछे तत्काल दुर्लभ मुक्तिको प्राप्त होता है । इस कारणसे मेरे भजन पूजादि आराधन कालमें तथा यज्ञ होम तर्पण दान आदिक कर्मोंमें जरूर ऊभा तिलकोंका धारण करे इति ॥

प्रश्न–ब्राह्मणलोक ऐसा कहते हैं कि, जब हम संध्या करने बैठते हैं, तब हम प्रथम ऊभा तिलक करके तिसके ऊपर आडा तिलक करते हैं, त्रिपुंड्र सहित ऊर्ध्वपुंड्रोंके धारण करनेसे सन्ध्या आदिक कर्म निष्फल नहीं होते हैं, किंतु सफल होते हैं ।

उत्तर–जब वे ब्राह्मण ऐसा कहते हैं तब तो वे ब्राह्मण बडे भारी दंडके अधिकारी हुये । स्कंदपुराणके तेवीसवां अध्यायमें लिखा है कि–

> ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुंड्रं यः कुरुते स नराधमः ।
> मुक्त्वा विष्णुपुरं रम्यं स याति नरकं ध्रुवम् ॥
> त्रिपुण्ड्रं यस्य विप्रस्य ऊर्ध्वपुण्ड्रे प्रदृश्यते ।
> तं दृष्ट्वाप्यथवा स्पृष्ट्वा सचैलं स्नानमाचरेत् ॥

अर्थ–जो पुरुष ऊभा तिलकको प्रथम करके उसके ऊपर आडा तिलक करता है वह पुरुष रमणीक श्रीवैकुंठपुरको छोडके निश्चय नरकमें जाता है ॥

ऊर्ध्वपुंड्रको प्रथम करके ऊपरसे त्रिपुंड्रको जो करता है उसको कुछभी शुभ फल नहीं मिलता है किंतु नरकही मिलता है इस वास्ते नरककी इच्छा हो उस पुरुषको ऊभा ऊपर आडा करना चाहिये, दूसरोंको नहीं करना और जिस विप्रके ऊभा तिलकमें आडा तिलक दीखता हो उस विप्रको देखे अथवा स्पर्श करे तो वस्त्रों सहित स्नान करे। इससे उसका क्या लाभ हुआ उलटी नीचपदवी मिली इति॥

प्रश्न–ब्राह्मण आडा तिलकही अकेला करे तो क्या दोष है?

उत्तर–जो ब्राह्मण होकर आडा तिलक करे तो पाप लगता है। वसिष्ठस्मृति धर्मशास्त्रमें लिखा है कि–

ब्राह्मणानां मृदा धार्यं न भस्म न च चंदनम्।
यदि बुद्ध्या च बिभृयात्प्रायश्चित्ती भवेद्धि सः॥

अर्थ–ब्राह्मणोंको मृत्तिकासे ऊभा तिलक करना चाहिये। भस्म और चंदनभी नहीं धारण करना। जो जान पूछके भस्म और चंदनका धारण करे तो वह ब्राह्मण प्रायश्चित्तवाला होता है। इति॥

प्रश्न–ब्राह्मण ऐसा कहते हैं कि विष्णुका भक्त होय सो ऊभा तिलक करे, हम तो शिवके भक्त हैं इसालिये हमारे शिवको प्रसन्न करनेवास्ते आडा तिलकही करना चाहिये॥

उत्तर–शास्त्रमें शिवको प्रसन्न करनेकी आज्ञा ब्राह्मणोंको नहीं है किंतु शिवको प्रसन्न करनेका शूद्रोंको है। सो हारीतस्मृतिमें लिखा है कि–

रुद्रार्चनं त्रिपुण्ड्रस्य धारणं यत्र दृश्यते।
शूद्राणां च विधिः प्रोक्तो न द्विजानां कदाचन॥

अर्थ–रुद्रका पूजन और आडा तिलकका धारण जहां शास्त्रमें दीखता है वहां शूद्रोंका विधि कहा है। कोई कालमेंभी वह विधि द्विजोंके वास्ते नहीं है इति॥

प्रश्न–पुराणोंमें आडा तिलक करनेका महिमा बहुत ठिकाने लिखा है सो क्या असत्य है?

उत्तर–पुराणोंके वचन सत्य करके हम मानते हैं परंतु जिस जिस पुराण और शास्त्रमें, शिवके स्तोत्र, पूजा, आराधन और भस्मका आडा तिलक इत्यादिकोंको जो लिखे हैं वे क्षत्रिय वैश्य और शूद्रोंके वास्तेही लिखे हैं ऐसा वसिष्ठजी महाराज कहते हैं कि–

रुद्रार्चनं त्रिपुंड्र च यत्पुराणेषु गीयते ।
क्षत्रविट्शूद्रजातीनां नेतरेषां तदुच्यते ॥
ऊर्ध्वपुंड्र विना यस्य शरीरं भवति द्विज ।
तं दृष्ट्वा गगने सूर्यो निरीक्ष्यः साधुभिः सदा ॥

अर्थ–रुद्रका पूजन और आडे तिलकोंका धारण जो पुराणोंमें गान किया है सो क्षत्र विट् और शूद्रजातिवालोंकेवास्तेही गान किया है। दूसरे ब्राह्मणादिकोंके लिये नहीं कहा है। जिस पुरुषका शरीर ऊर्ध्वपुंड्रके धारण किये विना रहता है उस पुरुषको देखकर साधुजनोंको सदा गगनमें सूर्य देवका दर्शन करना चाहिये, तब ऊर्ध्वपुंड्रसे रहित पुरुषके दर्शनका पाप मिटता है॥ विष्वक्सेनसंहितामें कहा है कि–

जटिला मुंडिताश्चैव तिर्यक्पुंड्रधरास्तथा ।
भविष्यंति त्रयीबाह्या मिथ्याज्ञानप्रलापिनः ॥
कपालकेशभस्मास्थिशुक्तिपाषाणधारिणम् ।
त्रिपुंड्रधारिणं विप्रं चांडालमिव संत्यजेत् ॥
अग्निदं गरदं चैव लिंगपाषाणधारिणम् ।
त्रिपुंड्रधारिणं विप्रं चांडालमिव संत्यजेत् ॥

अर्थ–जटावाले और (मुंडित) विना चोटीके, आडे तिलकोंके धारण करनेवाले तथा शास्त्र प्रमाणसे रहित मिथ्या ज्ञानके कहनेवाले ये सब वेदके अधिकारी नहीं हैं। और कपाल, केश, भस्म, हाड, छीप, पाषाण, आडा तिलक, इन सातको धारण करनेवाले विप्रको चांडालकेसदृश त्याग करे। और अग्नि लगानेवाला, जहर देनेवाला, शिवलिंगको धारण करनेवाला, पाषाणकी मालाको धारण करनेवाला तथा आडा तिलकका धारण करनेवाला विप्रको चांडालकी माफक त्याग करे॥ इस रीतिसे ऊपर लिखे हुए कर्मोंको करनेवाला कोईभी हो परंतु वह शूद्र और चांडालत्वको प्राप्त हो वेदसे बाहर हो जायगा॥ इसलिये भस्म, रुद्राक्ष, त्रिपुंड्र, रुद्रपूजन आदि वेदबाह्यचिह्नोंको जो धारण करता है वह ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य नहीं किंतु शूद्रही है इति। इसमें जो हमारा सिद्धांत मनमें नहीं आता होय तो हारीतऋषिके वचनको देखो कि–

ब्राह्मणः श्रोत्रियो विद्वान् भस्मधारी भवेद्यदि ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वं नरकं चाधिगच्छति ॥

अर्थ–जो कोई ब्राह्मण वेदवेदांतका जाननेवालाभी हो परंतु भस्म धारण करे तो जीवत्ही शूद्रत्वको प्राप्त होता है और जब मरता है तब नरकमें जाता है इति ॥ क्योंकि–

"तमसा भस्मरजसा गंधः सत्त्वेन मृत्तिका।"

भस्म तमोगुणी द्रव्य है और चंदनादिक गंध रजोगुण द्रव्य है तथा मृत्तिका सत्त्वगुणी द्रव्य है। इससे मोक्षकी कामनावाला तामस और राजसका त्याग करे। ऐसा विष्णुधर्मोत्तरमेंभी लिखा है कि–

सात्त्विकस्तूत्तमो धर्मो राजसो मध्यमः स्मृतः ।
तामसस्त्वधमो ज्ञेयस्तस्मात्सात्त्विकमाचरेत् ॥

अर्थ–सात्विक तो उत्तम धर्म है। राजस मध्यम धर्म कहा है. तथा तामस अधम धर्म जानना। इस कारण मुमुक्षु, सात्त्विकधर्मका आचरण करे।.इति ॥ रुद्रका अर्चन, भस्मका धारण, रुद्राक्ष, त्रिपुंड्रका धारण, ये सब तामसी ग्रन्थ शिवपुराण आदिकोंमेंही कहे हुये हैं; विष्णुपुराण भागवत आदिक सात्विक ग्रंथोंमें इनका नाममात्रभी धारण करनेका नहीं है। इन तामस कर्मोंकी निंदा वराहपुराणमें रुद्रने आपही की है कि--

यद्वेदबाह्यं कर्म स्यान्मामुद्दिश्योपसेव्यते ।
तद्रौद्रमिति विख्यातं कनिष्ठगतिदं नृणाम् ॥
यद्धीनतपसा युक्तं केवलं तामसं च यत् ।
तद्दुर्गतिप्रदं नृणामिह लोके परत्र च ॥

अर्थ–जो कर्म मेरा नाम लेके मेरे वास्ते करता है सो कर्म वेदबाहर होता है। और वह कर्म मनुष्योंको नीच गतिका देनेवाला है। और वह कर्म मेरा उद्देशसे करते हैं इसलिये उस कर्मका नाम रौद्र ऐसा विख्यात है ॥ और जो कर्म तामस तपकरके युक्त है और जो केवल तामस कर्म है वह कर्म मनुष्योंको इस लोकमें तथा परलोकमें दुर्गतिका देनेवाला है ॥ इस रीतिसे रुद्रने अपने संबंधी कर्मको तामसी और दुर्गतिका देनेवालाभी कहा है इति ॥ शंखस्मृतिमेंभी लिखा है कि–

दीपाग्निं दीपतैलं च भस्म चास्थि रजस्वलाम् ।
एतानि ब्राह्मणः स्पृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ॥

अर्थ--दीपकका अग्नि, दीपकका तैल, भस्म, हाड और रजस्वला स्त्री । इनका ब्राह्मण स्पर्श करके अंगके वस्त्रोंसहित जलमें स्नान करे ॥ याज्ञवल्क्यस्मृतिमेंभी कहा है कि--

केशभस्मतुषाङ्गारकपालेषु च संस्थितम् ॥

केश, भस्म, शालिके तुषके कोयला, माथाकी खोपरी इनमें पडी हुई वस्तुका त्याग करना ॥ और याज्ञवल्क्य स्मृतिका टीकाकार विज्ञानेश्वरनेभी लिखा है कि--

शैवान्पाशुपतान् स्पृष्ट्वा लोकायतिकनास्तिकान् ।
विकर्मस्थान् द्विजान् शूद्रान् सवासा जलमाविशेत् ॥

अर्थ-शिवधर्मवाले, पाशुपतधर्मवाले, लोकायतिकनास्तिक, निषिद्ध कर्म करनेवाला द्विज तथा शूद्र, इनको स्पर्श करके अपने अंगके कपडा सहित स्नान करे । आदित्यपुराणमें गौतमऋषिका शाप शिवभक्तोंको हुआ है कि--

त्रिपुण्ड्रधारिणो नित्यं भस्मोद्धूलनतत्पराः ।
भविष्यथ त्रयीबाह्या मिथ्याज्ञानप्रलापिनः ॥

अर्थ-गौतम कहते हैं कि, नित्य आडा तिलक करनेवाले और नित्य भस्म चुपडनेमें तत्पर और मिथ्या ज्ञानका बकवाद करनेवाले ऐसे तुम शैव लोग वेदसे बाहर होवोगे। ऐसा शिव धर्मको गौतमका शाप है ॥

वादीप्रश्न--हे विशिष्टाद्वैतसिद्धांति ! तुमने अपने श्रीवैष्णव धर्मके ऊर्ध्वपुंड्रोंका अनेक श्रुति स्मृति और पुराणोंके वचनोंसे स्थापन किया सो ठीक है परंतु हमारे शिवधर्मके त्रिपुंड्रोंको और भस्मको अत्यंत निर्मूल उडाते हो सो नहीं बने, क्योंकि भस्मका महिमा धर्मशास्त्रमें लिखा है कि--

मद्यं पीत्वा गुरुदारांश्च गत्वा स्तेयं कृत्वा ब्रह्महत्यां च कृत्वा । भस्मच्छन्नो भस्मशय्यां शयानो रुद्राध्यायी मुच्यते सर्वपापैः ॥

अर्थ--मदिराका पान, गुरुकी पत्नीका गमन, सुवर्णकी चोरी और ब्रह्महत्या, इन बडे भारी चार पापोंको करनेवाला पुरुष अपने शरीरमें भस्मका लेप करके और भस्मकी शय्यामें सोता हुआ रुद्राध्यायीका जो पाठ करे, तो इन चार प्रकारके सब पापोंसे मुक्त हो जाय, ऐसा भस्मका माहात्म्य शातातपस्मृतिमें कहा है ॥

उत्तर–वाहाजी धर्म शास्त्रीबाबा ! हम पूछते हैं मथुराका वृत्तांत और तुम कहते हो कहते हो कांचीका वृत्तांत। क्योंकि हमारा कहना तो तिलकसंबंधी है और तुम्हारा कहना ब्रह्महत्यादिक पापसंबंधी है, क्योंकि इस श्लोकमें ऐसा कहा है कि जो कोई पुरुष मदिराको पीकर पीछे भस्मलेपन करके भस्ममें पडा रहे और गुरुदारागमन, चोरी, ब्रह्महत्या इन पापोंको करके पीछे भस्मका लेप करे और भस्ममें सोवे। और जिस पुरुषने ब्रह्महत्यादि पाप नहीं किये हैं, सो पुरुष किस वास्ते भस्मका लेप करे और भस्ममें सोवे। जैसे धर्मशास्त्रमें लिखा है, कि जो मनुष्य चोरी आदिक गुन्हाको करके पीछे राजाकी शिक्षासे कैदमें जाता है, सो मनुष्य चोरी आदिक पापोंसे छूट जाता है ॥ और जिसने चोरी नहीं की है सो नर कैदमें किस वास्ते जायगा ? जैसे याज्ञवल्क्य स्मृतिमें लिखा है कि जो पुरुष ब्रह्महत्या करताहै, वह पुरुष मनुष्यकी खोपरी गलेमें डालके बारह वर्षपर्यंत भिक्षा मांग खावे और तीर्थयात्रा करते फिरे तो ब्रह्म-हत्यासे छूटेगा यहां ब्रह्महत्यारेकोही मनुष्यकी खोपरी गलेमें पहिरना कहा है सबको नहीं कहा है। तहां कोई तुम्हारा सरीखा धर्मशास्त्री ऐसा कहे कि, सब कोईको मनुष्यकी खोपरीकी माला पहिरनी चाहिये,सो कहना मूर्खपनेका सूचक है और ऐसाभी कहा है कि, मदिरापान करनेवालेके मुखमें लोहेका रेतीको तेलमें उबालकर गेरे, और सुवर्णकी चोरी करनेवालेको राजा मुसलसे मार डाले तो उनका पाप छूट जाता है। ऐसे भस्मका लेप और भस्ममें सोना यह ब्रह्महत्यारे चोरटे गुरुस्त्रीगामी इनका काम है सब कोईका यह कर्म नहीं है ॥ जैसे जिस ब्रह्मचारीका स्वप्न आदिकमें धातु स्खलन हुआ हो उस ब्रह्मचारीको गधेका पूंछ पकडावे तो वृथा धातु गिरनेका दोष मिट जाता है, इहांभी विचार करो कि, गर्दभको छूनेसे स्नान करना कहा है परंतु ब्रह्मचारीका धातु स्खलन दोषकी निवृत्तिकेवास्ते गर्दभके पूंछका स्पर्श ब्रह्म-चारीकामात्र कहा है सबको नहीं वैसे भस्मका लेपन और भस्ममें शयन तथा रुद्राध्यायीका पाठ ये सब कर्म करना ब्रह्महत्यारे चोरटे आदिकोंको कहा है सब किसीको नहीं इति ॥

वादीप्रश्न–अथर्वणवेदकी शिरोपनिषद्में ऐसा लिखा है । “ अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म ” इत्यादि मंत्रसे भस्म ग्रहण करना कहा है ।

उत्तर--“व्रतमेतत्पाशुपतम् ” इस रीतिसे यह मंत्र पाशुपत व्रतके विधिके अंगका है, ऐसा यह प्रकरण देखनेसे स्पष्ट मालूम पडता है इसवास्ते पाशुपतव्रत-वाला पुरुषही जटा रखे भस्म धारण करे और पाशुपत व्रतवाले माथेसे स्नानभी नहीं करते हैं इत्यादिक अनेक कारणोंसे शैव, पाशुपत नास्तिक शूद्र आदि-कोंको स्पर्शकरनेसे विज्ञानेश्वर मिताक्षरावालेने वस्त्रसहित स्नान करनेका कहा है । इसवास्ते पाशुपत व्रतवालेही भस्म और जटा धारण करते हैं दूसरे नहीं । जैसे सौत्रामणि यज्ञ करनेवालाही मदिरापान करे दूसरा कोई नहीं करे । और जैसे कांसाके पात्रकीही शुद्धि भस्मसे करनी शास्त्रमें कही है, तो क्या तांबा पीतल आदिक सब धातुओंकी शुद्धि भस्मसे करनी चाहिये? किंतु नहीं करनी चाहिये, तैसे भस्म, त्रिपुंड्र, जटा, रुद्रार्चन इत्यादिक पाशुपत व्रतमेंही कहे हैं दूसरे सब शुभ कर्मोंमें उनका निषेध है ॥ और शिवदीक्षाको भृगुऋ-षिका शापभी है--

भवव्रतधरा ये च ये च तान् समनुव्रताः ।
पाषंडिनस्ते भवंतु सच्छास्त्रपरिपंथिनः ॥
नष्टशौचा मूढधियो जटाभस्मास्थिधारिणः ।
विशंतु शिवदीक्षायां यत्र दैवं सुरासवम् ॥

अर्थ--शिवके व्रतको धारण करनेवाले और उन शिवव्रतवालोंका आश्रय करके रहनेवाले ऐसे तुम सब पाखंडी, और श्रुति स्मृति आदिक सब शास्त्रके वैरी, जटा, भस्म, हाडोंकी माला, आदि धारनेवाले और पवित्रतासे रहित ऐसे मूढ बुद्धिवाले तुम लोग शिवदीक्षामें प्रवेश करो जिस शिवदीक्षामें मदि-राका पानही परम दैवत है इस रीतिसे भृगुने शिवव्रतवालोंको शाप दिया है । सो भागवतके चौथे स्कंधमें देख लेना । और “महर्षीणां भृगुरहं” महर्षि-योंमें भृगु ऋषि मेरा स्वरूप है। ऐसा गीतामें भगवान्ने कहा है । इसलिये भृगु भगवान्का रूप होनेसे उनका दिया हुआ शाप मिथ्या नहीं है । किंतु सत्य है इति ॥ इस कारणसेही भस्म, त्रिपुंड्र, रुद्रपूजन आदिक शिवधर्मके चिह्नोंको सज्जन पुरुष धारण नहीं करते हैं क्योंकि, शिव धर्म गौतम भृगु आदिकोंके शाप करके दूषित है, और श्रीवैष्णवधर्म तो सकल दूषणोंसे रहित और हारीत, याज्ञवल्क्य, व्यास, पराशर, देवल, भृगु, सनक, शांडिल्य, नारद,

शुक, शौनक, मरीचि, दक्ष, गौतम, वसिष्ठ आदिक परम शिष्टोंकरके मान्य है । और श्रीवैष्णवधर्मके ऊर्ध्वपुण्ड्र, तप्तमुद्रा, तुलसीमाला आदिक सब चिह्न निर्दोष और वेदविहित हैं. इस कारण सन्ध्या, पूजन, तर्पण, श्राद्ध, होम, दान, यज्ञ, व्रत, तीर्थ, जप, भोजन इत्यादिक सकल कर्मोंमें श्रीसहित ऊर्ध्वपुण्ड्रोंकाही धारण करना वेदादिक सद्ग्रन्थोंमें कहा है इति ॥

प्रश्न–हे देशिक! ऊर्ध्वपुण्ड्रोंमें कौन कौनसी श्रीयोंका कौन २ पुण्ड्रोंमें धारण करना चाहिये उन द्वादश श्रीयोंका भिन्न २ नाम कृपा करके कथन करो ।

श्रीचूर्णधारणविधि ।

उत्तर–श्रीदेवी प्रथमं नाम द्वितीयममृतोद्भवा ।
तृतीयं कमला प्रोक्ता चतुर्थं चंद्रशोभिता ॥
पंचमं तु वरारोहा षष्ठं तु हरिवल्लभा ।
सप्तमं विष्णुपत्नी स्यादष्टमं वैष्णवी तथा ॥
नवमं शार्ङ्गिणी प्रोक्ता देवदेवी दशैव च ।
एकादशं तु लक्ष्मी स्याद्द्वादशं सर्वसुंदरी ॥
एवं ध्यात्वान्तरालेषु हरिद्रां धारयेच्छ्रियम् ॥

अर्थ–श्री १, अमृतोद्भवा २, कमला ३, चंद्रशोभिता ४, वरारोहा ५, हरिवल्लभा ६, विष्णुपत्नी ७, वैष्णवी ८, शार्ङ्गिणी ९, देवदेवी १०, लक्ष्मी ११, सर्वसुंदरी १२ इन द्वादश श्रीयोंको चिंतन करके द्वादश तिलकोंके मध्यमें अनुक्रमसे श्रीयोंका धारण करे. अब आगे द्वादश श्री धारण करनेके मन्त्र और उन श्रीयोंको पधरानेके स्थान तथा उन श्रीयोंके भिन्न भिन्न नाम क्रमसे नीचे लिखाजाता है कि–

१ श्रियै नमः । इस मन्त्रसे ललाटमें श्रीका. धारण करे.
२ अमृतोद्भवायै नमः । इस मन्त्रसे उदरमें अमृतोद्भवा,
३ कमलायै नमः । इस मन्त्रसे हृदयमें कमला,
४ चंद्रशोभितायै नमः । इस मन्त्रसे कंठमें चंद्रशोभिता,
५ वरारोहायै नमः । इस मन्त्रसे दक्षिण कुक्षिमें वरारोहा,
६ हरिवल्लभायै नमः । इस मन्त्रसे दक्षिण बाहुमें हरिवल्लभा,
७ विष्णुपत्न्यै नमः । इस मन्त्रसे दक्षिणस्कंधमें विष्णुपत्नी,

८ वैष्णव्यै नमः । इस मन्त्रसे वामकुक्षिमें वैष्णवी,

९ शार्ङ्गिण्यै नमः । इस मन्त्रसे वामबाहुमें शार्ङ्गिणी,

१० देवदेव्यै नमः । इस मन्त्रसे वामस्कंधमें देवदेवी,

११ लक्ष्म्यै नमः । इस मन्त्रसे पीठमें लक्ष्मी,

१२ सर्वसुंदर्यै नमः । इस मन्त्रसे कंठके पीछे सर्वसुंदरी नामकी श्रीको धारण करे इति.

प्रश्न–ऊर्ध्वपुण्ड्रोंके बीचमें केशर, कुंकुम, सिंदूर, हिंगुल आदिक द्रव्योंमें कौनसा द्रव्य श्रीके धारण करने वास्ते शास्त्रमें श्रेष्ठ माना है ॥

उत्तर–केशर, सिन्दुर, हिंगुल, आदिक कोईभी द्रव्य श्रीके धारण करनेको शास्त्रमें नहीं कहे हैं किन्तु हरिद्राका चूर्ण रूप कुंकुमकी श्रीकाही धारण शास्त्रोंमें कहा है । भारद्वाशसंहितामें कहा है कि–

हारिद्रेण तु चूर्णेन कुंकुमेन सुगन्धिना ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु लक्ष्मीस्थानं प्रकल्पयेत् ॥

अर्थ–सुगन्धिवाला हरिद्राका चूर्णरूप कुंकुम करके ऊर्ध्वपुण्ड्रके मध्य छिद्रमें लक्ष्मीका धारण करे । जैसे मन्दिर बनाकर उसमें देवका स्थापन न करे तो वह देवमंदिर नहीं कहाजाता है तैसे तिलक है सो हरिका मन्दिर है उसमें लक्ष्मीका स्थापन जरूर करना चाहिये ।

प्रश्न–तिलकको हरिमंदिररूप करके कौन शास्त्रमें वर्णन किया है ?

उत्तर–पद्मपुराणमें कहा है कि–

मध्यछिद्रेण संयुक्तं तद्धि वै हरिमंदिरम् ।

मध्यमें छिद्र करके युक्त ऐसा जो खडा तिलक है सो निश्चय करके हरिका मंदिर है ॥ और जो तिलकोंके बीचमें शास्त्रने छिद्र रखाये हैं वे छिद्र श्रीयोंका धारण करने वास्तेही रखाये हैं दूसरा कुछभी प्रयोजन नहीं है ॥

प्रश्न–बिना छिद्रके ही तिलक करे तो क्या होय ?

उत्तर–जो पुरुष तिलकोंके मध्यमें जगह नहीं रखता है उस पुरुषको लक्ष्मी और नारायण त्याग करते हैं क्योंकि बीचमें जगह विना लक्ष्मी नारायण कहां विराजे ? पद्मपुराणमें लिखा है कि–

निरंतरालं यः कुर्यादूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजाधमः ।
स हि तत्र स्थितं लक्ष्म्या सह विष्णुं व्यपोहति ॥

अच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं तु ये कुर्वंति द्विजाधमाः ।
तेषां ललाटे सततं शुनः पादो न संशयः ॥

जैसे मंदिर बनाकर उसको भीतरसे पोला नहीं रक्खा हो तो देव कहां विराजें इसलिये छिद्र रहित तिलकके करनेसे लक्ष्मी नारायणका त्यागरूप एक तो दोष बडा भारी है और दूसरा यह दोष है कि, छिद्ररहित तिलकोंको करनेवाला पुरुषके ललाटमें श्वानके चरणोंका वास निरंतर रहता है । इस कारण छिद्रसहित तिलकोंका धारण करके उनमें कुंकुमकी श्रीरूप लक्ष्मीका जरूर स्थापन करना चाहिये ॥

प्रश्न--द्वादश तिलकोंमें द्वादश श्रीयोंका मंत्र करके धारण करनेका कौन शास्त्रमें लिखा है ?

उत्तर--अत्रिस्मृति धर्मशास्त्रमें लिखा है कि--

ततो दिव्यं च हारिद्रं समोदतुलसीदलम् ।
मन्त्रेण धारयेच्चूर्णं पुण्ड्रेषु द्वादशेषु च ॥

अर्थ--द्वादश तिलकोंका धारण करके पीछे तुलसीदलकी सुगंधिवाले दिव्य हलदीके कुंकुमको मंत्र करके द्वादश तिलकोंमें धारण करे ऐसा यह विधि वचन है अर्थवाद वचन नहीं है ॥ अत्रिस्मृतिमेंभी कहा है कि--

ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु दिव्यचूर्णं च धारयेत् ।
श्रीकरं विजयं पुण्यं सर्वदोषप्रणाशनम् ॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु रजनीचूर्णमुत्तमम् ।
लक्ष्मीरूपधरं नित्यमन्यद्द्रव्यं न धारयेत् ॥
विष्णुरूपेण संस्पृष्टं तच्चूर्णं शिरसा वहेत् ।
तस्याशुभानि नश्यंति पुण्यभागी भवेन्नरः ॥

अर्थ--ठाढे तिलकके बीचमें लक्ष्मीका करनेवाला तथा पुण्योंकी वृद्धिका करनेवाला तथा सर्व दोषोंका अत्यंत नाश करनेवाला हलदीका दिव्य चूर्णको धारण करे और ऊर्ध्वपुंड्रके मध्यमें लक्ष्मीके रूपको धरनेवाला हलदीका चूर्णको नित्य धारण करे परंतु सिंदूर हिंगुलू केशर आदिक दूसरे द्रव्योंको धारण न करे

क्योंकि, विष्णुकी मूर्ति करके स्पर्श किया हुआ कुंकुमको शिरसे जो पुरुष धारण करता है उस पुरुषके समस्त पाप नाश हो जाते हैं और वह पुरुष पुण्यका भागी होता है। अत्रिमुनि कहते हैं कि–

देवदेवांगसंस्पृष्टं चूर्णं पात्रे प्रगृह्य च।
हारिद्रचूर्णं भक्तेभ्यो विप्रादिभ्यः प्रदीयताम्॥

अर्थ–देवोंके देव विष्णुके अंग करके स्पर्श किया हुआ हलदीका चूर्णको पात्रमें ग्रहण करके उस हलदीके चूर्णको विप्र क्षत्रिय वैश्य और शूद्र आदिक हरिभक्तोंको देवै। अर्थात् कुंकुमसे विष्णुकी मूर्तिका मंजन करके पीछे उस प्रसाद रूप कुंकुमको हरिभक्तोंको देवे। इति॥

प्रश्न–दर्पणमें देखे विना तिलक नहीं हो सकता है इस वास्ते दर्पणमें मुख देखके तिलक करनेकी शास्त्रमें कहा है कि नहीं ?

उत्तर–दर्पणमें मुख देख सुंदर मनोहर तिलक करे। ऐसा सनत्कुमारसंहितामें कहा है कि–

विलोक्य दर्पणं भक्त्या ऊर्ध्वपुण्ड्रं मनोहरम्।
कुर्यान्मङ्गलमाकांक्षन् हरिद्राचूर्णसंयुतम्॥
ऊर्ध्वपुंड्रं मृदा धार्यं सच्छिद्रं सौम्यमेव च।
तदलंकरणार्थाय हरिद्रां धारयेच्छ्रियम्॥

अर्थ–भक्तिभावसे दर्पणमें मुख देखकर मंगलकी आकांक्षा करता हुआ हलदीके कुंकुम सहित सुंदर मनोहर छिद्र सहित और रमणीक ऊर्ध्वपुंड्र मृत्तिका करके धारण करना चाहिये और उस तिलकके भूषणके अर्थ हलदीकी श्रीको धारण करे॥

प्रश्न–श्री करनेका कुंकुम किस धातुके पात्रमें रखना चाहिये अर्थात् सोना चांदी, तांबा, पीतल, लोह आदिक धातुओंकी डिब्बीमें रखना कि काष्ठकी डब्बीमें रक्खे ?

उत्तर–पंचरात्रशास्त्रमें कहा है कि–

न सुवर्णादिभिः कुर्यान्न दार्वं बिल्वमेव वा।
नारिकेलफलस्यैव श्रीचूर्णपात्रमुच्यते॥

कृत्वा करण्डं बिल्वस्य फले पक्के मनोहरे।
हारिद्रं पूरयेच्चूर्णं धारयेद्विष्णुप्रीतये॥
विष्णुगात्रात्परिभ्रष्टं तच्चूर्णं तु ललाटके।
ब्रह्महत्यादिको दोषस्तत्क्षणादेव नश्यति॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु अन्यद्द्रव्यं न धारयेत्।
विष्णुबिंबेन संस्पृष्टं हारिद्रं धारयेद्द्विजः॥

अर्थ–सोना चांदी तांवा पीतल लोह आदिक धातुओंकापात्र श्रीके वास्ते न करे तथा काष्ठकाभी पात्र न करे। किंतु श्रीचूर्णका पात्र नारियल और बिल्व पका हुआ और रमणीक फलका पात्र बनाकर उसमें हलदीका चूर्ण पूरे और विष्णुकी प्रीतिके अर्थ धारण करे॥ विष्णुके गात्रका मंजन करके लिया हुआ चूर्णको ललाटमें धारण करनेसे ब्रह्महत्या, गोहत्या, स्त्रीहत्या, गर्भ हत्या आदिक अनेक दोष तत्काल नाश होजाते हैं॥ इस कारणसे ऊभा तिलकमें कुंकुमकी श्री विना दूसरा द्रव्यको न धारण करे। किंतु विष्णुकी मूर्तिका स्पर्श कियाहुआ हलदीका कुंकुमकोही द्विज धारण करे॥

प्रश्न–तिलकोंमें कुंकुमकी श्रीको धारण करनेसे क्या होता है?

उत्तर–विष्णुधर्मोत्तर (विष्णुपुराणका उत्तर भाग) सो महाप्रमाणिक धर्मशास्त्ररूप है उसमें कहा है कि–

अभिषिक्तं तु यच्चूर्णं विष्णुबिंबे तु यो नरः।
हारिद्रं धारयेन्नित्यं सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥

अर्थ–विष्णुके शरीरमें अर्पण किया हुआ हलदीका चूर्णको जो पुरुष नित्य धारण करता है वह पुरुष हजारों ब्रह्महत्याओंका पापको नाश करनेवाला अश्वमेध यज्ञके फलको प्राप्त होता है॥ इति श्रीधारणविधिः॥

प्रश्न–नासिका मूल किसको कहते हैं॥

उत्तर–भरद्वाजसंहितामें लिखा है कि–

नासिकामूलनिर्णय।

"नासिकायास्त्रयो भागं नासिकामूलमिष्यते"

नासिकाके तीसरे भागको नासिकामूल कहा है॥

प्रश्न–वाम हस्तसे तिलक करे या नहीं और दूसरे मनुष्यसे अपने अंगोंमें करावे कि नहीं ?

उत्तर–ब्रह्मरात्रग्रंथमें लिखा है कि–

नाचरेद्वामहस्तेन नखैरपि न कारयेत् ।
आत्मनैवात्मनोङ्गेषु नेतरेषां कदाचन ॥

अर्थ–वाम हस्तसे और नखोंसेभी तिलक न करे और आपही आपके शरीरमें तिलक करे और दूसरोंसे न करावे । इति ॥

प्रश्न–वेदांतके पढे हुये ऐसा कहते हैं कि, हम आत्मज्ञानीयोंको तिलकसे क्या प्रयोजन है ?

उत्तर–आत्मज्ञानी होके जो तिलक न करे तो उसको देवलस्मृति धर्मशास्त्रमें चौर कहा है कि–

ऊर्ध्वपुंड्रं विना यस्तु वर्तते पुरुषाधमः ।
वेदवेदान्तविच्चापि स वै पुरुषतस्करः ॥

अर्थ–जो पुरुष वेद और वेदान्तोंको जानकरभी ऊर्ध्वपुंड्र (ऊभातिलक) विना रहता है वह ही पुरुषोंमें अधम और चौर कहाजाताहै।यद्वा(पुरुषतस्करः) "पुरुषः पृण्डरीकाक्षः" इति पुरुषशब्दवाच्य परमात्माको चुरानेवाला अर्थात् भगवद्द्वेषी है ॥

और बोधायनस्मृतिमें कहा है कि–

तिलक धारणका प्रयोजन ।

होमपूजादिसमये सायं प्रातः समाहितः ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो मर्त्यो भवेच्छुद्धो न चान्यथा ॥

अर्थ–होम, पूजा, संध्या, वेदपाठ यज्ञ आदिसमयमें सायंकाल प्रातःकाल सावधान होके ऊभातिलकको धारण करनेवाला पुरुष शुद्ध होता है और न करनेवाला अशुद्ध होता है और ठाढे तिलकवालेको देखके यमदूत बहुत कंपते हैं ऐसा ब्रह्मरात्रशास्त्रमें लिखा है कि–

व्यालं दृष्ट्वा यथा लोके दर्दुरा भयकंपिताः ।
ऊर्ध्वपुंड्रांकितं तद्वत्कंपन्ते यमकिंकराः ॥

अर्थ-इस लोकमें सर्पको देखके जैसे मेंडक भय करके कंपायमान होते हैं वैसे खडा तिलकवाले पुरुषको देखके यमराजके दूत कंपायमान होते हैं। क्योंकि जो प्राणी पापी हैं उनकोही यमदूतभी पकडते हैं और ऊर्ध्वपुंड्रोंका धारण करनेवाला तो निष्पाप है उसके समीप यमदूत किसवास्ते आवेंगे किंतु नहीं आवेंगे ॥

केवलस्योर्ध्वपुंड्रस्य धारणादपि मानवः ।
देहजैः पापसंघातैर्मुच्यते नात्र संशयः ।
चांडालोपि विशुद्धात्मा पूज्य एव न संशयः ॥

अर्थ-सब कोई मनुष्य जप तप तीर्थ व्रतदानादिकोंके विना केवल ऊर्ध्व पुंड्रके धारण करनेसेही देहजन्य पापोंके ढेरसे मुक्त हो जाता है इसमें संशय नहीं है। क्योंकि खडे तिलकोंके करनेसे चांडालभी अत्यंत शुद्ध हो जाता है और वह चांडाल पूजने योग्य होता है इति॥ इस प्रकारसे ऊर्ध्वपुंड्रोंका विधि और आकार तथा द्रव्य आदिक संक्षेपसे हमने कहे हैं। इससे खंडन मंडन देखना होय तो-स्मृतिचंद्रिका, स्मृत्यर्थसार, विष्णुस्मृति, दक्षस्मृति, मरीचिस्मृति, बौधायनस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, शंखस्मृति, शातातपस्मृति, शौनकस्मृति, देवलस्मृति, वसिष्ठस्मृति, अत्रिस्मृति, हरीतस्मृति, नारदसंहिता, पारमेश्वरसंहिता, ब्रह्मरात्रसंहिता, भारद्वाजसंहिता, विष्वक्सेनसंहिता, सनत्कुमारसंहिता, नारदपंचरात्र, विष्णुधर्मोत्तर, अग्निवेश्यगृह्यसूत्र, महोपनिषद्, कठशाखा, भल्लवशाखा, अथर्वणवेद, यजुर्वेद, ब्रह्मांडपुराण, नारदपुराण, वराहपुराण, पद्मपुराण, आदित्यपुराण, मत्स्यपुराण, स्कंदपुराण, शांडिल्यस्मृति, शांडिल्यसंहिता, विष्णुपुराण, नारायणसारसंग्रह, विष्णुतत्वप्रकाश इत्यादिक ग्रंथोंमें विस्तारसे ऊर्ध्वपुंड्रोंका स्थापन और त्रिपुंड्र आदिक विजातीय तिलकोंका खंडन लिखा है सो देख लेना, और द्वादश तिलकोंमें लक्ष्मीका रूप कुंकुमकी श्रीयोंका जो धारण करना कहा है, सो उन श्रीयोंका आकार दीपकके ज्योति सरीखा करना शास्त्रमें कहा है ॥ इति द्वितीयसंस्कारः ॥ २ ॥

इति श्रीभगवद्रामानुजाचार्यचरणपंकजदासेन श्रीमत्पंडितगोपालदासेन विरचिते श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकरे द्वादशोर्ध्वपुंड्रधारणाख्यद्वितीयसंस्कारविधिकथनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः ॥

श्रीमते रामानुजाय नमः ।

नमामि राजानुजपादपंकजं वदामि रामानुजनाम निर्मलम् ।
स्मरामि रामानुजदिव्यविग्रहं करोमि रामानुजदासदास्यम् ॥

अर्थ–हमारे परम आचार्य श्रीरामानुज स्वामिके चरणकमलको मेरे मस्तक करके मैं नमस्कार करता हूं । और श्रीरामानुज स्वामीके निर्मल नामको मेरी वाचा करके मैं उच्चारण करता हूं । और श्रीरामानुज महाराजकी दिव्य मूर्तिको मेरे मन करके मैं स्मरण करता हूं । तथा श्रीरामानुज स्वामीके दासोंका दासपना मेरी काया करके मैं करता हूं । इस प्रकारसे मन वचन और काया करके श्रीरामानुजका दास हो करके मैं तृतीय नाम संस्कारको लिखता हूं ॥

दास्यनाममाहात्म्य ।

नामकर्म प्रवक्ष्यामि पापनाशनमुत्तमम् ।
चक्रादिधारणं यत्र तत्रैव नामकर्म च ॥
योजयेन्नाम दासान्तं भगवन्नामपूर्वकम् ।
तस्मात्पापानि नश्यन्ति पुण्यभागी भवेन्नरः ॥

अर्थ–तीसरा नामसंस्कारको कहता हूं,कैसा है नाम संस्कार कि ब्रह्महत्या, गोहत्या, भ्रूणहत्या, मदिरापान, चोरी आदिक कायिक वाचिक मानसिक ऐसे जो तीन प्रकारके अनेक पाप हैं उन सर्व पापोंका नाश करनेवाला, शास्त्रोंमें जो संस्कार हैं वे संस्कार ब्राह्मणादिक जातिके उत्पादक हैं और यह नाम संस्कार तो भगवत् संबन्धको उत्पन्न करनेवाला और मोक्षका देनेवाला है इस कारण सर्व संस्कारोंमें यह नामसंस्कारही अत्यन्त श्रेष्ठ है । और जिन पुरुषोंके तप्त शंख चक्र ऊर्ध्वपुण्ड्र आदिकोंका धारण होता है उन पुरुषोंके ही नामसंस्कार किया जाता है। इससे जिन पुरुषोंका तापसंस्कार और ऊर्ध्वपुण्ड्र आदिक संस्कार हुये हैं उन पुरुषोंका नामसंस्कार अवश्य करके करना चाहिये॥

प्रश्न–नामसंस्कार किस प्रकारसे करना चाहिये ?

उत्तर–जिस शिष्यका गुरु नाम धरे, उसका आदिमें भगवत्का नाम लेके पीछे दास शब्दका उच्चारण करें । जैसे कि नारायणदास,विष्णुदास ,केशवदास,

नरसिंहदास, रामदास, कृष्णदास, मुकुंददास, जनार्दनदास, मधुसूदनदास, माधवदास इत्यादिक नामोंमें भगवत्का नाम प्रथम और दास शब्द अन्तमें है इस करके भगवन्नाम पूर्वक दासांत नाम सिद्ध होता है । और उस नामका ऐसा अर्थ है कि, नारायणका जो दास है सो नारायणदास कहा जाता है। और विष्णुका दास होय सो विष्णुदास, केशवका दास होय सो केशवदास ऐसा अर्थ सर्वत्र जान लेना ॥

प्रश्न–ऐसा भगवन्नामपूर्वक दासांत नाम धरनेसे क्या फल होता है ?

उत्तर-- तस्मात्पापानि नश्यन्ति पुण्यभागी भवेन्नरः ।

जिस पुरुषका भगवन्नामपूर्वक दासांत नाम धरा जाता है उस नामके धारण करनेसे प्रथम तो उस पुरुषके कायिक, वाचिक और मानसिक ये तीन प्रकारके पाप तत्काल नाशको प्राप्त होते हैं । और पीछे वह भगवन्नाम पूर्वक दासांत नामवाला पुण्यका भागी होता है अर्थात् ऐसे नामसंस्कारके धारण करनेसे अधर्मी पुरुषभी धर्मी हो जाता है ऐसा पराशरस्मृतिरूप धर्मशास्त्रमें कहा है ॥ और भगवन्नामपूर्वक जो दासांत नाम है सोई नाम सब नामोंमें मुख्य नाम है और यह जो वैष्णवनाम है सो जन्ममरणके नाशकरनेवाला है इस वैष्णवनामको धारण करे विना जीवोंका मोक्ष नहीं होता है ॥

प्रश्न–जो पुरुष अपने आत्माका नाम हरिदास, गोविंददास आदिक भगवन्नाम पूर्वक दासांत नाम नहीं रक्खता है उस पुरुषको शास्त्रमें क्या दण्ड देनेका लिखा है ?

उत्तर–वसिष्ठस्मृतिमें ऐसा दंड कहा है कि–

दास्यनामरहितोंकी निन्दा ।

न दासा वासुदेवस्य सर्वलोकेश्वरस्य ये ।
तेषां हि नरके वासः कल्पायुतशतैरपि ॥

अर्थ–जो मनुष्य सर्व लोकोंके ईश्वर वासुदेव भगवान्के दास नहीं होते हैं उन मनुष्योंका नरकमें वास दश लाख कल्प पर्यंत होता है ॥ और यह प्राणी जान करके और अजान करके जो कुछ पापकरता है उस पापकी निवृत्तिभी दासभावसेही होती है दूसरे उपायसे नहीं होती । ऐसा नारदपंचरात्रमें लिखा है कि–

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानादशुभं यत्कृतं मया ।
क्षंतुमर्हसि देवेश दास्येन च गृहाण माम् ॥
न जाने कर्म यत्किंचिन्नापि लौकिकवैदिकम् ।
न निषेधविधिं विष्णो तव दासोस्मि केवलम् ॥

अर्थ–हे देवोंके ईश ! मैंने जान करके अथवा अजान करके जो कुछ पाप किया है उस मेरे पापको आप क्षमा करनेको योग्य हो । और मेरेको अपना दासपनेकरके ग्रहण करो ॥ और मैं कोईभी कर्मको नहीं जानता हूं । लौकिक और वैदिक कर्मकोभी नहीं जानता हूं । और निषेध तथा विधिकोभी नहीं जानता हूं । हे विष्णो ! मैं केवल तुम्हारा दास हूं । इस रीतिसे दासपने करकेही अपराधोंकी क्षमा मांगी जाती है और भगवान्भी अपने दासके अपराधोंकोही क्षमा करते हैं ॥ और श्रीमद्भागवतके नवमस्कंधमें दुर्वासाका वचन भी ऐसा है कि–

यन्नामश्रुतमात्रेण पुमान् भवति निर्मलः ।
तस्य तीर्थपदः किंवा दासानामवशिष्यते ॥

अर्थ–जिस परमात्माके नामको सुननेमात्रसेही पापी पुरुष निर्मल होजाता हैं तो तीर्थके स्थानरूप उस परमात्माके जो पुरुष दास बनकर रहते हैं उन दासोंको क्या वस्तु बाकी रहे, किंतु कुछभी पदार्थ अप्राप्त नहीं रहता है । वे दास जो कुछ पदार्थकी इच्छा करते हैं सो सबही प्राप्त होता है इति ॥

प्रश्न–बहुतेरे लोक ' सोहं सोहम् ' इस रीतिसे अपने शिष्योंको उपदेश करते हैं सो उनका उपदेश समीचीन है कि नहीं अर्थात् सोहं सोहं ऐसा उपदेश वैष्णवसिद्धांतमें ग्राह्य है कि त्याज्य है ? ।

दास्यनामसे मुक्ति ।

उत्तर–तथा सोहं परित्यज्य दासोहं यो वदेत्सदा ।
वैष्णवः स जगत्पूज्यो याति विष्णोः परं पदम् ॥

अर्थ–इस प्रकारके सोहं शब्दका परित्याग करके जो वैष्णव सदा दासोहं इस प्रकारसे बोलता है सो वैष्णव ब्रह्मादि स्तंब पर्यंत सकल जगतका पूज्य होता है और विष्णुके परंपद वैकुंठको प्राप्त होता है । इस प्रकार

शास्त्रमें सोहंशब्दका त्याग और दासोहं इस शब्दका ग्रहण करनेका कहा है ॥ जैसे चक्रवर्ति महाराजाके पास दो अपराधी आये । उनमें एक बोला कि (दासोस्मि शरणागतोस्मि) हे महाराजा ! मैं तुम्हारा दास हूं और मैं तुम्हारे शरण आया हूं। ऐसा सुनके राजाने अपना दास और शरणागत मानके उसके अपराध माफ कर दिये । पीछे दूसरा अपराधी बोला कि (त्वमेवाहं) अर्थात् हे राजन् ! जैसे तुम हो वैसा मैंभी हूं तुम्हारे और हमारेमें हाथ, पग, नाक, कान, नेत्र आदिकका कुछभी फेरफार नहीं है, क्योंकि तुम्हारी जैसे पंचभूतोंकी काया है वैसी मेरीभी है । ऐसा अहंकारी वचन सुन उसको राजाने कैदमें डाल दिया । वैसे सोहंशब्दमें और दासोहं शब्दमेंभी समझ लेना ॥

प्रश्न–जब अहंकारशब्दसे बंध होता है तब तो विप्रोहं, क्षत्रियोहं, वैश्योहं इत्यादिकमेंभी सोहंकी तरह अहंकारभी जान पडता है इससे विप्रोहं क्षत्रियोहं ऐसा अहंकार रखना कि नहीं ? ।

उत्तर–नाहं विप्रो नच नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो
नो वा वर्णी नच गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा ।
किंतु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णामृताब्धे-
र्लक्ष्मीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः ॥

अर्थ–मैं विप्र क्षत्रिय और वैश्य तथा शूद्रभी नहीं हूं । और मैं ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी येभी नहीं हूं इस रीतिसे चार वर्ण और चार आश्रम इनमें मैं कोईभी नहीं हूं किंतु लक्ष्मीपतिके चरणकमलोंके दासोंका दास उसका भी मैं दास हूं॥ इस प्रकारसे वर्ण और आश्रमोंके अभिमानकाभी त्याग करके दासोहं ऐसाही वैष्णवोंको ग्रहण करना चाहिये ॥

वादिशंका–दास शब्द शूद्रका वाचक है इसलिये दास नाम धरना महानिंदित है । क्योंकि, शास्त्रमें कहा है कि–

दासनाम तु शूद्राणां द्विजानां न कथंचन ।

अर्थ–दास नाम शूद्रोंका है ब्राह्मणोंका दास नाम कोई प्रकारसेभी नहीं है ऐसा शास्त्रमें कहा है । और ऐसाभी शास्त्रमें लिखा है कि ब्राह्मणका शर्मांत, क्षत्रियका वर्मांत, वैश्यका पालितांत और शूद्रका दासांत नाम धरना ऐसी रीति चार वर्णोंके नाम धरनेकी शास्त्रने कही है ॥

उत्तर–हे वादी ! जो तुमने इधर उधरसें आधा श्लोक ढूंढ लाकर प्रमाण दिया है सो तेरा अर्द्ध श्लोकरूपी वाक्याभास प्रमाण हमारे हजारों श्रुतिस्मृतियोंके महा प्रवल प्रमाणों करके अत्यंत तुच्छ है और बाधित है. हे वादी ! अमरकोश ग्रंथमें ऐसा लिखा है कि “ दासः सेवकशूद्रयोः ” दास शब्द सेवक और शूद्र इन दोनोंका वाचक है।इस लिये इस नामसंस्कारके प्रकरणमें दास शब्द सेवककाही वाचक है, दूसरेका नहीं।जैसे कोईने कहा कि ‘ सैंधव लाओ’यहां घोडा और लवण इन दोका नाम सैंधव है इसलिये घोडा लावे कि लवण लावे,ऐसा संशय उत्पन्न होता है।हे वादी!इसमें प्रकरण देखना चाहिये कि, जो भोजनका प्रकरण हो तो लवण लाना चाहिये और जो प्रयाणका प्रकरण हो तो घोडा लाना चाहिये । क्योंकि भोजन करनेवालेको घोडा क्या कामका है, और पोसाख पहिरके चलनेकी तैयारीवालेको लवणभी किस कामका है ? हे वादी!इस नामसंस्कारके प्रकरणमें दास नाम करके सेवककाही ग्रहण करना योग्य है शूद्रका यहां क्या काम है, और हे वादी ! तू कहता है कि ब्राह्मणका जो दास नाम धरना सो निन्दित है सो तेरा कहना अज्ञानमूलकही है । क्योंकि राम, कृष्ण, नारायण, नृसिंह, वामन, केशव, गोविंद, जनार्दन, मुकुंद, माधव आदि दासांत नामोंका अपने नाममें जो ब्राह्मण परित्याग करके, देवदत्त, शिवदत्त, कुबेर, वरुण इंद्र आदिकोंके दास नामको धारण करता है, वही ब्राह्मण निंदा योग्य होता है परंतु विष्णुदास, नारायणदास, हरिदास ऐसे महान् पवित्र नामोंको धारण करनेवाले ब्राह्मण आदि सब जातीवाले भवसागरसे तरने तारनेवाले होते हैं। अरे वादी ! जब ब्रह्मादिक देव नारायणके दास होकर रहे हैं तब तुम तो कौन गिनतीमें हो ?

वादी–ब्रह्मादि देव नारायणके दास है ऐसा कौन ग्रंथका प्रमाण है ?

उत्तर–श्रीपद्मपुराणकी ऐसा महान् प्रमाण है सुन–

ब्रह्मा रुद्रस्तथेन्द्रश्च च यमो वरुण एव च ।
नारायणस्य दासास्ते ये चान्येऽण्डस्य मध्यगाः ॥
यः परः पुरुषो विष्णुर्नारायण उदाहृतः ।
दासभूतमिदं तस्य ब्रह्मादि सकलं जगत् ॥

अर्थ–जो ब्रह्मा, रुद्र, इंद्र, यम, वरुण, ये पाञ्च देव सब देवोंमें बडे हैं वे पांचों देव श्रीमन्नारायणके दास हैं और दूसरे भी जो देव ऋषि आदिक अनंत

जीव इस ब्रह्मांडके मध्यमें रहते हैं वेभी सब नारायणकेही दास हैं और जो परम पुरुष नारायण हैं उस नारायणका यह ब्रह्मादि स्तंब पर्यंत सकल जगत् दास रूपही है इस प्रकारसे पद्मपुराणमें सकल ब्रह्मांडको जब नारायणका दासकरके कहा है तब हे मताभिमानी ! तुम ब्रह्मसृष्टिसे भिन्न किस प्रकार रहे हो? मिथ्या वाद मत करो और भगवतके दास बनकर रहो इसमेंही तुम्हारा कल्याण है।

वादी–पुराणमें बताये हुए धर्ममें सर्व वर्णोंका अधिकार है और धर्मशास्त्र तथा वेदमें बताये धर्ममें तो केवल ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णोंका ही अधिकार है, शूद्रका नहीं। इसलिये वेद और धर्मशास्त्रमें दास नाम धरनेका विधान जब आप हमारेको बताओगे तब हम भले प्रकारसे अंगीकार करेंगे।

उत्तर–वृहद् हारीत स्मृतिमें कहा है कि–

नैसर्गिकं तु जीवानां दास्यं विष्णोः सनातनम् ।
तद्विना वर्तते मोहादतिचारः सनातनात् ॥
तस्मात्तु भगवद्दास्यमात्मनां श्रुतिचोदितम् ।
दास्यं विना कृतं यत्तु तदेव कलुषं भवेत् ॥

अर्थ–सब जीव अनादिकालसे अपने अपने स्वभावसेही विष्णुके दास हैं, क्योंकि " प्रधानक्षेत्रज्ञपतिः " माया और जीव इन दोनोंके स्वामी विष्णु भगवान् हैं इस प्रकारसे विष्णुको स्वामी करके और जीवोंको दास करके वेदमें कहा है। इस कारणसे ईश्वर और जीवोंका स्वामी और सेवकपना स्वभावसेही अनादि कालका है और जो कोई जीव इस दास नामके धरे विना मोहसे वर्तता है सो सनातनसे अपराधी है इस कारण जीवोंको भगवत्का दास होना श्रुतिने कहा है, यह जीव दास नाम धरे विना जो कुछ पुण्य कर्म करता है सो सर्व पाप होता है ॥

वादी–हे सिद्धांती ! आपने जो यह धर्मशास्त्रका प्रमाण दिया, सो ठीक है परंतु हमारे मतमें तो आत्माको भगवन्का दासकरके नहीं मानते हैं, किंतु सत् चित् आनंद रूप स्वतंत्र एक आत्मा है, किसीकाभी दास नहीं है, ऐसा हमारे शंकर स्वामीका अद्वैतसिद्धांत है।

सिद्धांती–हे वादी ! यह आत्मा किसीकाभी दास नहीं है इस कथनमें क्या प्रमाण है।

वादी–यह श्रुति और महाभारतका प्रमाण है कि–

योन्यथा संतमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते ।
किं तेन न कृतं पापं चोरेणात्मापहारिणा ॥

अर्थ–ज्ञान आनंदरूप आत्मा है इसको जड देहरूप जो कोई मानता है सो आत्माका अपहरण करनेवाला चोर है । इस आत्माके अपहरण करनेवाले चोरने क्या पाप नहीं किया ? किंतु सर्व पाप उसने किये हैं, इस रीतिसे देहमें आत्मा अभिमान करनेवालेको सर्वपापका करनेवाला श्रुतिने कहा है.

सिद्धांती–हे कलियुगके नवीन वेदांती ! तुम्हारे मतमें ज्ञानरूप आनंदरूप आत्माको जड देह रूप करके माननेवाला आत्मापहारी चोर ऐसा अर्थ इस श्रुतिका शंकरस्वामीने कहा है सो अनर्थ कहा है । क्योंकि अन्यवस्तु जो आत्मा है उसको अन्यवस्तु देहरूप करके मानना है उसका नाम भ्रांति है चोरी नहीं है जैसे कि शुक्ति (छीप)में रजत (चांदी) करके माननेवाले भ्रांत पुरुषको चोर करके और सर्व पापकारित्व करके कोईभी लोक नहीं मानते हैं किंतु उसको भ्रांतिवाला करके मानते हैं. और रज्जु (रस्सी) को सर्व रूप करके जो मानता है उसको भी भ्रांत कहते हैं वो भी चोर नहीं है. और वृक्षके ठूंठको यह चोर है ऐसे माननेवालेकोभी भ्रांत कहते हैं उसकोभी चोर नहीं कहते हैं ऐसे अन्यवस्तुमें अन्यवस्तुको माननेसे भ्रांतिवाले कहे जाते हैं उनको चोर कहना बडा अनर्थ है और तुम तो उसको चोर ठहराते हो. और चोर तो किसको कहते हैं कि जो दूसरेकी वस्तुको अपनी वस्तु करके अंगीकार करता है उसकोही शास्त्रमें और लौकिकमें चोर और पापी इस नाम करके कहते हैं. हे वादी! अपने मतके सिद्ध करनेवास्ते श्रुतिका अर्थको अनर्थ नहीं करना।

वादी–हे सिद्धांती ! इस श्रुतिका अर्थ आपके सिद्धांतमें किस प्रकारसे किया है ?

उत्तर–हे वादी ! हमारे विशिष्टाद्वैतमतमें इस श्रुतिका यथार्थ अर्थ ऐसा किया है कि, (यः) जो पुरुष, (अन्यथा सन्तम्) अन्यप्रकार करके अर्थात् भगवत्का दासपने करके भगवतके अर्थ रहाहुआ आत्माको (अन्यथा प्रतिपद्यते) प्रकारांतर अर्थात् स्वतंत्रपने करके अपने अर्थ मानता है (तेनात्मापहारिणा चोरेण सर्वमेव पापं कृतं भवति) उस आत्मापहारी चोरने सबही पाप किया है ऐसा कौनसा पाप है जो उसने नहीं किया है किंतु सर्व पाप उसने किये हैं । जैसे स्त्रीके शरीरका मालिक उसका पति है अर्थात् स्त्री अपने

पतिके आधीन है और पति भोक्ता है और स्त्री भोग्य है । स्त्री स्वतंत्र नहीं है, और जो अपने आपको पतिका भोग्य और पतिके आधीन और पतिके अर्थ नहीं मानती है और अपने आपको स्वतंत्र और अपने अर्थ मानती है यह स्त्री चोरटी है पापिनी है वैसे यह जीवभी भगवतका सेवक है अर्थात् भगवतका दास है और भगवत्के आधीन और भगवत्के अर्थ है सो अपनेको आप स्वतंत्र और अपने अर्थ मानता है सो उसने क्या पाप नहीं किया किंतु उसने ब्रह्महत्या, गोहत्या, स्त्रीहत्या, गुरुहत्या, मातृहत्या, आत्महत्या, भ्रूण-हत्या, सुरापान, चोरी आदिक सबही पाप किया है इस प्रकारसे दास नाम धरनेका विधान श्रुतिने व्यतिरेक मुखसे कहा है। इति ॥

वादि--जिस कारणसे इस जीवने भगवत्का दास अपने आत्माको नहीं माना उस कारण आत्माका अपहरण करनेवाला और पापी ह ऐसा आपने उसको कहा सो ठीक नहीं । क्योंकि थोडा अपराध करनेवालेको बडा भारी दंड देना उचित नहीं, क्यों कि भगवत्का दासरूप आत्माको अपना करके माननेसे सर्व पापकारी उसको कहते हो यहभी श्रुतिका अर्थ अनर्थही भासता है आपकेभी सिद्धांतमें इतना दोष है ।

उत्तर--हे श्रुति अर्थके अजान !यह थोडा पाप उसने नहीं किया है क्योंकि जिस वस्तुकी उसने चोरी की है सो आत्मा अमूल्य वस्तु है शरीर, प्राण, मन, बुद्धि, स्त्री, पुत्र, धन, धान्य, राज्य, हस्ती, घोडा आदि सकल पदा-र्थोंसे भिन्न और इन सर्व पदार्थोंसे अमूल्य और अत्यंत प्रिय जो बडी भारी आत्मवस्तु है उसकी चोरी करनेवाला भी बडा पापी है और जैसे आत्म-वस्तु अमूल्य है वैसे उसका मालिकभी पुरुषोत्तम भगवान् नारायण अवधिसे रहित अतिशय असंख्य कल्याण गुणोंके सागर होनेसे देव, दानव, मनुष्य इन सबसे बडे हैं। इससे बडा भारी पाप सिद्ध होता है, जैसे आबरूदार कोई महान् पुरुषको कोई गाली देवे अथवा थप्पड मारे तो मारनेवालेको राजनीतिसे राजा दंड करता है और कोई गरीब चांडालादिकको जूता मारा हो तोभी राजा उसकी अर्जको महान् पुरुषके समान नहीं सुनता है और मारनेवालेको दंडभी नहीं देता है वैसेही त्रिलोकनाथकी अमूल्य आत्मवस्तुकी चोरी की है इस वास्ते उसने क्या पाप नहीं किया है किंतु सर्व पाप उसने किया है ऐसा श्रुतिका निर्विवाद सिद्धांत है इति॥ हे वादी ! इस प्रकारसे श्रुति स्मृति पुराण आदिकोंका यही सिद्धांत है कि भगवत्का दास हुये विना ब्रह्मा, रुद्र, इंद्र, वरुण, कुबेर आदिकोंकीभी मुक्ति नहीं होती है तो दूसरे किस गणनामें हैं ?

प्रश्न—दास भाव न होकर वेदोंके पढनेसे यज्ञ ब्रह्मचर्यादि व्रतोंके धारण और चान्द्रायणादि उपवासोंके करनेसे इस जीवकी मुक्ति होती है कि नहीं ?

उत्तर--भगवत्का दास हुये विना मुक्ति नहीं होती है। ऐसे पद्मपुराण कहता है कि--

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न व्रतैश्चोपवासकैः।
प्राप्यते वैष्णवं लोकं विना दास्येन कुत्रचित् ॥

अर्थ--भगवत्का दास हुये विना वेद, यज्ञ, अध्ययन, व्रत, उपवास आदि करके वैकुंठलोकको यह जीव कोईभी कालमें प्राप्त नहीं होता है. ऐसाही हजारों ग्रंथोंका अचल सिद्धांत है. इस कारण भक्तिकरके हरिके दासपनेकोही धारण करनेसे जन्मके कर्म बंधन छूट जाते हैं और मोक्षकी प्राप्ति होती है।इति।

प्रश्न--आपने इस अध्यायके दूसरे श्लोकमें कहा है कि भगवत् नाम पूर्वक दासांत नाम शिष्यका धरना चाहिये तो मीनदास, वराहदास, कूर्मदास, कल्किदास इन नामोंमें भगवत्के नाम हैं तो ऐसे नाम धरना कि नहीं ?

उत्तर--ऐसे नाम नहीं धरने चाहिये। क्योंकि हारीतस्मृति धर्मशास्त्रमें ऐसे नाम रखनेका मनाई किया है कि—

शक्त्यावेशावताराणां वर्जयेन्नाम वैष्णवः।

वैष्णव अपने शिष्यका नामधारणमें शक्तिका और आवेश अवतारोंका नाम वर्जित करे। जैसे कि दुर्गादास, कालिदास, अम्बिकादास, भवानी-दास, चंडिकादास इत्यादि शक्तिके नामको वर्जे और मीन, वराह, कूर्म, वामन, काल्कि, व्यास,धन्वन्तरि आदिक आवेश अवतारोंके आपने शिष्य आदिकोंके नाममें नहीं लेवे।

प्रश्न-आवेश अवतार किसको कहते हैं ?

उत्तर—मच्छ कच्छ वराह आदि जीवोंमें भगवतका अंश अथवा कलाका प्रवेश होके कार्य मात्रका जो करना है उसका नाम आवेश अवतार है जैसे कोई निर्बल मनुष्यके शरीरमें जब भूत प्रवेश करता है तब वह मनुष्य उस भूतके आवेश करके महाबलवान् होके हर किसीको मार बैठता है। वह एकला सैकडों मनुष्योंको मारता है वैसे गरीब जातिके मत्स्य, कच्छ, वराह आदिकोंके शरीरमें नारायणकी कलाने वा अंशने प्रवेश करके महाबलवान् दैत्योंको मारके अंतर्धान हो गये इतनाही मीनादि अवतारोंका प्रयोजन है.

वे मीनादि कुछ पूर्ण अवतार नहीं है और उनके भजनसे जीवोंका मोक्षभी नहीं होता है । इति ॥

प्रश्न–पूर्ण अवतार कौन कौनसे हैं ?

उत्तर--नृसिंह, राम और कृष्ण ये तीन पूर्णावतार हैं इनके भजनसे अनंत जीव मोक्षको प्राप्त होगये और हो जायंगे । इनके भजन उपासना और ज्ञानकी रीति नृसिंहतापनी, रामतापनी और गोपालतापनी इन उपनिषदोंमें विस्तारसे लिखीहुई है, वहां देख लेना इति ॥

प्रश्न–ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण जब नारायणके दास नहीं होते हैं अर्थात् नारायणदास, रामदास, विष्णुदास ऐसा अपने आत्माका दास नाम नहीं धरते हैं तो उनको कौन जातिवाले कहना चाहिये ?

उत्तर–वे चारों वर्ण चांडाल और पाखंडी हैं।ऐसा हारीतस्मृतिमें कहा है कि–

नारायणस्य दासा ये न भवन्ति नराधमाः ।
जीवन्त एव चाण्डाला भविष्यन्ति न संशयः ॥
नास्ति चेद्वैष्णवं नाम यस्य वै द्विजसत्तम ।
स पाषण्डीति विज्ञेयः सर्वकर्मसु गर्हितः ॥

अर्थ–जो पुरुष नारायणके दास नहीं होते हैं वे पुरुष नरोंके मध्यमें अधम हैं और वे पुरुष जीवतेहुयेही चांडाल हैं, इस कहनेमें संशय नहीं है क्योंकि मरे पीछे चांडालयोनि उनको मिलेगी ऐसा नहीं, किंतु जीवते हुये ही चांडाल हो जाते हैं, और जिस मनुष्यका विष्णुका दासरूप नाम जो नहीं होय तो वह मनुष्य पाखंडी है ऐसा जानना और वह सर्व शुभकर्मोंमें निंदित और त्यागने योग्य है ॥

प्रश्न–अपने नामके आदिमें भगवत्का नाम होना और अंतमें दास शब्द होना ऐसा नियम आपने कहा है सो ठीक है परंतु लक्ष्मीदास, सुदर्शनदास, विष्वक्सेनदास, हनुमदास, सरजुदास, कौशल्यादास, गंगादास, यमुनादास इत्यादिक जो नाम धरते हैं इन नामोंके आदिमें विष्णुके नाम नहीं हैं सो ये नाम शास्त्रकी रीतिसे हैं कि शास्त्रमें विरुद्ध हैं ?

उत्तर--इन नामोंका भी महिमा महाभारतमें ऐसा लिखा है कि--

वासुदेवस्य ये भक्ताः शांतास्तद्गतमानसाः।
तेषां दासस्य दासोऽहं भूयां जन्मनि जन्मनि ॥

अर्थ–वासुदेवमें मनवाले और रागद्वेषसे रहित शांतरूप ऐसे जे भगवतके भक्त हैं, उनके दासोंका दास जन्म जन्ममें मैं रहूं, ऐसा विदुरका वचन है ॥ और महाभारतमें कहा है कि–

मज्जन्मनः फलमिदं मधुकैटभारे
मत्प्रार्थनीयमदनुग्रह एष एव।
त्वद्भृत्यभृत्यपरिचारकभृत्यभृत्य-
भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ ॥

अर्थ–कृपाचार्य कहते हैं कि हे मधुकैटभारे ! हे चतुर्दशभुवनके नाथ ! मेरे जन्मका यह फल है और मेरी प्रार्थनाका अनुग्रह येही है कि, तुम्हारे दासका दास, दासका दास, दासका दास ऐसे मेरेको याद करो इति ॥ और फिर महाभारतमें ऐसा कहा है कि--

अहं हि नारायणदासदासदासानुदासस्य च दासदासः।

अर्थ–अक्रूर कहते हैं कि मैं निश्चयकरके नारायणके दासका दास, दासका दास दासका दास हूं। इस प्रकारसे दासोंके दास होनेमें कृपाचार्य अक्रूर विदुर आदिकोंके वचन हैं ॥ इस कारण लक्ष्मी, सुदर्शन, विष्वक्सेन, हनुमान्न इत्यादिक सर्व भगवत्के दास हैं इनके दास होनेवाले दासोंके दास कहे जाते हैं, उसमें कुछभी विरुद्ध नहीं इति ॥

प्रश्न–इस तृतीय नामसंस्कारमें कौन कौनका आधिकार है ?

उत्तर–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी और स्त्री, पुरुष, नपुंसक, स्वर्णकार, लोहकार, सूत्रधार, कुंभकार, भील, कोलीक, चांडाल, पशु, पक्षी, देव, दानव, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत इत्यादिक सर्वोंकाही अधिकार है.जिनको भगवद्भक्ति करना होय उन सबका अधिकार है। क्योंकि भक्तिके नव अंग हैं उनमें दास होना यहभी एक अंग है ऐसा श्रीमद्भागवतमें कहा है कि–

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

अर्थ–विष्णुका श्रवण १ कीर्त्तन २ स्मरण ३ पादसेवन ४ अर्चन ५ वन्दन ६ दास्य ७ सख्य ८ आत्मनिवेदन ९ इन भक्तिके नव अंगोंमें दास होना यह सातवां अंग है, जो कोई मनुष्य दास नाम नहीं धरता है सो मनुष्य भक्तिके सातवें अंगको छेदन करता है, सो वह बडा दुष्ट है ॥ जैसे शिष्य अपने गुरुके सब अंगोंकी सेवा करे, और एक अंग जो हस्त है उसका छेदन करे, इस कारणसे वह शिष्य महादुष्ट है इति ॥

प्रश्न–हे महाराज ! जिस श्रुतिमें दास ऐसा नाम स्फुट दीखता होय और जिस भाष्यमेंभी दासनाम स्फुट दीखता होवे उन दोनोंका प्रमाण मेरेको दिखाना चाहिये. क्योंकि ' अन्यथा संतमात्मानं " इस श्रुतिमें दास होना अर्थसे आपने कहा है परंतु दास ऐसा पाठमें स्फुट मालूम नहीं पडता है ॥

उत्तर–"ब्रह्मदासा ब्रह्मदासा ब्रह्माहमिति कितवाः ॥"

यह श्रुति है और–

"अकारवाच्यस्य श्रीमन्नारायणस्य मकारवाच्यात्मा दास इति कथ्यते ॥ "

यह मन्त्रभाष्य है इन श्रुति और भाष्यका अर्थ पीछे लिख आये हैं । तात्पर्य यह है कि मैं विष्णुका दास हूँ ऐसे अपने आत्माको जो मनुष्य नहीं मानता है सो मनुष्य धूर्त्त (ठग है) क्योंकि यह जो आत्मा है सो श्रीमन्नारायणका दास है उसको दूसरे प्रकारसे मानना उसका नाम ठगाई है इति ॥ इस प्रकारसे जो कोई मनुष्य इस नामसंस्कारको: धारण करता है सो पुरुष विष्णुभगवानको रातदिन साष्टांग प्रणाम करताही रहता है । ऐसा नामसंस्कार महाफल है अहो एक प्रणाम करनेसे दश अश्वमेध यज्ञ करनेका फल लिखा है तो जिसको प्रणाम करनेमेंही रात दिन जाते हैं उसके फलकी संख्या शेष भी नहीं करसकते हैं ॥ इति तृतीयो नामसंस्कारः ॥ ३ ॥

इति श्रीमद्रामानुजचरणाश्रितेन श्रीमत्पंडितगोपालदासेन विरचिते श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकरे भगवद्दासांतनामधारणाख्यतृतीय-संस्कारविधिकथनो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः ।

श्रीमते रामानुजाय नमः ।

चतुर्थ मन्त्रसंस्कार विधि ।

सर्वमंगलमांगल्यं सर्वोपद्रवनाशनम् ।
वंदे रामानुजार्यस्य नित्यं पादांबुजद्वयम् ॥

अर्थ—सर्व मंगलोंके मांगलयरूप और सर्व विघ्नोंके नाश करनेवाले ऐसे श्रीरामानुज स्वामीके दो चरण कमल हैं उन चरणोंको मैं सदा वंदन करता हूँ॥

रामंमंत्रमाहात्म्यविवरण ।

अगस्त्योक्तं च माहात्म्यं प्राधान्यकारणं महत् ।
वक्ष्ये श्रीन्मत्रराजस्य श्रुत्वा दद्याच्च सद्गतिम् ॥

अर्थ—ऐसे मंगलरूप श्रीरामानुज मुनिके चरणोंको नमस्कार करके सब मंत्रोंका राजा श्रीराम मंत्र है, उसके अत्यंत श्रेष्ठ माहात्म्य जो परम शिष्ट अगस्त्य मुनिने कहा है और श्रीराममंत्रके माहात्म्यको गुरुके मुखसे सुननेवाले पुरुषको वह राममंत्र मोक्षरूप सद्गतिको देता है.ऐसा श्रीराममंत्रका उपदेश रूप चतुर्थ संस्कारको अब मैं कहता हूं ॥ प्रथम ताप संस्कार, द्वितीय ऊर्ध्वपुंड्र संस्कार और तृतीय नामसंस्कार, इस रीतिसे तीन संस्कारोंको करके पीछे चौथा मंत्रसंस्कारको करना चाहिये ।

प्रश्न—ऐसा अनुक्रम कौन शास्त्रमें कहा है ?

उत्तर—पाराशरस्मृतिमें यह अनुक्रम बताया है कि—

तापं पुंड्रं तथा नाम कृत्वा वै विधिना गुरुः ।
पश्चादध्यापयेन्मंत्रं शिष्यं निर्मलचेतसम् ॥

अर्थ—गुरु अपने शिष्यको ताप पुंड्र और नाम इन तीन संस्कारोंको यथाविधिसे करके पीछे निर्मल मनवाले शिष्यको मंत्रका उपदेश करें ॥

प्रश्न–तैंतीस कोटि देवोंमें विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य गणपति ये पंच देव बडे हैं और इन पंच देवोंकोही सब लोक अपनी अपनी रुचिके अनुसार भजते हैं और इन पंच देवोंके मंत्रोंकी दीक्षाको सब दुनियां ग्रहण करती है, इसवास्ते इन पंच देवोंके मन्त्रोंमें कौन देवका मंत्र श्रेष्ठ है ?

उत्तर–गाणपत्येषु शैवेषु शाक्तसौरेष्वभीष्टदम् ।
सर्वेषु मन्त्रवर्येषु श्रेष्ठं वैष्णवमुत्तमम् ॥

अर्थ–हे पृच्छक ! गणपति, शिव, शक्ति, सूर्य इनके जो मन्त्र हैं उनमें विष्णुके मन्त्र उत्तम हैं, कि वेही मन वांछित फलको देनेवाले हैं, क्योंकि तैंतीस कोटि देवोंमें पंच देव श्रेष्ठ हैं । और पंच देवोंके मन्त्रोंमें विष्णुके मन्त्र श्रेष्ठ हैं, ऐसा अगस्त्यसंहितामें कहा है ।

प्रश्न–विष्णुके भी अनन्त मन्त्र हैं, उनमें कौनसा मन्त्र श्रेष्ठ है ?

उत्तर–वैष्णवेष्वपि सर्वेषु राममन्त्रः फलाधिकः ।
गाणपत्यादिमन्त्रेषु कोटिकोटिफलाधिकः ॥

अर्थ–विष्णुके भी जो सर्व मन्त्र हैं, उनमें राममंत्र सबसे अधिक फलको देनेवाला है, और गणपति, शिव, शक्ति, सूर्य आदि देवोंके जो मन्त्र है, उन सर्वमन्त्रोंमें राम मन्त्र सबसे कोटि कोटि गुना अधिक फलको देनेवाला है ॥ और यह जो राम मन्त्र है सो पुरश्चरण, न्यास, विधि विना केवल जप मात्र करके सहजमें सिद्धिको देनेवाला है. और सर्व पापोंके समूहको निवारण करनेवाला है, ऐसा राममन्त्र सब मन्त्रोंका राजा है ॥

परम पवित्र अगस्त्यसंहितामें ऐसा लिखा है कि–

मन्त्रराज ।

षडक्षरोयं मन्त्रस्तु सर्वाघौघनिवारणः ।
मन्त्रराज इति प्रोक्तः सर्वेषामुत्तमोत्तमः ॥
दिनं दिनं च दुरितं पक्षमासं तु वर्षजम् ।
सर्वं दहति निःशेषं तूलाचलमिवानलः ॥
ब्रह्महत्यासहस्राणि ज्ञानाज्ञानकृतानि च ।
स्वर्णस्तेयी सुरापी च गुरुतल्पायुतानि च ॥

कोटिकोटिसहस्राणि ह्युपपातकजान्यपि ।
सर्वाण्यपि प्रणश्यन्ति राममन्त्रानुकीर्त्तनात् ॥

अर्थ–षट् अक्षरोंवाला यह जो राममंत्र है सो सर्व पापोंके प्रवाहको दूर करनेवाला है, और यह राममंत्र सब मन्त्रोंका राजा है, इसलिये इसका नाम मन्त्रराज है. और सात करोड मन्त्रोंके मध्यमें उत्तम जो वासुदेवादिक मन्त्र हैं उन वासुदेवादिक मन्त्रोंसेभी यह मन्त्रराज अति उत्तम है। जैसे रुईके पर्वतको अग्नि जलाकर भस्म करदेता है, वैसे दिन दिन और पक्षमें मासमें वर्षमें किये हुये जो पाप हैं, उन सर्व पापोंको (जड) मूलसे श्रीमन्त्रराज दहन करता है. और जानकरके अथवा अजान करके कीहुई हजारों ब्रह्महत्या और हजारों वार की हुई सोनाकी चोरी तथा हजारों वार कियाहुआ सुरापान और दश हजार वार कियाहुआ अपनी माताके संग मैथुन; ऐसे जो ये चार महापातक हैं उनको मन्त्रराज (जड) मूलसे दहन करता है और स्त्रीहत्या, गोहत्या, भ्रूणहत्या, बालहत्या आदिक जो कोटि कोटि हजार वार किये हुये उपपातक हैं वे सब उपपातक मन्त्रराजके जापसेही भस्म हो जाते हैं इति ॥

प्रश्न–हे गुरु महाराज ! अपने किये हुये कर्मोंके वश करके यह सकल जगत् जन्म मरणको प्राप्त होता है, वे कर्म स्वतंत्र हैं कि कोईके वशमें हैं और उन कर्मोंका नाश कौन कर सकता है ? सो कृपा करके कहो ॥

उत्तर–हे शिष्य ! चिन्ता मत कर, कर्म स्वतन्त्र नहीं है, ईश्वरके वशमें है और उन कर्मोंका नाश करनेमें राममंत्र स्वतंत्र उपाय है, दूसरा कोई कर्मोंका दाहक स्वतंत्र नहीं है. ऐसा नृसिंहपुराणमें लिखा है कि–

कर्माधीनं जगत्सर्वं विष्णुना निर्मितं पुरा ।
तत्कर्म केशवाधीनं रामनाम्ना विनश्यति ॥

अर्थ–इस जगत्को प्रथम विष्णुने उत्पन्न किया है, यह जगत् अपने किये हुये कर्मोंके आधीन है, और वह कर्म केशवके आधीन है, सो वह कर्म रामनाम करके विनाशको प्राप्त होते हैं ॥ वह रामनाम सब मंत्रोंका बीज है और जिस पुरुषके हृदयमें राममंत्र प्रवेश करता है उसको अमर कर देता है. और हलाहल जहर भी मीराबाईकी तरह अमृत हो जाता है, तथा प्रलयकालका अग्निभी प्रह्लादकी सदृश शीतल होजाता है और मृत्युका भयभी उसको हनुमानकी तरह नहीं होता है ॥

रामनाम्नः परं किंचित्तत्त्वं वेदे स्मृतिष्वपि ।
संहितासु पुराणेषु नैव तंत्रेषु विद्यते ॥

अर्थ–हे शिष्य ! जैसे वेद स्मृति संहिता पुराण और तंत्रग्रंथोंमें राममंत्रसे श्रेष्ठ दूसरा कोई तत्त्व नहीं है, जैसे मनुष्योंमें चक्रवर्ती महाराज, मणियोंमें चिंतामणि, पशुवोंमें कामधेनु, पक्षियोमें गरुड, वृक्षोंमें कल्पवृक्ष, नदियोंमें गंगा, स्तोत्रोंमें रामस्तवराज, पुराणोंमें श्रीविष्णुपुराण, तंत्रग्रंथोंमें नारदपंचरात्र सर्वोपारि है वैसे मंत्रोंमें मंत्रराज सर्वोपरि है. जैसे अग्नि काष्ठादिकको भस्म कर देता है वैसे मंत्रराजभी मुक्तिके विरोधी कर्मोंका समूल नाश करके मुक्ति देनेमें स्वतंत्र रहता है । इति ॥

प्रश्न–हे गुरुजी ! राममंत्रका उपदेश लिये विनाही काशीमें मरणसे मुक्ति होती है कि नहीं ?

उत्तर–काशीमें भी राम मंत्रके विना मुक्ति नहीं होती है ऐसा रामतापनी उपनिषदमें लिखा है कि, जव महादेवने चौदह हजार वर्ष तप किया, तब श्रीविष्णुभगवान् शिवके पास आकर बोले, वरदान मांग, शिव बोले कि हमारी काशीपुरीमें जो कोई प्राणी मरे सो मुक्तिको पावे ऐसा मैं वर मांगता हूं, विष्णु बोले कि काशीमें तो कसाईभी मरेगा तो क्या उसको मुक्ति मिलेगी किंतु नहीं मिलेगी, परंतु तुम्हारी काशीमें तुम जिस अधिकारीके कानमें मरती वखत राममंत्र सुनावोगे उसकी मुक्ति होवैगी दूसरेकी नहीं, ऐसा वर देकर विष्णु अंतर्धान होगये ॥ इस वास्ते हे शिष्य ! राममंत्र विना चौदह लोकमेंभी मुक्ति नहीं मिलेगी ॥

प्रश्न–हे दयासिंधो ! इस राममंत्रको इस जगत्में प्रथम किसने प्रगट किया है, और यह राममंत्र कहांसे आया है, और कौन कौन शिष्योंको कौनसे गुरुओंने इस राममंत्रका प्रथम उपदेश किया सो आप इस राममंत्रके उपदेशकी गुरुपरंपराको हम शिष्योंके प्रति कहने योग्य हो ।

उत्तर–हे मुमुक्षो ! इस राममंत्रका संप्रदाय वैकुंठपति साक्षात श्रीमन्नारायणसे चला आता है उसको तुम श्रवण कर।

गुरुपरंपरा ।

अस्मद्देशिकमस्मदीयपरमाचार्यानशेषान् गुरून्
श्रीमँल्लक्ष्मणयोगिपुंगवमहापूर्णौ मुनिं यामुनम् ।

रामं पद्मविलोचनं मुनिवरं नाथं शठद्वेषिणं
सेनेशं श्रियमिंदिरासहचरं नारायणं संश्रये ॥
श्रीमन्नारायणः साक्षाज्जीवलोकानुकंपया ।
गुह्याद्गुह्यतमं मंत्रं तारकं तिमिरापहम् ॥
देव्यानुबोधितः श्रीमान् विष्णुः सर्वजनेश्वरः ।
ग्राहयामास तां देवीं मंत्रराजं तु तारकम् ॥
ददौ प्रीत्या ततो देवी विष्वक्सेनं स्वपार्षदम् ।
विष्वक्सेनो ददौ मंत्रं शठकोपाय धीमते ॥
ग्राहयामास स मुनिः श्रीनाथमुनये तदा ।
स पुनः पुंडरीकाक्षमुनये प्रददौ मनुम् ॥
राममिश्राय स ददौ राममिश्रोऽपि यामुनम् ।
तं मनुं ग्राहयामास दासनामपरांकुशम् ॥
परांकुशस्य चत्वारः शिष्या लोकेषु विश्रुताः ।
श्रुतदेवः श्रुतप्राज्ञः श्रुतधामा श्रुतोदधिः ॥
त्रिदंडिनः शिष्या युक्ता रामानुजश्च पंचमः ।
रामानुजं समाराध्य मंत्रराजं षडक्षरम् ।
श्रीरामतारकं नाम कूरेशः प्राप्तवान्मुनिः ।
भट्टः पराशरस्तस्माल्लेभे मंत्रं रघूत्तमम् ॥
लोकाचार्यस्ततो लेभे ततो देवाधिपस्तथा ।
श्रीशैलेशस्तस्य शिष्यस्तस्माद्वरवरो मुनिः ॥
पुरुषोत्तमस्तस्य शिष्यस्तस्य गंगाधरोऽभवत् ।
सदाचार्यस्तस्य शिष्यस्तस्य रामेश्वरोऽभवत् ॥

द्वारानंदस्तस्य शिष्यो देवानंदोऽभवत्ततः ।
श्यामानंदस्तस्य शिष्यः श्रुतानंदस्ततोऽस्य च ॥
चिदानंदस्तस्य शिष्यः पूर्णानंदस्ततोऽभवत् ।
श्रियानंदस्तस्य शिष्यो हर्षानंदो महामतिः ॥
राघवानंद एतस्य रामानंदस्ततोऽभवत् ।
श्रीरामानंदशिष्योऽभूदनंतानंदनामवान् ।
येन प्रोक्तं कृष्णदासं मंत्रराजं षडक्षरम् ॥
कृष्णदासस्य टीलाख्यः शिष्यो ज्ञानी प्रतापवान् ।
लाहारामस्तस्य शिष्यो विष्णुभक्तिपरायणः ॥
अंगदपरमानंददास आसीत्ततः सुधीः ।
तस्य गोदावरीदासो भागीरथदासोऽस्य च ॥
क्षेमदासस्तस्य शिष्यो रामदासस्तु तस्य च ।
छबीलदासोऽभूत्तस्य गोवर्धनदासोऽस्य वै ॥
तस्य वै जानकीदासः सहजरामोऽभूत्ततः ।
तस्य महाप्रतापी च श्रीमंगलदास आत्मवान् ॥
तेन प्रोक्तं मंत्रराजं श्रीघनश्यामस्वामिनम् ।
तस्य गोपालदासेन प्रोक्ता गुरुपरंपरा ॥
एवं परंपराप्राप्तं मंत्रराजं षडक्षरम् ।
ये नराः कीर्त्तयिष्यंति वैष्णवास्ते प्रकीर्त्तिताः ॥
मंत्राधिकारिणो ह्येते संप्रदायप्रवर्तकाः ।
येषां मंत्रोपदेशेन बहवो विष्णुपदं गताः ॥

१ श्रीमन्नारायणः २ महालक्ष्मी ३ विष्वक्सेनः ४ शठकोपः ५ नाथमुनिः ६ पुंडरीकाक्षः ७ राममिश्रः ८ यामुनाचार्यः ९ महापूर्णः १० रामानुजः ११ कूरेशः १२ पराशरभट्टः १३ लोकाचार्यः १४ देवाधिपः १५ श्रीशैलेशः १६ वरवरमुनिः १७ पुरुषोत्तमः १८ रामेश्वरः १९ द्वारानंदः २० देवानंदः २१ श्यामानंदः २२ श्रुतानंदः २३ चिदानंदः २४ पूर्णानंदः २५ श्रियानंदः २६ हर्षानंदः २७ राघवानंदः २८ रामानंदः २९ अनंतानंदः ३० कृष्णदास ३१ टीलाजी॰ ३२ लाहारामजी ३३ अंगदपरमानंदजी ३४ गोदावरीदासजी ३५ भागीरथदासजी ३६ क्षेमदासजी ३७ रामदासजी ३८ छबीलदासजी ३९ गोवर्धनदासजी ४० जानकीदासजी ४१ सहजरामजी ४२ श्रीमंगलदासजी ४३ श्रीधनश्यामदासजी मम स्वामी ४४ पंडितगोपालदासोहं तस्य।

लक्ष्मीनाथसमारंभां नाथयामुनमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यंतां वंदे गुरुपरंपराम्॥

अर्थ--हे शिष्य! लक्ष्मीके पति जिसके आदिमें हैं और नाथमुनि तथा यामुनाचार्य यह दोनों जिसके मध्यमें हैं और हमारे आचार्य श्रीघनश्याम स्वामी जिसके अंतमें, ऐसी जो यह ऊपर लिखी हुई एक अंकसे लेके चौतालीसके अंक पर्यंत हमारे गुरुओंकी परंपराको मैं पंडितगोपालदास बारंवार वंदना करता हूं॥ हे शिष्य! इन गुरुओंकी परंपरामें अनंत कोटि वैष्णव श्रीवैकुण्ठलोकको प्राप्त हुये, और अब आगेभी अनंत कोटि होवेंगे, इसमें संदेह नहीं। क्योंकि इस कालियुगमें भगवन्मंत्रके विना मुक्तिका दूसरा उपाय नहीं, सो शास्त्रमें कहा है कि–

शमायालं जलं वह्नेस्तमसो भास्करोदयः।
कलौ क्षतिरघौघस्य मंत्रसंकीर्त्तनं हरेः॥

अर्थ–जैसे अग्निको शीतल करनेके लिये जल, और अंधकारके नाश करनेवास्ते सूर्य समर्थ है, वैसे कलियुगमें हरिके मंत्रका जो सुंदर कीर्तन है सो पापोंके समूहको भस्म करनेवाला है॥ इस प्रकारसे कलियुगमें पापोंका नाश करके मुक्ति देनेवाला मंत्रराज है, दूसरा कोई नहीं और श्रीमद्भागवतके षष्ठ स्कंधमें लिखा है कि चोरी करनेवाला, मदिरा पीनेवाला, मित्रद्रोही, ब्रह्महत्यारा, गुरुशय्या ऊपर पगधारी, स्त्रीहत्यावाला, राजहत्यावाला, पिताको हनन करनेवाला इत्यादिक औरभी पापी भगवन्नामके लेनेसे पवित्र होजाते हैं।

प्रश्न–गुरुके मुखसे कौन कौनसे मंत्रोंका उपदेश लेके जप करना चाहिये ?

अष्टाक्षरादि मंत्र जापककी प्रशंसा ।

उत्तर–द्वयमष्टाक्षरं मंत्रं षडर्णं द्वादशार्णकम् ।
ये जपंति महाभागास्ते भक्ता हरिवल्लभाः ॥
गायत्रीं विष्णुगायत्रीमष्टाक्षरमनुं ततः ।
द्वादशार्णं षडर्णं च मंत्ररत्नमनुक्रमात् ।
तद्विष्णोरिति सूक्तं च वेदादींश्च ततो जपेत् ॥

अर्थ–शरणागतमंत्र, अष्टाक्षरमंत्र, षडक्षरमंत्र, द्वादशाक्षरमंत्र इन मंत्रोंका उपदेश गुरुमुखसे लेके जो पुरुष जाप करते हैं, वे पुरुष महा भाग्यवान् होते हैं और वे पुरुष हरिको अत्यंत प्यारे होते हैं इसलिये हे शिष्य ! वैष्णवोंको गुरुमुखसे इतने मंत्रोंका उपदेश जरूर लेना चाहिये कि, गायत्री, विष्णुगायत्री, अष्टाक्षरमंत्र, द्वादशाक्षरमंत्र, षडक्षरमंत्र, शरणागतमंत्र और ‘ तद्विष्णोः ’ यह सूक्त, इन सप्त मंत्रोंका जो पुरुष जाप करता है उसको गुरुमुखी वैष्णव कहते हैं इनका जाप करके पीछे वेद स्तोत्रादिकका पठन करे इति ॥

प्रश्न–हे सद्गुरुजी ! इस मंत्रराजके नित्य दिन दिन प्रति कितने जाप करने चाहिये ?

उत्तर–एवं ज्ञात्वा जपेन्मंत्रं षट्सहस्रं दिने दिने ।
अष्टोत्तरं सहस्रं वा त्रिशतं वाथ शक्तितः ॥

अर्थ–इस प्रकारसे इस मंत्रराजकी गुरुपरंपराको जानके इस राममंत्रके दिन दिन षट् सहस्र जाप करे, और जो इतनी शक्ति करनेकी न होय तो एक सहस्र और आठ जाप नित्य करे, अथवा तीनसौ जाप नित्य करे, इतनीभी निवृत्ति न होय तो, जैसी अपनी शक्ति होय उतना जाप करे परंतु जाप करे विना रहे नहीं । इति चतुर्थसंस्कारः ॥ १ ॥

इति श्रीमद्रामानुजाचार्यचरणयुगलाश्रितेन श्रीमत्पंडितगोपालदासेन विरचिते श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकरे राममंत्राद्युपदेशाख्यचतुर्थ-संस्कारकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः।

श्रीमते रामानुजाय नमः।

पंचम मालासंस्कारविधि।

मूलेषु सर्वतीर्थानि पत्रेषु सर्वदेवताः।
शाखासु सर्वयज्ञानि तुलसि त्वां नमाम्यहम् ॥ १ ॥

अर्थ-हे तुलसि मातः! तुम्हारे मूलमें साढे तीन करोड तीर्थ, पत्रोंमें तैतीस कोटि देवता, शाखाओंमें अश्वमेधादिक सर्व यज्ञ रहते हैं. ऐसी तुस असंख्य फलोंको देनेवाली और विष्णुके परम पदको देनेवाली हो. सो मैं तुमको नमस्कार करता हूं ॥ इस प्रकारसे नमस्कार रूप मंगलाचरण करके मालाका धारण रूप पांचवा संस्कारको अब कहते हैं ॥

प्रश्न-मालासंस्कारको गुरु कौन प्रकारसे करते हैं?

तुलसीमालाधारणविधि।

उत्तर-क्षालितां पंचगव्येन मूलमंत्रेण मंत्रिताम्।
गायत्र्या चाष्टकृत्वो वै मंत्रितां धूपयेच्च ताम् ॥ २ ॥
संनिवेद्यैव हरये तुलसीकाष्ठसंभवाम्।
मालां पश्चात्स्वयं धत्ते स वै भागवतोत्तमः ॥ ३ ॥

अर्थ-हे शिष्य! प्रथम तुलसीकी मालाको गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, गोमूत्र और गऊका गोवर इन पंच गव्योंसे प्रक्षालन करके और राममंत्रसे उस मालाको मंत्रितकर तथा गायत्रीसे आठ वार अभिमंत्रित करके पीछे उस मालाको धूप देवे ॥ २ ॥ पीछे तुलसीके काष्ठकी मालाको हरिके कंठमें अर्पण करके पीछे उस मालाको जो आप धारण करता है सो भागवतोंके मध्यमें उत्तम कहा जाता है. ऐसा विधि गरुडपुराणमें कहा है ॥३॥ पीछे भगवतके कण्ठमें अर्पण की हुई उस मालाको अपने हस्तमें लेके उस मालाकी ऐसी प्रार्थना करे कि-

मालाप्रार्थना।

यथा त्वं वल्लभा विष्णोर्नित्यं विष्णुजनप्रिया।
तथा मां कुरु देवेशि नित्यं विष्णुजनप्रियम् ॥ ४ ॥

एवं संप्रार्थ्य विधिवन्मालां रामगलेऽर्पिताम् ।
धारयेद्वैष्णवो यो वै स गच्छेद्वैष्णवं पदम् ॥ ५ ॥

अर्थ–हे देवेशि ! हे देववशीकरणि तुलसी ! जैसे तू विष्णुको और विष्णु-भक्तोंको नित्य प्यारी है, तैसा मेरेकोभी नित्य प्यारा कर, अर्थात् जैसा मैं विष्णुको नित्य प्यारा लगूं तथा विष्णुभक्तोंको मैं नित्य प्यारा लगूं वैसा मेरेको कर इस प्रकारसे मालाकी प्रार्थना करके पीछे विधिसे रामचंद्रजीके कंठमें अर्पण की हुई मालाको जो वैष्णव धारण करे सो वैष्णव विष्णुपदको प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

प्रश्न–मालामें कितने मणि होना और वे माणि किससे पोना और कितनी लंबी माला करनी चाहिये, सो विधि शास्त्रमें है कि नहीं ?

उत्तर–मार्कंडेयपुराणमें तथा नारदपञ्चरात्रमें इन प्रश्नका उत्तर ऐसा दिया है कि–

तुलसीमालाधारीकी प्रशंसा ।

अष्टोत्तरशतेनैव तुलसीकाष्ठसंभवाम् ।
कण्ठादिनाभिपर्यंतां धारयेद्वैष्णवोत्तमः ॥ ६ ॥
विधिवद्ग्रथिता सूत्रे माला तुलसिजा शुभा ।
धारणीया सदा कण्ठे जपहोमार्चनादिषु ॥ ७ ॥
तुलसीमालिकाधारी पुनाति भुवनत्रयम् ।
प्रणमंति सुरास्तस्मै शिवशक्रयमादयः ॥ ८ ॥

अर्थ–वैष्णव जो है सो एकसौ आठ मणिगणोंवाली तुलसीके काष्ठकी मालाको बनाके कंठसे नाभिपर्यंत लंबायमान धारण करे । और उन एकसौ आठ माणियोंको सूतमें विधिसे पोवे पीछे पोई हुई सुंदर मालाको जप, होम, और पूजा करते समय कंठमें सदा धारण करे ॥ इस प्रकारकी तुलसीकी मालाको धारण करनेवाला जो पुरुष है सो स्वर्गलोक, मृत्यु-लोक, पाताललोक इन तीन लोकको पवित्र करता है और उस मालाधारी पुरुषको शिव, इंद्र, यम, वरुण कुबेर आदि सकल देव साष्टांग प्रणाम करते हैं । ऐसा वह पुरुष उत्तम अधिकारको प्राप्त होता है ॥ ६–८ ॥

प्रश्न-हे महाराज ! दूसरे मतधारी ऐसा कहते हैं कि, रुद्राक्षकी माला विना संध्यावंदन देवपूजा आदिक कर्म सफल नहीं होते हैं और तुलसीकी मालाको धारण करके संध्या करना कोईभी शास्त्रमें हमने देखा नहीं, ऐसा बकवाद वे मतधारी कहते हैं ।

उत्तर-वे मतधारी घूघू पक्षीके समान है जैसे घूघू पक्षी कहता है कि सूर्य नहीं है, जो होवे तो मेरेको क्यों नहीं दीखता है, ऐसा घूघू कहता है तो क्या सूर्य नहीं है, इस वास्ते हे शिष्य ! वे मतधारी अपने रुद्राक्षको तुलसीसे श्रेष्ठ करना चाहते हैं, परंतु तुलसीके समान पवित्र और श्रेष्ठ तथा विष्णुको वशी करनेवाला चौदह लोकमेंभी दूसरा कोई पदार्थ नहीं है, अठारह भार वनस्पतिसे तुलसी भिन्न है तुलसी तो साक्षात् लक्ष्मीरूप है वनस्पतिरूप नहीं, और चार खानीके जीवोंसे विष्णु भिन्न हैं, विष्णु तो साक्षात् परब्रह्म हैं, जीवोंके समान नहीं, ब्रह्मा शिव आदिक देवही जीवोंमें गिने जाते हैं । और सालिग्राम पाषाणोंमें नहीं है वे तो साक्षात विष्णु हैं पाषाण नहीं हैं और रुद्राक्ष तो अठारह भार वनस्पतिमें एक तरहका वृक्ष है, उस रुद्राक्षके वृक्षको इस जगतमें कोईभी पूजता नहीं, और तुलसीको तो सब जगत् पूजता है और तुलसी विना वैदिक सत्कर्म सिद्ध नहीं होता है. देखो मरती वखत मुखमें गति होनेको तुलसी डारते हैं, गोदान, सुवर्णदान, अन्नदान, भूमिदान, वस्त्रदान आदि अनेक दान तुलसी विना भगवतको अर्पण नहीं हो सकते हैं. इन दान आदिक कर्मोंमें रुद्राक्षको कोईभी नहीं पूछता है छप्पन भोग बनाके आगे धरे, परंतु तुलसी विना नहीं आरोगते हैं, जिस वस्तुमें तुलसी डारते हैं उस वस्तुको भगवानभी अपनी करके अंगीकार करते हैं. जहां तुलसी नहीं रहती है वहां भगवान्भी नहीं रहते हैं क्योंकि तुलसी जो है सो विष्णुके वशी करनेकी बूंटी है, इस जगत्में अपने घरके द्वारमें तुलसी रोपते हैं, और पूजते हैं, और रुद्राक्षके वृक्षको तो नजरसेभी नहीं देखते हैं कि कहां रहता है ?

प्रश्न-तुलसी विष्णुको वश करनेकी बूंटी है ऐसा कौन शास्त्रमें प्रमाण है और संध्यावंदनादि वैदिक कर्ममें तुलसीकी मालाको धारण करना, इसमें क्या प्रमाण है ?

उत्तर-नारदपंचरात्र और भारद्वाजसंहिता ये दो ग्रंथ प्रमाण हैं कि-

तुलसीमाहात्म्य ।

तुलसी मोहिनी विष्णोर्वशीकरणमूलिका ।

तस्या धारणमात्रेण प्रीणाति भगवान् हरिः ॥९॥
पूजाकाले हरिध्याने संध्यादिवंदने तथा।
तुलसी धार्यते कंठे ते भक्ता हरिवल्लभाः ॥ १० ॥

अर्थ--तुलसी जो है सो विष्णुकी मोहिनी है और तुलसी विष्णुको वशी करनेकी मूली (जडी) है क्योंकि उस तुलसीके धारण मात्रसेही भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं, जैसे तुलसीमालाके धारण करनेसे भगवान् वशी होते हैं, वैसे योग, याग, व्रत, तीर्थ, तप, दान आदिकोंसे वशी नहीं होते हैं । इस कारणसे पूजाकालमें हरिके ध्यानमें, तथा संध्यावंदनमें, मंत्रके जापमें, भगवत्के दर्शनमें, भगवत्की कथाके श्रवणमें और कीर्त्तन आदिकमें तुलसीकी मालाको जो भक्त कंठमें धारण करते हैं वे भक्त हरिको अत्यंत प्यारे लगते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥फिर गरुडपुराणमें ऐसा कहा है कि--

तुलसीकाष्ठमालाभिर्भूषितो भ्रमते यदि।
दुःस्वप्नं दुर्निमित्तं च न भयं शस्त्रजं क्वचित् ॥ ११ ॥

अर्थ--तुलसीकाष्ठकी मालाको धारण करके इस पृथ्वीपर जो भ्रमण करे, तो उसको दुःस्वप्न और दुष्ट शकुन बाधा नहीं करते और उसको शस्त्रसेभी भय नहीं होता है ॥ ११ ॥

गरुडपुराणमें मालाशब्दका अर्थ लिखा है कि--

मालाशब्दार्थ।

दाने लाधातुरुद्दिष्टो लासि मां हरिवल्लभे।
भक्तेभ्यश्च समस्तेभ्यस्तेन माला निगद्यते ॥ १२ ॥

अर्थ--हे हरिकी प्यारी ! लाधातु दान अर्थमें है, और मा शब्द अपना वाचक है, अर्थात् हमको तू समस्त भक्तोंको देती है, इसलिये तेरा नाम माला है ॥

तुलसीमालाके अधिकारी।

यज्ञसूत्रं त्रिवर्णानां वैदिककर्मसिद्धये।
तुलसी सर्ववर्णानां स्त्रीणां मोक्षप्रदायिनी ॥ १३ ॥

अर्थ–यज्ञोपवीत वैदिक कर्मकी सिद्धिके लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीन वर्णोंको धारण करना कहा है और तुलसीकी माला तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णको तथा स्त्रीयोंको मोक्ष देनेवाली है, अर्थात् जैसे यज्ञोपवीत नियम करके तीनों वर्णोंकोही धारण करना कहा है; वैसे तुलसीकी मालाका नियम नहीं, किंतु तुलसीकी मालामें सर्व वर्णोंका तथा सर्व जातियोंका अधिकार है इति ॥ १३ ॥

महोपनिषद्में लिखा है कि--

"शंखचक्रधरो विद्वान् मालां तुलसीजां दधत्स
जीवन्मुक्तः" इति श्रुतिः ।

अर्थ--अग्नितप्त शंखचक्रको धारण करताहुआ विद्वान् पुरुष तुलसीकी मालाको धारण करताहुआ जीवन्मुक्त होता है । क्योंकि वेदकी श्रुति ऐसी कहती है कि तुलसीकी माला और कमलकी माला इन युगल धारण करनेवाले पुरुषको हर कोई पापके निवारण करने वास्ते प्रायश्चित्त नहीं करना पडता है क्योंकि जबसे वह पुरुष तुलसीकी और कमलकी मालाओंको धारण करता है तबसे उसके शरीरमें पाप नहीं रहते हैं, उसके सब पाप भस्म हो जाते हैं पीछे वह निष्पापी पुरुष जीवन्मुक्त होके इस लोकमें विचरता है।

प्रश्न–तुलसीकी मालाको धारण करनेका वैष्णवोंको जरूर है,परंतु कमलकी मालाके धारणमें कौन शास्त्रकी आज्ञा है ?

उत्तर–ब्रह्मांडपुराण और वामनपुराणमें कहा है कि–

पद्माक्षमाला विप्राणां धारणीया प्रयत्नतः ।
जपहोमार्चनादिषु वैष्णवानां विशेषतः ॥ १४ ॥
पद्माक्षमालिका नित्यं धारणीया प्रयत्नतः ।
तेषां दर्शनमात्रेण महापातकनाशनम् ॥ १५ ॥
पद्माक्षं धारयेद्यस्तु जपहोमव्रतादिषु ।
सोऽश्वमेधफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते ॥ १६ ॥

अर्थ–कमलकी माला प्रयत्नसे ब्राह्मण और वैष्णवोंको जप, होम और अर्चन आदि कर्मोंमें विशेष करके धारण करना योग्य है और कमलकी मालाको नित्य प्रयत्नसे धारण करनेवाले उन वैष्णवोंके दर्शनमात्रसे महापापियोंके महापातक नाशको प्राप्त हो जाते हैं और जो कोई वैष्णव जप होम और व्रत आदि कर्मोंमें कमलकी मालाको धारण करता है सो वैष्णव अश्वमेध यज्ञके फलको पाके वैकुंठलोकमें विराजता है। इस प्रकारके बहुत श्रुतिस्मृतियोंके प्रमाण हैं परंतु ग्रन्थका विस्तारके भयसे लिख नहीं सकते हैं ॥ १४–१६ ॥

प्रश्न–सतयुग, त्रेता और द्वापर इन तीन युगोंसे कलियुगमें माला धारण करनेका अधिक फल है कि, कमती फल है ?

उत्तर–सब युगोंसे कलियुगमें अधिक फल है, ऐसा स्कंदपुराण तथा भारद्वाजसंहितामें कहा है कि–

तुलसीकाष्ठमालाभिर्भूषितः पुण्यमाचरेत् ।
पितॄणां देवतानां च पुण्यं कोटिगुणं कलौ ॥ १७ ॥
सदा संधारयेद्यस्तु तुलसीमणिमालिकाम् ।
भूतप्रेतपिशाचास्तु न वर्तंते समीपतः ॥ १८ ॥

अर्थ–तुलसीके काष्ठकी मालारूपी आभूषणको धारण करके जो मनुष्य श्राद्ध यज्ञ, दान करे, तो उसको इस कलिमें कोटिं गुना फल होता है और जो मनुष्य तुलसीकी मालाको सदा धारण करता है, उससे भूत, प्रेत, पिशाच, ब्रह्मराक्षस, डाकिनी, शाकिनी आदिक सब भाग जाते हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥

प्रश्न–दूसरे पुरुषोंके कंठमें पहिरी हुई मालाको दूसरा पुरुष धारण करे तो उसको कुछ दोष तो नहीं ?

उत्तर–बडाभारी दोष है। पुलस्त्यसंहितामें कहा है कि–

पहरीहुईमालाका निषेध ।

न धारयेदन्यधृतां तुलसीकाष्ठसंभवाम् ।
मालां गृह्णन्नवाप्नोति सोपि गोब्रह्महा भवेत् ॥ १९ ॥
परकंठगतां मालां यो बिभर्ति द्विजाधमः ।
तस्य पापं स गृह्णाति जन्मकोटिशतोद्भवम् ॥ २० ॥

अर्थ–दूसरेकी धरी हुई तुलसीकाष्ठकी मालाको न धारण करे । यदि करलें तो उसको गोहत्या और ब्रह्महत्या प्राप्त होती है । और वह पुरुष द्विजोंके मध्यमें नीच है परके कंठकी मालाको धारण करनेवाला पुरुष, उस मालावालेके सौ करोड जन्मके पापोंको ग्रहण करलेता है, इसलिये अन्य पुरुषसे धारण का हुई मालाको धारण न करे ॥ १९ ॥ २० ॥

प्रश्न–हे गुरुजी ! मेरेको एक बडा भारी अचंभा देखनेमें आता है कि बहुतेरे साधु एक बडा भारी तुलसीके काष्ठका मणका बनाके उसका नाम हीरा धरके अपने कंठमें बांधते हैं, उनको हीरा बांधनेका हुकम कौन शास्त्रने दिया है ?

उत्तर–यह हीरा बांधनेका जो मार्ग है सो अपने मनकरके कल्पित उत्पटंगियोंने खडा कर लिया है, इसमें वेद पुराण धर्मशास्त्र आदिकका प्रमाण नहीं और शठकोप आचार्यसे लेके रामानंदस्वामी पर्यंत आचार्योंकाभी प्रमाण नहीं किंतु यह हिरा बांधनेका मत कोई श्रीवैष्णवोंके विरोधीने प्रगट किया है। क्योंकि, वे हीराके बांधनेवाले इस पंचसंस्कारकी पांचमी श्रुतिकेभी विरोधी हैं कि ' मालां तुलसीजां दधत्स जीवन्मुक्तः ' इस पांचमी श्रुतिमेंभी माला ! काही धारण करना कहा है इसवास्ते पांच संस्कारमें हीरा बांधना नहीं लिखा है ॥

कण्ठीधारण ।

अतः परमधर्मोयं कण्ठिकाद्वयरूपकः ।
वैष्णवानां परं चिह्नं प्राणांतेऽपि न तत्यजेत् ॥ २१॥

अर्थ–पंच संस्कारकी पांचवीं श्रुतिमें कंठीका धारण करनाही लिखा है, इस कारणसे यह युगल मालाका धारण रूप जो वैष्णवोंका धर्म है सो अत्यंत श्रेष्ठ है और यह वैष्णवोंका श्रेष्ठ चिह्न है, इस कारणसे इस चिह्नको प्राणोंके अंतसमयमेंभी त्याग न करे. यद्वा, कोई परमतवाला राजा अपनी सभामें बुलाकर हुकुम करे कि तुम इस तुलसीकी मालाको निकाल डालो और रुद्राक्षकी मालाको धारण करलो, नहीं तो हम तुम्हारा प्राण निकाल डालेगा, तो वहां मरना कबूल करै, परंतु तुलसीकी कंठीका त्याग न करै;ऐसा नारदपंचरात्र ग्रंथमें लिखा है ॥ २१ ॥

प्रश्न–तुलसीकी कंठी गुरु महाराज एक वखत बांध देते हैं फिर कदापि खंडित हो जाय और दूसरी कंठी धारण करनी पडै तो कौन मंत्रसे धारण

करनी चाहिये जैसे एक वार यज्ञोपवीत धारण करा देते हैं और वह उपबीत जब खंडित हो जाता है तव फिर नवीन यज्ञोपवीत मंत्रसे धारण कर लेते हैं वैसे तुलसीकी मालाकोभी कौन मंत्रसे धारण करे ?

कंठीधारणमंत्र ।

उत्तर- तुलसीकाष्ठसंभूते माले विष्णुजनाप्रिये ।
बिभर्मि त्वामहं कंठे कुरु मां रामवल्लभम् ॥ २२ ॥

इस मंत्रसे कंठीको तथा नाभिपर्यंत लंबी मालाको धारण करे, यह मंत्र गरुडपुराणमेंसे लिया है ॥ २२ ॥

प्रश्न-हे स्वामिन् ! आपने मुक्तिके साधन जो पंच संस्कार कहे हैं,उन पंच संस्कारोंका अलग अलग क्या फल है अर्थात् ताप संस्कारके धारण करनेसे कितना फल होता है ? और पुंड्रसंस्कारके धारण करनेसे कितना फल होता है? तथा नामसंस्कार, मंत्रसंस्कार और मालासंस्कार इनके धारण करनेसे क्या फल होता है ? इन पांचों संस्कारोंका अलग अलग फल कृपा करके कहो ॥

उत्तर-हे शिष्य ! भारद्वाजसंहिताके द्वितीय अध्यायमें इन पंच संस्कारोंके धारण करनेका क्रम निरूपण करके पीछे ऐसा इनका फल कहा है कि-

पंच संस्कारका फल ।

तापस्तपांसि तीर्थानि पुंड्रो नाम नमस्क्रिया ।
आम्नायाः सकला मंत्राः क्रतवः पूजनं हरेः ॥ २३ ॥

अर्थ-जिस पुरुषने विधिसे शंख चक्रकी छाप लिया है वह पुरुष सर्व तपोंको कर चुकाहै, उसको कोईभी तप करनेका बाकी रहा नहीं १। जिस पुरुषने ऊर्ध्वपुंड्र संस्कार धारण किया है उस पुरुषको इस पृथ्वीमें साढे तीन करोड तीर्थ हैं, उन सब तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त होता है उसको कोईभी तीर्थ करनेका बाकी नहीं रहता है २ । तृतीय नामसंस्कारको धारण करनेवाला पुरुष भगवत्को निरंतर सर्वकालमें नमस्कार करनेका फलको प्राप्त होता है ३। मंत्रसंस्कारको धारण करनेवाला पुरुष, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद इत्यादि सर्व वेद पढनेके फलको प्राप्त होता है ४ । और माला अथवा याग भगवत्का पूजन इनको धारण करनेवाला पुरुष अग्निहोत्र आदिक सब वैदिक यज्ञोंके फलको प्राप्त होता है, उसको कोईभी यज्ञ करनेके अवशेष नहीं रहते हैं ५ । ऐसा पंच संस्कारोंके धारण करनेका अपार माहात्म्य है ये पंच

संस्कारही मुक्तिके साधन हैं, क्योंकि वर्णाश्रमके जो संस्कार हैं वे जातिकोही उत्पन्न करनेवाले हैं जैसे ब्राह्मणके षोडशसंस्कार द्विजातिके उत्पन्न करने वाले हैं, तथा ब्रह्मचारी संन्यासी आदिकोंके संस्कारभी आश्रमोंकेही उत्पन्न करनेवाले हैं, परंतु भगवतके संबंधको ये संस्कार उत्पन्न नहीं कर सकते हैं. और वैष्णवोंके जो पंच संस्कार हैं वे तो भगवत्के साथ संबन्धको करने-वाले हैं, और परमैकांतिपनेको उत्पन्न करनेवाले हैं ।

"एकांतिनस्तु पुरुषा गच्छन्ति परमं पदम् ।"

जो एकांती पुरुष हैं वे परमपद श्रीवैकुंठ धामको प्राप्त होते हैं, एकांती हुये विना वैकुंठ धाम नहीं मिलता है और ब्राह्मणादिकोंके संस्कार तो केवल जातिमात्रकोही उत्पन्न करते हैं. इसलिये विष्णुके साथ संबन्ध करने वास्ते और एकांतित्वकी प्राप्ति वास्ते ब्राह्मणादिकोंकोभी ये वैष्णवोंके पंच संस्कार अवश्य करके धारण करने चाहिये ॥ इति ॥

इति श्रीमद्रामानुजचरणसरोरुहचंचरीकेण श्रीमत्पण्डितगोपालदा-सेन विरचिते श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकरे तुलसीकाष्ठमालाधारणा-ख्यपंचमसंस्कारविधिकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।

श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

अथ विष्णुभक्तितत्त्व ।

नारायणं नमस्कृत्य लोकानां मोक्षहेतवे ।
विष्णुभक्तिं प्रवक्ष्यामि ज्ञानवैराग्यमातरम् ॥ १ ॥

अर्थ—श्रीमन्नारायण भगवान्को नमस्कार करके सर्व लोकोंका मोक्ष होनेके लिये ज्ञान और वैराग्यकी माता विष्णुभक्तिको अब मैं कहता हूँ ॥ १ ॥

प्रश्न—ज्ञान, वैराग्यकी माता भक्तिको कब करे ?

उत्तर—एवं महाभागवतः सुसंस्कृतो रामस्य भक्तिं च
परां प्रकुर्यात् । महेन्द्रनीलाश्मरुचेः कृपानिधेः
श्रीजानकीलक्ष्मणसंयुतस्य ॥ २ ॥

अर्थ-इस प्रकार पीछले अध्यायमें कहे हुये पंच संस्कारों करके संस्कार किया हुआ महाभागवत मुमुक्षु इंद्रनील मणिके सदृश कांतिवाले श्रीजानकी और लक्ष्मण करके सहित और दयाके महासमुद्र श्रीरामकी पराभक्तिको करे॥

प्रश्न-हे गुरुमहाराज ! कितने वादी 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' ज्ञानसे विना मुक्ति नहीं होती है, ऐसा कहते हैं और आप तो भक्तिसे मुक्तिको साधते हो।

उत्तर-कलियुगमें भक्तिसे मोक्ष होनेका पद्मपुराणमें कहा है कि-

सत्यादित्रियुगे बोधवैराग्यौ मुक्तिसाधकौ ।
कलौ तु केवलं भक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी ॥ ३ ॥

अर्थ-सतयुग, त्रेता, द्वापर इन तीन युगोंमें ज्ञान वैराग्यसे मोक्ष होता था और कलियुगमें तो ब्रह्मकी सायुज्यमुक्तिको देनेवाली केवल भक्ति है ॥ ३ ॥

प्रश्न-इस लोकमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ हैं, उन चारोंमें मोक्षही परम पुरुषार्थ है, उस मोक्षके मुख्यमार्ग कितने हैं ?

उत्तर-भागवत एकादश स्कंधमें भगवान् उद्धवके प्रति कहते हैं कि-

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया ।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोन्योस्ति कुत्रचित् ॥४॥

अर्थ-हे उद्धव ! मनुष्योंको मोक्ष साधनकी इच्छा करकेमैंने मोक्षके ज्ञान, कर्म और भक्ति ये तीन उपाय कहे हैं, अन्य चौथा उपाय वेद और लोकमें कहीं नहीं हैं ॥ ४ ॥ और गीतामेंभी अर्जुनके प्रति भगवान्ने ये तीनही उपाय कहे हैं, गीताके प्रथम छः अध्यायों करके कर्मकाण्ड, दूसरेषट् अध्यायों करके उपासना काण्ड और तीसरे षट् अध्यायों करके ज्ञान-कांड कहा है इस रीतिसे गीताके अष्टादश अध्यायमें कर्म, भक्ति और ज्ञान इन तीनोंकाही भगवान्ने प्रतिपादन किये हैं, इन तीन उपायोंके विना दूसरे उपाय नहीं बताये हैं ॥

प्रश्न-इन तीन उपायोंके अधिकारी अलगर२हैं कि तीनों उपायोंका एकही अधिकारी है ?

उत्तर-इनके अधिकारीभी भागवतके एकादश स्कंधमें भगवानने उद्धवके प्रति भिन्नभिन्न कहे हैं कि-

ज्ञानयोगादिके अधिकारी।

निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु।
तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम् ॥ ५ ॥
यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान्।
न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः॥६॥

इन तीन उपायोंके मध्यमें प्रथम ज्ञानउपायके अधिकारीको कहते हैं कि, जो पुरुष इस लोक और परलोकके जो कर्मफल हैं वे नाशवान् और दुःखके देनेवाले तथा सातिशयादि दोषोंकरके दूषित हैं, इस प्रकारकी दुःखबुद्धिकरके जिन पुरुषोंने कर्मोंका त्याग किये हैं, उन त्यागी पुरुषोंको ज्ञानयोगही मोक्षदाता है १। जे पुरुष कर्म और कर्मफलोंको दुःखरूप नहीं जानते ऐसे वैराग्यसे रहित जो कामी पुरुष हैं, उनको कर्मयोगमेंही अधिकार है २। जिस पुरुषकी पूर्व जन्मके कोई भाग्योदय करके मेरी कथा, कीर्त्तन, भजनादिमें श्रद्धा उत्पन्न हुई है, और वह पुरुष नहीं तो वैराग्यवान् है, और नहीं कर्ममें अत्यंत आसक्त है, उसको भक्तियोगही मुक्तिको देनेवाला है ३। इस रीतिसे मुक्तिके तीन उपाय भगवान्ने साधारणप्रकारसे कहे हैं. और उनके अधिकारीभी जुदे जुदे कहे हैं.परंतु इस कलिकालमें तो भक्तिही मुक्तिको देनेवाली है. क्योंकि ज्ञान, वैराग्य ये दो भक्तिके पुत्र हैं, और सारूप्य, सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य, ये चार मुक्ति भक्तिकी दासी हैं. जहां भक्ति रहती है, वहां पुत्र और दासी ये सब आपही आते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

प्रश्न—भक्ति किसको कहते हैं अर्थात् उस भक्तिका स्वरूप कैसा है सो दया करके कहो।

उत्तर—शांडिल्यतत्त्वसुधाग्रन्थमें कहा है कि—

भक्तिलक्षण।

सर्वस्मादधिकः स्नेहो भक्तिरित्युच्यते बुधैः।
सैवैनमूर्ध्वं नयति साक्षात्कारयति ह्यजम् ॥
तस्मात्सा भूयसी भक्तिः सैका निःश्रेयसेऽप्यलम्॥७॥

अर्थ—परमात्मामें सबसे जो अधिक स्नेह है उसको बुधजन भक्ति कहते हैं और वही भक्ति परम पद वैकुंठको प्राप्त करती है और वही भक्ति परमा-

त्माका साक्षात्कार कराती है। इस कारण वह भक्ति सर्वसे श्रेष्ठ है और वही भक्ति अकेली मोक्ष देनेको समर्थ है। ऐसा शांडिल्यतत्त्वसुधा ग्रंथमें कहा है ॥७॥ और रामानंदस्वामीने सुखुरानंदजीको भक्तिका स्वरूप ऐसाही बताया है कि, हे शिष्य ! श्रीराम परमात्मामें तत्पर होके अनन्यभावसे तथा कामनासे रहित सदा श्रीरामका भजन करना और विद्वान् वैष्णवोंकी संगति रक्खना और जैसे समुद्रमें अंतरसे राहित गंगा आदिक नदी मिली हुई हैं, वैसे अंतरसे रहित निरंतर वारंवार श्रीरामपरमात्माका भजन करना, उसको महर्षिलोक भक्ति कहते हैं। और नारदपञ्चरात्र ग्रंथमें भक्तिका स्वरूप ऐसाही कहा है कि, काम क्रोध, लोभ आदिक उपाधियोंसे रहित भगवत्परायण होकर हे हृषीकेश, हे वासुदेव, हे नारायण ऐसा जो निर्मल मनसे भजन करनाहै उसको भक्ति कहते हैं। यही भक्ति सामान्यसे अपरा परा ऐसी दोप्रकारकी है, उनमें अपरा भक्ति मानसी, कायिकी और वाचिकी ऐसी तीन प्रकारकी है ॥

मानसी भक्ति ।

त्रेधा भक्तिर्निगमविहिता केशवे मोक्षहेतुः
सख्यं श्रद्धा स्मरणमनिशं नैजदेहार्पणं च ।
औदासीन्यं स्वतनुभरणे पोषणादौ स्वकीये
न्यस्यात्मानं भगवति हरौ मानसी भक्तिरेषा ॥८ ॥

अर्थ–केशव भगवान्के विषयमें वेदने विधान की हुई जो यह तीन प्रकारकी भक्ति है सो मोक्षका कारण है। उनमें जो मन करके की जाती है, उसको मानसी भक्ति कहते हैं, जैसे कि मनकरके भगवत्में सखाभाव रक्खना श्रद्धा रक्खना मनकरके रात दिन भगवत्का स्मरण करना, मन करके अपने देहको भगवतके अर्पण करना और अपने आत्माको भगवत्में अर्पण करके अपने शरीरके भरण पोषणकी चिंता न करना, इसका नाम मानसी भक्ति है ॥ ८ ॥

कायिकी भक्ति ।

कर्णाभ्यां तच्छ्रवणमनिशं सज्जनानां मुखाब्जा-
न्नित्यं सेवामधुरिपुगृहे मार्जनादिप्रकारैः ।

अर्चा विष्णोर्विविधसुरभिद्रव्यलेपादि देहे
पंचांगाद्यैर्नमनमुदितं वंदनं कायिकीयम् ॥ ९ ॥

अर्थ–विद्वान् सज्जनोंके मुखारविंदसे रात दिन भगवतकी कथाको अपने कानोंसे श्रवण करना, मधुसूदन भगवानके मंदिरमें लीपना, झाड़ू देना जल भरना, चौक पूरना आदिक प्रकारसे नित्य सेवा करनी, विष्णुकी मूर्तिमें नाना प्रकारके सुगंधिवाले चंदन, केशर, कस्तूरी, अगर, तगर आदि द्रव्योंका लेप करना और पंच अंगोंसे आदि लेके साष्टांगपर्यंत भगवतको वंदना करना, इसका नाम कायिकी भक्ति है ॥ ९ ॥

वाचिकी भक्ति ।

विष्णोर्नाम्नां कथनमनिशं कीर्तनं तद्गुणानां
दास्यं कर्माखिलमपि कृतं केशवस्याज्ञयास्तु ।
तत्संतुष्ट्यै स च मम गतिस्तस्य दासोस्मि नित्यं
सर्वं विश्वं हरिरिति वचो वाचिकी भक्तिरिष्टा॥ १० ॥

अर्थ–वाचाकरके विष्णुके सहस्र नामोंका रात दिन कथन करना, भगवतके गुणोंका नित्य कीर्तन करना, दासपने करके किया हुआ जो संपूर्ण कर्म है सो केशवकी आज्ञासे किया है, और वह कर्म भगवतके संतोषके अर्थ है और सो भगवान् मेरी गति है, और मैं भगवान्का सदाही दास हूं, और यह जो विश्व है सो हरिरूप है, ऐसा जो वचन बोलना, सो वाचिकी भक्ति कही जाती है ॥ ऐसी तीन प्रकारकी अपरा भक्ति है सो प्रत्यक्तत्त्वचिंतामणि ग्रंथमें कही है ॥ १० ॥ और श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन यह जो नवप्रकारकी भक्ति भागवतके सप्तमस्कंधमें कही है सो इस अपरा भक्तिके अंदर आ चुकी है ॥ और षोडश प्रकारकी भक्तिभी इस कायिक, वाचिक और मानसीकरूप अपरा भक्तिके भीतर आ चुकी है ॥

षोडशप्रकारकी भक्ति ।

तुलसीमालिका कंठे शंखचक्रांकनं हरेः ।
धारणं चोर्ध्वपुंड्राणां तन्मंत्राणां परिग्रहः ॥ ११ ॥
कीर्त्तनं श्रवणं दास्यं वंदनं पादसेवनम् ।

तत्पादोदकसेवा च तन्निवेदितभोजनम् ॥ १२ ॥
तदीयानां च सेवा च द्वादशीव्रतनिष्ठितम् ।
तुलसीरोपणं विष्णोरर्चनं स्मरणं तथा ।
भक्तिः षोडशधा प्रोक्ता भवबंधविमुक्तये ॥ १३ ॥

अर्थ—पद्मपुराणमें कहा है कि, कंठमें तुलसीकी माला रखना, भगवतके शंख चक्रोंका छाप लेना, द्वादश ऊर्ध्वपुंड्रोंका धारण करना, ऊर्ध्वपुंड्र तिलक करनेके मंत्र सीखना, कीर्त्तन सीखना, कथा सुनना, दासभाव रखना, वंदन करना, पादसेवन करना, चरणामृत लेना, भगवत्प्रसादका भोजन करना, भगवतके दासोंकी सेवा करनी, द्वादशीके व्रतमें निष्ठा रखनी, तुलसीके विरवा रोपना, विष्णुका पूजन करना और भगवत्का स्मरण करना ऐसी सोलह प्रकारकी भक्ति संसारके बंधनसे मुक्ति करनेवाली है। भागवत एकादशस्कंधके एकादशमाध्यायमें भगवानने उद्धवके प्रति इस अपरा भक्तिका प्रतिपादन ऐसा किया है कि, हे उद्धव ! मेरे शंख चक्रके चिह्नवाले वैष्णवोंके दर्शन करना, स्पर्श करना, पूजा करना, सेवा करनी, स्तुति करनी, प्रणाम करना, उसके गुण कर्मोंका कीर्त्तन करना, और मेरी कथा सुनना, मेरा ध्यान करना, सर्व लाभका मेरे अर्पण करना, दासभावसे अपने आत्माको मेरे अर्पण करना, मेरे जन्म कर्मोंका कथन करना, नृसिंहचतुर्दशी, वामनद्वादशी, रामनवमी, जन्माष्टमी इन पर्वोंके दिन आनंदसे गीत, वादित्र नृत्यादिक करके मेरे मंदिरमें उत्सव करना, पुष्पोंके हार मेरे अर्पण करना, पुष्पोंकी वाडी लगाना, फलोंके उपवन लगाना, वैदिक और तांत्रिक दीक्षाको धारण करके मेरे व्रतका धारण करना, मेरी मूर्त्ति स्थापन करनेमें श्रद्धा रखना, मेरे मंदिरमें झाड देना और लीपना, सर्वतोभद्रादिकके चोक पूरना, मान और दंभका त्याग करके अपने कियेहुये कामका वखान न करना, और दूसरे देवको अर्पण कियाहुआ नैवेद्य दीपक आदिको मेरे अर्पण न करना, और जो वस्तु मिले और अपने आत्माको प्रिय लगे सो सब मेरे अर्पण करना इत्यादिपरिचर्या करनेसे अनंत गुणा फल प्राप्त होता है, इस रीतिसे भगवानने अपरा भक्तिका प्रतिपादन किया है ॥ यह जो अपरा भक्ति है सो साधनरूप है, इस भक्तिके करनेसे पराभक्ति प्राप्त होती है। अपराभक्ति साधनरूपा है, और पराभक्ति फलरूपा है, इसलिये जब प्रथम अपराभक्ति करे, पछि पराभक्तिका अधिकार होता है ।

इति अपराभक्तिवर्णनम् ॥

परा‌भक्ति।

सा तैलधारासमनित्यसंस्मृतिः संतानरूपेशिपरानुरक्तिः ।
भक्तिर्विवेकादिकसप्तजन्या तथा यमाद्यष्टसुबोधकांगा १४

अर्थ–ईश्वर परमात्मामें अंतरसे रहित चिकने तैलकी धाराके सदृश नित्य निरंतर स्मृतिका विस्ताररूप जो अनुरक्ति(प्रीति)है सो पराभक्ति कही जाती है। वह पराभक्ति विवेक[1] आदिक सप्त साधनोंसे उत्पन्न होनेवाली और यम,नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि इन अष्टअंगोंके साधनेसे पराभक्ति प्राप्त होती है ॥१४॥ फिर इस पराभक्तिका लक्षण शांडिल्यसूत्रमेंभी कहा है कि–

"सा परानुरक्तिरीश्वरे॥"

अर्थ–जैसे शुक्लपक्षमें चंद्रमाकी कला दिन दिन प्रति बढती है वैसे परमगुरु ईश्वरमें तर्कसे रहित दिन दिन जो प्रीति अत्यंत बढती है सोही पराभक्ति है इति ॥ इस पराभक्तिके औरभी नाम भेद हैं कि–

पराभक्तिके भेद।

सिद्धा भक्तिः । प्रेमलक्षणा भक्तिः । निष्कामा भक्तिः ।
दुर्लभा भक्तिः। अनन्योपासना भक्तिः। निर्गुणा भक्तिः।

इत्यादिक भेद हैं। इनके लक्षण क्रमसे कहताहूं सुनो–

सिद्धाभक्ति।

बैठते, सोते, इधर उधर फिरते, खाते, पीते, और सर्व कालमें विष्णुका स्मरण करता है, और एक निमिषमात्रभी भूलता नहीं, ऐसी जो भगवानमें अखंड स्मृति है सो सिद्धा भक्ति है॥ और जो शुद्धसत्त्वगुणी पुरुषके विकारसे रहित मन और पंच ज्ञान इंद्रियोंकी यत्नसे विना स्वभावसेही जो श्रीहरिमें प्रवृत्ति है उसको सिद्धा भक्ति कहते हैं ॥ ऐसा भागवत तृतीयस्कंधमें कहा है कि–

अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ।
जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा ॥ १५ ॥

---

१ विवेक, वैराग्य षट्संपत्ति, मुमुक्षुता, श्रवण, मनन, निदिध्यासन.

अर्थ–जो भगवत्‌की निष्काम भक्ति है सो मुक्तिसेभी श्रेष्ठ है । वह सिद्धा भक्ति जैसे भोजन किया हुआ अन्नको जठराग्नि भस्म कर देता है, वैसे सतरह तत्त्वके प्राकृत लिंगशरीरको सहजमें शीघ्रही भस्म कर देती है । और इस लिंगशरीरके जलनेसेही मुक्तिभी होती है, यह लिंगशरीरही चौराशी लक्ष योनियोंकी चार खानियोंमें भटकता है ॥ इति सिद्धा भक्तिः ॥

प्रेमा भक्ति ।

प्रेमके आनंद करके जिस पुरुषके रोम खडे होजावे और चित्तके गद्गद होनेसे साफ बोला न जावे, आनंदके आंसू पडने लगें, वाणी गद्गद हो अच्छी तरहसे समझनेमें न आवैं, तथा वह पुरुष अपनेसे परमात्माका वियोग मानकर कहां छोडगये, ऐसा कहकर रोने लगे, क्षणमें परमात्माका संयोग मानकर आगये, ऐसा समझके हसने लगे, और निर्लज्ज होकर वारंवार गाने और नाचने लगे, ऐसी प्रेमा भक्तिवाला पुरुष अपने आत्माको तो क्या,परंतु तीनों लोकोंको पवित्र करता है, जैसे अग्निमें धमन किया हुआ जो सुवर्ण है सो अपने मलका त्याग करके स्वच्छ स्वरूपको पाता है, वैसे इस प्रेमा भक्ति करके अनेक जन्मोंके कर्मोंका समूलनाश करके आत्माभी भगवतके स्वरूपको प्राप्त होता है ॥ इति प्रेमाभक्तिलक्षणम् ॥

निष्कामा भक्ति ।

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णंति विना मत्सेवनं जनाः ॥ १६ ॥

अर्थ–भागवतके तृतीयस्कंधमें कपिल भगवान् अपनी माता देवहूतिको कहते हैं कि हे माता ! मेरे निष्कामी भक्त लोग सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और एकत्व इन पांच मुक्तियोंको मैं देवें तो भी वे लोग मेरी सेवा विना इन मुक्तियोंको ग्रहण नहीं करते, किंतु वे मेरी सेवामेंही सदा आनंदित रहते हैं ॥ इति निष्कामालक्षणम् ॥

दुर्लभा भक्ति ।

यो मे संबंधोपगतः स विष्णुर्यश्चारिभूतो मम सोपि विष्णुः ।
दिवं वियद्भूः ककुभश्च विष्णुर्भूतानि विष्णुर्भुवनानि विष्णुः ।
न मेस्ति बंधुर्नच मेस्ति शत्रुर्न भूतवर्गो न जनो मदन्यः ॥१७॥

नमो भगवते तस्मै येन सर्वमिदं ततम् ।
अहं भगवतस्तस्य मम चासौ सुरेश्वरः ॥ १८ ॥

अर्थ-दुर्लभाभक्तिवाला पुरुष इस जगतको विष्णुमय देखता है. और कहता है कि, जो मेरा संबंधी सगा है सो विष्णुरूप है, और मेरा जो शत्रु है सोभी विष्णु है, स्वर्गभी विष्णु है, आकाशभी विष्णु है, पृथ्वीभी विष्णु है, दश दिशाभी विष्णु है, इस पृथ्वीमें जितने प्राणी हैं वे सब भी विष्णु हैं, जो चतुर्दश लोक हैं वेभी विष्णु हैं, और मेरे कोई बंधुभी नहीं, और शत्रुभी नहीं, मेरेसे भिन्न इस जगत्में कोईभी प्राणी नहीं, और मेरेसे भिन्न कोई जनभी नहीं, और जिस भगवत् करके यह सर्व जगत व्याप्त है, उस भगवान्को मेरा नमस्कार है, और उनही भगवतके मैं शरण हूं, सो भगवान् मेरा है, और मैं उस भगवानका हूं ॥ ऐसी दुर्लभा भक्ति विष्णुधर्मोत्तरखंडमें कही है ॥ इति दुर्लभाभक्तिलक्षणम् ॥

अनन्योपासना भक्ति ।

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन् ।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किं च भूतं प्रणमेदनन्यः ॥ १९ ॥

अर्थ-आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी और सूर्य चंद्र आदिक सकल ज्योतिर्गण और ब्रह्मादि स्थावर पर्यंत सर्व प्राणी और दशदिशा और सब वृक्षादिक अठारह भार वनस्पति, गंगाआदिक सर्व नदियां और सप्त समुद्र,तथा औरभी जो कुछ किंचित् भूतमात्र बाकी रहाहो सो सब हरिकाही शरीर है ऐसा मानकर इन सबको मन वचन और कायासे प्रणाम करे सो अनन्य भक्त कहा जाता है ॥ ऐसा भागवत एकादशस्कंधमें कहा है ॥ इति अनन्योपासनाभक्तिः ॥

निर्गुणा भक्ति ।

निर्गुण भक्तिभी इन भक्तियोंमेंही अंतर्भूत है ॥ और वैरानुबंध और भयकरके, स्नेह करके, काम करके रावण, शिशुपाल, पांडव, गोपी आदिकोंनेभी भक्ति की है ॥ सात्विकी, राजसी तामसी आदिक औरभी भक्तिके अनेक प्रकार हैं, कारण इतनाही है कि जिस जिस प्रकारसे परमात्मामें मनकी वृत्ति रखनेसे कीटभृंगन्याय करके भगवत् स्वरूपकी प्राप्ति होती है । साधनरूपा अपरा भक्ति जब प्रथम की जाती है, पीछे फलरूपा पराभक्ति प्राप्त होती है सो बहुत दुर्लभ है । गीतामें कहा है कि-

समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ।

जब सर्व प्राणियोंमें सम दृष्टि होती है, तब मेरी पराभक्तिका लाभ होता है, ऐसा भगवद्वचन है ॥ और भक्तिसे सर्व पापोंका नाश होनाभी गीतामें कहा है कि–

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।

सर्व पापोंसे मुक्ति करनेकी भगवानने ऐसी प्रतिज्ञा की है । और यह भक्ति मार्ग कैसा है कि, संसाररूप नदीका सेतु (पुल) है जैसे नदीके उसपार उतरनेकी इच्छावाले मनुष्य अंधा, पांगला, वृद्ध, बालक, आदिक सब कोई पुल ऊपर होकर सहजही नदीके पार हो अपने अपने मन इच्छित स्थानको प्राप्त होते हैं, वैसे भक्तिमार्गभी संसार नदीका पुलरूप है, इस भक्ति मार्ग करके देव, मनुष्य, राक्षस, भूत, प्रेत, पशु, पक्षी आदिक सब कोई संसारनदीको उतरकर अपना जो वैकुंठ धाम है उसको प्राप्त होते हैं; भक्ति रूपी पुल ऊपर होके उतरनेवाले जीवोंको काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, अंहकार, मत्सर आदिक संसारनदीके मगर मच्छोंकाभी भय होता नहीं और भक्ति विना दूसरे ज्ञानयोगादि मार्ग करके संसारनदीको उतरना चाहते हैं उनको काम क्रोधादिक मगरोंका भय है । क्योंकि, नदीमें पडकर उस पार जो जाता है उसकोही मगर मच्छ भवर आदिका भय होता है । और पुल ऊपर जानेवाले तो निर्भय रहते हैं और उनको नदी उतरनेको परिश्रमभी नहीं होता । इसलिये दूसरे सब साधनोंका परित्याग करके इस कलियुगमें भगवत्परायण होकर भक्ति मार्गमेंही दृढ श्रद्धा रखनी चाहिये । यही वेद शास्त्र पुराण आदिकोंका अचल सिद्धांत है । और गीताचार्य कृष्ण-भगवानकाभी यही सिद्धांत है कि–

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

और पद्मपुराणमेंभी कहा है कि–

अलं व्रतैरलं तीर्थैरलं योगैरलं मखैः ।
अलं ज्ञानकथालापैर्भक्तिरेकैव मुक्तिदा ॥ २० ॥

अर्थ–ब्रह्मचर्यादि व्रतोंके करनेसे क्या है, तीर्थोंके करनेसे क्या होता है, यज्ञ करनेसे क्या होनेका है, ज्ञानके सुननेसे क्या होनेका है, किंतु भक्ति जो है सोही अकेली मुक्तिको देनेवाली है । इसवास्ते व्रत तीर्थ योग यज्ञ

और ज्ञान इन सबसे पूर्णही रहना और एक भक्तिमेंही मनको लगाना चाहिये ॥ २० ॥ पद्मपुराणमें तप आदिक साधनोंका त्याग बताया है कि–

न तपोभिर्न वेदैश्च न ज्ञानेनापि कर्मणा ।
हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिकाः ॥ २१ ॥

अर्थ–इस जगतमें कृच्छ्र चान्द्रायणादिक अनेक प्रकारके तप हैं, परंतु उन करके श्रीहरि साधनेमें नहीं आते हैं। और ऋक्, यजु, साम, अथर्व इन चार वेदोंके पढनेसेभी हरि साधे जाते नहीं और ज्ञान करकेभी हरि सिद्ध नहीं होते हैं, और कर्म करकेभी हरि प्राप्त नहीं होते हैं, किंतु केवल भक्ति करकेही हरि साधे जाते हैं। एक लक्ष गोपी प्रमाण हैं अर्थात् भक्तिकरकेही एक लाख गोपी भगवतको प्राप्त हुई हैं। देखो कि उन गोपियोंने नहीं तो व्रत, तीर्थ, योग, याग, तप किये हैं और उन्होंने वेद नहीं पढे रहे किंतु वे गोपीजन केवल भक्तिसेही हरिको अपने वश करली है । और जटायु, शिवरी, गुह आदिक महानीच जातिवालोंनेभी योग योगादिकोंके किया विनाही भक्ति करके मुक्तिको प्राप्त हुये हैं, सो सब कोई जानता है इति ॥ २१ ॥

प्रश्न–अहो ! सहजमें तत्काल मुक्तिको देनेवाली और भगवानको वशमें करनेवाली ऐसी भक्ति महाराणीमें सब कोई प्रीति क्यों नहीं करते हैं ? किंतु कोई ज्ञान संपादन करनेके वास्ते वेदांत पढनेका अभ्यास करता है, कोई योगमें अडंगा लगाता है, कोई तीर्थोंमें फिर फिरके पग तोडता है, कोई यागादि कर्मोंके धूमसे आंख फोडता है, और कितने कुछ चांद्रायणादि तप करके भूखें मरते हैं, कोई चौराशी आसनोंके सीखनेमें अपने शरीरकी नसोंको तोडते हैं, कोई पंचाग्निमें जलता है, कोई अन्नब्रह्मको त्यागके कन्दमूल फल खाके अपने दांतोंको गिराता है, कोई चौराशी धूनियोंमें वृथाही जलता है, कोई वागोल पक्षीकी माफक ऊंधा झूलामें लटकता हैं, कोई राखमें लोटता है, कोई जटा बन्धाके सिद्ध वन बैठता है, कोई गुदामें लकडेकी कौपीनको बुसेडता है, कोई मर्यादासे रहित होकर पशुकी माफक अपने कुले जगत्को दिखाता है, कोई रंगवेरंगी भगवां कपडे पहिरके टुकडे घर घर चाखता फिरता है इत्यादिक वहुत लोक भक्तिमहाराणीमें प्रीति क्यों नहीं करते हैं ?

उत्तर--नृणां जन्मसहस्रेण भक्तौ प्रीतिर्हि जायते ।
कलौ भक्तिः कलौ भक्तिर्भक्त्या कृष्णः पुरः स्थितः ॥

अर्थ–मनुष्योंके जब हजार जन्मोंके पुण्य इकट्ठे होते हैं तब भक्ति महाराणीमें प्रीति उत्पन्न होती है और दूसरे युगोंसे इस कलियुगमें भक्ति अत्यन्त प्रधान है, इसलिये कलियुगमें भक्ति करने योग्य हैं, भक्ति करके भगवान् आगे खडे रहते हैं, ऐसी भक्तिका दुर्लभत्व पद्मपुराणमें कहा है, एक दो जन्मके पुण्यसे भक्तिमें श्रद्धा उत्पन्न होती नहीं, इससे हजार जन्मके पुण्यसे रहित जो मनुष्य हैं वे मनुष्य भक्तिमहाराणीका परित्याग करके दूसरे मार्गोंमें माथा कूटते हैं, जैसे तृषावंत पुरुष भराहुआ सरोवरको छोडके अपनी तृषाके मिटानेको उत्तरा खंडके पर्वतोंको तोडके कूप खोदता है, वैसे पुण्यहीन पुरुषभी भक्तिरूपी सरोवरको छोड जन्ममरणरूपी तृषाके मिटाने वास्ते ज्ञान, योग, याग, तप आदिक पर्वतको तोडके मुक्तिरूपी जल निकालनेको इच्छाकरता है ॥२२॥ भक्ति करनेवाले पुरुषोंको भूत प्रेतादिकोंको बांधनेके और उतारनेके मन्त्र सीखनेकाभी प्रयोजन नहीं;ऐसा पद्मपुराणमें कहा है कि–

न प्रेतो न पिशाचो वा राक्षसो वासुरोऽपि वा ।
भक्तियुक्तमनस्कानां स्पर्शने न प्रभुर्भवेत् ॥ २३ ॥

अर्थ–महान् पवित्र भक्तिमान् पुरुषकों स्पर्श करनेमें प्रेत पिशाच राक्षस, और असुरभी समर्थ नहीं । क्योंकि, ये भूत प्रेत पिशाच ब्रह्मराक्षस डाकिनी शाकिनी आदिक मलीन योनीवाले हैं वे महापवित्र अग्निसमान जो भक्तिमान् पुरुष है, इसलिये जैसे अग्निको दीपकें आदि जंतु स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं, वैसे भक्तिमान् पुरुषको पाप योनीवाले भूत, प्रेत सर्प आदिकभी स्पर्श नहीं कर सकते हैं ॥ २३ ॥

प्रश्न–भक्तिसे भिन्न जो दूसरे मार्ग हैं उनको किसने प्रगट किये हैं, और वे मार्ग कैसा फलको देनेवाले हैं ?

उत्तर–ऋषिभिर्बहवो लोके पन्थानः प्रकटीकृताः ।
श्रमसाध्याश्च ते सर्वे प्रायः स्वर्गफलप्रदाः ॥ २४ ॥

अर्थ–इस लोकमें भक्तिसे भिन्न बहुत मार्ग ऋषि लोगोंने प्रगट किये हैं, उन मार्गोंमें प्रवेश करनेवाले साधक पुरुषोंको बहुत महिनत करनी पडती है और कष्टसाध्य होनेपरभी जन्म मरणको देनेवाला अल्प और अस्थिर स्वर्गफलको देनेवाला हैं मोक्ष फलको नहीं दे सकते हैं, इस कारण ऋषिकृत

पंथोंका त्याग करके भगवत्कृत भक्तिमार्गकाही अंगीकार मुमुक्षुओंको अवश्य करना योग्य है ॥ २४ ॥

प्रश्न–ऋषिकृत मार्गको त्याग करनेसे ऋषि लोगभी जब भक्तिका द्रोह करेंगे, तब भक्ति करनेवालेकी क्या गति होगी ?

उत्तर–जो कोई भक्तिका द्रोह करेगा उसको दुर्वासा ऋषिकी तरह तूंबडी पकडकर भागना पडेगा, और भागनेसेभी तीन लोकमें कोईभी उसकी रक्षा नहीं, करेगा सो पद्मपुराणमें कहा है कि–

भक्तिद्रोहीकी गति ।

भक्तिद्रोहकरा ये च ते सीदन्ति जगत्रये ।
दुर्वासा दुःखमापन्नः पुरा भक्तिविनिंदकः ॥ २५ ॥

अर्थ–भक्तिका द्रोह करनेवाले पुरुष तीनों लोकमें दुःखही पाते हैं, देखो, पूर्व युगमें भक्तिका निंदक दुर्वासा ऋषि बहुत दुःख पाया है ॥ २५ ॥

दुर्वासकी संक्षिप्त कथा ।

दुर्वासा ऋषिने जो बहुत दुःख पाया है सो भागवतके नवम स्कंधमें यह कथा है कि, दुर्वासाऋषि शंकरका अवतार हुआ सो उसने विष्णुभक्त अंबरीषका द्रोह किया, और अंबरीषभक्तके मारनेको अपनी जटामेंसे कालरूप और महा विकराल एक अग्निरूप कृत्या प्रगट की, उस कृत्याको दुर्वासाने हुकम दिया कि, अंबरीषको जलाकर भस्म करदे, वहां अंबरीष भक्तकी रक्षा करनेवास्ते सुदर्शन चक्र रहते रहे सो उस कृत्याको अपने तेज करके भस्म कर दुर्वासाको मारने दौडे. तब दुर्वासा अत्यंत व्याकुल हो भागा और सब लोकोंमे भागता भागता कैलासमें शिवके पास गया, जिसकी जटा विखर गई है, लंगोटी खुल गई है, तूंबडी फूट गई है, ऐसा बेहाल दुर्वासाको देखकर शिव बोले कि अहो ज्ञानी! ध्यानी!! तुम्हारा ऐसा हाल किसने किया है ? दुर्वासा बोला कि, मैं अंवरीषका सत्यानाश करने गया था सो उसने मेरा यह हाल किया है । शिव बोले कि–

महति प्रलये ब्रह्मन् ब्रह्मांडोऽयं जले प्लुतः ।
न तत्र नाशो भक्तानां सर्वेषां च भविष्यति ॥ २६ ॥

अर्थ–हे ब्रह्मन् ! मैं जब इस ब्रह्मांडका महाप्रलय करता हूं, तब उस महाप्रलयमें यह स्थावर जंगमरूप सब ब्रह्मांड और उसमें रहनेवाले मनुष्य दैत्य

दानवादि स्थावर जंगमरूप सर्व प्राणिमात्रका जलमें डूब नाश होजाता है, परंतु विष्णुभक्तोंका नाश नहीं होता है, अहो जब हमारे महाप्रलयमेंभी विष्णुभक्तोंका नाश नहीं होता है, तब तुम तो मेरे अंश हो, सो तुम्हारेसे क्या होनेका है ? जाओ, मैं तुमको नहीं बचा सकता हूं ॥ २६ ॥ फिर दुर्वासा ऋषि यमपुरीमें जाय यमसे बोला कि, मैं अंबरीष भक्तका अपराधी हूं, तुम मेरी रक्षा करो यम बोले कि–

न ब्रह्मा न शिवाग्नीन्द्रा नाहमन्ये दिवौकसः ।
न शक्ता निग्रहं कर्त्तुं वैष्णवानां महात्मनाम् ॥ २७ ॥

अर्थ–इस प्रकारकी शिक्षा मेरे दूतोंको भी प्रथम मैंने की थी सोही शिक्षा तुमारेकोभी देता हूं । हे दुर्वासा ! महात्मा जो वैष्णव हैं उनको शिक्षा करने जगत्का पिता ब्रह्मा, शिव, अग्नि, इंद्र और मैं यमभी समर्थ नहीं हूं । और स्वर्गमें रहनेवाले सब देवभी समर्थ नहीं हैं, तुम यहांसे जलदी जाओ इस सुदर्शन चक्रका तेज हमसे सहन नहीं होता है ॥ २७ ॥ पीछे दुर्वासा ब्रह्माके शरण जा बोला कि, मैं अंबरीष भक्तका द्रोही हूं, मेरी आप सहाय करो ॥ ब्रह्मा बोले कि, तुमने वृथाही जटा वढाई है, और वृथाही वेद पढ लिये हैं वेदोंका रहस्य नहीं जानके हरिभक्तोंका तुम द्रोह करते हो, कहा है कि–

यथा खरश्चंदनभारवाही भारस्य वेत्ता न हि चंदनस्य ।

जैसे गधा चंदनके भारको वहता है परंतु उसमें क्या गुण है सो नहीं जानता है वैसे वेदके पुस्तकोंका भारही गधेकी माफक लदे फिरते हो, जाओ हम नहीं रक्षा कर सकते हैं । फिर दुर्वासा विष्णुके शरण गया । विष्णु उसके अपराधको आपही जान गये और बोले कि–

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ।

हे दुर्वासा द्विज ! अर्थात् तेरी द्विज संज्ञा है, क्योंकि–

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्‍तु द्विजो भवेत् ।

इसलिये तेरी द्विज संज्ञा है, अर्थात् तू ब्राह्मण नहीं हैं क्योंकि (ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणो भवेत्) ब्रह्मको जो जानता है सोही ब्राह्मण कहा जाता है । तू जो ब्रह्मको जानता हो तो काहेको अंबरीष भक्तका द्रोह करता? इसलिये भगवान्ने दुर्वासाको द्विज संबोधन करके बुलाया है । भगवान् बोले कि जो

ब्रह्मको जाने सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष है, सो चराचर जगतमें सम दृष्टिवालाही होता है, तेरी सम दृष्टि नहीं है हे द्विज ! तू तातें ब्राह्मण नहीं । हे द्विज मैं मेरे भक्तोंके आधीन हूं स्वतंत्र नहीं हूं । क्योंकि–

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् ।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥२८॥

अर्थ–जे भक्त-स्त्री, घर, पुत्र, बंधु, प्राण, धन शरीर इन सर्वका त्याग करके मेरे शरणको प्राप्त हुये हैं, इनको मैं कैसे त्याग सकूं? जाओ जिसका अपराध किया है, उसहीके पगमें पडो, वही तुम्हारा अपराध क्षमा करेगा इति ॥२८॥फिर दुर्वासा निराश हो और अभिमानकी पोटरी शिरसे डारके अंबरीष भक्तके चरणोंमें पडके दीन हो रोने लगा, तब परमदयालु अंबरीषभक्त सुदर्शन चक्रकी स्तुति करके सुदर्शनको शांत करदिये । हे शिष्य ! भक्तोंका द्रोहीको ऐसा दुःख मिलता है इति ॥

प्रश्न–अंवरीष राजाकी रक्षामें तो सुदर्शन चक्र रहता था, सो चक्रने अंबरीषकी रक्षा की और जिस भक्तके रक्षणमें चक्र नहीं रहता हो तो उसकी रक्षा कौन करे ?

अनाथरक्षक ।

द्रौपदी च परित्राता येन कौरवकश्मलात् ।
पालिता गोपसुन्दर्य्यः स कृष्णः क्वापि नो गतः॥२९॥

अर्थ–कौरवोंकी सभामें द्रोपदीका रक्षण जिसने किया है, और गोपोंकी स्त्रीयोंका जिसने पालन किया है, सो कृष्ण कहीं भी नहीं गये हैं, भक्तोंका रक्षण करनेके लिये सदा पासही रहते हैं, जैसे द्रौपदीका रक्षण और गोपोंकी स्त्रीयोंका रक्षण और जगका रक्षण किये थे वैसेही सब भक्तोंका रक्षण करेंगे, इसमें संदेह नहीं ॥ २९ ॥

प्रश्न–हे गुरु महाराज ! भक्तिमार्ग इस लोकमें किसने चलाया है ?

भक्तिकी कथा ।

उत्तर–द्राविड देशमें शेषका अवतार श्रीरामानुज प्रगट होके भक्तिमार्गको विस्तार किया है. ऐसा इतिहास है कि, एक दिन नारद तीर्थोंकी यात्रा करते करते वृन्दावनमें यमुना नदीके किनारे आये, वहां एक तरुण स्त्री बैठी-हुई रोती थी और उसके समीपमें दो वृद्ध पुरुष सोते थे ऐसा कौतुक देख नारद मुनि बोले कि–

कासि त्वं काविमौ चेमा नार्य्यः काः पद्मलोचनाः ।
वद देवि सविस्तारं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥ ३० ॥

अर्थ–हे देवी ! तू कौन है; और तेरे समीप ये दो वृद्ध कौन सोते हैं, और कमल समान नेत्रोंवालीं ये स्त्रीयां कौन हैं और तुम्हारे रोनेका क्या कारण है सो कहो ॥ ३० ॥

अहं भक्तिरिति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ ।
ज्ञानवैराग्यनामानौ कालयोगेन जर्जरौ ॥ ३१ ॥

अर्थ–हे मुने ! मेरा नाम भक्ति है, और यह जो वृद्ध सोते हैं सो मेरे पुत्र हैं एकका नाम ज्ञान है और दूसरेका नाम वैराग्य है, और ये जो कमलनयनी स्त्रीयां है वे गंगा आदिक सर्व नदीयां हैं । ये मेरी सेवा करती हैं । नारद बोले कि, माता वृद्ध होती है और पुत्र तरुण होते हैं, सो तू तरुणी है और तेरे पुत्र वृद्ध हैं इसका क्या कारण है? भक्ति बोली कि (कालयोगेन जर्जरौ) सतयुग,त्रेता और द्वापर इन तीन युगोंमें सब मनुष्य अपनी मुक्तिके वास्ते ज्ञान और वैराग्यको साधते रहे, और इस कलियुगमें इन ज्ञान वैराग्यसे मुक्ति होना शास्त्रने मने किया है, भक्तिसेही कलियुगमें मुक्ति होना शास्त्रने कहा है इसलिये इस कलियुगके आनेसे ज्ञान वैराग्य वृद्ध हुये हैं क्योंकि इस कलियुगमें ज्ञान वैराग्यको कोई साधता नहीं है और मैं जो भक्ति हूं सो ज्ञान वैराग्य पुत्रोंको उत्पन्न करनेवाली और मुक्ति दासीको रखनेवाली हूं। इसलिये मेरेही साधनेमें सब मनुष्य लगे हैं, मैं तरुणीहूं । इतनाही कारण है कि, जिस रस्तेमें मनुष्य नहीं चलता है, उस रस्तामें घास ऊग आता है, वह रस्ता बंद हो जाता है । और जिस रस्तामें रातदिन लोक चलतेही रहते हैं,वह रस्ता नवीन रहता है ॥ वैसे इस कलियुगमें ज्ञानवैराग्य मार्गमें कोई चलता नहीं है, और भक्तिमार्गमें बहुत मनुष्य चलते हैं इससे मैं तरुणी हूं ॥ और (उत्पन्ना द्रविडे साहं) अर्थात् मैं भक्ति द्रविड देशमें उत्पन्न हुई हूं, इस प्रकारसे भक्तिने अपनी जन्मभूमी नारद मुनिको द्राविड देशमें कही है । और उस द्राविड देशमें श्रीरामानुज मुनिके विना दूसरा मतका कोईभी आचार्य भक्तिमार्गको चलानेवाला प्रगट नहीं हुआ है, इसलिये आपने रचेहुए श्रीभाष्यग्रन्थके मङ्गलाचरणमें भक्तिकीही प्रार्थना की है कि–

अखिलभुवनजन्मस्थेमभङ्गादिलीले
विनतविविधभूतव्रातरक्षैकदीक्षे ।
श्रुतिशिरसि विदीप्ते ब्रह्मणि श्रीनिवासे
भवतु मम परस्मिन् शेमुषी भक्तिरूपा ॥

इस कलियुगमें रामानुज महाराजनेही भक्तिमार्ग चलाया है, फिर रामानुजस्वामीको अनुसरके दूसरे भी संप्रदायी भक्ति मार्गकोही चला रहे हैं, और चार संप्रदायसे रहित जो दूसरे मतधारी हैं वे विष्णुभक्तिसे विमुख हैं इति ॥

अथ रघुनाथाष्टकम् ।

रामभक्ति मुक्तिदाता चार पदारथदायिनी ।
भक्तिवश अवतार लीने, श्रीरामजी भक्तिआधीन है ॥ १ ॥
प्रथम भक्ति ब्रह्माने कीनी, प्राप्त भये रघुनाथजी ।
भक्तिमारग प्रगट कीनो, श्रीरामजी भक्तिआधीन है ॥ २ ॥
श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पूजन, पादसेवन, वंदनम् ।
दास, सखाभाव, देह अर्पण, श्रीरामजी भक्ति आधीन हैं ॥ ३ ॥
प्रह्लाद नारद व्यास अंबरीष, भक्ति करी हरिपुर गये ।
अचल पदवी ध्रुवजी पाये, श्रीरामजी भक्ति आधीन हैं ॥ ४ ॥
शेषरूप रामानुज स्वामी, भक्तिमारग दृढ कियो ।
अनंतकोटि संत तारे, श्रीरामजी भक्ति आधीन हैं ॥ ५ ॥
सप्तद्वीप नवखंडमाही, रामभक्ति सब करे ।
पाताल लोकमें रामभक्ति, श्रीरामजी भक्ति आधीन हैं ॥ ६ ॥
चेतन होकर सीतारामजी भजे य, मनुष्यदेह नहिं फिरि फिरि ।
भजन करि यमत्रास खोयिये, श्रीरामजी भक्ति आधीन हैं ॥ ७ ॥
रामराम कही देह त्यागे, मुक्ति पावे तेहि घडी ।
अनेक जन्मके पापनाशे, श्रीरामजी भक्तिआधीन हैं ॥ ८ ॥
रामभक्तिको त्यागे प्राणी, अन्यदेवको आदरै ।
यम लोकमें पावै दुःख नाना, श्रीरामजी भक्ति आधीन है ॥ ९ ॥

रघुनाथजीअष्टक पठित निशिदिन रामभक्त तेहि जानिये ।
दासगोपाल रघुनाथशरणै, श्रीरामजी भक्ति आधीन हैं ॥ १० ॥
इति रघुनाथाष्टकं संपूर्णम् ॥

इति श्रीमद्रामानुजचरणसरोजभक्तिपरायणेन श्रीमत्पंडितगोपालदासेन विरचिते श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकरे परापरादिभक्तितत्त्वनिरूपणे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः ॥

श्रीमते रामानुजाय नमः ।

अथ श्रीविष्णुपञ्चकमहाव्रत ।

भाष्यकारं नमस्कृत्य विष्णुपञ्चकमहाव्रतम् ।
वक्ष्ये लोकहितार्थाय भक्तितत्त्वप्रसाधकम् ॥ १ ॥

अर्थ–भाष्यकार श्रीरामानुज महाराजकी मैं नमस्कार करके वैष्णव मुमुक्षु जनोंका हितकेवास्ते अंतःकरणको शुद्ध करनेवाले विष्णु पंच महाव्रत कहता हूं । मुक्तिका परम साधन भक्ति है और भक्तिके परम साधनरूप विष्णुके पंच महाव्रत मुमुक्षु जनोंको करने योग्य हैं ॥ १ ॥ मोक्षके साधन दो प्रकार हैं, एक तो अंतरंग साधन है और दूसरा बहिरंग साधन है । उनमें सिद्धा, प्रेमा, निष्कामा, दुर्लभा, अनन्योपासना, निर्गुणा इत्यादिक जो पराभक्तिके भेद हैं वे और विवेक, वैराग्य षट्[1]संपत्ति, मुमुक्षुता, श्रवण, मनन, निदिध्यास न ये सप्त और राममंत्र गायत्री आदिकका जप करना यह सबके मोक्षके अंतरंग साधन हैं ॥ दूसरा एकादशी आदिक विष्णुपंचकव्रत और यज्ञ, दान, तप, तीर्थ इत्यादिक मोक्षके बहिरंग साधन हैं ॥ जब मुमुक्षु जन बहिरंग साधन करते हैं, तब उनको अंतरंग साधनकी प्राप्ति होती है. और जब अंतरंग साधनकी प्राप्ति होती है तब वे मोक्षको प्राप्त होते हैं. एकादशी आदिक विष्णुपंचक महाव्रत बहिरंग साधन हैं, उनके

---

१ शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपराम, तितिक्षा ।

करनेसे भक्ति आदिक अंतरंग साधनकी प्राप्ति होती है, पीछे मोक्षकी प्राप्ति होती है । पद्मोत्तरखंडमें कहा है कि–

विष्णुपंचकमहाव्रत ।

कृष्णजन्माष्टमी रामनवम्येकादशीव्रतम् ।
वामनद्वादशी तद्वन्नृहरेस्तु चतुर्दशी ॥ २ ॥
विष्णुपंचकमित्येवं व्रतं सर्वाघनाशनम् ।
न त्याज्यं सर्वथा प्राज्ञैरनित्यं सर्वथा वपुः॥ ३ ॥

अर्थ–१नृसिंहचतुर्दशी, २ वामनद्वादशी, ३ एकादशी, ४ रामनवमी, ५ कृष्णजन्माष्टमी, ये पांच विष्णुपंचक व्रत कहा जाता है, सो विष्णुपंचक जैसे सुवर्ण अग्निमें तपानेसे शुद्ध होता है, वैसे अंतःकरणमें रहेहुये छोटे वडे पापोंको नाश करनेवाला है इस कारण बुद्धिमान् मुमुक्षु पुरुषोंको यह विष्णुपंचक व्रत सर्वथा करने योग्य है । ॥ २ ॥ ३ ॥

भविष्योत्तरपुराणमें भगवान्का ऐसा वचन है कि–

द्वादशी चाष्टमी चैव नवमी च चतुर्दशी ।
एकादशी विशेषेण तिथियो मे महाप्रियाः ॥ ४ ॥

अर्थ–भगवान् कहते हैं कि, १ वामनद्वादशी, २ कृष्णजन्माष्टमी, ३ रामनवमी, ४ नृसिंहचतुर्दशी, ५ एकादशी ये पांच तिथि मेरेको विशेषकरके महाप्रिय हैं, इसलिये भुक्तिमुक्तिके इच्छावाले वैष्णवोंको इन पांच तिथियोंका व्रत अवश्य करना चाहिये ॥ ४ ॥

एकादशीत्यादिमहाव्रतानि कुर्याद्विवेधानि हरिप्रियाणि ।

अर्थ–श्रीरामनंदजी कहते हैं कि, हे अरुणोदयकालमें वेधसे रहित एकादशी आदिक विष्णुपंचक महाव्रतोंको मुमुक्षु पुरुष करना चाहिये । ये महाव्रत भगवानको संतोष करनेवाले हैं ॥

एकादशीनिर्णय ।

विद्धा दशम्या यदि सारुणोदये स द्वादशीं तूपवसेद्विहाय ताम् ५

अब विष्णु पंचक महाव्रतोंको मध्यमें प्रथम एकादशीका निर्णय करते हैं हे सुरसुरानंद ! अरुणोदयकालमें जो एकादशी दशमी करके स्पर्श की हुई होय तो उस एकादशीका त्याग करके मुमुक्षु जन द्वादशीका उपवास करे ॥ ५ ॥

दो प्रकारकी एकादशी ।

शुद्धा दशम्या सुयुतेति भेदादेकादशी सा द्विविधा च बोध्या । वेधोपि बोध्यो द्विविधोऽरुणोदये सूर्योदये वा दशमीप्रवेशात् ॥ ६ ॥

अर्थ–एकादशी दो प्रकारकी जानने योग्य है, एक शुद्धा एकादशी है और दूसरी विद्धा एकादशी है । जिस एकादशीमें दशमी नहीं मिली होय सो शुद्धा है जिस एकादशीमें दशमी मिली होय सो विद्धा है । उनमें वेधभी दो प्रकार जानने योग्य है एक तो अरुणोदय कालमें दशमीका प्रवेशवाला वेध है और दूसरा सूर्योदयकालमें दशमीका प्रवेशवाला वेध है ॥ ६ ॥

प्रश्न–अरुणोदयादि काल कितने भेद हैं ?

उत्तर–उषःकाल, अरुणोदयकाल, प्रातःकाल, सूर्योदयकाल इस रीतिसे चार भेद हैं ।

अरुणोदयादिलक्षण ।

पंच पंच प्रमितो ह्युषो बुधैः कालस्तु षट्पंचमितोऽरुणोदयः । प्रातस्तु सप्तेषुमितो निगद्यते सूर्य्योदयः स्यात्तु ततः परं तथा ॥ ७ ॥

अर्थ–जो पचपन घडी रूप काल है, उसको बुधजन उषःकाल कहते हैं, छप्पन घटिकाको अरुणोदय काल कहते हैं और सत्तावन घटिका रूप कालको प्रातःकाल कहते हैं और सत्तावन घटिकासे पर बाकी रहा जो भाग है, उसको सूर्योदयकाल कहते हैं ॥ ७ ॥

प्रातश्चतस्रो घट्योऽरुणोदयो विनिश्चयः कालविमर्शिभिः कृतः । तथात्र वेधप्रभृतेर्विभागचतुष्टयं तैः कथितं महात्मभिः ॥ ८ ॥

अर्थ–फिर श्रीरामानंद अपने शिष्यको कहते हैं कि, चार घटीका जो प्रभात काल है उसको कालज्ञानी ऋषि लोगोंने चार घटीके प्रभातको अरु-

---

१ पञ्च पञ्च उषःकालः सप्तपंचारुणोदयः । अष्टपञ्च भवेत् प्रातः शेषः सूर्योदयः स्मृतः ॥ ५५ घडीका उषःकाल, ५७ घडी अरुणोदय, ५८ घडी प्रातःकाल और शेष अर्थात् ५८ के बाद सूर्योदय है ऐसाभी मतान्तर है ।

णोदय कहते हैं और उस ऋषि महात्माओंने वेधादिकके चार विभागभी कथन किये हैं ॥ ८ ॥ वे भेदभी श्रीरामानंद स्वामीने कहे हैं, वे रामानंदीय वैष्णवमताब्जभास्कर ग्रंथमें देख लेना । और ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें ये वेध कहे हैं कि–

अरुणोदयवेधादि लक्षण ।

अरुणोदयवेधः स्यात्सार्द्धं तु घटिकात्रयम् ।
आतिवेधो द्विघटिकाः प्रभासंदर्शनाद्रवेः ॥ ९ ॥
महावेधोपि तत्रैव दृश्यतेऽर्को न दृश्यते ।
तुरीयस्तत्र विहितो योगः सूर्योदये सति ॥ १० ॥

अर्थ–सूर्य तेजके दर्शनसे प्रथम साढे तीन घडी अरुणोदय वेध है, और दो घडीवाला अतिवेध है, और सूर्य दीखे न दीखे सो महावेध है, और सूर्यके उदय हुए तुरीय योग है, इस रीतिसे अरुणोदय वेध, अतिवेध, महावेध, तुरीययोग ये चार प्रकारके वेध हैं, वे सब वेधकालसे प्रथमही वेधमें अतिशय दोष बोधक हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ इन चारों प्रकारके वेधमें जो दशमी आकर मिली होय तो वेध समझना और जो दशमीका स्पर्श नहीं हुआ हो तो वेध समझना नहीं, क्योंकि अरुणोदयकालसे वेध गिने जाते हैं, और इस कलियुगमें तो छप्पन घटीका वेध अर्थात् ५४ घडी ५९ पल दशमी होय तो दूसरे दिन एकादशी करनी, पचपन छप्पन घडी दशमी हो और उसके पीछे एकादशी हो तो वह एकादशी वैष्णवोंको करना नहीं । भविष्यपुराणमें ऐसा प्रमाण है कि–

त्याज्य एकादशी ।

अरुणोदयकाले तु दशमी यदि दृश्यते ।
सा विद्धैकादशी तत्र पापमूलमुपोषणम् ॥ ११ ॥
दशमीवेधसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः ॥
नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्दिनैकादशीव्रतम् ॥ १२ ॥

अर्थ–अरुणोदयकालमें जो दशमी दीखती हो तो सो विद्धा एकादशी जाननी उस विद्धा एकादशीमें उपवास करना पापका मूल है ॥ और जो

दशमीके वेध करके युक्त अरुणका उदय हो तो उस दिवस वैष्णवको एकादशी व्रतका उपवास करना योग्य नहीं है ॥ ११ ॥ १२ ॥

वैष्णवोंको करने योग्य शुद्धा और पूर्णा एकादशीका निर्णय लिखते हैं कि—

ग्राह्य एकादशी ।

पूर्णेति सूर्योदयकालतः सा या प्राङ्मुहूर्त्तद्वयसंयुता च ।
अन्या तु विद्धा परिकीर्तिता बुधैरेकादशी सा त्रिविधापि शुद्धा ॥

अर्थ—सूर्योदयकालसे प्रथम चार घडी करके युक्त जो एकादशी है, सो एकादशी शुद्धा और पूर्णा जाननी। और दूसरी तो बुध जनोंने विद्धा एकादशी कही है. और शुद्ध एकादशीभी तीन प्रकारकी है । एक तो द्वादशीमात्राधिका, दूसरी उभयाधिका और तीसरी अनुभयाधिका इति ॥१३॥ जिसमें द्वादशी अधिक है और एकादशी न्यून है, ऐसी प्रथमकी एकादशी श्रेष्ठ और वैष्णवोंको करने योग्य है, और एकादशी संपूर्ण हो फिर प्रभातमेंभी वही एकादशी होय और आगे द्वादशी हो तो द्वादशीका उपवास करना चाहिये, और जो आगे द्वादशी वर्द्धमान हो तो शुद्धाभी एकादशी हेया है ग्राह्य नहीं है ॥

एकादशीकी उत्पत्ति ।

सतयुगमें ब्रह्मवंशमें नाडीजंघ दैत्य प्रगट हुआ, और उसका पुत्र मरुनामा दैत्य था, वह चंद्रवती नगरीमें रहता था. उसने इंद्रादिक देवोंको जीतकर स्वर्गमेंसे सबको निकाल दिये. देवोंने विष्णुसे प्रार्थना की, तब विष्णुने मरु दैत्यके साथ युद्ध किया, और जो जो शस्त्र विष्णुने मरुके अंगमें प्रहार किये वे सब शस्त्र पुष्प होके गिर पडे, बहुत युद्ध करते करते विष्णु जब थक गये, तब विष्णु बदरीका आश्रममें हैमवती गुहामें जाकर सोगये । पीछेसे मरुदैत्यभी आ पहुंचा, सोते हुए विष्णुको दैत्यने मारनेकी इच्छा की, तब विष्णुके अंगसे एक चतुर्भुजावाली कन्या प्रगट होकर उस मरुदैत्यकी चोटी पकड कर खड्गसे शिर काट डाली, पीछे विष्णु जाग्रत होकर बोले कि तू कौन है और इस दैत्यको किसने मारडाला ? कन्या बोली, मैं आपकी पुत्री हूं और आपकी कृपासे इस दैत्यको मैंने मारी है, विष्णु बोले अहो बहुत अच्छा काम तैंने किया, अब मेरेसे तू वर मांग. कन्या बोली—

उपवासं च नक्तं च एकभक्तं करोति यः ।
तस्य धर्मं च वित्तं च मोक्षं देहि जनार्दन ॥ १४ ॥

अर्थ-हे जनार्दन ! आप जो मेरे पर प्रसन्न हुये हो तो मेरेको यह वर देना चाहिये कि, मेरा उपवास करनेवाले पुरुषोंको महापापमेंसे मैं तारूं और मेरे दिन उपवास करनेसे जो पुण्य होता है, उस पुण्यका अर्द्धभाग सायंकालमें भोजन करनेवाले पुरुषको देना चाहिये. और जो कोई प्राणी एकभक्त भोजन करके मेरा उपवास करे, उसको उपवासका चौथा भाग पुण्यका देना चाहिये, इस रीतिसे उपवास, नक्त, और एकभक्त, यह तीन प्रकारके मेरे उपवासको करनेवाले पुरुषको धर्म धन और मोक्ष देओ ऐसा वर मैं मांगती हूं ॥ १४ ॥ विष्णु बोले कि-

यत्त्वं वदसि कल्याणि तत्सर्वं च भविष्यति ।

हे कल्याणि ! जो तू वर माँगती है, सो सब मैंने तुमको दिया, और तू मेरी शक्ति अगहन मासके कृष्णपक्षमें एकादशी तिथिमें उत्पन्न हुई है, इसकारण तेरा नाम एकादशी होगा ।

प्रश्न-जिस मासमें विष्णुशक्तिने अवतार ली है, उस मासकी एकादशीकोही करना चाहिये कि; बारह मासकी शुक्ला और कृष्णा मिलाकर चौवीस एकादशी करना चाहिये ?

उत्तर-मास मासमें शुक्ल और कृष्ण पक्षकी दोनों एकादशी करना चाहिये और दोनोंका एकही फल है । ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें कहा है कि-

एकादशीव्रतानां च पक्षयोरुभयोरपि ।
यथा शुक्ला तथा कृष्णा तिथिभेदं न कारयेत् ॥ १५ ॥
धेनुः कृष्णा तथा श्वेता उभयोः सदृशं पयः ।
तथैव तुल्यफलदं स्मृतमेकादशीव्रतम् ॥ १६ ॥

अर्थ-दोनों पक्षकी एकादशीयोंके व्रतमें जैसी शुक्ला एकादशी है, वैसी कृष्णा एकादशीभी है. इन दोनों तिथियोंमें भेदबुद्धि न करे, किंतु जैसे शुक्ला और कृष्णा दो प्रकारकी धेनु हैं परंतु उन दोनों धेनुओंका दुग्ध एक सरीखा है. वैसे शुक्लपक्ष और कृष्णपक्षकी एकादशीका जो व्रत है सो तुल्य फलको देनेवाला है ॥ १५ ॥ १६ ॥

इन द्वादश मासकी चौवीस एकादशीयोंका नाम और देव और करनेवालेके नाम नीचे लिखे हुये कोष्ठमें हैं--

मास.	एकादशी.	देव.	करनेवालेंके नाम,
१–मार्गशीर्षकृष्णपक्षमें	उत्पत्तिः	केशवः	इस उत्पत्ति एकादशीको अंबरीषराजाने की थी.
२–मार्गशीर्षशुक्लपक्षमें	मोक्षदा.	दामोदरः	गोकुलमें वैखानसराजर्षिने अपने पिताका नरकमेंसे उद्धार इस मोक्षदाके प्रभावसे किया.
३–पौषकृष्णपक्षमें	सफला.	नारायणः	लुंपक नामा राजपुत्र सफलाके करनेसे राज्य पाया.
४–पौषशुक्लपक्षमें	पुत्रदा.	नारायणः	भद्रावती नगरीमें सुकेतुमान् राजाको पुत्रदाके प्रभावसे पुत्रकी प्राप्ति हुई और उसपर नारायण प्रसन्न हुये.
५–माघकृष्णपक्षमें	षट्तिला.	माधवः	एक ब्राह्मणी षट्तिलाका व्रतको करनेसे माधवको प्रसन्न करके स्वर्गमें गई.
६–माघशुक्लपक्षमें	जया.	माधवः	पुष्पवती गन्धर्वी और माल्यवान् गंधर्व ये दोनों पिशाचयोनिसे छूटे. ऐसा जया एकादशीका प्रभावहै.
७–फाल्गुनकृष्णपक्षमें	विजया.	गोविंदः	इस विजया एकादशीके प्रभावसे श्रीरामने रावणका विजय किया.
८–फाल्गुनशुक्लपक्षमें	आमलकी.	गोविंदः	च्यवनऋषिका पुत्रमेधावी व्यभिचारजन्य पाप तथा पिशाचपनेसे छूटा. ऐसा आमलकीका प्रभाव है.
९–चैत्रकृष्णपक्षमें	पापमोचनी.	विष्णुः	यह पापमोचनी एकादशी अज्ञात पापोंका नाश करनेवाली है. इसके व्रतसे व्याधकी मुक्ति हुई है ॥

मास.	एकादशी.	देव.	करनेवालेंके नाम.
१०–चैत्रशुक्लपक्षमें	कामदा.	विष्णुः	इस कामदा एकादशीका व्रत करनेसे ललित गंधर्व राक्षसीयोनिसे छूट गया.
११–वैशाखकृष्णपक्षमें	वरूथिनी.	मधुसूदनः	मांधाता राजा इस वरूथिनी एकादशीके व्रतसे स्वर्गगतिको प्राप्त हुआ.
१२–वैशाखशुक्लपक्षमें	मोहिनी.	मधुसूदनः	धृष्टबुद्धि राजपुत्र अनेक पापोंसे छूट वैकुंठको प्राप्त हुआ ऐसा मोहिनीका प्रभाव है.
१३–ज्येष्ठकृष्णपक्षमें	अपरा.	त्रिविक्रमः	अपार फलके देनेसे अपरा नाम है इस अपराके व्रतको युधिष्ठिर राजाने बहुत किया था.
१४–ज्येष्ठशुक्लपक्षमें	निर्जला.	त्रिविक्रमः	इस निर्जला एकादशीका व्रत भीमने किया था इसका नाम पांडवद्वादशीभी है.
१५–आषाढकृष्णपक्षमें	योगिनी.	वामनः	हेममाली गन्धर्व कुबेरके शापसे मुक्त हुआ और कुष्ठरोगसे छूटा.
१६–आषाढशुक्लपक्षमें	शयनी.	वामनः	मांधाता राजा अनावृष्टिके दुःखसे मुक्त हुआ इस एकादशीका नाम पद्माभीहै
१७–श्रावणकृष्णपक्षमें	कामिका.	श्रीधरः	इस कामिका एकादशीका व्रत नारद ऋषि कहते हैं.
१८–श्रावणशुक्लपक्षमें	पुत्रदा.	श्रीधरः	माहिष्मती नगरीका महीजित राजाको पुत्रकी प्राप्ति हुई ऐसी पुत्रदा एकादशी पुत्रको देनेवाली है.

मास.	एकादशी.	देव.	करनेवालेका नाम.
१९–भाद्रपदकृष्णपक्षमें	अजा.	हृषीकेशः	इस अजा एकादशीके करनेसे हरिश्चंद्र राजा स्त्री पुत्र और राज्यादिकके वियोगदुःखसे मुक्त हुआ.
२०–भाद्रपदशुक्लपक्षमें	परिवर्तिनी वा जयंती.	हृषीकेशः	इस वामन एकादशीके प्रभावसे बलि राजा भगवानको वश किया.
२१–आश्विनकृष्णपक्षमें	इंदिरा	पद्मनाभः	माहिष्मती नगरीका इंद्रसेन राजा इस इंदिरा एकादशीके व्रतमें अपने पिताका नरकसे उद्धार कर दिया.
२२–आश्विनशुक्लपक्षमें	पांशाकुशा.	पद्मनाभः	इस पाशांकुशाके व्रतसे युधिष्ठिर राजा बहुत पुण्यफलको प्राप्त हुआ.
२३–कार्तिककृष्णपक्षमें	रमा.	दामोदरः	इस रमाके व्रतसे मुचकुंद राजाका जमाई शोभन अर्धराज्य सुखसे संपूर्ण सुखको प्राप्त हुआ.
२४–कार्तिकशुक्ल.	प्रवोधिनी.	दामोदरः	रुक्मांगद राजा इस प्रबोधनीके व्रतसे निष्कंटक राज्य किया.
२५–मलिम्लुचेकृ.	पद्मिनी.	पुरुषोत्तमः	इस एकादशीके करनेसे कृतवीर्य राजा महापराक्रमी कातवीर्य पुत्रको पाया.
२६–मलिम्लुचेशु०	परमा.	पुरुषोत्तमः	सुमेधा ब्राह्मण अतिदरिद्री सो महाधन पाया ऐसा परमाका व्रत है.

ऊपर लिखे हुये कोष्टकोंमें द्वादश मासकी चौवीस एकादशी लिखी हैं, और दो एकादशी अधिक मासकी लिखी हैं, सब मिलके छबीस[1] एकादशी हैं, इन एकादशीयोंके व्रतको अंबरीष, रुक्माङ्गद, लुंपक, सुकेतुमान, चैत्ररथ, मेधावी, मांधाता, धृष्टबुद्धि, भीमसेन, नारद, महिचित, हरिश्चंद्र, मुचुकुन्द, कृतवीर्य, युधिष्ठिर आदिक अनेक वैष्णव करते आये हैं. और इन वैष्णवोंने दशमीवेधा एकादशीको अशुद्ध जानकर त्याग की है, उसको शिवभक्तोंने ग्रहण की है, दशमीवेधा एकादशीको वैष्णवोंने, जैसे रजस्वला स्त्रीको महाअशुद्ध जानके चार दिन उसका त्याग करते हैं, तैसे त्याग की है और अपवित्र महाअशुद्ध और अनेक व्रतोंके फलको नाश करनेवाली जो वेधा एकादशी है उसको शिवभक्तोंने ले भागे हैं, उसका व्रत करनेमें कोईभी शास्त्रका प्रमाण नहीं, और उसका देव कोई नहीं हैं जैसे कोईने भोजन करके उच्छिष्ट पत्रावली फेंक देतेहैं, तैसे वैष्णवोंने महाअशुद्ध जानकर त्याग दिये हैं ॥

आठ प्रकारकी द्वादशी।

उन्मीलिनी वंजुलिनी त्रिस्पर्शा पक्षवर्धनी ।
जया च विजया चैव जयंती पापनाशिनी ।
द्वादश्योऽष्टौ महापुण्याः सर्वपापहरा द्विजाः ॥ २५ ॥

अर्थ–ब्रह्मवैवर्त्तमें लिखाहै कि–१ उन्मीलिनी, २ वंजुलिनी, ३ त्रिस्पर्शा, ४ पक्षवर्द्धनी, ५ जया, ६ विजया, ७ जयंती, ८ पापनाशिनी ये अष्ट द्वादशी महापुण्यवाली और सब पापोंको नाश करनेवाली है, और मुक्तिकी इच्छावाले पुरुषोंको उपवास करने योग्य हैं ॥ २५ ॥ इनके लक्षणभी नीचे लिखे हैं–

उन्मीलिनी.

एकादशी तु संपूर्णा वर्द्धते पुनरेव सा ।
द्वादशी न च वर्द्धेत कथितोन्मीलिनीति सा ॥ १ ॥

वंजुलिनी.

संपूर्णैकादशी यत्र द्वादशी च यथा भवेत् ।
त्रयोदश्यां मुहूर्त्तार्द्धं वंजुली सा हरिप्रिया ॥ २ ॥

---

१ एकादशी माहात्म्य २६ हमारे यहां छपा है सो मंगाकर सम्पूर्ण कथा समझ लें.

त्रिस्पर्शा.

एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी ।
त्रिस्पर्शा नाम सा प्रोक्ता ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ३ ॥

पक्षवर्धनी.

कुहूराके यदा वृद्धिं प्रयाते पक्षवर्द्धनी ।
विहायैकादशीं तत्र द्वादशीं समुपोषयेत् ॥ ४ ॥

जया.

द्वादश्यां तु सिते पक्षे यदा ऋक्षं पुनर्वसु ।
नाम्ना सा तु जया ख्याता तिथीनामुत्तमा तिथिः ॥५॥

विजया.

यदा तु शुक्लद्वादश्यां नक्षत्रं श्रवणं भवेत् ।
विजया सा तिथिः प्रोक्ता तिथीनामुत्तमा तिथिः॥६॥

जयंती.

यदा तु शुक्लद्वादश्यां प्राजापत्यं प्रजायते ।
जयंती नाम सा ज्ञेया सर्वपापहरा तिथिः ॥ ७ ॥

पापनाशिनी.

यदा तु शुक्लद्वादश्यां पुष्यं भवति कर्हिचित् ।
तदा सा तु महापुण्या कथिता पापनाशिनी ॥ ८ ॥

ऐसे रामानंदजीने सुरसुरानंदके प्रति कहेहैं ॥

प्रश्न—एकादशीयोंका उपवासको करनेवाला द्वादशीके दिन पारणा करता है, और आप तो कहते हो कि द्वादशीयोंकाभी उपवास करना चाहिये यह मेरा संशय मिटावो, और कौन कौनसी द्वादशीयोंके दिन पारणा न करना चाहिये ।

उत्तर—श्रीरामानंदजी कहते हैं कि—

उपवास करनेयोग्य द्वादशी।

आषाढभाद्रोर्जसितेषु संगता मैत्रश्रवोऽन्त्यादिगतद्व्युपांत्यैः।
चेद्द्वादशी तत्र न पारणां बुधः पादैः प्रकुर्याद्व्रतवृंदहारिणी २६॥

अर्थ–आषाढमास, भाद्रमास, कार्तिकमास,इन तीन मासके शुक्ल पक्षमें जो द्वादशी अनुराधा, श्रवण और रेवती नक्षत्रके आदिपाद, द्वितीय पाद और तृतीय पाद करके युक्त होय तो इस द्वादशी दिन पारणा बुध जन न करे; वह द्वादशी एकादशीयोंके व्रतका समूहको नाश करनेवाली है।क्योंकि आषाढमासके शुक्लपक्षमें अनुराधा नक्षत्रके प्रथम पादमें रात्रिमें विष्णु शयन करते हैं, और भाद्रमासके शुक्लपक्षमें श्रवणनक्षत्रके द्वितीय पादमें संध्यासमय विष्णु करवट लेते हैं, कार्तिक मासके शुक्लपक्षमें रेवती नक्षत्रमें तृतीय पादमें दिनमें विष्णु उठते हैं.इस वास्ते इन दिनोंमें भोजन करनेवाला नरकगामी होता है२६

श्रीरामनवमीनिर्णयः।

मासे मधौ या नवमी सुयुक्ता शुक्लाऽदितीशेन शुभेन भेन।
कर्के महापुण्यतमा सुलग्ने जातोत्र रामः स्वयमेव विष्णुः२७॥
तामष्टमीवेधयुतां विहाय व्रतोत्सवं तत्र तु वैष्णवश्चरेत्।
असंख्यसूर्यग्रहतोधिका सदा या केवला सा नवमी ह्युपोष्या॥२८

अर्थ–चैत्र मासके शुक्लपक्षकी नवमी पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्त और महापवित्र शोभायमान कर्क लग्न ऐसे गुण गणोंकरके युक्त नवमीके दिन साक्षात् श्रीविष्णुभगवान श्रीरामरूपसे प्रगट हुये, तबसे यह श्रीरामनवमी जगतमें प्रसिद्ध है, वैष्णव लोग अष्टमीके वेधवाली नवमीका त्याग करके और वेधसे रहित पुनर्वसु नक्षत्र करके सहित शुद्ध अविद्धा रामनवमीका व्रत और उत्सव करे। और जो चैत्र मासके पुनर्वसु नक्षत्र करके रहित केवल शुक्लपक्षकी नवमीभी हो, सोभी कुरुक्षेत्रमें किये असंख्य सूर्यग्रहणोंके फलसे अधिक फल देनेवाली है. उसकोभी मोक्षकी इच्छावाला वैष्णव सदा करे. यह रामनवमी गुप्त और प्रगट अनेक जन्मके पापोंको नाश करनेवाली और श्रीराम भगवानको प्रसन्न करनेवाली है॥ २८॥

प्रश्न–श्रीरामका अवतारके दिन कौन कानस शुभ ग्रह नक्षत्र लग्न और योग रहे?

उत्तर–उच्चस्थे ग्रहपञ्चके सुरगुरौ सेन्दौ नवम्यां तिथौ लग्ने कर्कटके पुनर्वसुयुते मेषं गते पूषणि। निर्दग्धुं निखिलाः पलाशसमिधो मेध्यादयोध्यारणेराविर्भूतमभूतपूर्वविभवं यत्किञ्चिदेकं महः ॥

अर्थ–इसका अर्थ ऊपर लिखी हुई जन्मकुंडलीमें श्रीरामके जन्मलग्नादिक लिखे हुये हैं सो देख लेना ।

नृसिंहचतुर्दशीनिर्णय।

वैशाखमासीयचतुर्दशी सिता निशामुखे यानिलभेन संयुता ।
सोमेवतारो नृहेररभूदथो व्रतोत्सवं तत्र मुदा समाचरेत् ॥ ३० ॥
स्मरेण विद्धा तु चतुर्दशी यदा भवेद्धनापत्यविनाशिनी तदा ।
तत्रोपवासो न जनैर्विधेयो महात्मभिर्विष्णुपरायणैरपि ॥ ३१ ॥

अर्थ–हे सुरसुरानंद! वैशाखमासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशीके सायंकालमें स्वाती नक्षत्र और सोम वारके दिन श्रीनृसिंह अवतार हुआ था. उस दिन वैष्णव आनंद करके व्रत और उत्सवको करे । जो चतुर्दशी त्रयोदशी करके अरुणोदयकालमें वेधवाली हो तो वहां त्रयोदशी विद्धा चतुर्दशीमें विष्णुपरायण महात्मा जनोंको उपवास नहीं करना चाहिये क्योंकि वह विद्धा चतुर्दशी धन और पुत्रका विनाश करनेवाली है ॥ ३१ ॥

कृष्णाष्टमीनिर्णय।

पक्षे निशीथे खलु मासि भाद्रे कृष्णेथ कृष्णोऽजनि देवकीतः । सिंहं गतेऽर्के विधिभेन युक्ता तत्राष्टमी या तु विधूदये बुधे ॥ ३२ ॥ जन्माष्टमी सात्र मुदा व्रतोत्सवं कृष्णार्चनं जागरणं महाफलम् । अनेकजन्मार्जितपापनाशनं कृष्णस्य कीर्तेः श्रवणं च कीर्त्तनम्॥ ३३॥

त्याज्याष्टमी चेदथ वाजिविद्धा तथाग्निविद्धं विधिभं च हेयम् । चेदष्टमी नो विधिभेन युक्ता महात्मभिर्विष्णुपरायणैस्तैः ॥ ३४ ॥ विद्धा जयन्ती यदि सप्तमीयुता शुद्धा तथा सा नवमीयुता चेत् । या रोहिणी वह्नियुता तु विद्धा ज्ञेया च शुद्धा यदि सा परान्विता ॥३५॥

अर्थ–हे सुरसुरानन्द ! भाद्रमास कृष्णपक्ष सिंहराशीके सूर्य रोहिणी नक्षत्र, अर्द्धरात्रि, चंद्रका उदय, बुधवार इतने योगों करके युक्त जो अष्टमी उस अष्टमीके दिन श्रीकृष्ण भगवान् अवतार लिये थे, सो इस अष्टमीके व्रत और उत्सव (गीत नृत्यादिक) को आनन्दसे करे, और श्रीकृष्णका षोडशोपचारसे पूजन करे, और रात्रिमें जागरण करे, और कृष्णकी कीर्तिको प्रकाश करनेवाले भागवतादि शास्त्रोंका श्रवण करे और जो सामर्थ्य होय तो अपने मुखसे भागवतादिकका कीर्तन करे. यह जन्माष्टमीका व्रत महाफलवाला और अनेक जन्मोंके संचित पापोंका (जड) मूलसे नाश करनेवाला है ॥ जो अष्टमी सप्तमी करके वेधवाली होय तो महात्मा विष्णुपरायण वैष्णवोंने त्याग करनी, उपवास नहीं करना । जयंती विद्धा और अविद्धा भेदसे दो प्रकारकी जाननी, जब सप्तमी युक्त हो तो विद्धा समझनी, और जो अष्टमी नवमी युक्त होय तो शुद्धा समझनी. ऐसे रोहिणीभी दो प्रकारकी है, कृत्तिका नक्षत्र करके युक्त रोहिणी हो तो विद्धा रोहिणी जाननी और जो मृगशिरनक्षत्र करके युक्त होय तो शुद्धा रोहिणी जाननी ॥ ३५ ॥

वामनद्वादशीनिर्णय ।

भाद्रेथ शुक्लेऽभिजिति प्रभुर्हरिर्या द्वादशी वैष्णवभेन संयुता । तत्रादितावाविरभूच्च वामनो व्रतोत्सवं तत्र मुदा समाचरेत् ॥ चेद्द्वादशी च श्रवणस्पृशैकादशीस्पृशा तत्र

तु विष्णुश्रृंखला । अनुत्तमां सिद्धिमवाप्नुयान्नरस्त-
स्मिन्नुपोष्यार्चनवीतकल्मषः॥ ३६ ॥

अर्थ–हे सुखसुरानंद ! भाद्रमास, शुक्लपक्ष, श्रवण नक्षत्र मध्याह्न समयमें अभिजित् नक्षत्र इतने योगोंसे युक्त द्वादशीके दिन कश्यपऋषिकी अदितिमें वामनरूप करके विष्णु भगवान् प्रगट हुये उस द्वादशीके मध्याह्न समय वैष्णव आनन्दपूर्वक व्रत और उत्सवको करे ॥ जो यह भादवा शुदी द्वादशी एकादशीको स्पर्श करती हो तथा श्रवण नक्षत्रको स्पर्श करती हो तो उसको विष्णुशृंखल योग जानना अर्थात् मध्याह्नमें भाद्रमासकी शुक्ल द्वादशी एकादशीको मिलके श्रवण नक्षत्र युक्त होय तो विष्णुशृंखल योग होता है. जो उस विष्णुशृंखलके दिन उपवास और विधिसे विष्णुका पूजन करनेवाला पापोंसे रहित हो धर्म,अर्थ,काम और मोक्षरूप चतुर्वर्ग सिद्धिको पाता है और जो दो उपवास करनेकी शक्ति हो तो एकादशी और द्वादशी इन दोनोंका उपवास करे त्रयोदशीके दिन पारणा करै, इस करके एकादशीके पारणाकी हानिकृत विधिका लोप नहीं होवेगा,क्योंकि दोनों तिथियोंके दैवत श्रीहरि हैं, और त्रयोदशीमें पारणा करनेकाभी दोष नहीं है,ऐसा ब्रह्माने कहा है॥३६॥

प्रश्न–हे स्वामिन् ! आपने जो विष्णुपंचक महाव्रत कहे हैं, उनका त्याग करके बहुतेरे चंचलमनवाले और अपने इष्टमें दृढभक्तिसे रहित ऐसे लोक रविवार, मंगलवार, शनिवार, शिवरात्र, दुर्गाष्टमी, गणेशचौथ इत्यादिकोंकाभी व्रत करते हैं, और कहते हैं कि हमारा शरीर सुखी रहे इसवास्ते इनका व्रत हम करते हैं ऐसा उनका कहना सत्य है कि नहीं ?

उत्तर–हे शिष्य ! ऐसा उनका कहना अज्ञानसे भराहुआ है. क्योंकि पद्मपुराणके उत्तरखंडमें ऐसा कहा है कि–

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं विष्णुपंचकमेव हि।
न त्याज्यं सर्वथा प्राज्ञैरनित्यं सर्वथा वपुः ॥ ३७ ॥

अर्थ–नित्यव्रत, नैमित्तिकव्रत, काम्यव्रत, ये तीनों व्रत विष्णुपंचकही है;अर्थात् मोक्षकी इच्छावाला पुरुष मोक्षकी प्राप्तिकेवास्ते निष्कामनासे अंतः-करणकी शुद्धिकेलिये विष्णुपंचक व्रतोंकोही करे, इसका नाम नित्यव्रत है १ । अपने माता पिता आदिकोंके उद्धारकेवास्तेभी विष्णुपंचक व्रतोंकोही करे, इसका नाम नैमित्तिक व्रत है २. तथा अपने शरीरके सुखके वास्ते और धन, धान्य, स्त्री, पुत्र, पशु, राज्य आदिकोंकी प्राप्तिकेवास्तेभी विष्णुपंचक

व्रतोंको करे, इसको काम्यव्रत कहते हैं इसलिये नित्य नैमित्तिक और काम्य इन सर्व प्रकारसेभी बुध जनोंको यह विष्णुपंचकव्रत त्याग करने योग्य नहीं है क्योंकि यह शरीर सर्व प्रकारसे नाशवान् है. इस रीतिसे सकल मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले विष्णुपंचकव्रत हैं. दूसरे व्रतोंको करनेका क्या प्रयोजन है॥३७॥

इति श्रीमद्रामानुजचरणाश्रितेन श्रीमत्पंडितगोपाळदासेन विरचिते श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकरे विष्णुपंचकव्रतप्रकारनिरूपणे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः ।

धर्मतत्त्व ।

एवं तेऽभिहितं प्राज्ञ प्रकृष्टं मुक्तिसाधनम् ।
उत्तमं सर्वधर्माणां शृणु धर्मं सनातनम् ॥ १ ॥

दानं तपस्तीर्थनिषेवणं जपो न चास्त्यहिंसासदृशं सुपुण्यम् ।
हिंसामतस्तां परिवर्जयेज्जनः सुधर्मनिष्ठो दृढधर्मवृद्धये ॥२॥

अर्थ–हे शिष्य ! भक्ति और विष्णुपंचक आदिक मुक्तिके अंतरंग और बहिरंग साधन सर्वसाधनोंसे श्रेष्ठ मैंने तुमको कहाहै । अब सर्व धर्मोंके मध्यमें अति उत्तम और सनातन जो धर्म है उसको तू श्रवण कर ॥ १ ॥

सनातन धर्मोपदेश ।

दान, तप, तीर्थका सेवन, जप और अहिंसा (कोईभी जीवकी हिंसा न करनी) इसके समान दानादिकभी नहीं है इस कारण दृढ धर्मकी वृद्धिके लिये सुंदर धर्ममें निष्ठावाला मुमुक्षुजन हिंसाको वर्जन करे ॥ २ ॥

श्रयंति धर्मास्तु तया विहीनान् सुवक्रगाः सिंधुमिवापि नद्यः । काष्ठस्थवह्नेरिव घातको हरेश्वराचरस्थस्य च जंतुहिंसकः ॥३॥ जलस्थलोत्पन्नशरीरिहिंसया विवर्जयेन्मांससमुदारधीः सदा । दयापरोऽधोगतिहेतुरूपया-ऽचिराय लभ्यं भवभीनिवृत्तये ॥ ४ ॥

अर्थ–हिंसासे रहित मनुष्यमें सकल धर्म आश्रित रहते हैं जैसे टेढी चलनेवाली नदी समुद्रमें जाकर स्थित होती है वैसे जीवोंकी हिंसासे रहित पुरुषमें सर्वधर्म स्थित होते हैं।हे शिष्य जैसे काष्ठमें अग्नि रहती है,तैसे चराचरमें भगवान् रहते हैं। जो मनुष्य जीवोंकी हिंसा करनेवाला है सो चराचरमें रहनेवाले श्रीहरिकाही घात करनेवाला है। जल और स्थलमें उत्पन्न जीवोंकी हिंसा करके प्राप्त हुआ मांसको दयावान् और उदार बुद्धिवाला जो मुमुक्षु जन संसार भयकी निवृत्तिके अर्थ सदा वर्ज दे वह जीवोंकी हिंसा अधोगति नरकको देनेवाली है॥

प्रश्न–हे दयानिधे ! इस वैष्णवधर्ममें, जीवोंको मारके मांस खानेका आप मनै करते हो, परंतु मांस खानेवाले वादीलोक मांस न खानेमें शास्त्रोंका प्रमाण मांगते हैं, सो इस ठिकानेपर महाप्रबल प्रमाण लिखना चाहिये।

उत्तर–इस वैष्णवधर्मके सिद्धांतमें श्रीमुख वचन और वेदकी श्रुतिका वचन सर्वोपरि अचल प्रमाण है सो सुन। भगवान् कहते हैं कि–

नाहिंसासदृशं दानं नाहिंसासदृशं तपः।
नाहिंसासदृशं तीर्थं पुण्यभूषणशोभने॥ ५॥
यथा काष्ठस्थितो वह्निस्तथा देहे वसाम्यहम्।
तस्माद्धिंसन्ति ये जन्तून् घातका मे न संशयः॥ ६॥

अर्थ–हे पुण्यरूपी भूषणको शोभा देनेवाली वसुधे!लोक और शास्त्रमें अनेक प्रकारके दान, कृच्छ्र चांद्रायणादि अनेक प्रकारके तप, तथा इस पृथ्वीमें साढे तीन कोटि तीर्थभी अहिंसा धर्मके तुल्य नहीं हो सकते हैं। और हे देवि! जैसे काठमें सामान्यरूपसे अग्नि रहती है, वैसे प्राणीके देहमें मैं वास करता हूं, इस कारण जो पुरुष जीवोंकी हिंसा करते हैं, वे मेराही घात करते हैं, इसमें संशय नहीं है. ऐसा भगवतवचन प्रमाण है. वेदमेंभी कहा है कि–"न हिंस्यात्सर्वभूतानि"जल, स्थल और आकाशमें विचरनवाले स्थूल सूक्ष्म और अनेक प्रकारके जीवोंकी हिंसा न करनी इति॥

प्रश्न–मनुष्य, पशु, पक्षी आदिक सर्व जीव मांसाहारी हैं। क्योंकि अन्न, तृण, वृक्ष, वनस्पति, मृत्तिका, मांस आदि जो मनुष्य खाते हैं, वे मनुष्य जीवनके शरीरको खाते हैं ऐसा हम अनुमानसे सिद्ध करते हैं। क्योंकि कोई तार्किक ऐसा कहता है कि–

भक्षणीयं भवेन्मांसं प्राण्यंगत्वेन हेतुना ।
ओदनादिवदित्येवं कश्चिदाहेति तार्किकः ॥ ७ ॥

अर्थ–प्राणीका अंग होनेसे मांस भक्षण करने योग्य है, ओदनवत् (भातकी नांई) इस प्रकारके अनुमानसे सब कोईको मांस खाना सिद्ध होता है. और खातेभी हैं, क्योंकि जीवके शरीरका मांस होता है, सो अन्न, तृण, वनस्पति, वृक्ष, औषधि आदिक ये सब जीवोंकेही शरीर हैं। इनको जो मनुष्यादिक खाते हैं, वे मांसकोही खातें हैं।

उत्तर–हे वादी ! तू अपने मनसेही अन्न तृणादिकोंको मांस मानता है, परंतु कोई श्रुतिस्मृति आदिक शास्त्रका प्रमाण नहीं देता है, और हमारे श्रीवैष्णव सिद्धांतमें तो अन्न तृणादिकको मांस नहीं मानते हैं इसमें भगवद्वचनका वज्र समान प्रमाण यह है कि–

नच काष्ठोद्भवं मांसं नोपलाच्च तृणादपि ।
हिंसया जायते मांसं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ ८ ॥
ये च हिंसन्ति वै जंतून् जलजान्स्थलजांस्तथा ।
मज्जंति नरके घोरे कल्पकोटिशतैरपि ॥ ९ ॥

अर्थ–भगवान् कहते हैं कि, काष्ठ, पाषाण और तृणसेभी मांस उत्पन्न नहीं होता है, किंतु जीवोंकी हिंसा करकेही मांस उत्पन्न होता है, इसलिये मांसको वर्जना चाहिये. इस हमारे वचनको उल्लंघन करके जो कोई मनुष्य जलके स्थलके जीवोंको मारके मांस खाते हैं, वे मनुष्य शत कोटि कल्प पर्यंत घोर नरकमें डूबते हैं। ऐसे भगवद्वचनसे अन्न तृणादिकमें मांस सिद्ध नहीं होता है इस कारण तुम्हारा भाषण अत्यंत झूठा है, और हे वादी ! अन्न तृणादिकमें स्पष्ट चैतन्यभी मालूम नहीं पडता है, क्योंकि जो स्पष्ट चैतन्यवाले जीव हैं, वे मारनेवालेको देखके त्रसित होते हैं, वे जीव अपना प्राण बचानेको भाग जाते हैं। और अन्न तृणादिकके जीव तो त्रसित नहीं होते हैं, और त्राससे भागभी नहीं जाते हैं। और जैसा मांस खानेवाला निर्दयी होता है वैसा अन्न खानेवाला निर्दयी नहीं होता है, और अन्न खानेवालेको मांसाहारी कोईभी नहीं कहता, परंतु मांस खानेवालेकोही कसाई भ्रष्टाचार और निर्दयी कहते हैं ॥

प्रश्न–वादी कहता है कि,हे सिद्धांति ! भगवत्का वचन तुमने प्रमाण दिया उसमें ऐसा मालूम पडता है कि जीवोंको मारके मांस खानेवाले घोर नरकमें पडते हैं । इसवास्ते हम वादी लोग जीवोंको नहीं मारेंगे, और कसाईके घरसे तैयार मांस मोल लाकर खावेंगे, तो हमको क्या दोष है ?

उत्तर–तुमको नरक भोगना पडेगा । यहही बडा भारी दोष है,क्योंकि जब जगतमें कोईभी मांस खानेवाला नहीं हो तो तब कसाई किसके वास्ते जीवोंको मारके मांस तैयार करेगा ? इसलिये कसाईभी मांसाहारीयोंके वास्तेही जीवोंको मारके मांस तैयार रक्खता है ॥

वादीप्रश्न–जो करेगा सोही भोगेगा, कसाई जीवोंको भले मारे उसमें हमारे क्या हानि है ? और जो जीवोंके विना मारेसेही तुम हमारेको हत्या लगाते हो तो इसमें कौन शास्त्रका प्रमाण है ?

उत्तर–मनुस्मृति धर्मशास्त्रमें मनुने सप्त प्रकारके घातकी कहे हैं कि–

अनुमंता विशसिता निहंता क्रयविक्रयी ।
संस्कर्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥ १० ॥

अर्थ–१-मांसका बखान करनेवाला, २-वध किये हुये जीवोंके शरीरका विभाग करनेवाला, ३-जीवोंका वध करनेवाला, ४ मांसका क्रयविक्रय करनेवाला, ५-मांसको रांधनेवाला, ६-मांसको लानेवाला, ७-मांसको खानेवाला, ये सात जन, जीवोंके घात करनेवाले हैं, ऐसा मनुने कहा है ॥ १० ॥

वादिप्रश्न–हे सिद्धांति ! आपके श्रीवैष्णव धर्ममें मांस खानाही वर्ज्य है कि औरभी कोई कर्म वर्ज्य है ?

उत्तर–औरभी कर्म वर्ज्य है।

जूआ आदि सात व्यसन ।

द्यूतं च मांसं च सुरा च वेश्या पापर्द्धि चौर्यं परदारसेवा ।
एतानि सप्त व्यसनानि लोके पापाधिके पुंसि सदा भवंति॥ ११॥

इहैव निंद्यते शिष्टैर्व्यसनासक्तमानसः ।
मृतस्तु दुर्गतिं याति गतत्राणो नराधमः ॥ १२ ॥

अर्थ–१–जूवा खेलना, २–मांस खाना,३–मदिरा पान करना, ४–वेश्यासे भोग करना, ५–शिकार खेलना, ६–चोरी करनी, ७–परस्त्रीका भोग करना.

ये सात प्रकार व्यसन कहे जाते हैं. जो मनुष्य इस लोकमें अधिक पापी है उसमें ये सात व्यसन सदा रहते हैं. पुण्यवान् पुरुषमें नहीं होते हैं. और जो पुरुष इन सात व्यसनोंमें आसक्त है, उसकी इस लोकमें शिष्ट पुरुष निंदा करते हैं,और जब वह नरोंके मध्यमें अधम व्यसनी पुरुष मरता है तब नरकरूपी दुर्गतिको प्राप्त होता है, उसकी रक्षा कोईभी नहीं करता है.इसलिये इन सात व्यसनोंका त्यागही करना उचित है। जूवा खेलनेवाला चोरी आदिक सब कर्म करता है, झूंठ बोलता है, कपट रखता है,कुमार्गमें पैसा उडाता है, अपने माता, पिता, स्त्री पुत्र आदिकके वस्त्र, गहना, जूवामें धर देता है,घर-वार पशु हाथी घोडा आदिकको जुआमें हार जाता है, जैसे युधिष्ठिर राजा अपने राज्यपाट स्त्री भ्राता आदिकोंको जूआमें हारके वनवासमें अत्यंत दुःख भोगता था वैसा जूआरीका हाल होता है १। मांस खानेसे दया नष्ट हो जाती है, मांसाहारी अच्छा पशुको देखके उसको खानेकी इच्छा करता है, उस मांसाहारीका हृदयभी बडा कठोर होता है, जैसे निर्दय, भील,कोली, मीणा, धाकड, भंगी, ढेढ, चमार, पठाण, कंजर, वाघरी, मुसलमान आदिक सब मलीन गंधेले और निर्दय हैं सो मांसके खानेसेही हैं २ मदिरा पीनेवालेकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, माता भगिनी पुत्री आदिकसे कुकर्म करता है, उसके मुखमें कुत्ता मूतते हैं, ऐसी कौनसी बुरी वस्तु नहीं है जो मदिरा पीनेवाला न करे। मदिरा तीन प्रकारकी है–गौडी पैष्टी और माध्वी। इन तीनके पनिसे ब्रह्महत्या लगेगी. शुक्राचार्यने मदिराको शाप दिया है कि आज दिनसे जो कोई मदिरा पान करेगा उसको ब्रह्महत्या लगेगी। उस दिनसे मुमुक्षु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और सच्छूद्र ये चारों वर्ण मदिरा पान नहीं करते हैं, ऐसा महाभारतके आदिपर्वमें प्रसंग हैं सो देख लेना ३। वेश्या गमन करनेवालेकी कोईभी जाति नहीं। भंगी,चमार, मुसलमान आदिक सब कोई वेश्याके संग भोग करते हैं, वेश्याके संग भोग करनेवाला भंगी चमार और मुसलमानके समान भ्रष्टाचारी और धर्मसे विमुख हो जाते हैं,उनकी जातिका नियम नहीं

---

१ द्यूतं समाह्वयं चैव यः कुर्यात्कारयीत वा।
तान्सर्वान् घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिंगिनः॥

अर्थ–जूआ दो प्रकारका है, एक निर्जीव और दूसरा सजीव है। चोपड पाशावाला जूआको द्यूत कहते हैं सो निर्जीव है और मीढा तित्तर आदिकोंकी लडाईवाला सजीव है उसको साव्हय कहते हैं ये दोनों व्यसन वर्जित हैं॥

रहता है, वेश्यागमन करनेसे बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, धर्मभी नष्ट हो जाता है, धनकाभी नाश हो जाता है, आवरु चली जाती है और गरमीके रोग कोढ भगंदर जलोदर आदिक अनेक रोग वेश्यागामीके शरीरमें उत्पन्न होते हैं देखो इस विषयमें नीति शास्त्रकी आज्ञा—

"दासी मानधनं हन्ति हन्ति वेश्या धनादिकम्।
आयूंषि विधवा हन्ति सर्वं हन्ति परांगना इति" ॥४

पापार्द्धि अर्थात् शिकार जो है सो कठोर हृदय विना नहीं हो सक्ता है शिकारीको दया नहीं होती है, न्याय धर्म स्वर्ग मोक्ष नहीं पर लोकमें नरक मिलता है, शिकारी जो है सो जीवोंको कपटसे दगासे विश्वाससे और चोरीसे मारता है. उस विश्वासघातीका नरकमें यावत्चंद्रादिवाकर वास रहता है. अहो वह शिकार करनेवाला अपराधी सोतेहुये, जल पीतेहुये, भोग करते हुये और गर्भवतीकोभी अकस्मात् मार डालता है. कितनेको खानेका लालच बताकर विश्वास देकर मार डालता है। इसालिये शिकारीका उद्धार शास्त्रमें नहीं लिखा है ५। चोरी करनेवाला परप्राणीयोंका धनरूपी वाहिरके प्राणोंका लेनेवाला है, जैसे जीवोंके अंतर प्राणोंके लेनेसे वे जीव अत्यंत दुःख पाते हैं वैसे धनरूप बाहर प्राणोंके लेनेसेभी जीव बहुत दुःख पातें हैं. चोरभी हिंसक है, इसलिये वे दोनों समान पापी हैं। जैसे सब जीवोंकी हत्यासे ब्रह्महत्या वडी है, वैसे सब पदार्थोंकी चोरीसे सुवर्णचोरी वडी है, उस सुवर्णके चोरीकी शुद्धिभी बारह वर्षमेंही होती है, ऐसे याज्ञवल्क्य स्मृति धर्मशास्त्रमें ब्रह्महत्याके समान सुवर्णकी चोरी कही है. और उस चोरीमें राजनीतिभी कहती है कि—

नित्यं पंचाशतं हन्याच्चौराणां धार्मिको नृपः।
अभावे पंच कायस्थान् नैकं वा स्वर्णहारकम् ॥ १३॥

अर्थ—जो राजा पचाश चोरोंको नित्य मारताहै वह धार्मिष्ठ कहा जाता है, यदि राजाको नित्य पचाश चोर नहीं मिले, तो पांच कायस्थोंको नित्य मारे, उन पांच कायस्थोंके मारनेसे पचाश चोर मारनेका फल राजाको होता है. और जो उस राजाको कलम कसाई पांच कायस्थभी न मिले, तो वह राजा नित्य एक सोनारको मार डाले. उस एक स्वर्णहारी सुनारके मारनेसे पचाश चोर और पांच कलम कसायियोंका बदला संपूर्ण हो जाता है. सुनार, सोनाकी चोरी करता है इसलिये उसकी पचाश चोरोंकी बराबर गणना की है,

कायस्थ राजाकी नौकरी करते हैं वहां वे कायस्थ अपनी जातिवालोंका पोषण करते हैं एक कायस्थ नौकरी करता होवे तो दूसरे हजारोंको नौकरीमें लगा लेता है. और दूसरी जातिवाले नौकरोंकी नौकरी कलमसे काट देता है इससे उसका नाम कलम कसाई है। सो राजनीतिमें कहा है कि–

काककुक्कुटकायस्थाः स्वजातिपरिपोषकाः ।
स्वजातिपरिहंतारः श्वानसिंहद्विजा गजाः ॥ १४॥

अर्थ–काग, कुक्कुट और कायस्थ ये तीन अपनी जातिके पोषण करनेवाले हैं और श्वान, सिंह, ब्राह्मण और हस्ती ये चार अपनी जातिको हननकरने वाले हैं. जैसे सर्व प्राणियोंमें ब्राह्मण उत्तम वर्ण है, वैसे चांदी आदि सर्व धातुओंमें और पशु आदिक सर्व पदार्थोंमें सुवर्ण महान् पवित्र और अत्यंत श्रेष्ठ है इसलिये सुवर्णकी चोरीकाही महापाप है। चोरीका स्वरूप यह है कि,जिस वस्तुका मालिक होय और उस मालिकको पूछे और मांगे विना उस वस्तुको अपहारकरनेका नाम चोरी है।जैसे बागमें जाकर विना पूछे फलपुष्पादिकोंको तोड लेना, और मालिकको पूछे विना तृण काष्ठादिकोंको उठा लेना, और खेतमें जाकर मालिकको पूछे विना अन्नादिकको लेलेना यह सब चोरी कही जाती है. ऐसेही सोना, चांदी, वस्त्र, पशु, पुत्र, स्त्री आदिक पदार्थोंका जो विना पूछे, विना मांगे, विना दीये हुये अपने मनसे लेलेवे, सो सब चोरी कही जाती है, जैसी वह वस्तु उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ होती है, वैसे उन वस्तुओंके चोरभी उच्च, मध्यम और कनिष्ठ पापी गिने जाते हैं, चोरी महा नीच कर्म है, चोरी करनेवाला ईश्वरकी वेदरूप मर्यादाका लोप करता है, चोर परमेश्वरका महान् गुन्हगार है; और चोर महापापी महानिर्दय और महा भ्रष्टाचारी है। चोरको दया तथा धर्म नहीं। चोर देव, ब्राह्मण, साधु और गुरु इनकीभी चोरी करता है, चोर महान् अधर्मी है चोरके हृदयमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, विवेक विचारादिक कुछभी नहीं होते हैं, चोर नरकगामी होता है। चोरी करनेवलोका दंडभी धर्मशास्त्रमें कहा है कि–

तृणं वा यदि वा काष्ठं पुष्पं वा यदि वा फलम् ।
अनापृच्छन् हि गृह्णानो हस्तच्छेदनमर्हति ॥ १५ ॥

अर्थ–घास, काष्ठ, पुष्प, फल इनकी चोरी करनेवालेका हस्त च्छेदन करना चाहिये, जब उसके हस्तको राजा काटे तब वह चोर अपराधसे छूटे. यदि जो घास गऊके अर्थ, काष्ठ यज्ञके अर्थ, पुष्प फल देवके अर्थ लेवे तो उसका अप-

राध माफ है। और उत्तम मध्यम और कनिष्ठ ये तीन प्रकारकी चोरीका लक्षण धर्मशास्त्रमें कहा है कि–

मृद्भाण्डासनखट्वास्थिदारुचर्मतृणादि यत्।
शमीधान्यं कृतान्नं च क्षुद्रद्रव्यमुदाहृतम् ॥ १६ ॥
वासः कौशेयवर्जं च गोवर्जं पशवस्तथा।
हिरण्यवर्जं लोहं च मध्यमं व्रीहयस्तथा ॥ १७ ॥
हिरण्यरत्नकौशेयं स्त्रीपुङ्गोगजवाजिनः।
देवब्राह्मणराज्ञां च द्रव्यं विज्ञेयमुत्तमम् ॥ १८ ॥

अर्थ–मृत्तिकाके भांड, आसन, खाट, हाड, लकडी, चर्म, घास, फलीधान्य, रांधा हुआ अन्न इतने क्षुद्र पदार्थ हैं, इनकी चोरीका गुन्हाभी भारी नहीं, अल्प है. रेशमके वस्त्र विना दूसरे वस्त्र, गउके विना दूसरे पशु, सुवर्णके विना दूसरे धातु, तथा शाली आदि धान्य जव इतने मध्यम पदार्थ हैं, इनकी चोरीका मध्यम अपराध है. और सुवर्ण, रत्न, रेशम, स्त्री, पुरुष, गौ, हस्ती, घोडा तथा देव ब्राह्मण और राजा इनके द्रव्य ये सब उत्तम पदार्थ हैं. इनकी चोरीका पापभी महान् है. इस प्रकार उत्तम मध्यम और क्षुद्र पदार्थोंकी चोरीके अनुसार राजा दंड करे, राजा यदि दंड न करे तो यमपुरीमें यम राजा दण्ड करेगा। इति ॥

प्रश्न–हे सिद्धांति! हम आप चोरी नहीं करेंगे, और दूसरे चोरोंसे चोरी कराके धन मंगालें तो हमारेको क्या दोष है?

उत्तर–तुमभी चोरोंके समानही पापी गिने जावोगे, ऐसा धर्मशास्त्रमें कहा है कि–

भक्तावकाशाग्न्युदकमन्त्रोपकरणव्ययान्।
दत्त्वा चोरस्य वा हन्तुर्जानतो दम उत्तमः ॥ १९ ॥

अर्थ–चोरोंको अन्न देनेवाला १, चोरोंको निवास स्थान देनेवाला २, चोरकी शीत मिटानेको अग्नि देनेवाला ३, चोरोंकी तृषा मिटानेको जल देनेवाला ४, चोरी करनेके प्रकारका उपदेश करनेवाला ५, चोरीके साधन जो काटने खोदनेके हैं उनको देनेवाला ६, देशांतरमें चोरी करनेजाता चोरको

वाटखर्ची देनेवाला ७ चारोंके दुष्टपनेको तथा मारनेवालेके दुष्टपनेको जानके गुप्त रखनेवाला ८ ये आठ जन चोरोंके समान पापके भागी हैं, ऐसा याज्ञवल्क्यस्मृतिमें कहा है. इसलिये चोरोंका उपकार करनेवाले पूर्वोक्त आठ जन और चोरीको करनेवाले, ये सब उभय लोकके विरोधी हैं. इस लोकमें सत्पुरुषोंकरके निंदनीय होते हैं; और परलोकमें दुर्गतिको प्राप्त होते हैं. इसलिये सज्जन चोरीको न करे. और चोरोंको उपकारभी न करे ६ ।

सातवां जो परस्त्रीका सेवन है सोभी व्यसन इस लोक और परलोक उभय लोकका विरोधी है, इन लोकमें परस्त्रीगामीकी शिष्ट पुरुष निंदा करते हैं, और परलोकमें दुर्गति प्राप्त होती है. इसलिये उभय लोकका विरोधी जो परस्त्रीका सेवन है, उसका त्याग करना चाहिये ॥

प्रश्न–हे गुरुजी ! परस्त्रीमें अभिलाषा करनेसे कैसा दुःख होता है, और इस लोकमें परस्त्रीमें कामना करनेसे कोईने दुःख पाया है ?

उत्तर–बहुत जनोंने परस्त्रीकी कांक्षासे दुःख पाये हैं, सो नीतिशास्त्रमें कहा है कि–

लङ्केश्वरो जनकजाहरणेन वाली
तारापहारकतयाप्यथ कीचकाख्यः ।
पाञ्चालिकाग्रहणतो निधनं जगाम
तच्चेतसापि परदाररतिं न कांक्षेत् ॥ २० ॥

अर्थ–हे शिष्य ! लंकेश्वर जो रावण जनकपुत्री जानकीका हरण करनेसे अपने कुलका सत्यानाश करदिया, वाली सुग्रीवकी रुमा स्त्रीका अपहरण करनेसे नाशको प्राप्त हुआ और कीचक द्रौपदीका ग्रहण करनेसे नाशको प्राप्त हुआ ऐसे २ महाबलवंत और महा कुटुंबवाले जब नाशको पाये, तब आधुनिक तुच्छ प्राणी नाश पानेमें क्या कहना है इससे मनकरकेभी परस्त्रीमें प्रीति न करनी. देखो कि गौतम ऋषिकी अहल्यास्त्रीके सेवनसे इंद्रके शरीरमें शीतला रोगकी तरह सहस्र भग रोम रोममें उत्पन्न होगये ऐसा जो इन्द्रको महादुःख प्राप्त हुआ, सो परस्त्रीके अभिलाषासे । और परनारीके संगसे आयुष्यका नाश होता है १, शरीरमें विकलपना उत्पन्न होता है २, जगतमें हंसी होती है ३. निंदा होती है ४, धनका नाश होता है ५, आबरुमें तुच्छपना होती है

अर्थात् आबरु घटती हैं ६ और परलोकमें दुर्गति मिलती है ७ । इसलिये हे सज्जनपुरुषो ! परनारीकी कामना मत करो ।

प्रश्न–हे धर्मशास्त्रवेत्ता ! हम वादी तुम्हारेको पूछते हैं कि, परपुरुषकी जो नारी है सो परनारी कही जाती है, उस परनारीके संभोगसे पाप लगता है. ऐसा आपने कहा है, परंतु जिन स्त्रीयोंके धनी नहीं हैं, ऐसी जो कन्या, विधवा, दासी और वेश्यादिक हैं वे परनारी नहीं कही जाती हैं, इसलिये इनके संग विलास करनेसे कुछभी दोष तो नहीं ?

उत्तर–हे कुचाली नास्तिक ! महाभारत और धर्मशास्त्रमें ऐसा कहा कि,

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
पुत्रश्च स्थविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥

अर्थ–स्त्री जो है सो स्वतंत्र तीनों कालमें नहीं है, क्योंकि कौमारावस्थामें कन्या अपने माता पिताके आधीन है, अर्थात् उस कन्याकी रखवारी उसके माता पिता करते हैं, जब उस कन्याका माता पिताने दान कर दिया तब उसका रक्षण उसका पति करता है, अर्थात् सधवा अवस्थामेंभी स्त्री स्वतंत्र नहीं है । विधवा स्त्री जो है सो अपने पुत्रोंसे रक्षित रहती है,यदि उस स्त्रीके पुत्र नहीं होंय तो उस विधवाके श्वशुर, भतीजा आदिक सम्बन्धी उसकी रक्षा करते हैं, इसलिये स्त्री तीनों अवस्थामेंभी स्वतंत्र नहीं है, किंतु परतंत्रही है, जैसे. जंगलके हिरण, सूवर, रोझ आदिक जंगली जनावरोंको हर कोई पकड लाता है, तथापि उस पकडनेवालेकी लौकिकमें कोईभी चोर नहीं कहता है. क्योंकि जंगली पशु किसीके कबजा और रक्षणमें नहीं हैं, इसलिये उनकी चोरी नहीं गिनी जाती है और कबजामें तथा रक्षणमें रहनेवाले जो गउ, भैंस, हाथी, घोडा आदिक अनेक पदार्थ हैं, उनको लेजानेवाला चोर है,और दंडके लायक है,वैसे पराधीन स्त्रीयोंका गमन करनेवालाभी अधर्मी है और दंड करने योग्य है और दासी जो है सोभी परतंत्रही है, क्योंकि, जिसके घरमें दासी होकर रहती है, वह उस दासीका स्वामी है, इसलिये कन्या, सधवा, विधवा और दासी आदिक ये सब परनारी हैं, कहा है कि–(तच्चेतसापि परदाररतिं न कांक्षेत्)जब मन करकेभी परनारीमें प्रीति करनेका निषेध किया है तो वचन और काया करके जो पुरुष परनारीका संग करता है सो निश्चय करकेही नरकका अधिकारी होता है ॥

प्रश्न–जब परस्त्रीका उपभोग करनेसे इतना पाप लगता है, तब न करना चाहिये ऐसा कौन शास्त्रमें कहा है ?

उत्तर–धर्मशास्त्रमें कहा है कि–"स्वदारनियतः सदा" सदा अपनी स्त्रीमेंही नियमवाला होवे ॥

प्रश्न–इस धर्मशास्त्रके वचनमें स्वस्त्रीमें नियम रखनेका कहा है, परंतु परस्त्रीको भोगनेका निषेध नहीं किया है ॥

उत्तर–जैसे किसी व्रत करनेवालेको ऐसा उपदेश किया कि, तुम सदा दुग्धका पान करतेही रहना, ऐसा कहनेसें दूसरे पदार्थ खानेका अर्थसे आपही निषेध हो गया । वैसे अपनी स्त्रीमेंही भोग करनेका सदा नियम रखना, ऐसा कहनेसे परस्त्रीयोंका त्यागही अर्थसे सिद्ध होता है ॥

प्रश्न–परस्त्रीकी योनिमें वीर्यपात करनेसे इतना पाप लगता है, ऐसा जब धर्मशास्त्रने स्पष्ट रीतिसे कहा होय तब हम सत्य प्रमाण माने ?

उत्तर–अरे वादी ! तू अधर्ममें काहेको कमर बांधता है, परनारीके निषेधमें एक तो क्या परंतु अनेक श्रुति स्मृति पुराणादिकोंके वचन प्रमाण हैं सुन–

परयोनौ पतिते बिंदौ कोटिपूजा विनश्यति ।
जपहानिस्तपोहानिर्ब्रह्महत्या पदे पदे ॥ २१ ॥

अर्थ–परनारीकी योनिमें वीर्यबिंदुको गिरानेसे कोटि पूजा नाश होती है, अर्थात् करोड वार की हुई भगवत्‌की पूजाका नाश होता है, और जपकी हानि होती है, अर्थात् राममंत्र गायत्री आदि कोटि कोटि जाप निष्फल होते हैं और कोटि कोटि तीर्थोंका फलभी नाशवान् हो जाता है और वह व्यभिचारी अपने घरके जब परनारीका उपभोग करने जाता है तब उसको पाद पादमें ब्रह्महत्या लगती है; अर्थात् जितने पग चलता है उतनी ब्रह्महत्या उसको लगती है ॥ २१ ॥ दत्तगीतामें कहा है कि–

मद्यपाने महापापं नारीसंगे तथैव च ।
तस्माद्द्वंद्वं परित्यज्य न तेऽद्य नरकं यते ॥ २२ ॥

अर्थ–जैसे मदिरा पान करनेसे महा पाप होता है वैसे परनारीके संगसेभी महापाप लगता है. इसलिये मदिरा और परनारी इन दोनोंका परित्याग करके हे यति ! अब तुमको नरक नहीं हैं, इन दोनोंके सेवनेसेही नरककी प्राप्ति होती है ॥ २२ ॥ हे नास्तिक ! भागवतके पंचम स्कंधके छब्बीसवें अध्यायमें

अठाईस नरकोंका वर्णन किया है, वहां ऐसा लिखा है कि, जो कोई पुरुष परनारीमें गमन करता और नारी परपुरुषको भोग देती है, वे दोनों तप्त सूर्मि नामक नरकमें जाते हैं और जो कोई पुरुष सर्वाभिगमन करे अर्थात् परनारी, कुत्ती, गद्धी, भैंस, गाय, घोडी, बन्दरी तथा औरभी दूसरे ग्राम्य पशु वन पशुओंका भोग करता है, वह पुरुष वज्रकंटक नरकमें जाता है, और पुरुष पुरुषका भोग करे अर्थात् पुरुषकी गुदाका भोग करे, तो उस अधर्मी महापापी और कुमार्गीको यमदूत वज्रकंटक नरकमें डालते हैं ॥

वादीप्रश्न–हे सिद्धांति ! आपने सब ठिकाने भोग करनेका दोष बताया. परंतु हम रंडीबाजोंको वेश्या निर्दोष मालूम पडती है, वेश्याका संगसे पाप नहीं लगे. क्योंकि तुम्हारे स्कंदपुराणमें ऐसा कहा है कि वेश्या जो है सो पंच चूडा अप्सरा संतती है, अर्थात् पंचचूडा वेश्यासे वेश्याजाति चली आती है वेश्या अनादि पांचवी जाति है, और उस वेश्याकी जीविकाभी परपुरुषोंके संभोगसेही चलती है, वेश्याकी दुकान सर्व पुरुषोंके भोगके वास्तेही है, इससे वेश्याका भोग करनेमें कुछभी दोष नहीं है ।

उत्तर–दृष्ट दोष नहीं है परंतु अदृष्ट दोष है ऐसा धर्मशास्त्रमें कहा है कि–

पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्यं विधीयते ।

अर्थ–पशु और वेश्यामें गमन करनेवाला पुरुष प्राजापत्य व्रत करे, तो उसका दोष मिटे, वेश्या जो है सो पशु जातिके सदृश है, जैसे पशु जातिमें एक स्त्रीके अनेक भर्ता होते हैं, वैसे वेश्या जातिमेंभी एक वेश्याके अनेक पुरुष होते हैं, पशु और वेश्या एक समान हैं. उन दोनोंका संभोग करनेवालेकी शुद्धि प्राजापत्य व्रत करके होती है, वेश्याका भोगभी उभय लोकका विरोधी है ॥ हे शिष्य ! इस षोडशवां अध्यायमें दुष्टकर्मोंकी निंदारूप करके जो हमारी शिक्षा है सो उत्तम अधिकारी देवबुद्धि हरिभक्तोंको तो प्रिय अमृतके समान लगेगी. और हरि गुरुसे विमुख, कुकर्मी, अन्याई, अधर्मी दुष्टाचारी, कुमार्गी, दैत्यबुद्धि ऐसे मनुष्योंको यह हमारी शिक्षा विषके समान लगेगी ॥

प्रश्न–हे गुरुमहाराज ! मैंने इस लोकमें एक वडा अचंभा देखा है तमाखु, गांजा, भांग और अफीम इन चार व्यसनोंको बहुत लोग करते हैं, कोई तमाखु पीता और खाता तथा सूंघता है. कोई गांजा पीता भांग पीता है. कोई अफीम खाता हे, ऐसे इन चार व्यसनोंमें सब लोक डूब रहे हैं, जिनने गुरुका उपदेश नहीं लिया है और वैष्णव नहीं हुये ऐसे लोक तो कदा-

चित् इन व्यसनोंको करे परंतु गुरुका उपदेश लेके वैष्णव बनके पीछेसे इन दुष्ट व्यसनोंको नहीं छोडते हैं, रात दिन इनमेंही तत्पर रहते हैं, इन चार व्यसनोंको तथा इनके साधन चकमक चींपिया स्वाफी आदिकको ठाकुरबटुवाकी माफक सदा पासही रक्खते हैं इसलिये मेरेको बडा भारी आश्चर्य लगता है कि क्या कलियुगने गांजा तमाखुका रूप धर जगत्को विटालने आया कि मनुष्योंको हरिसे विमुख करके नरकमें ले जाने आया है, हे भवसागरसे उद्धार करनेवाले गुरुजी ! मेरा इस संशयको आप जडमूलसे दूर करो ।

तमाखु आदिकी निन्दा ।

उत्तर—हे सन्मार्गगामी ! ये जो चार कुव्यसन हैं, वे इस कलियुगमें ही प्रगट हुये हैं, दूसरे युगोंमें ऋषि मुनि तपस्वी आदिक कोईभी इन कुव्यसनोंको नहीं करते रहे, परंतु जबसे पंच पांडव स्वर्गमें गये और कलियुग आया, तबसेही ये सब कुकर्म चले हैं. क्योंकि कलियुगका मन हरि गुरुसे विमुख करनेका है सो प्रगट देखनेमें आता है कि जो पुरुष गांजा तमाखु पीते हैं वे पुरुष प्रभातमें उठकर प्रथम चिलम तमाखुकी सेवा करते, और जब ये स्नान करके आते हैं, तब वे प्रथम चिलम तमाखुको मुख और मत्थे पर लगाके अत्यंत प्रीतिसे एक घटिका पर्यंत चुंबन करते हैं, पीछे लोकके भयसे और अपनी जीवनके अर्थ ठाकुर सेवा करते हैं इस कारण इनका ठाकुर सेवा करना सफल नहीं होता है, किंतु सदा निष्फलही होता है ।

प्रश्न—हे ज्ञानमुद्राधरगुरो ! ये जो गांजा तमाखु पीनेवाले हैं, वे श्रीवैष्णव धर्मको बट्टा लगाते हैं, क्योंकि अत्यंत शुद्ध और सब धर्मोंसे अति श्रेष्ठ जो श्रीवैष्णव धर्म है, उस धर्मकी दीक्षा धारण करके अत्यंत नीचकर्म गांजा तमाखु पीते हैं, जैसे मुसलमान एक प्यालासे सब मिलकर पानी पीते हैं, वैसे गांजा तमाखु पीनेवालेभी एकही चलमसे सब पीते हैं, चलम मट्टीकी होती है उसमें जलसे भीजीहुई साफी लगाते हैं पीछे होठ लगाकर पीते हैं होठका थूक हाथमें लगता है इस करके चिलम उच्छिष्ट हो जाती है, उसको फिर दूसरा पीता है, वे पीनेवाले जाने कौन कौन जातिके हैं, सबको थूक चलम पीनेवाले पीता है, इतना तो दृष्ट दोष है, अदृष्ट दोषोंको मैं नही जानता हूं सो हे गुरुजी ! आप कहो.

उत्तर—हे शिष्य ! जो गांजा तमाखु पीनेवाले हैं वे वेद पुराण धर्मशास्त्रादिकोंको नहीं मानते हैं, और आचार्योंकोभी नहीं मानते हैं, वे तो एक पंचमात्राकी पोथीको स्वर्गदाता मान बैठे हैं, सो पंचमात्रा किसी परधर्म-

वालेने शास्त्रप्रमाणसे रहित भाषामें बनाई है उसको पढनेवाले अकडबाज हो जाते हैं, और वैष्णवधर्मके जो पटल, पद्धति आदिक ग्रंथ हैं उनको नहीं पढते हैं ।

प्रश्न–हे महाराज ! गांजा तमाखुके पीनेसे कैसा अदृष्ट दोष लगता है. और कौन शास्त्रमें कौन महात्माने गांजा तमाखु पीनेका मनै किया है ?

तमाखुका इतिहास ।

उत्तर–हे शिष्य ! सब जगतका बाप जो ब्रह्मा है, उसने गांजा तमाखु भांग और अफीम इनके खाने पीनेका मनै किया है सो स्कन्दपुराणके ६६ छासठवां अध्यायमें कहा है कि, एक दिन नारद मुनि ब्रह्माको कहे कि, हे पिताजी ! मृत्युलोकमें मैंने ऐसा पाखंड देखा है कि, वहांके सब लोक हरिभक्तिको छोड चिलम भक्तिको कर रहे हैं, जहां देखूं तहां गाञ्जा तमाखूके धुआं उड रहे हैं, और भगवत्को प्रिय जो पंचायतन धूप, अष्टांग धूप, इनका धुआं तो दुर्लभ हो रहा है, तमाखुको अत्यंत प्रीतिसे कोई मुखमें घुसेडता है और कोई नाकमें घुसेडता है. तुलसीके खानेसेभी अधिक प्रीति तमाखुके खानेमें रक्खते हैं, इससे उनकी क्या गति होगी ?

उत्तर–यस्तमाखुं पिबेत्सोपि स्वाश्रमान्निरये पतेत् ।
नारदात्र न संदेहः सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥ २३ ॥

अर्थ–हे नारद ! जो कोई पुरुष तमाखु पीता है सो निश्चय करके अपने आश्रमसे नरकमें पडता है, जो ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ तथा संन्यासी तमाखु पीवे तो वे अपने २ आश्रमसे भ्रष्ट होकर नरकमेंही जाता है । ब्रह्मा कहते हैं कि, हे नारद!हमारे कहनेमें संदेह नहीं है, मैं सत्य सत्यही कहता हूं॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च मुनिसत्तम ।
श्वपचैः सदृशा ज्ञेयास्तमाखूपानमात्रतः ॥ २४ ॥
गृहस्था नैव विज्ञेयास्ते नैव ब्रह्मचारिणः ।
वानप्रस्था न ते ज्ञेया यतयो न भवंति हि ॥ १५ ॥

अर्थ–हे नारद ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण तमाखु पीनेसे ही उनको चांडाल सरीखे जानने, और जो कोई तमाखु पीवे उसको गृहस्थ,

ब्रह्मचारी तथा वानप्रस्थ संन्यासीभी नहीं जानना ॥ २५ ॥ ऐसा. ब्रह्माका वचन सुनकर नारद बोले कि, हे पिताजी ! उनको गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासीं करके नहीं जाने तो उनको कैसे जाने ॥

धर्मभ्रष्टा हि ते ज्ञेयास्तमाखुधूम्रपानतः ।
पतन्ति नरके घोरे रौरवे नात्र संशयः ॥ २६ ॥

अर्थ–ब्रह्मा कहते हैं कि, हे नारद ! तमाखुका धूम्र पीनेसे उन पीनेवालोंको धर्मभ्रष्ट जानना चाहिये, वे धर्मभ्रष्ट घोर रौरव नरकमें पडते हैं इसमें संशय नहीं है सत्यही है ॥ २६ ॥

तमाखुभङ्गमद्यानि ये पिबन्ति नराधमाः ।
तेषां हि नरके वासो यावद्ब्रह्मा चतुर्मुखः ॥ २७ ॥

अर्थ–हे नारद ! जो नर तमाखु, भांग, गांजा और मद्य इनको पीते हैं वे सब नरोंमें नीच हैं, और इस सृष्टिमें जहांतक मैं चतुर्मुख ब्रह्मा जीवेगा तहांतक उन पापियोंका निश्चय नरकमें वास होगा ॥ २७ ॥

ये पिबन्ति तमाखुं वै लक्ष्मीर्नश्यति तद्गृहात् ।
आयात्यलक्ष्मीस्तेषां वै गुरौ भक्तिर्न संभवेत् ॥ २८ ॥

अर्थ–जो मनुष्य तमाखु पीते हैं उनके घरसे लक्ष्मी नाश हो जाती है, और उनके घरमें अलक्ष्मी अर्थात् दरिद्रका वास होता है, और तमाखु पीनेवालोंकी गुरु भक्तिभी नहीं संभवति है क्योंकि वे तमाखु गांजा खोर, प्रथम जव चलम भक्ति कर लेते हैं, पीछे भगवत् सेवा गुरु सेवा करने जाते हैं, और जो किसीने गांजाकी चलम बनाके तैयार करी होय तो तुरत गुरु गोविंदकी सेवाको तथा पवित्र भंडारको छोडके चलमको चाटते हैं, पीछे सेवा, भंडार करते हैं, अर्थात् भगवत्को ठगाते हैं, बहुत क्या लिखे परंतु वे तो नरकमेंही कीडा होवेंगे ॥ २८ ॥

हे शिष्य ! द्यूत, मांस, मदिरा, वेश्या, शिकार, चोरी, परस्त्री, गांजा, तमाखू, भांग, अफीम इत्यादिक द्वादश व्यसनोंको करनेवाले मनुष्य तामिस्र, अंधतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुंभीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, सूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, संदंश, तप्तसूर्मि, वज्रकंटक, शाल्मलि, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अयःपान, क्षारकर्दम,

रक्षोगणभोजन, शूलप्रोत, दंशशूक, अवटानिरोधन, पर्यावर्त्तन, सूचीमुख इत्यादि अष्टाविंशति नरककुंड यमराजाकी पुरीमें हैं उन नरकोंमें जाते हैं. तथा दूसरेभी हजारों प्रकारके पापोंको करनेवाले मनुष्यभी इनही नरकोंमें जाते हैं. इसलिये पाप कर्मोंका त्याग करके भगवत्संबंधी धर्ममेंही बुद्धि करनी चाहिये ॥

इति श्रीमद्रामानुजचरणसरोरुहचंचरीकेण श्रीमत्पण्डितगोपालदासेन विरचिते श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकरे नरकोत्पादकद्वादशव्यसनादि-पापकर्मत्यागप्रतिपादने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः।

श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

अब रामानंदस्वामी सुरसुरानंदको वैष्णव धर्म उपदेश करते हैं—

अथ वैष्णवधर्म ।

समर्प्य कर्माणि शुभानि वैष्णवो रामाय भक्ष्यं च निवेद्य भक्षयेत् । अहर्दिवं वीतभयः समुत्तमं विमुक्तिधीः स्वाघनिवृत्तिकामः ॥ १ ॥

अर्थ—हे शिष्य ! नरकके देनेवाले पूर्वोक्त द्वादश कर्मोंका त्याग करके संसार भयकी निवृत्तिके वास्ते (विमुक्तिधीः) होना चाहिये अर्थात् मुक्तिमें बुद्धि रखना चाहिये. (स्वाघनिवृत्तिकामः) और अपने किये हुये पापोंकी निवृत्तिकी कामनावाला होना चाहिये. ऐसा जो वैष्णव है सो दिन दिन प्रति वेद विहित शुभ कर्मोंकोही करे. और उन कर्मोंको श्रीरामचंद्रजीको अर्पण करके और सम्यक् श्रेष्ठ अर्थात् अभक्ष्य[1] पदार्थोंसे रहित अति उत्तम जो भक्ष्य है, उसको श्रीरामके अर्पण करके पीछे उस नैवेद्यको आप भक्षण करे इस प्रकार करनेसे वह वैष्णव संसारके जन्ममरणरूप भयसे मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥

---

१ प्याज, लशुन, गाजर, कालिंज, मांस, श्वेतवृन्ताक इत्यादिक अभक्ष्य पदार्थ हैं.

जो जो शुभ कर्म करे, सो सब कर्म भगवदर्पण करनेकेवास्ते चराचरके गुरु गीताचार्य श्रीकृष्णकी आज्ञा है कि–

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ २ ॥

अर्थ–हे अर्जुन ! शास्त्रकी आज्ञासे विनाही केवल रागकरके प्राप्त जो गमन आगमनरूप कर्मको तू करता है हम परमेश्वरमें अर्पण करो तथा अपनी क्षुधाकी शांतिके वास्ते अथवा कर्मोंकी सिद्धिके वास्ते जो अन्नको तू भोजन करता है, तथा शास्त्रके बलसे जो नित्य श्रौत स्मार्तरूप जितने होमोंका तू करता है, अभ्यागतों और ब्राह्मणादिकोंको जो तू अन्न सुवर्ण वास्त्रदिक पदार्थोंका दान करता है प्रति वर्ष अज्ञात पापोंकी तथा प्रमादकृत पापोंकी निवृत्ति करनेवास्ते जो तू चांद्रायण तप्तकृच्छ्र आदिक तप करता है अथवा अपनी इच्छापूर्वक प्रवृत्तिकी निवृत्ति करनेवास्ते शरीर इंद्रियोंका संयमरूप तप तू करता है, नित्य नैमित्तिक कर्मोंको भी करता है वे सब मेरेही अर्पण कर । इन नित्य नैमित्तिक लौकिक वैदिक सर्व कर्मोंका मेरे समर्पण जो पुरुष करता है, उसको मोक्षरूप फल प्राप्त होता है । हे अर्जुन ! जो मेरे अर्पण नहीं करे तो पुण्य और पाप ये दोनों बन्धन करनेवाले हैं. जैसे चांदीकी और लोहेकी दोनों बेडी बांधनेवाली हैं वैसे पुण्य और पाप दोनों जन्म मरणरूप बन्धनके कर्त्ता है. इसलिये पुण्य और पाप ये दोनोंका मेरेमें अर्पण करेगा तो–

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।

हे अर्जुन ! स्वर्ग नरकरूप फलको देनेवाले जो कर्म बंधन हैं उनसे तू मुक्त हो जायगा । जैसे कोई गरीब मनुष्य, धनवान् सेठका गुमास्ता होकर सेठके अर्थ व्यापार करे, उस व्यापारमें जो हानि,लाभ होता है, उस हानि लाभका मालिक सेठ है, गुमास्ता नहीं । क्योंकि जो पुरुष लाभका धनी है सो हानिकाभी धनी है. वैसे शुभ और अशुभ कर्मका मैंही मालिक हूं, उन शुभाशुभ कर्मोंका करनेवाला मालिक नहीं । हे अर्जुन ! हमारा सेवक जब शुभकर्म करता है, तब शुभ कर्मोंके साथ अशुभ कर्मभी होता है; जैसे मेरा भक्त मेरे मंदिरमें जब झाडू देता है, चौका लगाता है रसोई करता है, जल छानता है, तुलसी पुष्पादिकका छेदन करता है होम करता है इत्यादिक शुभ कर्मोंमें जो जीव मरते हैं उनका पाप मदर्पक मेरा भक्त नहीं भोगता है क्योंकि ये

सब कर्म मैं परमेश्वरके अर्थही उस भक्तने की है अपने भोगके वास्ते नहीं किया है । हे अर्जुन ! मैंने कहा है कि-

मन्निमित्तकृतं पापं मद्धर्माय च कल्पते ।
मामनादृत्य धर्मोऽपि पापं स्यात् मत्प्रभावतः ॥ ३ ॥

अर्थ-मेरे निमित्त किया जो पाप है, सो मेरे धर्मके अर्थ है और मेरे अर्पण नहीं किया धर्म भी मेरे प्रभावसे पापही है, धर्म नहीं । इसलिये निष्कामी जो मेरा भक्त है सो पाप पुण्यसे रहित होकर मोक्षको प्राप्त होता है, और मेरा अभक्त जो सकामी पुरुष है, सो फल भोगनेकी इच्छासे कर्म करता है जब वह कामी पुरुष कर्मफल स्वर्गादिकको भोग लेता है, तब उस कर्मीको स्वर्गके निवासी एक घडीभी नहीं रहने देते हैं, किंतु शीघ्रही उसको धक्का मारके इस पृथ्वीमें गिरा देते हैं । पहिचानभी नहीं रक्खते हैं कि, अपने साथ बहुत दिनोंसे रहता है, सो एक दिन अपनी तरफसे राखिये । हे अर्जुन ! यहां हमने कर्म दो प्रकारके कहे हैं, एक तो सकाम कर्म है, और दूसरा निष्काम कर्म है, निष्काम कर्म करनेसे मोक्ष होता है, और सकाम कर्मको करनेसे जन्म मरण होता है । परमेश्वरके अर्पण करनेवास्ते किया जो कर्म है वह निष्काम कर्म है और स्वर्गादिक फल भोगनेकी इच्छासे किया जो कर्म है, वह सकाम है ।

प्रश्न-हे कर्मबंधविमोचक गुरो ! आपने जो निष्काम कर्मसे मोक्ष कहा है सो मेरेको ठीक नहीं लगता है. क्योंकि, इस वेदकी श्रुतिमें विरोध आता है कि-

तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते ।
एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते ॥ ४ ॥

अर्थ-जैसे इस लोकमें कृषि वाणिज्यादिक कर्म करके प्राप्त हुआ जो धन धाम स्त्री पुत्रादिक हैं, सो नाशको प्राप्त होता है, वैसेही परलोकमें यज्ञ दानादिक पुण्य कर्म करके प्राप्त हुआ जो स्वर्गादिक लोक भी नाशकोही प्राप्त होता है । इस प्रकार कर्म करके संपादन किये हुये उभय लोकका नाश श्रुति भगवती कहती है, इससे नाशवान् फलवाले कर्मोंको न करना चाहिये॥

उत्तर-तद्यथेहेति या निंदा सा फले न तु कर्मणि ।
फलेच्छां तु परित्यज्य कृतं कर्म विशुद्धिकृत् ॥ ५ ॥

अर्थ–हे बुद्धिमान् शिष्य ! 'तद्यथा' इस श्रुतिने जो निंदा की है, सो निंदा स्वर्गादिक फलमें की है, यज्ञ दानादिक कर्ममें निंदा नहीं की है, फलकी इच्छाका परित्याग करके पीछे निष्कामनासे किया हुआ जो यज्ञ दानादि कर्म है सो अंतःकरणकी शुद्धि करता है, और (तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते ।) इस श्रुतिमें जो लोकका नाश कहा है, सो लोकशब्द केवल भोग्य पदार्थ जो स्वर्ग, धन, धाम स्त्री आदिक हैं, उनकाही वाचक है. और निष्कामकर्मका फल तो चित्तशुद्धि है, सो चित्तकी शुद्धि पापका क्षयरूप है, अर्थात् पापके नाशसे चित्त शुद्ध होता है पीछे उस शुद्ध चित्तमें भक्ति ज्ञान वैराग्यादिककी उत्पत्ति होती है । सो धर्मशास्त्रमें कहा है कि–

ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः ।

जब पाप कर्मका नाश हो जाता है, तब पुरुषोंके अंतःकरणमें ज्ञान उत्पन्न होता है, जबतक मनुष्यके शरीरमें पाप निवास करते हैं, तबतक उस मनुष्यको ज्ञान नहीं होता है, इससे चित्त शुद्धिमें लोक शब्दका अर्थ संभव नहीं । और जैसे स्वर्गादिक फलोंका नाश होता है, वैसे चित्त शुद्धिरूप फलका नाश नहीं होता है, और सकाम कर्म तो विधिपूर्वक सर्व अंगोंसहित जब करते हैं तब उसका फल मिलता है, किसीभी वस्तुकी कमती रही हो तो सकाम कर्म फलको नहीं दे सकता है, और निष्काम कर्म तो प्रतिनिधि आदिकों करकेभी समाप्त हो सकता है, यजमान जो है सो कोई रोगादिकसे कर्म करनेमें समर्थ नहीं हो तो उस कर्मको ब्राह्मण द्वारा समाप्त करावे, उसका नाम प्रतिनिधि है. इससे भगवान्ने कहा है कि–

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ।

अंतःकरणकी शुद्धिकेवास्ते किया हुआ जो यज्ञदानादिक धर्म है वह धर्म अत्यंत थोडा हो तोभी जन्ममरण महाभयसे रक्षण करता है । हे सन्मार्गानुयायी शिष्य ! श्रीमद्भागवतके एकादशस्कंधमें भगवतके आराधनरूप कर्मोंके अर्पण करनेकी जो रीति बताई है. उस रीतिसे अर्पण करे ।

अर्पण करनेका यह मंत्र है कि–

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुध्यात्मना वानुसृतः स्वभावात् ।
करोमि यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पये तत् ॥ ६ ॥

अर्थ–काया करके, वचन करके, मन करके, इंद्रियों करके, बुद्धि करके, अहंकार करके और सात्विकादि स्वभाव करके जो जो कर्म मैं (वैष्णव)

करता हूं, सो सकल कर्म मैं परब्रह्म श्रीनारायणके अर्थ अर्पण करता हूं। इस प्रकार अपने किये हुये सकल कर्मोंको श्रीमन्नारायणको सोंप देना, अपने पास किंचित् मात्रभी रक्खना नहीं ॥

प्रश्न–हे गुरो संशय छेदक ! शिव, शक्ति, गणपति, इंद्र, वरुण, कुबेर आदिक देवोंके जो भक्त हैं, वे शिव शक्ति आदिकोंके अर्थही कर्म करते हैं और उस कर्मको उनकेही अर्पण करते हैं सो उन भक्तोंकी क्या गति होगी ?

उत्तर–उनकी दुर्गति होगी, ऐसा श्रीमन्नारायणने आपही कहा है कि–

मदर्पणं न कुर्वंति पुण्यामेतां शुभक्रियाम् ।
तेषां चैव न पश्यामि कदाचिदपि सद्गतिम् ॥ ७ ॥
तपो दानं च होमं वै व्रतानि नियमांस्तथा ।
मदर्पणं न कुर्वंति हुतं भस्मनि वै घृतम् ॥ ८ ॥
यावज्जन्मकृतं कर्म नार्पयंति शुभे मम ।
ते विड्भुजां गतिं यांति न तरंति भवार्णवम् ॥ ९ ॥

अर्थ–इस यज्ञ दानादि शुभ क्रियाको जो मनुष्य मेरे अर्पण नहीं करते हैं। उन पुरुषोंकी सद्गतिको मैं किसी कालमेंभी निश्चय करके नहीं देखता हूं। और तप, दान, होम, व्रत तथा नियम इत्यादि शुभ कर्मोंको जो मनुष्य मेरे अर्पण नहीं करते हैं, वे मनुष्य भस्ममें घृतका होम करते हैं, जैसे राखमें किया हुआ जो घृतका होम निष्फल है, वैसे उनकी की हुई सकल क्रिया निष्फल है ॥ और जन्म भर किया हुआ कर्मको मेरे अर्पण जो मनुष्य नहीं करते हैं, वे विष्ठा खानेवाले शूकरोंकी गतिको प्राप्त होते हैं, और वे संसार-समुद्रकोभी नहीं तरते हैं ॥ ९ ॥ जिन पुरुषोंने कर्मका अर्पण मेरेमें किया है, वे पुरुष जन्म मरणके शोकवाले नहीं होते हैं औरजो मनुष्य शुभ क्रियाको मेरे अर्पण करते हैं, उनके कोटि जन्मके पापको मैं निवारण करता हूं । और जैसे वत्सको देखकर गौ दौडी हुई आती है, वैसे मैंभी उस कर्मार्पणकरनेवालेके समीप दौड आता हूं । फिर उशना स्मृतिमेंभी ऐसा कहा है कि–

स्रक्चन्दनादि तांबूलं यो भुंक्ते नार्पितं हरेः ।
कल्पकोटिसहस्राणि रेतोविण्मूत्रभुग्भवेत् ॥ १० ॥

अर्थ–पुष्प, चन्दन, पत्र, फल, जल, अन्न, दुग्ध, वस्त्र, तांबूल भूषण आदिक पदार्थोंको जो पुरुष श्रीहरिके अर्पण नहीं करके भोग करता है, सो पुरुष कल्प कोटि सहस्र पर्यंत वीर्य, मल और मूत्र इनका भोग करनेवाला होता है । इसलिये कर्मोंका नाश करके मुक्तिकी इच्छावाला वैष्णव सर्व उत्तम पदार्थोंको भगवत्के अर्पण करके पीछे आप अंगीकार करै । और मदिरा, मांस आदिक मलीन पदार्थोंका जिन शिव शक्ति भैरव आदिक अवैष्णव देवोंके भोग लगता है. उन मलीन देवोंके प्रसादको वैष्णव भक्षण न करै ॥

शिव शक्ति भैरवादि देवोंके प्रसादको वैष्णव भक्षण करै तो दाल्भ्यस्मृतिमें ऐसा दंड देनेका लिखा है कि–

अन्नपानादिकं विष्णोः प्रसादं नित्यसेवनम् ।
अन्यदेवस्य नैवेद्यं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ११ ॥

अर्थ–अन्न, जल, दुग्ध, वस्त्र, आभूषण आदिक जो विष्णुका प्रसाद है, उसहीका नित्य सेवन करना और दूसरे देव जो रुद्र, गणपति, भैरव, शनि, मंगल, कुवेर, वरुण आदिककी भोग लगाया नैवेद्यको भोजन करके चांद्रायण व्रतको करनेसे दोष मिट जाता है इसलिये हे शिष्य, विष्णुके नैवेद्यमें दुग्ध दधि सक्कर मेवा आदिक उत्तम पदार्थही लिये जाते हैं, किसीभी ठिकाने मलीन पदार्थ नहीं लिये जाते हैं, विष्णु भगवान आचारसेभी अति उत्तम हैं; मोक्षके देनेवाले हैं, और विष्णुका जो वैष्णव धर्म है, सोभी महापवित्र और मोक्षका देनेवाला है, और विष्णुके दास जो विष्वक्सेन शठकोप नारद सनकादिक हनुमान उद्धव आदिक हैं, वेभी महापवित्र हैं, और अति उत्तम हैं । दूसरे शिव शक्ति आदिक देव जो हैं, वे तो महामलीन हैं और उनका धर्मभी मलीन है, तथा उनके भक्तभी मलीन हैं इसलिये उन मलीन देवोंके भक्त जन्म मरण रूप दुःखसे रहित नहीं होते हैं ॥ फिर असाधारणपनेसेभी कहा है कि–

शिवनिर्माल्यभोजी च रौरवं नरकं व्रजेत् ।

शिवके निर्माल्यका भोग करनेवाला पुरुष रौरव नरकमें जाता है, ऐसा वायुपुराणमें कहा है ॥ और साधारणपनेसेभी कहा है कि–

वर्जयेदन्यदेवानां मालाद्यायुधसर्पणम् ।

दूसरे देवोंका प्रसादरूपमाला आयुध वस्त्र आभूषण आदिकोंको वर्जे ॥ फिर हारीतस्मृतिमेंभी कहा है कि–

अन्यचिह्नाङ्कितं वस्त्रं भूषणासनभाजनम् ।
वृक्षान्पशून्कूपगृहं सर्वं च परिवर्जयेत् ॥ १२ ॥

अर्थ-अन्य देवोंके चिह्न जो त्रिशूलादि शस्त्रों करके अथवा उन देवोंके नंदी महिषादि वाहनों करके अथवा उन देवोंकी मूर्तियों करके चिह्नवाले वस्त्र, भूषण, आसन, पात्र, वृक्ष, पशु, कूप, घर आदि इन सबका परित्याग करे। वैष्णव जो है सो शिवादिक देवोंके चिह्नवाले वस्त्रादिकोंका सर्व प्रकारसे त्यागही करे । और शिवपुराणमें शिवने आपही ऐसा कहा है कि-

मम तीर्थं प्रसादं च नैवेद्यं परिवर्जयेत् ।
अनर्हं मम नैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ॥ १३ ॥

अर्थ-मेरा चरणोदक प्रसाद और नैवेद्यको सर्व प्रकारसे वर्जनकरे । मेरा नैवेद्य,पत्र,पुष्प,फल,जल ये सब अयोग्य हैं;अर्थात् ग्रहण करने योग्य नहीं हैं॥

प्रश्न-हे गुरुजी ! वैष्णव लोग पितरोंके श्राद्धमें तथा देवोंके होममें न्यारा नैवेद्य करे कि, उस भगवत्प्रसादसेही श्राद्ध और होम करे ।

उत्तर-हे शिष्य ! भारद्वाजस्मृतिमें सब देवोंको भगवतका जूठा खानाही कहा है कि-

हरिभुक्तिशेषं तद्दद्यात्पितॄणां च दिवौकसाम् ।
तदेव जुहुयादग्नौ भुंजीयाच्च स्वयं नरः ॥ १४ ॥

अर्थ-हरिको भोग लगाया हुआ जो प्रसाद है, उस प्रसादको पितृ और देवोंको देवे. और उसही प्रसादका देवोंके अर्थ अग्निमें होम करे, और उसही प्रसादका आपभी भोजन करे, इस प्रकारसे तैंतीस कोटि सब देव विष्णुका उच्छिष्टको खानेवाले हैं, और विष्णु तथा विष्णुके भक्त किसी देवकाभी उच्छिष्टको नहीं खाते हैं, जैसे इस लोकमें ब्राह्मणकी की हुई रसोई सब कोई खाते हैं, परंतु ब्राह्मण किसीकीभी की हुई रसोईको नहीं खाते हैं, क्योंकि सर्व वर्णोंमें ब्राह्मणही उत्तम हैं वैसे सब देवोंमें विष्णुही उत्तम है, इसलिये मदिरा मांस खानेवाले देवोंका प्रसाद वैष्णवोंको नहीं खपता है,और विष्णुका अन्न सब देवोंका खपाते हैं. इसालिये विष्णुके प्रसाद करकेही श्राद्ध होम आदिक कर्मोंको करना चाहिये ॥

प्रश्न–भगवत्प्रसादकोही नित्य सेवन करना, ऐसे कहीं वेदमें कहा है ?

उत्तर–महोपनिषदमें वेदकी श्रुति ऐसे कहती है कि–

विष्णुनाश्नातमश्नंति विष्णुना घ्रातं जिघ्रंति विष्णुना पीतं पिबंति विष्णुना रसितं रसयंति तस्माद्विद्वांसो विष्णूपभुक्तं भक्षयेयुः ॥ १५ ॥

अर्थ–वैष्णव जो हैं वे विष्णुने भोजन किया हुआ अन्नका भोजन करते हैं, और विष्णुने सूंघा हुआ पुष्पादिकको सूंघते हैं, और विष्णुने पान किया हुआ दुग्धादिकोंका पान करते हैं, और विष्णुने रस लिया हुआ आम्रादिक फलोंका रस लेते हैं, इसकारण विद्वान लोग विष्णुके प्रसादकाही भक्षण करते हैं।।

प्रश्न–यह विष्णुकाही प्रसाद है ऐसा किस प्रकारसे जानाजाय ?

उत्तर–विष्णुप्रसादका चिह्न और माहात्म्य श्रीपंकजपुराणमें कहा है कि–

नैवेद्यमन्नं तुलसीविमिश्रं विशेषतः पादजलेन सिक्तम् ।
योऽश्नाति नित्यं पुरतो मुरारेः प्राप्नोति यज्ञायुतकोटिपुण्यम्॥

अर्थ–तुलसी करके मिश्रित विशेषकरक चरणोदकसे सींचा हुआ ऐसा चिह्नवाला जो विष्णुका नैवेद्य है उसकोभी अधिकारी पुरुष नित्य भगवतके सन्मुख भक्षण करता है, सो पुरुष दशहजार करोड यज्ञोंके फलको प्राप्त होता है।

प्रश्न–अवैष्णके हाथसे हरिप्रसाद और चरणोदक लेना कि नहीं लेना ?

उत्तर–नहीं लेना । ऐसे हारीतस्मृतिधर्मशास्त्रने वर्जा है–

अवैष्णवस्य हस्तान्नं दिव्यदेशादुपागतम् ।
हरेः प्रसादं तीर्थं च प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ १७ ॥

अर्थ–अवैष्णवके हाथका जो अन्न है, वह अन्न अयोध्या, मथुरा, श्रीरंग जगन्नाथ आदिक दिव्य देशोंसे आया हो तोभी उस हरिके प्रसादको और चरणोदकको प्रयत्न करके वर्जनकरे. अर्थात् कोई अवैष्णव आकर बोले कि ले, जगन्नाथ और श्रीरंग आदिकोंका प्रसाद।तोभी उसको उत्तम देशका जानकर लेना नहीं । हे शिष्य ! हरिप्रसाद वैष्णवोंकोही देना और वैष्णवोंसेही लेना, अवैष्णवको देना नहीं और उससे लेनाभी नहीं, ऐसा शास्त्रीय दृढ सिद्धांत है।

इस भगवत् प्रसादका माहात्म्य आदिपुराणमें ऐसा लिखा है कि–

भगवत्प्रसादमाहात्म्य ।

एकादशीसहस्राणि द्वादश्याश्च शतान्यपि ।
कणिकायाः प्रसादस्य कलां नार्हंति षोडशीम् ॥१८॥
काहमेकादशी विप्र वराकी फलपुण्यदा ।
क्क प्रसादान्नमीशस्य पावनं च मधुद्विषः ॥ १९ ॥
क्वेमा यज्ञक्रिया विप्र क्षुद्रस्वर्गफलप्रदाः ।
नैवेद्यं क्क हरेः पुण्यं मद्दिने व्रतकोटिदम् ॥ २० ॥
बाहुमुत्क्षिप्य वक्ष्येऽहं विधे शतक्रतो शृणु ।
हरिप्रसादसदृशं पावनं नास्ति नास्त्यहो ॥ २१ ॥

अर्थ–एकादशीके एक हजार व्रत और द्वादशीके सौ व्रत जो हैं वे कणिका मात्र भगवतप्रसादकी एक कलाकी बराबरभी नहीं हो सकते हैं तो षोडश कलाकी बरोबर तो कहाँसे हो सकेंगे ? ॥ फिर नारद पंचरात्रग्रंथमें नारद मुनिके प्रति एकादशीने ऐसा कहा है कि, हे नारद ! तुच्छ फलको देनेवाली मैं एकादशी कहां, और जगत्को पावन करनेवाला भगवत्प्रसाद कहां, मेरी और भगवत्प्रसादकी तुल्यता नहीं हो सक्ती है । हे विप्र ! तुच्छ स्वर्ग फलको देनेवाली यह यज्ञक्रिया कहां और मेरे एकादशीके दिन कोटि व्रतोंको देनेवाला और पवित्र ऐसा हरिका नैवेद्य कहां ? हे विधे ! हे इंद्र ! मैं एकादशी, बाहु ऊंची करके कहती हूं, अहो हरिके प्रसाद सरीखा पावन दूसरा कुछभी नहीं है नहीं है । हे शिष्य ! हरिप्रसादका महिमा इस प्रकारसे एकादशीने कही है ।

प्रश्न--हे वैष्णवसिद्धांतप्रकाशक गुरो ! भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य यह चार प्रकारका जो नैवेद्य है, सो किस ठिकानेपर भगवतके अर्पण करना चाहिये,क्योंकि भगवान् तो वैकुंठमें रहते हैं, वहां देवभी नहीं जो सकते है । हम कैसे जावें और भोग लगाकर कैसे प्रसाद पावें ?

उत्तर–हे शिष्य ! इस भारतखंडमें अर्चावतारमें भगवान् रहते हैं; उनकेही चतुर्विध नैवेद्यका भोग लगाकर प्रसाद पाना चाहिये, सो अर्चाप्रकार मैं तुम्हारे लिये कहता हूं तू श्रवण कर॥

अर्चावतार।

जंबुद्विपे महापुण्ये वर्षे वै भारते शुभे।
अर्चायां सन्निधिर्विष्णोर्नेतरेषु कदाचन ॥ १ ॥
तस्माद्वै भारते वर्षे मुनिभिस्त्रिदशैरपि।
सेव्यते ऋषिभिर्देवि तपोयज्ञक्रियादिभिः ॥ १ ॥

अर्थ–पद्मपुराणमें ऐसा कहा है कि, इस पृथ्वीमें लक्ष योजन विस्तार-वाला जंबुद्वीप है उस जंबुद्वीपमें नव खंड हैं, उन नव खंडोंके मध्यमें महा-पवित्र, कल्याणकारी और शुभाशुभ कर्मोंका क्षेत्ररूप ऐसा जो भारतखंड है उस भारतखंडमें अर्चावतारमें विष्णु निकट रहते हैं, कोई कालमेंभी दूसरे ठिकाने नहीं मिलते हैं। इस भारतखंडमें सर्वदा मूर्तिपूजनमेंही सर्व जन हरिको प्राप्त होते हैं, विष्णुभगवान्के मिलनेका दूसरा ठिकाना नहीं. इस कारण इस भार-तखंडमें मुनि, देव और ऋषिलोग तप, यज्ञ और क्रिया आदिकोंसे अर्चा मूर्तिमेंही हरिको सेवाकरते हैं ॥

प्रश्न–इस भारतखंडमें कौन कौनसे स्थानोंमें ऋषि, मुनि और देव हरिके अर्चावतारका सेवन करते हैं ?

उत्तर–पद्मपुराणमें स्वयं व्यक्त अर्चावतारोंके धाम इस प्रकारसे कहे हैं कि–

स्वयंव्यक्त दिव्य देश।

ऐन्द्रद्युम्ने तथा कूर्मे सिंहाद्रौ बदरीवने।
कृतशौचे प्रयागे च पौण्ड्रके चैव दण्डके ॥ ३ ॥
वैकुंठाद्रौ पदे चैव श्वेताद्रौ करवीरके।
कांच्यामनन्तशयने श्रीरंगे गौरवाचले ॥ ४ ॥
नारायणाचले सौम्ये वाराहे वामनाश्रमे।
एवमाद्याः स्वयं व्यक्ताः सर्वकामफलप्रदाः ॥ ५ ॥

अर्थ–ऐंद्रद्युम्न, (जगन्नाथ) कूर्म, सिंहाद्रि, बदरीवन, कृतशौच, प्रयाग, पौंड्रक, दंडक, वैकुंठाद्रि, (वेंकटाद्रि), श्वेताद्रि, करवीरक, कांची, अनंत-शयन, श्रीरंग, गौरवाचल, नारायणाचल (मेलकोटा), वाराह, वामनाश्रम

इनको आदि लेकर जो स्वयंव्यक्त अर्चावतार हैं, वे सर्व प्रकारके इच्छित फलके देनेवाले हैं ॥ ५ ॥

प्रश्न-हे भवरोगवैद्य गुरो ! अर्चावतार कितने प्रकारके हैं ?

उत्तर-रामानंदीय वैष्णवमताब्जभास्करग्रंथमें श्रीरामानंद स्वामीने सुरसुरानन्दके प्रति अर्चावतार चतुर्विध कहा है कि-

प्रशस्तदेशादिषु वर्तमानश्चतुर्विधः श्रीयुत एव सर्वदा ।
स च स्वयंव्यक्त इति प्रभेदतो दैवश्च सैद्धश्च स मानुषश्च ॥६॥

अर्थ-स्वयंव्यक्त १ दैव २ सैद्ध ३ मानुष ४ इस भेदसे सो अर्चावतार चार प्रकारका जानने योग्य है, वे अर्चावतार श्रीरंग अयोध्या वृंदावन आदिक उत्तम देशोंमें वर्तमान है और सर्वदा लक्ष्मी करकेही युक्त है ॥ ६ ॥

प्रश्न-हे महाराज गुरु ! त्यागी वैष्णव तो अयोध्या वृन्दावनादिक उत्तम देशोंमें विचरते हुये वहां अर्चावतारोंके प्रसाद और तीर्थको ले सकते हैं परंतु गृहस्थ वैष्णव नित्य प्रति अपने गृहजंजालको छोडकर कैसे जा सकें ? जो कोई वैष्णव उन अयोध्या आदिक स्थानोंमें जाकर निवास करने समर्थ नहीं है, उनको कैसा करना चाहिये ?

उत्तर-उनको अपने घरमेंही अर्चावतारका स्थापन करना चाहिये, ऐसा पद्मपुराणमें कहा है-

गृहार्चा।

अथवा स्थापनं विष्णोः स्वगृहे तद्विशिष्यते ।
शिलया दारुलोहाद्यैः कृत्वा प्रतिकृतिं हरेः ॥ ७ ॥

अर्थ-अथवा उन अयोध्या, वृन्दावनादि देशोंमें जा नहीं सके तो अपने गृहमेंही विष्णुप्रतिमाका स्थापन करना श्रेष्ठ है । वह विष्णुका अर्चावतार पाषाण, काष्ठ, सुवर्ण, मृत्तिका, रत्न, ताम्र, रजत (चांदी) इन पाषाणादि सप्त पदार्थोंमें जिसकी प्रतिमा करनेमें अपनी प्रीति होय उस करके हरिकी प्रतिमा बनवाकर अपने घरमें स्थापन करे, और जो पुरुष विष्णुको अपने मनमें ध्यानयोगसे लासकता है, उस पुरुषको अष्टमी मनोमयी प्रतिमाभी हृदयमें स्थापना करनेकी कही है, ऐसे अष्ट प्रकारकी प्रतिमा कही हैं ॥ ७ ॥

प्रश्न-इन सप्त प्रकारकी विष्णुप्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा किसके द्वारा करानी चाहिये ?

उत्तर–वसिष्ठस्मृतिमें प्रतिष्ठा करनेवालोंका लक्षण ऐसा लिखा है कि।

प्रतिष्ठाधिकारी।

जितेन्द्रियः शुभाचारः सत्त्वस्थः शुभलक्षणः।
श्रुतिस्मृतिपुराणार्थविद्वान्दंभविवर्जितः ॥ ८ ॥
अर्थपञ्चकतत्त्वज्ञो ह्यग्निहोत्रयुतश्चिरम्।
द्वयनिष्ठो द्वयार्थज्ञः प्रतिष्ठां कर्तुमर्हति ॥ ९ ॥
चक्रादिचिह्नहीनेन स्थापिते यदि विग्रहे।
न सान्निध्यं हरिर्याति क्रियाकोटिशतैरपि ॥ १० ॥

अर्थ--इंद्रियोंको जीतनेवाला, शुभ आचारवाला सत्वगुणी शुभ लक्षणवाला अर्थात् अंध, बधिर, पंगु, कुष्ठी, अंगहीन न होय, तथा श्रुति स्मृति और पुराणोंके अर्थको जाननेवाला हो, दंभरहित हो अर्थपंचकके तत्वको जानता हो अग्निहोत्री हो द्वयमंत्रमें निष्ठावाला हो मंत्रद्वयके अर्थको जानता हो ऐसे लक्षणोंवाला वैष्णव द्विजही विष्णुकी प्रतिष्ठा करने योग्य है। शंख चक्रादि पंच संस्कारोंके चिह्नों करके रहित पुरुषसे स्थापन की हुई जो विष्णुकी प्रतिमा है, उस प्रतिमामें सौ करोड क्रियाओंकरकेभी हरि पास नहीं आते हैं। और अवैष्णवने स्थापन की हुई प्रतिमाको जो पुरुष वंदन करता है वह मूढ पुरुष नरकमें जाता है। इसकारण अर्थपंचकको जाननेवाला और पंचसंस्कारोंसे संस्कार किया हुआ तथा आकारत्रयसंपन्न, महाभागवतको प्रतिष्ठा कर्ममें वरना चाहिये. दूसरेको नहीं। जिस पुरुषको प्रतिष्ठा आदिकमें खर्च करनेको धन न मिले वह पुरुष शालग्राम शिलामें हरिका पूजन करे, ऐसा हारीतस्मृतिमें कहा है कि--

शालग्रामशिलायां तु पूजनं परमात्मनः।
कोटिकोटिगुणाधिक्यं भवेदत्र न संशयः ॥ ११ ॥
न जपो नाधिवासश्च न च संस्थापनक्रिया।
शालग्रामार्चने विष्णुस्तस्मिन्सन्निहितः सदा ॥ १२ ॥

अर्थ--शालग्राम शिलामें जो पुरुष परमात्माका पूजन करता है, उसको कोटि कोटि गुणा अधिक फल होता है, इसमें संशय नहीं। उस शालग्रा-

मके पूजनमें जप नहीं, अधिवास नहीं और स्थापन करनेकी क्रिया भी नहीं, किंतु उस शालग्राम शिलार्चामें विष्णु सदा पासही रहते हैं, इसलिये शालग्राम शिलामें आवाहन और विसर्जनभी न करे ॥

भगवदाराधनविधि।

आवाहनासनाभ्यां तु पाद्यार्घ्याचमनैस्तथा।
स्नानवस्त्रोपवीतैश्च गन्धपुष्पसुधूपकैः ॥ १३ ॥
दीपनैवेद्यतांबूलप्रदक्षिणविसर्जनैः।
षोडशार्चाप्रकारैस्तमेतैरर्चेत्सदा सुधीः ॥ १४ ॥

अर्थ–आवाहन १ आसन २ पाद्य ३ अर्घ्य ४ आचमन ५ स्नान ६ वस्त्र ७ उपवीत ८ गंध ९ पुष्प १० धूप ११ दीप १२ नैवेद्य १३ तांबूल १४ प्रदाक्षिणा १५ विसर्जन १६ इतने षोडश उपचारप्रकार हैं; इन उपचारोंसे मुमुक्षु जन सदा अर्चावतारको वेदके पुरुषसूक्तादि वैदिक मंत्रों अथवा तांत्रिक मंत्रों करके आवाहनसे आदि लेकर विसर्जनपर्यंत षोडश उपचारों करके पूजा करनी चाहिये ॥१३॥१४॥ हे शिष्य ! भगवत पूजनके तीन उपचार हैं। एक पंचोपचार, दूसरा षोडशोपचार, और तीसरा राजोपचार. इन तीनों उपचारोंमें मंत्रसे रहित और क्रियासे रहित पूजा नहीं करनी। पूजा करके पीछे भगवतके सन्मुख खडा होकर अपने मनोवांछितकी प्रार्थना करे कि–

जगत्पते श्रीश जगन्निवास प्रभो जगत्कारण रामचन्द्र।
नमो नमः कारुणिकाय ते सदा पदाब्जयुग्मे तव भक्तिरस्तु मे ॥
मनोमिलिंदस्तव पादपंकजे रमार्चिते संरमतां भवे भवे।
यशः श्रुतौ ते मम कर्णयुग्मं त्वद्भक्तसङ्गः सततं ममास्तु १६॥

अर्थ–हे रामचंद्र, हे जगत्पते, हे लक्ष्मीपते, हे जगन्निवास, हे प्रभो, हे जगत्कारण ! अत्यंत करुणायुक्त। आपके अर्थ मेरा वारंवार नमस्कार है. और तुम्हारे दोनों चरणकमलमें मेरी भक्ति निरंतर होवे और लक्ष्मीकरके पूजे हुये जो आपके चरणकमल हैं, उन चरणोंमें मेरा मन रूपी भ्रमर जन्म जन्ममें रमण करे और तुम्हारे यशके सुननेमें निरंतर मेरे दोनों कर्ण रहें

और तुम्हारे भक्तोंका संग मेरे निरंतर होवे इस प्रकार प्रार्थना करे पीछे साष्टांग प्रणाम करे ॥ १५ ॥ १६ ॥

साष्टाङ्गप्रणाम ।

उरःशिरोदृष्टिमनोवचोंघ्रिद्वयप्रराजत्करयुग्मजानुभिः ।
अङ्गैः क्षितौ तं प्रणमेदथाष्टभिर्दीर्घं तथैतैः कृतधीश्च
दण्डवत् ॥ १७ ॥ बाहू च पादौ च प्रसार्य साञ्जलिः
स्तवैः स्तुवन् दीर्घमथो नमेत तम् । शतैः क्रतूनां तु
सुदुर्लभां गतिं स चाप्नुयाद्विष्णुपरायणो जनः ॥ १८ ॥

अर्थ–जैसे काष्ठका दंड पृथ्वीमें लंबा पडता है, वैसे भगवतमें जिसने बुद्धि की है ऐसा वैष्णव उर, शिर, दृष्टि, मन, वचन, अंघ्रिद्वय, करद्वय, जानुद्वय इन अष्टांगों करके दंडकी माफक दीर्घ प्रणामको करे. वह विष्णु-परायण जन अपने दोनों हस्त जोडकर स्तुति करता हुआ अपने दोनों हस्त और पाद पसारके भगवतको दीर्घ प्रणाम करे. उस प्रणामको करनेवाला विष्णुजन सैकडों यज्ञ करकेभी जो गति नहीं मिल सकती है, उस गतिको एक प्रणाम करके प्राप्त होता है । और श्रीवैष्णव संप्रदायमें भगवतको एकवारही साष्टांग प्रणाम करनेका कहा है । सो इस मन्त्र करके करना चाहिये कि–

प्रणाममन्त्र ।

अपराधसहस्रभाजनं पतितं भीमभवार्णवोदरे ।
अगतिं शरणागतं हरे कृपया केवलमात्मसात्कुरु १९॥

इति श्रीमद्रामानुजाचार्यचरणयुगलाश्रितेन श्रीमत्पंडितगोपालदासेन विरचिते श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकरे पुण्यकर्मभगवत्समर्पणपूर्वकार्चावतारप्रकारकथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथाष्टादशोऽध्यायः ।

वैष्णवभेद ।

अथोच्यते वैष्णवभेद ईप्सितो ज्ञातुं च ते विष्णुपरायणैर्जनैः । सुवेदनीयो बहुधा महामते सुनिश्चितो विज्ञवरैर्महर्षिभिः ॥ १ ॥ प्राप्तुं परां सिद्धिमकिंचनो जनो द्विजादिरिच्छन् शरणं हरिं व्रजेत् । परं दयालुं स्वगुणानपेक्षितक्रियाकलापादिकजातिभेदम् ॥ २ ॥

अर्थ–अथ (अर्चावतार कथन करके पीछे !) विष्णुपरायण जनों करके जाननेको इच्छित और तेरेकोभी अत्यंत जानने योग्य ऐसा जो वैष्णवोंका भेद है सो मैं तेरेको कहता हूं सो तू सुन । वैष्णवोंका जो भेद विज्ञवर महर्षियोंने बहुत प्रकार करके अच्छी तरहसे निश्चय किया हुआ है ॥ १ ॥ अकिंचन अर्थात् वैराग्यवान् विरक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदिक जो जन हैं, सो मोक्षरूप सिद्धिके प्राप्त होनेकी इच्छाको करता हुआ परम दयालु श्रीहरिके शरणको प्राप्त होवे. वह भगवान् हरि अपने वात्सल्यादि गुणोंकरके शरणागतिमें क्रिया कलापादिक जातिके भेदको नहीं इच्छाकरते हैं, अर्थात् कोईभी जातिवाला शरण आवे उसके शरणको अंगीकार करते हैं, उसकी ऊंच नीच क्रिया, ऊंच नीच जाति, कुछभी नहीं देखते हैं ॥ २ ॥ और अन्य ग्रंथोंमेंभी कहा है कि–

प्राप्तुमिच्छन्परां सिद्धिं जनः सर्वोऽप्यकिंचनः ।
श्रद्धया परया युक्तो हरिं शरणमाश्रयेत् ॥ ३ ॥
न जातिभेदं न कुलं न लिंगं न गुणक्रियाः ।
न देशकालौ नावस्थां योगो ह्ययमपेक्षते ॥ ४ ॥
ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्राः स्त्रियश्चांतरजास्तथा ।
सर्व एव प्रपद्येरन् सर्वधातारमच्युतम् ॥ ५ ॥

अर्थ–हर एक जातिवाला विरक्त जन मोक्षरूप सिद्धिको प्राप्त होनेको

इच्छता हुआ परम श्रद्धा करके श्रीहरिके शरणको आश्रय करे। यह शरणागतियोग ऊंच नीच कुलके भेदकोभी नहीं इच्छा करता है. तथा ब्रह्मचारी गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी आदि आश्रमादिक धर्म, गुण और क्रियाआदिकाभी नहीं चाहता है और उत्तम देश और काल, बाल्य और तारुण्य अवस्थाओंकाभी इच्छा न करता है किंतु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री धोबी, नट, कुंभार, कोलि, भील इत्यादिक सबही भगवतके शरणको प्राप्त होते हैं. इसलिये शरणागतिमें देव, मनुष्य, राक्षस, पशु, पक्षी, ऊंच, नीच सब कोईका अधिकार है ॥ ५ ॥

दो प्रकारके चेतन।

महर्षिवर्यैः स तु बद्धमुक्तप्रभेदतोऽमन्यत चेतनो द्विधा।
बद्धोपि तत्रास्ति मुमुक्षवश्च बुभुक्षवश्चेति प्रभेदतो द्विधा॥६॥
अनादिकर्मोत्करजातनानादेहाभिमानी सुमतोथ बद्धः।
स चाच्युताहेतुकृपाकटाक्षतोऽविद्याक्रियावासरुचिप्रवृत्तेः॥७॥
विमोक्तुमिच्छुस्तु मुमुक्षुरुच्यते संबंधतः प्राज्ञसुसंमतोऽयम्।
तथैव सांसारिकभोगमिच्छुर्बुभुक्षुरन्यः खलु कथ्यते बुधैः॥८॥

अर्थ–इस जगतमें दो प्रकारके चेतन हैं, एक तो बद्ध चेतन और दूसरा मुक्त चेतन है ऐसे सनकादिक, नारद, अगस्त्य, वसिष्ठ आदिक महर्षि श्रेष्ठोंने चेतन दो प्रकारके माने हैं। वहां बद्ध और मुक्त इन दो चेतनोंके मध्यमें बद्ध चेतन भी मुमुक्षु और बुभुक्षु ऐसे भेदसे दो प्रकारका है।

बद्ध चेतनका लक्षण।

इस जीवने किये हुये अनादि कालके कर्मोंका समूह करके उत्पन्न हुये जो जरायुज १ अंडज २ स्वेदज ३ उद्भिज्ज ४ ये चार प्रकारके शरीर हैं, उन चार प्रकारके शरीरोंमें अहंकार और ममता करके युक्त जो चेतन है, सो बद्ध चेतन है, ऐसा ज्ञानी पुरुषोंने सुंदर प्रकारसे माना है। इस बद्ध चेतनभी दो भेद हैं। एक मुमुक्षु और दूसरा बुभुक्षु। इन दोनोंके लक्षण कहता हूँ सुन–

मुमुक्षु लक्षण।

वह बद्ध चेतन जब भगवत्की निर्हेतुक कृपाकटाक्षकरके अविद्या कर्म वासना रुचि प्रवृत्तिके संबंधसे मुक्त होनेकी इच्छा करता है तब मुमुक्षु कहा जाता है।

बुभुक्षुलक्षण।

संसारके विषयोंका भोग करनेकी इच्छावाला जो बद्ध चेतन है, उसको बुभुक्षु नाम करके बुधजनोंने कहा है।

मुमुक्षुभी तीन प्रकारके हैं। एक तो मुमुक्षु १, दूसरा उपासक मुमुक्षु २, तीसरा शुद्ध भक्त मुमुक्षु ३। वहां फलकी इच्छासे रहित तथा कर्तापनेके अभिमानसे रहित होकर वेदविहित कर्मोंको करके ईश्वरमें अर्पण करता हुआ तैलधाराकी तरह स्मृतिका साक्षात्कारपर्यंत जो भक्तिमें निष्ठावाला है, सो भक्तमुमुक्षु है १। जो ध्यान पूजन पुरश्चरणादिमें निष्ठावाला है तथा देहके आरंभ करनेवाले कर्मोंकी निवृत्ति करनेवाले साधनोंको करता है, तथा आत्माके अनुभवके प्रतिबंधकोंकी निवृत्तिका साधन करता है, उसको उपासक मुमुक्षु कहते हैं २। भगवत्के यशका श्रवण कीर्तन आदिकोंमें जिनकी निरंतर स्थिति है, उनको शुद्धभक्त मुमुक्षु कहते हैं ३। और जिस मुमुक्षुके भेद यहां कथन नहीं किये हैं, वे इनमेंही अंतर्भूत हैं, इस रीतिसे तीन प्रकारके मुमुक्षु हैं॥ और प्रपन्न इन तीनोंसे भिन्न है। उसका लक्षण कहते हैं सुनो–

प्रपन्नलक्षण।

विहाय चान्यत्परमं दयालुं प्राप्यं समर्थं निरपायमीश्वरम्।
उपायमेतेऽध्यवसीय सुस्थिता ज्ञेयाः प्रपन्नाः सततं हरिप्रियाः ९

प्रपन्नश्चापि दृप्तः स तथा चार्त्त इति द्विधा।
शरीरस्थितिपर्यन्तमाद्योऽत्रैव यथोचितम्॥ १०॥
प्राप्तदुःखादिभुंजानः शरीरान्तेऽवसीय च।
माहाबोधोऽतिविश्वासो मोक्षसिद्धिमवस्थितः॥ ११॥
अथान्त्योऽसहमानस्तत्क्षणमेव तु संसृतिम्।
तथैव भगवत्प्राप्तौ सत्वरस्वान्त उच्यते॥ १२॥

अर्थ–जो मोक्षके दूसरे उपायोंका परित्याग करके परम दयालु परम समर्थ परम प्राप्य ईश्वरकोही अखंड उपायरूपसे निश्चय करके निश्चिंत रहते हैं, उनको प्रपन्न जानना। वे प्रपन्न (सततं हरिप्रियाः) श्रीहरिको निरंतर प्यारे हैं, अथवा उन प्रपन्नोंको निरंतर हरि बहुत प्यारे हैं। वे प्रपन्न दो प्रकारके हैं, एक तो दृप्त प्रपन्न है. और दूसरा आर्त्त प्रपन्न है, उनमें प्रथम जो दृप्तप्रपन्न अपने शरी-

रके स्थितिपर्यंत अर्थात् जहांतक शरीर रहे तहांतक यथोचित अपने प्रारब्ध करके प्राप्त हुये दुःख आदिकोंको भोगताहुआ रहता है और जब उसके शरीरका नाश होता है तब मोक्षकी सिद्धिका निश्चय करके महाज्ञानी और महाविश्वासी होकर स्थितिको करता है, उसको दृप्त प्रपन्न कहते हैं। दूसरा जो आर्त प्रपन्न–जन्ममरण और जन्म मरणके दुःखोंको क्षणमात्रभी सहन नहीं करता है और भगवतकी प्राप्तिमें जिसका चित्त बहुत वेगवाला है, अर्थात् भगवतके मिलनेवास्ते बहुत उतावल करता है और कहता है कि, भगवन् ! तुम्हारा अनुभवमें विघ्नरूप इस मेरे शरीरका आप जलदीसे नाश करो, ऐसी प्रार्थना करता है, उसको आर्त्त प्रपन्न कहते हैं ॥ ९–१२ ॥

प्रश्न–हे नित्यानित्यबोधकगुरो ! बद्धचेतनका प्रकार आपके मुखसे मैंने अच्छी तरहसे सुनलिया । अब मैं मुक्त चेतनके भेद सुननेकी इच्छा करता हूं सो आप परम अनुग्रह करके कथन करो ।

उत्तर–मुक्त चेतनभी दो प्रकारके हैं–

मुक्तलक्षण ।

नित्यकादाचित्कभेदान्मुक्तद्वैविध्यमुच्यते ।
नित्याः कदाचित्तत्रापि सिद्धाः सुपुरुषा वराः ॥१३॥
गर्भजन्मादिदुःखं येऽननुभूय स्थिताः सदा ।
सीतारामप्रियाः शश्वत्तेऽनन्तगरुडादयः ॥ १४ ॥

अर्थ–एक तो नित्यमुक्त हैं, और दूसरे कादाचित्क मुक्त हैं । इन नित्य और कादाचित्क मुक्तोंके मध्यमें जो कदाचित्भी गर्भ जन्मादिकोंके दुःखका अनुभव नहीं करके सिद्ध (साधनकी अपेक्षासे रहित) हुए स्थितिको करते हैं, वे नित्यमुक्त कहे जाते हैं, अर्थात् कोई कालमेंभी गर्भ, जन्म मरण आदिकोंके दुःखोंको नहीं जानते हैं, और निवृत्तिके साधनोंकी इच्छासे रहित हुए जो सदा रहते हैं वे नित्यमुक्त कहे जाते हैं. वे नित्यमुक्त (शश्वत्सीतारामप्रियाः) व निरंतर सीता और रामको अत्यंत प्यारे हैं । (अत एव वराः) सीतारामके प्रिय होनेसे वे नित्यमुक्त अत्यंत श्रेष्ठ हैं. वे अनंत, गरुड, विष्वक्सेन आदिक हजारों हैं, उनकी संख्या शारदाभी नहीं कर सकती है ॥ १३ ॥ १४ ॥ वे नित्यमुक्तभी दो प्रकारके हैं–

दो प्रकारके नित्यमुक्त ।

परिच्छदाः परिजना नित्यमुक्ता अपि द्विधा ।
किरीटाद्या अनन्ताद्याः क्रमात्ते च प्रकीर्तिताः॥ १५॥

अर्थ—एक तो परिच्छद, और दूसरे परिजन इस रीतिसे नित्यमुक्तभी दो प्रकारके हैं. वे अनुक्रमसे किरीट, मुकुट, कुंडल आदिक परिच्छद कहे जाते हैं, और अनंत, गरुड आदिक परिजन कहे जाते हैं ॥ १५ ॥ कादाचित्क मुक्तभी दो प्रकारके हैं—

दोप्रकारके कादाचित्कमुक्त ।

भागवताः केवलाश्च कादाचित्का अपि द्विधा ।
तत्र भागवता बोध्या ये तु ते भगवत्पराः ॥ १६ ॥

अर्थ—भागवत और केवल इस प्रकार कादाचित्क मुक्तभी दो प्रकारके हैं। उनमें भागवतकादाचित्क मुक्त, और केवलकादाचित्कमुक्त इन दोनोंके मध्यमें जो श्रीराम भगवान्में मुख्य निष्ठावाले हैं वे भागवत कहेजाते हैं॥१६॥

प्रश्न—वे भागवत कितने प्रकारके हैं ? ।

उत्तर—भागवतकादाचित्कमुक्तभी द्विविध हैं ।

दोप्रकारके भागवत ।

भगवद्भोग्यभूत्यादिसाक्षात्कारसुखाश्रयाः ।
श्रीराममानसा नित्यं तदनुध्यानतत्पराः ॥ १७ ॥

अर्थ—श्रीरामने भोगी हुई जो भूत्यादिक नाना प्रकारकी संपत्ति हैं, उन संपत्तियोंके साक्षात्कार करके जो सुख उत्पन्न हुए हैं, उन सुखोंके आश्रयरूप हैं. अर्थात् श्रीरामने जो पदार्थ भोग किये हैं उन नाना प्रकारके पदार्थोंके भोग करके वे भागवत अत्यन्त सुखके भंडाररूप हैं और श्रीराममेंही जिनका चित्त है और नित्य श्रीरामके ध्यानमें क्षण क्षणमें अत्यन्त श्रद्धावाले हैं ऐसा प्रथम प्रकारके भागवतोंका लक्षण कहा है ॥१७॥ अत्र दूसरे प्रकारके भागवतोंका लक्षण कहते हैं—

केचिद्गुणानुसन्धानपराः कैंकर्यतत्पराः ।
इत्थं महर्षिभिः प्रोक्ता द्विविधा भगवत्पराः ॥ १८ ॥

अर्थ–और दूसरे कितनेक भागवत भगवत्के गुणोंका मनन करते हुए भगवत्के कैंकर्यमें निरंतर तत्पर रहते हैं ऐसे पूर्वोक्त प्रकारसे महर्षियोंने दो प्रकारके भागवत कहे हैं ॥ १८ ॥ केवलभी दो प्रकारके हैं–

दोप्रकारके केवल ।

द्विविधाः केवला बोध्या दुःखभावैकतत्पराः ।
आत्मानुभूतिः परमा इति चोक्ता महर्षिभिः ॥ १९ ॥

अर्थ–एक तो दुःखकी भावनामें मुख्य तत्पर हैं और दूसरे परमात्माका अनुभवमें परायण हैं, इस प्रकार महर्षियोंने दो प्रकारके केवल कादाचित्क-मुक्त कथन किये हैं ॥१९॥ हे शिष्य ! एक चेतनके दो प्रकार इकट्ठे करके ये आगे लिखे हैं सो देखो ।

एक चेतनके दो प्रकार ।

बद्धचेतन १	मुक्तचेतन २	
मुमुक्षुः १ बुभुक्षुः २	नित्यमुक्तः १	कादाचित्कमुक्तः २
भक्तः १	परिच्छदः १	भागवतः १
उपासकः २	परिजनः २	केवलः २
शुद्धभक्तः ३		
प्रपन्नः ४		
दृप्तप्रपन्नः ५		
आर्त्तप्रपन्नः ६		

हे शिष्य ! इस प्रकार अष्टादश प्रकारके वैष्णवोंको मैंने तेरे प्रति कथन कर अब वैष्णवोंका लक्षण कहता हूँ सुनो–

वैष्णवलक्षण ।

समुच्यते संप्रति चारुलक्षणं महात्मनां सद्गुणवैष्णवानाम् । विरंचिशंभुश्रितरामचंद्रपदारविंदस्थितभृङ्गचेतसाम् ॥ १ ॥ धृतोर्ध्वपुंड्रस्तुलसीसमुद्भवां दधच्च मालाममलो हि कंठतः । तज्जन्मकर्माणि हरेरुदाहरेद्गृह्णंश्च नामानि शुभप्रदानि ॥ २ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त वैष्णव—ब्रह्मा और शिव करके सेवन किये हुये श्रीरामचंद्रजीके चरणारविंदमें भौरारूपी मनको रखनेवाले और अगने द्वादश अंगोंमें द्वादश ऊर्ध्व पुंड्र धारण कर रहे हैं तथा कंठमें तुलसीकी माला धारण करते हैं भगवत्के अवतार और उन अवतारोंके चरितोंकी कथाका निशिदिन गान करते हैं तथा राम कृष्ण नरसिंह नारायण इत्यादि नामोंका उच्चारण अहर्निश करते हैं ॥ १ ॥ २ ॥ ...

रथांगपाणेः श्रृणुयान्निरंतरं कथां च गायेत्सुयशोङ्कितां मुहुः ।
रूपं तदीयं तु चराचरात्मकं पश्यन्सतां संगमुदारधीश्चरेत् ॥ ३॥

अर्थ—और चक्रधारी भगवान्के अमृतरूपी सुंदरयशसे भरी हुई कथाको वारंवार श्रवण करे और जो पढा हुआ समर्थ होय तो अपने मुखसे आप निरंतर गान करे और स्थावर जंगमरूप चराचरमें भगवत्के रूपको देख किसीकाभी द्रोह नहीं करे, तथा उदार बुद्धिवाला वैष्णव सदा संतोंका संग करे, क्योंकि जैसे लाख अग्निके संगसेही नरम रहता है, वैसे मनरूपी लाखभी सत्संगरूपअग्निसेही कोमलधर्मगामी बना रहता है और जैसे कूपमेंसे एक घडा जल निकालकर पृथ्वीमें डाले तो वह जल समुद्रमें नहीं जा सक्ता है और वही जल गंगा यमुना रेवा आदिक समुद्रमें मिली हुई नदीमें डालनेसे शीघ्रही समुद्रको प्राप्त हो जाता है, तैसे गंगा यमुना रेवारूप संतोंसे सत्संग करनेवाला तत्काल सहजही भगवतको प्राप्त होता है सो ज्ञानगीतामें कहा है कि—

सत्संगेन परं प्राप्य दुस्तरं तरतेऽचिरात् ।
तस्मादतिप्रयत्नेन सत्संगं सततं चरेत् ॥ ४ ॥

अर्थ—ज्ञानी संतोंके समागम करके परमात्माको प्राप्त होकर तरनेको अति कठिन संसारको जलदीसे तरकर पार हो जाता है। इसलिये सदाकाल प्रयत्न करके सत्संग करे ॥ ४ ॥

गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा ।
पापं तापं च दैन्यं च हरेत्साधुसमागमः ॥५॥

अर्थ—गंगामें स्नान करनेसे गंगा पापोंको मिटाती है, चंद्रमा अपनी शीतल किरणोंसे बाहरके तापको मिटाता है. तथा कल्पवृक्ष मनाचिंतित सुख भोग देकर दीनपनेको मिटाता है. और साधुका समागम तो सब पाप तथा

अंतर बाहिरके सर्व पाप तथा दीनता इन तीनोंको मिटाता है. इसलिये सत्संग गंगा शशी और कल्पवृक्ष इन तीनोंसे अति श्रेष्ठ है. इस वास्ते जहांतक देह रहे तहांतक सत्संग करे ॥ ५ ॥

चक्रादिपंचायुधचिह्निताङ्गः समीक्ष्य हृष्टश्च हरिप्रियानसौ॥ तथाविधान् भक्तिपरः समर्चेत् सुवैष्णवान् जन्मफलादिकं स्तुवन् ॥ ६ ॥

अर्थ–और चक्रादिक पंच आयुधोंकरके चिह्नकिया हुआ अंगवाला भक्तिमान् यह वैष्णव हर्षायिमान होकर हरिके प्यारे उन वैष्णवोंका सुंदर प्रकारसे पूजन करे और आज मेरा जन्म फल भाग्यादिकोंको धन्य है ऐसा अपना बखान करे । इस प्रकारसे वैष्णवोंका लक्षण कहा ॥ ६ ॥ अब उन वैष्णवके सबसे श्रेष्ठपनेको कहते हैं–

वैष्णवोंका माहात्य ।

पंचायुधांकांकितवैष्णवा ये सहद्विजक्षत्रियवैश्यशूद्राः । स्त्रियस्तथान्येऽपि च विष्णुरूपा जगत्पवित्रप्रपवित्रिणः सदा॥ ७

अर्थ–हे शिष्य ! पंच आयुधोंके चिह्नवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री तथा दूसरेभी संकर जातिवाले जो वैष्णव हैं,वे सब विष्णुरूप हैं ऐसा जानना। वे वैष्णव जगतको पवित्र करनेवाले जो गंगादिक तीर्थ हैं उनकोभी सदा पवित्र करनेवाले हैं ॥ ७ ॥ श्रीमद्भागवतमेंभी कहा है कि–

" तीर्थीकुर्वंति तीर्थानि । "

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनंत्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ ८ ॥

अर्थ–वैष्णव लोग तीर्थोंको पवित्र करते हैं, गंगादिक तीर्थ जो हैं वे जगतके मलको धोकर आप मलीन हो जाते हैं फिर उन मलीन तीर्थोंको संत पवित्र करते हैं. इसलिये तीर्थोंसेभी संत श्रेष्ठ हैं तथा जलरूप जो तीर्थ हैं वे तीर्थ अपनेमें स्नान करनेवालेको पवित्र तो करते हैं, परंतु बहुत दिनोंमें करते हैं तथा मृत्तिका और पाषाणके बने हुये जो देव हैं, वे अपने सेवकको बहुत दिनोंतक सेवा करनेसे पवित्र करते हैं.और साधु लोग तो दर्शनमात्रसेही

तत्काल पवित्र कर देते हैं इसलिये वैष्णवोंका महिमा देवोंसेभी बडा है ॥८॥ और उन वैष्णवोंका ऐसा माहात्म्य है कि–

ते सर्वतीर्थाश्रयभूतदेहा देशे महाभागवता वसंति ।
यत्रैव तद्दर्शनतत्स्थितिभ्यां जातं सुपुण्यं निखिलाघना-
शनम् ॥ ९ ॥ तदर्चनात्तत्पदनीरपानात्तत्संगतेस्तत्प्रणते-
र्विधानात् । नृणां तदुच्छिष्टसुभोजनाच्च स्यात्कोटि-
जन्मार्जितपापनाशनम् ॥ १० ॥

अर्थ–उन वैष्णवोंमें पापोंके नाश करनेवाले श्रीहरि सदा वास करते हैं इस लिये उन वैष्णवोंका शरीर सर्व तीर्थोंका आधाररूप है. और महाभागवत जिस देशमें निवास करते हैं, उस देशका दर्शन करनेसे और निवास करनेसे उत्पन्न हुआ सुन्दर पुण्य सब प्रकारके पापोंका नाश करनेवाला है । और उन वैष्णवोंका पूजन करनेसे, चरणोदक पीनेसे, संगति करनेसे, प्रणाम करनेसे और उच्छिष्टका भोजन करनेसे मनुष्योंके कोटि कोटि जन्मोंके पापका नाश होता है॥९॥१०॥इस प्रकार वैष्णवोंके लक्षण और माहात्म्यका वर्णन करके अब उन वैष्णवोंको जो करनेका है सो कहते हैं–

वैष्णवोंके कर्तव्य कृत्य ।

कार्पासकैः सप्तभिरङ्घ्रितैर्गुणैः सुनिर्मितं तत्कटिसूत्रमुत्तमम् ।
कौपीनकं वस्त्रयुगं च धारयेत्तथोर्ध्वपुंड्रादिकमेव वैष्णवः ॥ ११॥

अर्थ–वैष्णव कपासके सूतोंको पांच वा सात लड करके उस उत्तम कटिसूत्रको कटिमें बांधकर कौपीनको धारण करे और (युगल वस्त्र) एक कटिमें आच्छादनवस्त्र, और दूसरा कंधेपर डारनेका वस्त्र धारण करे. तथा ऊर्ध्वपुंड्रादिक चिह्नोंको धारण करे ॥११॥ भारद्वाज संहितामेंभी कहा है–

कौपीनं कटिसूत्रं च वस्त्रयुग्मं च धारयेत् ।
न कंथाजीर्णवासो वा केशवस्त्रं न धारयेत् ॥ १२॥
तामसं वस्त्रमेकं तु राजसं वसनद्वयम् ।
कौपीनसहितं यत्तु सात्विकं मुनिभिः स्मृतम् ॥ १३ ॥

अर्थ–वैष्णव-कौपीन, कटिसूत्र और युगल वस्त्र इन तीनोंको धारण करे। और कंथा (गुदडी) तथा फटा हुआ जीर्ण वस्त्र और केशवस्त्र इनको न धारण करे । क्योंकि एकवस्त्र तामसी, दो वस्त्र राजसी और कौपीनसहित जो तीन वस्त्र हैं,सो मुनियोंने सात्विकी कहे हैं.इसलिये वैष्णव सात्विक तीन वस्त्रोंकोही धारण करे १२॥१३॥ फिर हारीतस्मृतिमें ऐसा कहा है कि–

न कुर्यात्संधितं वस्त्रं देवकर्मणि भूमिप ।
न दग्धं न च वै छिन्नं पारकीयं न धारयेत् ॥ १४ ॥
रजकादाहृतं वस्त्रं तद्वस्त्रं न भवेच्छुचि ।
कटिस्पृष्टं तु यद्वस्त्रं पुरीषं येन कारितम् ॥ १५ ॥
विण्मूत्रमैथुने यद्वै तद्वस्त्रं न भवेच्छुचि ।
आविकं तु सदा वस्त्रं पवित्रं राजसत्तम ॥ १६ ॥
धौताधौतं तथा दग्धं संधितं रजसाप्लुतम् ।
शुक्रमूत्ररक्तलिप्तं तथापि परमं शुचि ॥ १७ ॥

अर्थ–वैष्णव–विष्णुके पूजनादिक कर्ममें सिलाया हुआ वस्त्र, अग्निमें जला हुआ वस्त्र, फटा हुआ वस्त्र तथा दूसरेका धारण किया हुआ वस्त्र धोबीसे धोया हुआ वस्त्र, मल मूत्र मैथुनादि समयमें पहिराहुआ वस्त्र इन अपवित्र वस्त्रोंको पूजामें और रसोईमें न धारण करे । और ऊन वस्त्र तो सदाही पवित्र है. धोया हुआ हो अथवा न धोया हो तथा अग्निमें जला हुआ हो अथवा सिया हुआ होय, कदाचित् स्त्रीके रज करके भीजा हुआ होय, वीर्य मूत्र और रक्त इन करके लिपा हुआ हो तथापि ऊन वस्त्र सदा परम पवित्र है ॥१४–१७॥

प्रश्न–हे परम दयालु गुरो ! हरिके पूजनको और रसोईको कैसा वस्त्र पहिरकर करना चाहिये ?

उत्तर–हरिचर्यापाककाले धार्यं पट्टाम्बरं सदा ।
तस्याभावे आविकं तु तदभावे वस्त्रमेव हि ॥ १८ ॥

अर्थ–हरिकी पूजामें तथा पाककालमें, रेशमका पीतांबर मुकटा आदिकोंको धारण करना चाहिये. और जो पीतांबर आदिक न मिले तो ऊन वस्त्रको

धारण कर पूजा और रसोई करना चाहिये. और जो ऊन वस्त्रभी न मिले तो धोया हुआ और जिसको कोई अशुद्ध मनुष्य छूआ न होय ऐसा सूतवस्त्र-कोही पहिर लेवे. ऐसा हारीतस्मृतिमें कहा है ॥१८॥

प्रश्न–हे धर्मशास्त्रबोधक गुरो ! विष्णुका नैवेद्य कैसे स्थानमें करना चाहिये?

उत्तर–गुप्त स्थानमें करना चाहिये ऐसा पाराशरस्मृतिमें कहा है–

चांडालाः शाक्तिकाः शैवास्तथा भैरवपूजकाः ।
येप्यन्यदेवताभक्तास्तेषां दृष्टिं विवर्जयेत् ॥ १९ ॥
विष्णोर्नैवेद्यकालेषु चैलावरणमाचरेत् ।
त्यक्त्वा वर्णं पचेदन्नं स मूढो नरकं व्रजेत् ॥ २० ॥

अर्थ–चांडाल, शक्तिके भक्त, शिवके भक्त, भैरवके भक्त तथा जो जैन, बौद्ध आदिक दूसरे देवोंके भक्त हैं इन सबकी दृष्टिका परित्याग करे. अर्थात् वैष्णव जो है सो जिस प्रकारसे रसोईपर उन चांडालादिकोंकी दृष्टि न पडे, उस प्रकारसे पडदामें रसोई बनावे । वैष्णव जो है सो विष्णुके नैवेद्य कालमें कपडेका पडदाको करे. जो पुरुष पडदाका त्याग करके अन्नको पकाता है, सो मूढ नरकमें जाता है । जो पडदा किया होय तो उपर्युक्त चांडाल आदि अवैष्णव और श्वान काक इन सबकी दुष्ट दृष्टि नहीं पड सकती है. इसलिये पडदामें रसोई करना अति उत्तम है ॥ १९ ॥ २० ॥ और हे शिष्य ! इतने स्थानोंमें पडदा न करे तो कुछभी दोष नहीं,ऐसा सुदर्शनसंहितामें कहा है कि–

नीलाद्रौ चित्रकूटे च व्रजे शेषे हिमालये ।
अंतर्वेद्यां तथा राजन् दृष्टिदोषो न विद्यते ॥ २१ ॥

अर्थ--नीलाद्रि, चित्रकूट, व्रज, शेषाचल, हिमाचल और अंतर्वेदि इन षट् स्थानोंमें उन चांडाल आदिकोंकी अशुद्ध दृष्टिका दोष नहीं है ॥ २१ ॥

प्रश्न–उन वैष्णवोंको निवास कौनसे स्थानोंमें करना चाहिये ?

वैष्णवोंके वासकरनेयोग्य स्थान।

उत्तर–तेषां निवासोऽथ निरूप्यतेऽधुना मोक्षप्रदः शास्त्रसुसं-मतोऽयम्। महामते वैष्णवभेदमुक्त्वा जिज्ञासुबोध्यं बहुधा विबुध्यताम् ॥ २२ ॥ अशेषतीर्थेषु वसेत्समर्च-

यन्नु स तत्र तत्राविरभूतमुत्तमम्। तथा तथा तं जगताम-
नन्यधीः पतिं चतुर्वर्गफलप्रदं हरिम् ॥ २३ ॥

अर्थ–हे महामते ! जिज्ञासु जनोंको जानने योग्य अनेक प्रकारके लक्षण-सहित वैष्णवोंके भेदको कथन करके, अब मोक्षको देनेवाला और सर्व शास्त्रोंकरके अत्यंत माना हुआ ऐसे वैष्णवोंके रहनेके निवास स्थानको मैं वर्णन करता हूं सो तू उस निवासस्थानको विशेष करके जानो ॥ (अनन्यधीः) देवतांतर और मंत्रांतरमें जिनकी बुद्धि नहीं है, ऐसा वैष्णव धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पदार्थोंको देनेवाले और सर्व जगतके पति तथा ब्रह्मा, शिव आदि कोंके पूज्य अयोध्या आदिकी तीर्थोंमें प्रगट हुये श्रीरामादि रूप हरिको-पूजता हुआ उन अयोध्या आदिक एकसौ आठ हरिके धाममें निवास करें॥२३

हे शिष्य ! अब अष्टोत्तर शत धामको कहता हूँ–

वैकुंठ, आमोद, प्रमोद, संमोद, सत्यलोक, सूर्यमंडल, क्षीराब्धि, श्वेत-द्वीप, बद्रिकाश्रम, नैमिष, हरिक्षेत्र, अयोध्या, मथुरा, उज्जयिनी, काशी, अवंती, द्वारावती, व्रज, वृंदावन, कालीयह्रद, गोवर्द्धन, भवघ्नतीर्थ, गोमन्तपर्वत, हरिद्वार, प्रयाग, गया, गंगासागरसंगम, चित्रकूट नंदिग्राम, प्रभासक्षेत्र, कूर्माचल, नीलपर्वत, सिंहाचल, तुलसीवन, कृतशौचक, श्वेतपर्वत, श्रीधर्मपुरी, श्रीकाकुल, गरुडपर्वत, पांडुरंगक्षेत्र, श्रीवेंकटाद्रि, यादवाद्रि, घटिकाचल, श्रीवारणाचल, कांची, तोताद्रि इत्यादिक ।

तोताद्रिसंज्ञादिषु वैष्णवोत्तमैरेवं तथा तुंगशयादिकं प्रभुम् ।
कार्यो निवासो नितरां शुभार्थिभिराराधयद्भिः सकलार्थदायिनम्

अर्थ–इस प्रारकसे तोताद्रि आदिक अष्टोत्तर शत स्थानोंमें सकल अर्थोंको देनेवाले भगवान्को आराधन करते हुये और मोक्षकी इच्छावाले वैष्णवोंको निरंतर निवास करना चाहिये. अर्थात् वैष्णव जो हैं सो जिस जिस धाममें जावे. उस उस धामके निवासी भगवत्को पूजे, और वहां निवास करे ॥२४ यहां सम्पूर्ण एक सौ और आठ स्थानोंके नाम नहीं लिखे हैं. वे अष्टोत्तर शत स्थान स्तोत्रमें देख लेना ॥

हे शिष्य ! अब वैष्णवोंको कालक्षेप विधि कहताहूं सुनो–

कालक्षेपविधि ।

प्रातर्मध्याह्नसायं कृतशुचिकृतिभिः श्रीशमभ्यर्च्य रामं

श्रीमद्रामायणेन प्रतिदिनमखिलैर्भारतेन प्रपन्नैः। शक्तौ
श्रीभाष्यतश्च द्रविडमुनिकृतोत्कृष्टदिव्यप्रबंधैः कालक्षेपो
विधेयः सुविजितकरणैः स्वाकृतेर्यावदन्तम्॥२४॥स्ना-
नादिकर्माणि विधाय तत्र श्रीभाष्यमेवं शृणुयादशक्तः।
चेदादरान्नाम सुकीर्तनं च द्वयानुसंधानमथो विदध्यात्
॥२६॥दिव्येषु देशेषु सतां प्रसंगं तदीयकैंकर्यपरायणोऽ-
निशम्। यावच्छरीरांतमहर्दिवं तत्कथामुदारां शृणुया-
द्भवघ्नीम्॥ २७ ॥

अर्थ–जितेन्द्रिय और शास्त्रोंके अभ्यासमें कुशल ऐसे सब वैष्णव जहांतक दिन दिन प्रति प्रातःकाल मध्याह्नकाल और सायंकाल इन तीनों कालमें स्नान करे. पछि ऊर्ध्वपुंड्र तिलकोंका धारण करे, पीछे संध्यावंदनादिक क्रियाओंको करे. पीछे सीतापति श्रीराम भगवानका षोडशोपचारसे पूजन करे. फिर श्रीमद्रामायण, भारत श्रीभाष्य श्रीमद्भागवत और द्राविडमुनियोंसे किये हुये दिव्य प्रवन्धों इत्यादिक सात्विकग्रंथोंके पारायण करे,परंतु राजस तामसादिक ग्रंथोंके पारायण कदाचित्‌भी न करे. इस प्रकार (कालक्षेप) ऐसे सन्मार्गमें लगा हुआही काल गमावै, परंतु गांजा, भांग, तमाखु, अफीम आदिकके सेवनेमें और चोपड पाशा आदिकके खेलनेमें वृथा आयुष्यको नहीं गमावै। और जो आप पढा हुआ न होवे तो ऊपर कहे हुये स्नानादिक कर्मोंको करके पीछे संप्रदायमें निष्ठावाले श्रीवैष्णवोंके मुखसे पठन किया हुआ श्रीभाष्य आदिकके पारायणको प्रति दिन श्रवण करे. पारायणको करके अथवा सुनकर पछि रामसहस्रनाम, विष्णुसहस्रनाम, रामस्तवराज आदिकोंका आदरसे पाठ करे। अनन्तर शरणागतिमन्त्रका मनन करके पीछे भगवत्प्रसादका भोजन करे॥ २४–२७॥

भोजनानन्तरं कुर्यान्मोक्षशास्त्रावलोकनम्।
पुराणश्रवणं वापि नामसंकीर्त्तनं विभोः॥ २८॥

अर्थ–भोजन करके पीछे मोक्षशास्त्रका अवलोकन करे अर्थात् जिस शास्त्रमें जीवोंके मोक्षका उपाय अच्छी तरहसे निरूपण किया है, ऐसे वेदांत आदिक निवृत्ति मार्गके शास्त्रका विचार करे. अथवा श्रीमद्भागवत आदिक सात्विक पुराणोंका श्रवण करे (कथा सुने) कथा सुनकर पीछे भगवत्के नामोंका सुन्दर प्रकारसे कीर्त्तन करे. अर्थात् "अच्युतं केशवं रामनारायणम्।" इत्यादिक अच्युताष्टक आदिकोंका उच्चारण करके भगवत्के नामोंका कीर्त्तन करे ॥२८॥ इस रीतिसे दिन पूरा करे। और जीवे तहांतक अयोध्या आदिक दिव्य देशोंमें रहे हुए संतोंका प्रसंग करे. और उन संतोंके कैंकर्यमें निरंतर निष्ठा रक्खे, तथा संतोंके मुखकमलसे भवरोगविनाशिनी भगवत्कथाका प्रति दिन श्रवण करे। और जहां शिव, शक्ति, गणपति आदिक देवोंके भक्त शिवपुराण देवीपुराणादिकोंकी कथा करते हों तथा शिवसहस्रनामादिकोंका पाठ करते हों तो तहां वैष्णव उन शिवादि भक्तोंके मुखसे शिवपुराणादिकोंकी कथाका श्रवण न करे ॥ विष्णुपुराणमें कहा है कि–

यस्मिन् शास्त्रे पुराणे च हरेर्नाम न दृश्यते।
श्रोतव्यं नैव तच्छास्त्रं यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत् ॥ २९ ॥

अर्थ–जिस शास्त्रमें तथा पुराणमें हरिका नाम नहीं दीखता है उन शास्त्रोंको तथा पुराणोंको जो आप ब्रह्मा भी कहे तोभी नहीं सुनना चाहिये. जब ब्रह्माके मुखसेही सुननेका निषेध किया है, तब इतर जनके मुखसे नहीं सुनना इसमें क्या आश्चर्य है। कुछभी आश्चर्य नहीं है ॥ २९ ॥

प्रश्न–हे गुरुजी ! जे वैष्णव जो समर्थ और ज्ञानादिक करके संपन्न हैं, वे तो श्रीभाष्यादिकोंका पारायणभी करते हैं, और अयोध्या आदिक उत्तम देशोंमें विचरतेभी हैं, परंतु शास्त्रके अभ्याससे रहित और सब तीर्थोंमें विचरनेमें असमर्थ वैष्णवोंको क्या करना चाहिये ?

उत्तर--तथाप्यशक्तास्तु कुटीरमात्रं विधाय कुर्य्युस्त्वथ यादवाद्रौ। अन्यत्र वासं च गुरूपदिष्टान् मंत्रान् जपंतोऽहंकारशून्याः ॥ ३० ॥

अर्थ–जो वैष्णव पूर्वोक्त किसीभी प्रकारसे समर्थ नहीं हैं, वे वैष्णव यादवपर्वतमें अथवा दूसरे पवित्र स्थानोंमें कुटिया अथवा मंदिर बांधकर वहां

अपने गुरुसे उपदेश किया मूलमंत्र, तारकादि मंत्रोंका जाप करते हुए निवास करे । और ज्ञानी महात्मा वैष्णवोंकी आज्ञामें रहे, यही उनके वास्ते चरम उपाय है, सो इस आज्ञा पालनरूप चरम उपायको आलस्य रहित हो निरंतर करे और भगवतके अर्थ तुलसी पुष्पादिकोंका संग्रह करना तथा भगवन्मंदिरमें झाडू देना, लीपना और भगवतके नामोंका उच्चारण करनेमें अभ्यास करना. इस रीतिसे आलस्यरहित भगवत्में मनको रखता हुआ कालक्षेप करे । अर्थात् काल पूरा करे ॥ ३० ॥

इति श्रीमद्रामानुजचरणाश्रितेन श्रीमत्पंडितगोपालदासेन विरचिते श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकरे श्रीवैष्णवभेदमाहात्म्याचारनिवासकालक्षेपादिवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८ ॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः ।

प्रश्न–यहां प्रश्नोंका अनुक्रम ऐसा है कि, (किंप्राप्यं कथमुरुशुभदं कुत्र कार्यो निवासः ।) इन अनुक्रमसे प्रथम प्राप्यवस्तुका प्रतिपादन करके पीछे निवासका वर्णन करना था. परंतु यहां प्रथम निवासका वर्णन किया है और अंतमें प्राप्य वस्तुका प्रतिपादन किया है. हे गुरुजी ! इसका क्या अभिप्रायहै ?

उत्तर–हे शिष्य ! दश प्रश्नोंमें तत्त्वादिक जो नव प्रश्न हैं, वे साधनरूप है, और दशम जो प्राप्य वस्तु है वो साध्य फलरूप है, और फल प्राप्त हुये पीछे कुछभी साधन करनेका बाकी नहीं रहता है. इसलिये प्रथम तत्त्वादिक साधनोंका प्रतिपादन करके पीछेसे प्राप्यवस्तुका प्रतिपादन किया है ॥

प्राप्यवस्तु निरूपण ।

तथाविधैस्तैः परमार्थभूतं सुवैष्णवैः प्राप्यमथोच्यते यत् ।
जितेन्द्रियैरात्मरतैर्बुधाढ्यैर्महत्तमैः स्वाभिमतार्थदोहम् ॥ १ ॥

अर्थ–हे शिष्य ! कालक्षेप कथन करके जो वैष्णव जितेन्द्रिय हैं और ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं तथा अतिशयकरके महात्मा हैं और ब्रह्ममें निष्ठावाले तथा पूर्वोक्त लक्षणोंवाले हैं ऐसे उन वैष्णवोंको प्राप्त होने योग्य जो प्राप्य वस्तु है, उसको अब कहते हैं. वह प्राप्य वस्तु (परमार्थभूतं) सकल वेद वेदांतों करकेही जानने योग्य है. (स्वाभिमतार्थदोहं) अपने इच्छित अर्थको पूरण करनेवाला है ॥ १ ॥

श्रीमान् दिव्यगुणाब्धिरौपनिषदो हेतुः शरण्यः प्रभुर्देवेशो जगतामनादिनिधनो ब्रह्मादिदेवार्चितः। तारार्कानलचन्द्रमोबहुमहःसौदामिनीभासकोऽजय्यो वीरसपत्नशस्त्रनिचयैर्जेता च तेषां मुहुः ॥२॥ नित्यो ब्रह्मविधायकश्च पुरुषस्तद्भेदबोधो बुधो नित्यानां शरणं तपःप्रभृतिभिः सद्योगिनां दुर्लभः। एकश्चेतनचेतनो भृतजगद्ध्येयः स्वतन्त्रो वशी स प्राप्योऽस्ति मुमुक्षुभिः सुगुरुभिः सत्सङ्गिभिस्तत्परैः ॥ ३ ॥

अर्थ–हे शिष्य ! जो अत्यन्त श्रेष्ठ सन्तोंका संग अनवरत करता है वह सत्संगी होजाता है और वे सत्संगी भगवत्में निष्ठावाले हैं तथा परम आप्त यथार्थ वक्ता ऐसे जिनके गुरु हैं. ऐसे सत्संग और भगवत्में निष्ठावाले तथा परम आप्त गुरुवाले जो मुमुक्षु वैष्णव हैं, उनको अनंत गुणोंके समुद्र जो श्रीराम हैं सो रामही प्राप्य हैं. अर्थात् श्रीरामकोही वे वैष्णव प्राप्त होते हैं. वह श्रीराम (श्रीमान्) जैसे सूर्यकी प्रभा सूर्यसे भिन्न नहीं है तैसे रामसे भिन्न सीता नहीं है, इस रीति करके सीमासे रहित अत्यन्त सुन्दर गुणवाली श्री नाम सीता है जिसके सो श्रीमान् है, (दिव्यगुणाब्धिः)दिव्य जो वात्सल्य, सौशील्य, सत्यसंधत्व, प्रियसत्यवचनत्व आदि गुणोंके समुद्र हैं. (औपनिषदः) सकल उपनिषदों करके प्रतिपादन करने योग्य हैं (हेतुः) "जन्माद्यस्य यतः" इस व्याससूत्र प्रमाणसे चराचर जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार जिस परमात्मासेही होते हैं इसलिये श्रीराम जगत्के कारण हैं। (शरण्यः) शरण रखनेमें वा रक्षण करनेमें बहुत कुशल हैं.(प्रभुः) जगत्की उत्पत्ति, पालन और प्रलय करनेमें सामर्थ्यवान् हैं। (देवेशः) ब्रह्मा, शिव, इंद्र,यम, वरुण आदिक देवोंको सृष्टि संहारादिक अपने अपने कामोंमें प्रेरक हैं. (अनादिनिधनः) आप उत्पत्ति और विनाशसे रहित हैं. (ब्रह्मादिदेवार्चितः) ब्रह्मा, शिव, इंद्र, यम आदिक देवों करके पूजे हुए हैं (तारार्कानलचन्द्रमोबहुमहःसौदामिनीभासकः) "न तत्र सूर्यो भाति, तस्य भासा सर्वमिदं विभाति । यदादित्यगतं तेजः तत्तेजो विद्धि मामकं"।इत्यादि प्रमाणसे तारा,सूर्य, अग्नि,चंद्रमा,

और बहुत तेजवाली बिजुली इन सबके प्रकाश करनेवाले हैं. (वीरसपत्नशस्त्रनिचयैः अजय्यः) महान् शूरवीर जो शत्रु हैं, उनके शस्त्रसमूहों करकेभी जीतनेमें नहीं आते हैं (तेषां मुहुः जेता ।)उलटे उन शूरवीरशत्रुओंके शस्त्रसमूहोंको वारंवार जीतनेवाले हैं (नित्यः) अव्यक्तादिक जो नित्य पदार्थ हैं उनके भी नित्य हैं नित्योंके नित्य हैं. । (चेतनचेतनः) " नित्योनित्यानां चेतनश्चतनानाम्" इस श्रुतिसे चेतनोंकेभी चेतन सकल जीवोंकी चेतन करनेवाले है (ब्रह्मविधायकः)तीन लोकोंकी सृष्टिका कर्ता ब्रह्माकोभी उत्पन्न करनेवाले हैं। (तद्वेदबोधः) 'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै' इस श्रुतिसे उस ब्रह्माको वेदोंका उपदेश करनेसे ब्रह्माकेभी गुरु हैं।(बुधः)आपसेही सकल वेदोंके उपदेश करनेका ज्ञानवाले हैं। (सद्योगिनां शरणं) सद्योगियोंका रक्षण करनेका स्वभाववाले हैं (. तपःप्रभृतिभिर्दुर्लभः) तप आदिक साधनोंकरकेभी उन योगियोंको दुःखकरके मिल सकते हैं। (एकः) अपनी इच्छा करकेही आप सर्व अर्थोंको साध लेते हैं किसीके सहायकी इच्छा नहीं रखते हैं (भृतजगत्) सकल जगत्का पालन करनेवाले हैं । (ध्येयः) ब्रह्मा शिवादि देवों तथा सनकादिक नारद वसिष्ठादिकों करके ध्यान करने योग्य हैं. (स्वतंत्र) उनको कोईभी आज्ञा नहीं करता है निरंकुश है, और अपने २ सृष्टि आदि अधिकारोंमें ब्रह्मादिकोंको आज्ञा देकर प्रवर्त करनेवाले हैं (वशी) अत एव सबको अपने वशमें रखनेवाले हैं. (पुरुषः) परमेश्वर पुरुषाकार हैं इत्यादिक अनंत गुणों करके उक्त श्रीराम ही श्रीवैष्णवोंके प्राप्य हैं इति ॥ २ ॥ ३ ॥

मुक्तिका आर्चिरादिमार्ग।

तथाविधं प्राप्यमथो मुमुक्षुः सुचिंतयन्नित्यमनुक्षणं सदा ।
सदा सदाचाररतं गुरुं वरं ज्ञातुं भजेताखिलसंशयच्छिदम् ॥४॥
सत्संगतः सन् हि गतस्पृहो मुहुः श्रीशं प्रपद्याथ गुरोर्मुखादसौ।
कर्माखिलं संपरिभुज्य चात्मवान् प्रारब्धमेवं प्रहतान्यकर्मकः ५
न्यासात्स्वतंत्रेश्वरजातसद्दयानिर्लूनमायान्वय एव देशिकः ।
हार्दोत्तमानुग्रहलब्धमध्यनाडीशुभद्वारबहिर्विनिर्गतः ॥ ६ ॥

मार्गं ततः सोऽर्चिषमैति मुक्तस्तथार्चिषोऽह्नोदिनतः सुरार्चितः।
आपूर्यमाणं विविधैस्तु वासरैः पक्षं प्रभूतोत्तमशर्मविज्वरः॥७॥
पक्षादुदङ्मासमथो षडात्मकं तेभ्यश्च संवत्सरमब्दतोऽर्कम् ।
चन्द्रं ततश्चंद्रमसोऽथ विद्युतं स तत्र तत्राखिलदेवपूजितः ॥८॥
परं पदं सैवमुपेत्य नित्यममानवो ब्रह्मपथेन तेन।
सायुज्यकादि प्रतिलभ्य तत्र प्राप्यस्य संनंदति तेन साकम्॥९॥
सीमांतसिंध्वाप्लुत एव धन्यो गत्वा परब्रह्म सुवीक्षितोनिशम् ।
प्राप्यं महानंदमहाब्धिमग्नो नावर्तते जातु ततः पुनः सः ॥१०॥

अर्थ–हे शिष्य ! जो मुमुक्षु हैं सो सदा क्षण क्षणमें इस प्रकारसे चिंतन करता हुआ पूर्वोक्त लक्षणोंवाले प्राप्य श्रीरामको जाननेके वास्ते शिष्यके संपूर्ण संशयोंके छेदन करनेवाले और सर्वदा सदाचारमें प्रीतिवाले, और ज्ञानी तथा विरक्त ऐसे गुरुका सेवन करे. जैसे वंध्या गौके सेवनेसे दुग्धकी प्राप्ति नहीं होती है तैसे " ज्ञानहीनं गुरुं प्राप्य कुतो मोक्षमवाप्नुयात् " इस प्रकार अज्ञानी गुरुके करनेसे शिष्यको ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती है और जैसे अंधाको अंधा मार्ग नहीं वता सकता है वैसे अज्ञानी चेलाको मोक्षका मार्ग नहीं वता सकता है. और गुरु शब्दकाभी ऐसा ही अर्थ है कि–

गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्रुशब्दस्तान्निरोधकः ।
अन्धकारनिरोधित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते ॥

अर्थ–गु नाम अन्धकारका है और रु नाम अंधकारको दूर करनेका है. इसलिये अज्ञानरूप अंधकारको निवृत्त करनेवालेका नाम गुरु है. हे शिष्य प्राप्य श्रीरामको जाननेके वास्ते ऐसे ज्ञानी गुरुकाही शिष्य बने. और यह जो मुमुक्षु है सो सत्संग करके वस्तुमात्रमें वारंवार स्पृहासे रहित वीतराग और अपने गुरुके उपदेशसे श्रीरामके शरण होकर श्रेष्ठ ज्ञानसंपन्न और अपने प्रारब्ध कर्मका इस देहमेंही भोग करके और दूसरे संचित क्रियमाण कर्मोंका जिसंने नाश कर दिया है ऐसा सो देशिक न्यास[1] करकेही स्वतन्त्र

---

१ न्यासनाम शरणागति है।

ईश्वरकी सुंदर दयासे समूल नाश किया हुआ विषयवासनावाला. हो और हृदयकमलस्थ श्रीरामके उत्तम अनुग्रहसंपन्न तथा-

"शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्द्धानमभिनिःसृतैका। तयोर्द्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विश्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवंति॥"

एक सौ और एक नाडियां हृदयके संबंधवाली हैं उनके मध्यमें एक सुषुम्णा नाडी मूर्द्ध स्थानके प्रति ऊंची निकली है; उस नाडीके मार्गद्वारा जानेवाला उपासक मोक्षको प्राप्त होता है. और दूसरी जो सौ नाडियां हैं वे न्यारे न्यारे मार्गवाली हैं, उनके मार्गमें होकर जानेवाले जीव संसारमेंही भ्रमण करते हैं मोक्षको नहीं पाते हैं ॥ इस श्रुति प्रमाणानुसार सुषुम्णामार्गसे उत्क्रमण हो ब्रह्मरंध्र द्वारा इस पांचभौतिक शरीरसे बाहर निकलकर मुक्त पुरुष अर्चिर्मार्गको प्राप्त होता है १, और उस अर्चिर्मार्गसे अहर्मार्गको प्राप्त होता है २, जिस मार्गमें यह मुक्त पुरुष जाता है उस उस मार्गमें रहे हुए देव इस मुक्तपुरुषका पूजन करते हैं, सकल देवों करके पूजा हुआ और उन मार्गोंके अत्यंत उत्तम सुखों करके जन्म मरणका दुःखरूप ज्वरसे रहित हो फिर उस अहर्मार्गसे पक्षमार्गको प्राप्त होता है फिर पक्षमार्गसे मासषट्करूप उत्तरायण मार्गको जाता है, और उत्तरायण मार्गसे संवत्सर मार्गको प्राप्त होता है ५, फिर संवत्सरमार्गसे अर्कमार्गको प्राप्त होता है ६, और अर्क मार्गसे चंद्रमार्गको जाता है ७, फिर चंद्रमार्गसे विद्युत्मार्गको प्राप्त होता है, ८ उन उन मार्गोंमें देवों करके पूजा हुवा विरजाके तीरपर अमानवका करस्पर्श कर सनातन और सर्वसे उत्तम श्रीवैकुंठपदको प्राप्त होकर वहां प्राप्य श्रीरामके सायुज्य, सालोक्य, सामीप्य और सारूप्य आदिक मुक्तियोंमेंसे एक मुक्तिको पाकर प्राप्य परब्रह्मश्रीरामके साथ समृद्धिजन्य सुखभोगपूर्वक विहार करता है। हे शिष्य ! उस मुक्त पुरुषको धन्य है। क्योंकि संसारतापको हरनेवाला जो अमृतका महासमुद्रमें जिस मुक्तने स्नान किया है, और वहां वैकुंठमें परब्रह्म श्रीरामके कृपाकटाक्ष करके निरंतर देखा जाता है. ऐसा वह मुक्त पुरुष श्रीवैकुंठ प्राप्यको प्राप्त होकर महान् आनंदके समुद्रमें मग्न हुआ उस वैकुंठमें "तद्विष्णोः परमं पदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् । तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाꣳसस्समिन्धते। विष्णोर्यत् परमं पदम्" इस श्रुति प्रमाणानुसार परमात्मा श्रीमन्नारायणके दर्शनरूप आनन्दमें मग्न रहता है और "अनावृत्तिःशब्दादना-

वृत्तिश्शब्दात् ” इस प्रमाणसे वैकुंठसे कभी भी फिर इस संसारके जन्म मरणमें नहीं आता है इति ॥ ४–१० ॥

प्रश्न–हे दयानिधे ! आपने वैकुंठमें प्राप्य परब्रह्म श्रीरामको आनन्दका समुद्र कहा है सो ठीक है, परंतु परब्रह्म श्रीरामके आनंद समान ब्रह्मा, शिव, इन्द्र आदिक देवोंमें आनन्द है कि नहीं है ?

उत्तर- हे शिष्य ! श्रीवैकुंठके आनन्द समान दूसरे किसीभी लोकमें आनंद नहीं है. ऐसे तैत्तिरीय उपनिषद्के अष्टम अनुवाकमें “ सैषानन्दस्य मीमाँसा भवति ”--यहांसे प्रारंभकर “ यतो वाचो निवर्तन्ते” यहां तक सप्रपंच प्रतिपादन किया है। कहा है कि, श्रीवैकुंठ आनंदकी सीमा है अर्थात् वैकुंठसे आगे आनंदकी न्यून और अधिक गणना नहीं है, वैकुंठसे आगे दूसरा कोई लोक भी नहीं है और वैकुंठके आनंद समान अथवा अधिक कोई आनंद भी नहीं है. वैकुंठके नीचे जो ब्रह्मलोक है उस ब्रह्मलोक पर्यंतही आनंदके न्यूनाधिककी गणना है । सो गणना एसी है कि–अच्छा तरुण और सर्व वेदोंका पढा हुआ तथा अत्यन्त शिक्षाको करनेवाला तथा अत्यंत दृढ अंगवाला तथा अत्यन्त बलवान् ऐसे अध्यात्मिक साधनों करके संपन्न जो चक्रवर्ती महाराजा है उसको उपभोगके साधन संपूर्ण प्रत्यक्ष पदार्थों करके भरी हुई पचास कोटि योजन पर्यंत पृथ्वीका पति जो महाराजा है उस महाराजाका आनंद मनुष्योंका एक आनन्द कहा जाता है १ । उन मनुष्योंके आनन्दसे मनुष्यगन्धर्वोंका सौ गुणा अधिक आनंद है २ । मनुष्यगन्धर्वोंके आनन्दसे देवगन्धर्वोंका शतगुणा अधिक आनंद है ३ । देवगन्धर्वोंके आनन्दसे पितृओंका शतगुणा अधिक आनन्द है ४ । पितृओंके आनंदसे आजानजदेवोंका शतगुणा अधिक आनन्द है. ५ । आजानजदेवोंके आनंदसे कर्मदेवोंका शतगुणा अधिक आनंद है ६ । कर्मदेवोंके आनंदसे देवोंका शतगुणा अधिक आनंद है ७ । उन देवोंके आनंदसे इन्द्रका शतगुणा अधिक आनंद है ८. इन्द्रके आनन्दसे बृहस्पतिका शतगुणा अधिक आनन्द है ९. बृहस्पतिके आनंदसे प्रजापति विराट्का शतगुणा अधिक आनन्द है १० । और उस प्रजापतिके आनन्दसे ब्रह्माका शत गुणा अधिक आनन्द है ११ । इस रीतिसे मनुष्य लोकसे लेकर ब्रह्मलोक पर्यन्त आनन्दोंकी न्यूनाधिक संख्या कींहुई है. और वैकुंठ ब्रह्मलोकसे पर है. और वैकुंठके आनंदकी संख्या वेदमें बताई नहीं है. इससे वैकुंठ आनंदका महासमुद्र है और वैकुंठसे भिन्न दूसरे ब्रह्मादिक लोक हैं उन लोकोंमें आनन्द बिलकूल नहीं है. परंतु वे सब लोक वैकुंठके आनंदकी एक मात्राको लेकर

जीवते हैं । जैसे–यह मनुष्यलोक मेघद्वारा समुद्रके जलकी एक मात्राको लेकर जीवते हैं, इस लोकमें जो नदी तडाग कूपादिकमें जल है, सो जल समुद्रकाही है, वैसे ब्रह्मलोकादिक सब लोकोंमें वैकुंठकाही आनंद आता है. ऐसा तैत्तिरीय उपनिषद्‌में कहा है । इस वैकुंठके मार्गका नाम देवयान मार्ग है और देवपथ तथा ब्रह्मपथ ऐसेभी नाम हैं । सो इस बृहदारण्य श्रुतिमें प्रतिपादन किया है कि–

तेऽर्चिषमभिसम्भवंत्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान् षण्मासानुदङ्ङादित्य एति मासान्मासेभ्यः संवत्सरं संवत्सरादादित्यमादित्याच्चंद्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एतान् ब्रह्म गमयमत्येष देवपथो ब्रह्मपथ एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नावर्तंते इति ॥ १२॥

अर्थ–उन उपासकोंको प्रथम तो अग्निदेवता अपने लोकमें ले जाता है. १ फिर अग्निलोकसे दिनदेवता अपने लोक जाता है. २ पीछे शुक्लपक्षका अभिमानी देवता अपने लोकमें ले जाता है. ३ पीछे षट्मासरूप उत्तरायणका देव अपने लोकमें ले जाता है. ४ पीछे वहांसे संवत्सरका देव अपने लोकमें ले जाता है. ५ पीछे वहांसे देवलोक देवता अपने लोकमें ले जाता है. ६ अनंतर वहांसे वायु देवता अपने वायुलोकमें ले जाता है. ७ और वायुलोकसे आदित्य देवता अपने लोकमें ले जाता है. ८ और उस आदित्यलोकसे चन्द्र देवता अपने लोकमें ले जाता है. ९ पीछे चन्द्रलोकसे विद्युत देवता अपने लोकमें ले जाता है. १० वहां विद्युत लोकमें ब्रह्म लोकवासी अमानव पुरुष ब्रह्म लोकसे विद्युत लोकमें आकर उन उपासकोंको वरुण लोकमें ले जाता है. और उन उपासकोंके साथ विद्युत देवताभी जाता है. ११ फिर वरुण लोकसे इंद्र देवता अपने लोकमें ले जाता है, और उसके साथ वरुण देवभी जाता है. १२ पीछे इन्द्र अपने लोकसे प्रजापतिके लोक पर्यंत अमानव पुरुषको तथा उपासकोंको पहुँचाता है. १३ पीछे प्रजापतिको ब्रह्मलोकमें जानेका सामर्थ्य नहीं है. केवल अमानव पुरुषही उस उपासकको ब्रह्म लोकमें लेजाता है. १४ इस ठिकाने देव लोकके देवता १ वायुदेवता २ वरुणदेवता ३ इंद्रदेवता ४ प्रजापतिदेवता ५ इन पंचदेवोंका दूसरी श्रुतिसे ग्रहण किया है. इस श्रुतिमें इन पंच देवोंका नाम नहीं है ॥ १२ ॥

प्रश्न–हे स्वामिन् ! ब्रह्मलोकसे वैकुंठमें उस मुक्त पुरुषको कौन लेजाता है?

उत्तर--ब्रह्मादीनामसाध्यं च साध्यं वै भक्तिशालिनाम् ।
तं वैकुंठं प्रापयंति ततः श्रीविष्णुपार्षदाः॥ १३॥

अथ–हे शिष्य ! ब्रह्मादि देवोंको श्रीवैकुंठलोक असाध्य है अर्थात् श्रीवैकुंठमें ब्रह्मादि दव नहीं जा सकता है. और श्रीविष्णु भगवान्‌की भक्ति करनेवाले जो विष्णुभक्त हैं, उनको श्रीवैकुंठ साध्य है. ऐसे वैकुंठमें उस मुक्तको ब्रह्मलोकमें विष्णुके विष्वक्सेनादि पार्षद ले जाते हैं. अर्थात् ब्रह्मलोकतक उस मुक्तको दूसरे देव लाते हैं, और ब्रह्मलोकसे वैकुंठमें विष्णुके पार्षद ले जाते हैं॥

प्रश्न–हे गुरुजी ! विष्णुका परमपद जो वैकुंठ है सो वैकुंठ चौदह लोकके भीतर है कि चौदह लोकसे बाहिर है. १ जो वैकुंठको चौदह लोकके भीतर कहो तो "आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोर्जुन' इस गीताके वचनसे पाताल लोकसे ब्रह्मलोकतक सब लोक जन्म मरणवाले हैं १. जो वैकुंठ चतुर्दश लोकसे बाहिर कहो तो उस वैकुंठका स्वरूप कैसा है २. वह वैकुंठ इस ब्रह्मांडरूप संसारसे पर है, इसमें कौनसी श्रुति स्मृतियोंका प्रमाण है ३. उस वैकुंठमें जगतको भक्षण करनेवाला काल है कि नहीं ४. उस वैकुंठको सूर्य चंद्र अग्नि तारा आदिक प्रकाश करते हैं या अंधकार है ? ५. वह वैकुंठ मायाके भीतर है कि मायासे रहित है ६. उस वैकुंठमें जानेवाले भक्तोंके शरीर इंद्रिय मन प्राण आदिक रहते हैं कि वे मुक्त शरीर इंद्रियादिकोंसे रहित हैं ७. और वे मुक्त पुरुष अपनी इच्छासे दूसरे लोकांतरमें विचरते हैं कि वैकुंठमेंही बैठे रहते हैं ८. विष्णुका परं पद जो वैकुंठ है सो वैकुंठही मोक्षका धाम है कि वैकुंठसे भिन्न दूसरे ब्रह्मा, शिव, सूर्य, शक्ति, गणपति आदिकके लोकभी मोक्षके धाम हैं ? ९. और उस वैकुंठमें विष्णुके भक्त वैष्णवही जाते हैं कि शिव ब्रह्मादिकोंके भक्तभी जाते हैं ? १०. इन दश प्रश्नोंका खुलासा कृपा करके कहो।

उत्तर–अंडकोशात्सावरणादमुष्मात्परतः प्रभुः ।
स्थितोऽसौ परमे व्योम्नि ह्यप्राकृतशरीरवान् ॥ १४ ॥
अंडेभ्यः परतो नित्यं त्रिपादं यद्विराजते ।
इतरेण तु पादेन प्राकृतं राजते स्वयम् ॥ १५ ॥

अर्थ–महत्त्व १ अहंकार २ आकाश ३ वायु ४ तेज ५ जल ६ पृथ्वी ७। पृथ्वीसे दशगुणा जल, जलसे दशगुणा तेज, तेजसे दशगुणा वायु, वायुसे दशगुणा आकाश, आकाशसे दशगुणा अहंकार, अहंकारसे दशगुणा महत्तत्त्व, इस रीतिसे एक एकसे दश दशगुणा अधिक इन सप्त आवरणोंवाला यह ब्रह्मांड कोश है. इस ब्रह्मांड कोशसे बाहिर अपने स्वरूपभूत परम आकाश प्रभु रहे हैं. कैसे हैं प्रभु कि, इन सप्त आवरणोंवाला जो प्राकृत शरीर है, उस प्राकृत शरीरसे रहित अप्राकृत शरीरवाले हैं. वह मुक्तोंका प्राप्य है इन आवरणात्मक अंडोंसे पर नित्य त्रिपादमें प्रभु विराजते हैं, और दूसरा जो एक पाद है, उस करके प्राकृतरूप आप प्रकाशते हैं ॥ इस प्रकारसे चतुर्दश लोकसे वैकुंठ पर है, सो त्रिपाद रूप है. और यह सकल ब्रह्मांड भगवत्के एकपदमें रहा, सोही संसार है, इस एक पादमें रहनेवालेही जन्ममरणको पाते हैं और त्रिपादमें जानेवाले जन्मसरणके दुःखसे छूटकर मोक्षको पाते हैं ॥ हे शिष्य ! तैंने जो पूछा कि चौदह लोकसे वैकुंठ बाहिर है कि भीतर है. इस प्रथम प्रश्नका इन दो श्लोकोंकरके उत्तर दिया। अब द्वितीय तृतीय प्रश्नोंको कहते हैं सो सुन।

पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।
तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यंति सूरयः ॥ १६ ॥

अर्थ–यह जो चराचर जगत है, सो विष्णुका एक पाद है अर्थात् ईश्वरका स्वरूपके चार भाग हैं, उसमें एक भागमें यह सकल ब्रह्मांड रहता है, और ईश्वरके जो तीन पाद हैं, वे तीन पाद मुक्तोंके मोक्षका धाम है. उस त्रिपादरूप विष्णुके परमपदको अनंत, गरुड, विष्वक्सेनादिक सूरि पुरुष देखते हैं। इस प्रकारका त्रिपाद विभूतिरूप वैकुंठका स्वरूप वेदमें कहा है. इति द्वितीयप्रश्नोत्तरम् ॥ अब संसारके पार वैकुंठ है, इसमें यह श्रुति प्रमाण है कि–

सोध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ १७ ॥

अर्थ–इस संसारमें जन्म मरणद्वारा आनेका संसारका जो मार्ग है, उस संसार मार्गके पार विष्णुका परम पद है, उस परमपदको वे मुक्त पुरुष प्राप्त होते हैं इस श्रुतिमें विष्णुके पदकोही संसारके पार मुक्तिका स्थान रूप परंपद कहा है, सो त्रिपाद विभूतिरूप वैकुंठही है। इति तृतीयप्रश्नोत्तरम् ॥

**कलामुहूर्त्तादिमयश्च कालो न यद्विभूत्यां परिणामहेतुः ।
अत्रैव कालः परिणामहेतुः कालः स नित्यः परमे पदे हि॥ १८॥**

अर्थ–अष्टादश निमिष एक काष्ठा, तीस काष्ठाका एक कला, तीस कला एक क्षण, द्वादश क्षण एक मुहूर्त्त, तीस मुहूर्त्त एक दिन, और रात्रि होता है. पंचदश दिन रात्रि एक पक्ष होता है. वह शुक्ल और कृष्ण दो पक्ष मिलकर एक मास होता है और वह मास पित्रोंका दिन रात है, शुक्लपक्ष दिन है, और कृष्णपक्ष रात्रि है। और दो दो मास मिलकर एक ऋतु होता है। जैसे–माघ और फाल्गुन ये दो मासमें शिशिर ऋतु भोगता है और चैत्र वैशाख ये दो मास वसंत ऋतुके हैं और ज्येष्ठ आषाढ ये दो मास ग्रीष्म ऋतुके हैं और श्रावण भादवा ये दो मास वर्षा ऋतुके हैं और कार कार्तिक ये दो मास शरद ऋतुके हैं और अगहन पौष ये दो मास हेमंत ऋतुके हैं । और शिशिर वसंत ग्रीष्म ये तीन ऋतु मिलकर एक अयन[१] होता है । और वे उत्तरायण और दक्षिणायन दो अयन मिलकर एक वत्सर (वर्ष) होता है वह वत्सर देवोंका एक दिन रात्रि है उत्तरायणषट् मास दिन है और दक्षिणायन षट् मास रात्रि है । और वे संवत्सर तैंतालीस लाख वीस हजार (४३२००००) मिलकर सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये चार युग होते हैं। और वे चार युग मिलकर देवोंका एक युग होता है अर्थात् मनुष्योंके तीन सौ और साठ वर्ष मिलकर देवोंका एक वर्ष होता है ऐसे देवोंके द्वादश हजार वर्ष मिलकर मनुष्योंके चार युग होते हैं वे चार युग मिलकर देवोंका एक युग कहा है । और वे देवोंके हजार युग मिलकर ब्रह्माजीका एक दिन रात्रि होते हैं । और ब्रह्माका जो दिन रात है सो मनुष्योंके दो कल्प कहे जाते हैं ब्रह्माका दिन है सो भूतोंका स्थितिकाल है और ब्रह्माकी जो रात्रि है सो भूतोंका प्रलयकाल है । और देवोंके ७१ इकहत्तर युग मिलकर एक मन्वंतर होता है मनुओंका अवकाशका वा अवधिका नाम मन्वंतर है ऐसे स्वायंभुव. चाक्षुप आदिक चौदह मनु ब्रह्माके एक दिनमें होते हैं। इस प्रकारसे सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग इन चार युगोंकी एक चौकडी होती है और उन हजार चौकडियों करके ब्रह्माका एक दिन होता है. और हजार चौकडियों करके ब्रह्माकी रात्रि होती है. ऐसे सात लाख और वीस हजार चौकडियों करके ब्रह्माका एक वर्ष होता है. ऐसे वर्षों

---

१ अय गतौ, अयते गच्छति अर्कः अनेनेति अयनम्।

करके ब्रह्मा सौ वर्ष पर्यंत जीवता है, जब ब्रह्माके शत वर्ष पूरे होते हैं, तब महाप्रलय होता है. उस महाप्रलयमें चौदह लोकोंका नाश होता है. उस महाप्रलयमें[1] वैकुंठ और वैकुंठवासी अमर रहते हैं. और ब्रह्मा, शिव, सूर्य, शक्ति गणपति आदिक सब लोकोंका प्रलय हो जाता है. हे शिष्य ! इस रीतिसे कलासे लेकर ब्रह्माके आयुष पर्यंत जो काल है, सो काल उस त्रिपाद् विभूतिमें परिणामका हेतु नहीं है. किंतु इस एक पाद लीलाविभूतिमेंही यह काल परिणामका हेतु है, जैसे मृत्तिकाके परिणाम, घट शरावादिक हैं. और दुग्धका परिणाम दधि है वैसे एक रूपसे दूसरे रूपकी प्राप्तिका नाम परिणाम है, बाल अवस्थाका परिणाम तरुण अवस्था है, और तरुणावस्थाका परिणाम वृद्धावस्था है, ऐसा परिणाम कालकरकेही होता है, वैसा परिणाम त्रिपाद वैकुंठमें है नहीं, वहांके निवासी सदा एकरूपही रहते हैं कालकृत परिणामको प्राप्त नहीं होते हैं, और उस परम पदमें सर्व पदार्थ नित्य हैं, अनित्य कोईभी पदार्थ नहीं है, इसलिये हे शिष्य ! वहां कालभी नित्य है, परिणाम रूप काल वहां नहीं है । इति चतुर्थप्रश्नोत्तरम् ॥ ४ ॥

न तत्र सूर्यो न च भाति चंद्रमा न विद्युतो भांति कुतोऽयमग्निः । तमेव भांतमनु भांति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ १९ ॥

अर्थ-हे शिष्य ! उस वैकुंठमें सूर्य चंद्रमा तथा विजलीभी नहीं प्रकाश करती है, तो यह अल्प प्रकाशवाला अग्नि तो कहांसे प्रकाश करेगा, उस त्रिपादके प्रकाशके पीछे सूर्य चंद्रमा आदिक प्रकाश करते हैं. और उस त्रिपादके प्रकाश करकेही सकल ब्रह्मांड भासता है, क्योंकि सूर्य चंद्र विद्युत तारा आदिक जो ज्योतिर्गण है वे ब्रह्मांडके भीतरही प्रकाश करनेवाले हैं, वैकुंठ ब्रह्मांडसे पर है ॥ इति पंचमप्रश्नोत्तरम ॥ ५ ॥ हे शिष्य ! फिर वह वैकुंठ मायासेभी रहित है, गीतामें कहा है कि-

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥

अर्थ-इस सकल चराचर जगतको मैं एक अंशसे व्यापकरके रहा हूं ऐसे अर्जुनको भगवान्ने मायाकृत जगतको और मायाको अपने एक पादमेंही

१ नित्यप्रलय १ नैमित्तिकप्रलय २ महाप्रलय ३ आदिक प्रलय वैकुंठमें नहीं हैं ।

कहाहै, इसलिये मायासे रहित त्रिपाद विभूति सिद्ध होती है. क्योंकि जब एक पादमेंही जगत्‌की स्थिति कही है, तब तीन पाद जगतसे रहित हैं, ऐसा आपही सिद्ध हो गया इति ॥ इति षष्ठप्रश्नोत्तरम् ॥ ६ ॥ हे शिष्य! ७–८–प्रश्नोंका उत्तर सप्तमाध्यायमें २०१ पृष्ठमें 'सालोक्यादिमुक्तिदशामें' वर्णन कियाहै, सो देखलेना ॥

हे शिष्य! ९ वां प्रश्नका उत्तर। वेदमें ऐसा कहा है कि–

तमेवं विद्वानमृत इह भवति नान्यः पंथा अयनाय विद्यते इति ॥

अर्थ–इस प्रकारसे उस त्रिपादको जाननेवाला पुरुष इस लोकमें अमर हो जाता है इस त्रिपादरूप वैकुंठके विना मोक्षके वास्ते दूसरा पंथ नहीं है यह त्रिपादही मोक्षका धाम है दूसरा कोईभी मोक्षका धाम नहीं है, और शिव, ब्रह्मा, इंद्र, यम आदिकोंके जो लोक हैं, वे मेरु पर्वत ऊपर होनेसे ब्रह्मांडके भीतरही हैं. इसलिये वे सर्व नाशवान् हैं, नहीं मानो तो पंचम स्कंधमें भागवत साक्षी है इति ॥ इति नवमप्रश्नोत्तरम् ॥ ९ ॥ फिर हे शिष्य! गीताचार्य श्रीकृष्ण भगवान्‌ने अर्जुनके प्रति ऐसा कहा है कि–

यद्गत्वा न निवर्तंते तद्धाम परमं मम ।
मामेव ये प्रपद्यंते मायामेतां तरंति ते ॥ २० ॥

अर्थ–जिस धामको सूर्य चंद्र पावक आदिक प्रकाश नहीं कर सकते हैं, सोही मेरा परम धाम है। और मेरे शरणको जे प्राणी प्राप्त होते हैं; वेही मेरी मायाको तरते हैं इस प्रकारसे मायाका तरणरूप जो मोक्ष है उसको वैष्णवही प्राप्त होते हैं, दूसरे देवोंके भक्त उस परमपदमें स्वप्नमेंभी नहीं जा सकते हैं क्योंकि उस परमपदका स्वामी विष्णुही हैं इसलिये उस परम पदके स्वामी विष्णुको प्रसन्न करनेवाले जे वैष्णव हैं, वेही उस पदको प्राप्त होते हैं शिव ब्रह्मा आदिकोंके भक्तोंको वह परम पद स्वप्नमेंभी नहीं मिलता है इति॥ इति दशमप्रश्नोत्तरम् ॥ २० ॥

प्रश्न–हे सद्गुरो! श्रुतिमें कहे हुए जो देवयान देवपथ ब्रह्मपथ ये तीन शब्द हैं, उनका कैसा अर्थ है।

देवयानादिके अर्थ।

उत्तर-"या प्रापणे" देवाः यथोक्तलक्षणभागवताग्रेसराःयांति येन यस्मिन्वा स देवयानः पंथा इत्युच्यते ॥१॥ देवानां

उक्तलक्षणभागवताग्रेसराणां पंथा देवपथः इति गंतृसंबंध प्रधानसंज्ञेयम् ॥ २ ॥ ब्रह्मणः पंथा ब्रह्मपथः इति गंतव्यसंबंधप्रधानेयं संज्ञा ॥ ३ ॥

अर्थ- प्राप्ति अर्थवाला जो या धातु है उस धातुका यान शब्द है। यान नाम मार्गका है और देव नाम वैष्णवोंका है जिस मार्ग करके अथवा जिस मार्गमें वैष्णव देव जाते हैं, उस मार्गका नाम देवयान है १ और उक्त लक्षणोंवाले भागवत अग्रेसरोंका जो पंथ है उसको देवपथ कहते हैं २ और ब्रह्मका जो पंथ है उसको ब्रह्मपथ कहते हैं ३ इस रीतिसे गंता और गंतव्यके संबंधका कथन किया है इसलिये श्रीवैष्णव गंता है, और ब्रह्म गंतव्य है, इनका गंतृ-गंतव्य संबंध है॥१-३॥वैष्णवोंका देव ऐसा नाम पूर्वही प्रतिपादन करादिये हैं। इस प्रकारसे यह जो वैकुंठकी प्राप्तिरूप दिव्य फलका उपदेश है, सो सकल साधारण अधिकारियोंके प्रति कहते हैं-

सदानुसंधेयमिमं त्रिकालं मुमुक्षुभिस्तत्परमार्थमित्थम् ।
ज्ञात्वा न चैवास्ति सुवेदनीयं जिज्ञासुभिस्तैरवशिष्यमाणम् ॥

अर्थ-इस प्रकारसे, हे शिष्य ! सो यह तत्वादि दश प्रश्नोंका विचारपूर्वक अत्यंत निश्चय किया प्राप्यरूप जो परमार्थ है सो प्राप्यरूप परमार्थ मुमुक्षु जनों करके तीनों कालमें चिन्तन करने योग्य है, अर्थात् प्रातःकाल मध्याह्नकाल सायंकाल इन तीनों कालमें इस प्राप्यका सदा चिंतन करना योग्य है और इस मतको जान करके जाननेकी इच्छावाले उन मुमुक्षुओंको फिर जाननेका कुछभी बाकी नहीं रहता है अर्थात् दश प्रश्नोंका विचारपूर्वक प्राप्यका निश्चय करके पीछे मुमुक्षुओंको कुछभी जाननेका अवशेष नहीं रहता है इति ॥ और हे शिष्य ! इस ग्रंथके मतका जो पुरुष अधिकारी नहीं है, उस पुरुषको इस ग्रंथके मतका उपदेश कदापि नहीं करना चाहिये सो कहते हैं।

इस ग्रंथके अनधिकारी।

गुरुद्रुहे नो न शठाय चेदं न नास्तिकायोपदिशेत्कदाचन। नावैष्णवायापि रहस्यमुत्तमं न दानचित्ताय सुगोपनीयम् ॥ २४ ॥

अर्थ–हे शिष्य ! अत्यंत गुप्त रखने योग्य और उत्तम ऐसा जो इस ग्रंथ करके प्रतिपादन किया हुआ इस रहस्यका उपदेश गुरुद्रोही, शठ नास्तिक, अवैष्णव और कृपण इन पुरुषोंको कोई कालमेंभी न करना चाहिये । इति ॥

प्रश्न–इस ग्रंथके मतका कैसे गुणवाले अधिकारीको उपदेश करना चाहिये ?

इस ग्रंथके अधिकारी ।

उत्तर–प्रशांतचित्ताय जितेन्द्रियाय प्रहीणदोषाय यथोक्त-
कारिणे । गुणान्वितायानुगताय सर्वदा प्रदेयमेतत्
सततं मुमुक्षवे ॥ २५ ॥

अर्थ–जिसका चित्त रागद्वेषसे रहित है और जिसने अपने मन सहित सकल इंद्रियोंको जीते हैं तथा दुराचार, अनाचार, परनिंदा, परद्रोह, अश्रद्धा, अशुश्रूषा, लोलुप, पैशुन्य आदिक दोषों करके जो रहित हैं; तथा वेद और गुरुके वचनोंको आदरसे करनेवाला है, तथा श्रद्धा, आस्तिक्य, दृढता, शील, संतोष और दया आदिक गुणों करके जो युक्त है, तथा सर्वकालमें गुरुओंकी हाजरीमें चलता है ऐसे मुमुक्षु वैष्णवको इस ग्रंथके मतको निरंतर देना॥इति॥

श्रुत्वा सुरसुरानन्दो रामानंदादशेषतः ।
पृष्टान्सहोत्तरान् प्रश्नान् गुरून्नत्वाप सद्गतिम् ॥ २६ ॥

अर्थ–हे शिष्य ! इस प्रकारसे परम करुणावाले श्रीरामानंदजीके उपदेशसे अत्यन्त अप्राप्त वस्तुको प्राप्त होकर कृतकृत्य और मुक्त हुये जो सुरसुरानन्द हैं सो रामानंदजीको पूछे हुये सकल दश प्रश्नोंके उत्तरोंको रामानन्दजीके मुखसे सुनकर, गुरु रामानंदजीको मन वचन और कायासे साष्टांग प्रणाम करके सुरसुरानंद मुक्तिको प्राप्त हुये ॥ जैसे सुरसुरानंद, रामानंदजीकी उपासना सेवासे ज्ञान पाकर मुक्तिको प्राप्त हुये ॥ वैसेही सर्व मुमुक्षुओंकी ज्ञानी गुरुओंकी सेवासेही ज्ञान प्राप्त होकर मुक्ति होती है ॥

प्रश्न–भो स्वामिन्! रामानन्द और सुरसुरानंद इन दो नामोंका कैसा अर्थहै?

रामानंद शब्दार्थ ।

उत्तर–रामिति बीजप्रतिपाद्यं रहस्यत्रयानुष्ठानेनानन्द-
यतीति रामानंदः १ । यद्वा रामं दाशरथिं रहस्यत्रया-

स्वानुष्ठानेनानन्दयतीति रामानन्दः २ । यद्वा रामे दाशरथौ तद्वात्सल्यादिगुणतच्छरण्यत्वादिचिन्तनादिनानन्दो यस्य सः रामानन्दः ३ । यद्वा " विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदयोर्लोपः " इत्युक्त्या भीमो भीमसेनो वेदव्यासो व्यासः इतिवत् रामान् रामभक्तान् सुरसुरानन्दादीन् तत्त्वाद्युपदेशेनानन्दयतीति रामानंदः ४ । यद्वा रामभक्तेषु तद्दर्शनसङ्गादिनाऽऽनन्दो यस्य सः रामानन्दः ५। यद्वा सीता च रामश्च एकशेषे रामौ सीतारामौ स्वानुष्ठानेनानन्दयतीति रामानन्दः ६ । यद्वा तयोः पृथक् पृथग्गुणादिस्मरणेनाऽऽनन्दो यस्य स रामानन्दः ॥७॥ इति रामानन्दनाम्नोऽर्थः ॥

सुरासुरानन्द शब्दार्थ ।

सुराणां देवानां सुरः सुरसुरः देवदेवः श्रीरामस्तमानन्दयति स्वानुष्ठानेन प्रसादयतीति सुरसुरानन्दः १ । यद्वा स आनन्दतीति आनंदः प्रसन्नो यस्य सः सुरसुरानंदः इति २ ।

फलश्रुति ।

जितेन्द्रियः प्रसन्नस्तं बुध आत्मरतिर्हरिम् ।
आप्नुयात्परमं स्थानं योऽनुतिष्ठेदिमं मतम् ॥ २७ ॥
यः पठेच्छृणुयाद्भक्त्या संदर्भमिदमुत्तमम् ।
सर्वार्थसिद्धिं संप्राप्य लभेदन्ते परं पदम् ॥ २८ ॥

अर्थ–फिर इस ग्रन्थका अधिकारी कैसा होना कि (जितेन्द्रियः) अर्थात् ध्यान धारणादिकों करके अपने इंद्रिय जिसने वश किये हैं, फिर वह अधिकारी कैसा है कि बुध है अर्थात् अपने गुरुने उपदेश किया जो ज्ञान है उस ज्ञान-वाला है फिर कैसा है कि, आत्मरति है अर्थात् श्रीराममें अनुरागवाला है। (हरिप्रपन्नः) सर्वलोकशरण्य और शरणागतवत्सल ऐसे श्रीरामकी प्रपत्तिको करता है। ऐसा जो अधिकारी पुरुष है सो इस ग्रन्थ करके पतिपादित मनको आचरता है, वह अधिकारी परम पद वैकुंठको प्राप्त होता है, इस लिये सर्व मुमुक्षु अधिकारियोंको अवश्य करके इस ग्रंथके मतका धारण करना योग्य है इति ॥ और हे शिष्य ! इस उत्तम संपूर्ण ग्रंथका जो कोईभी मनुष्य पाठ करै अथवा भक्ति करके इस ग्रंथका श्रवण करे वह मनुष्य धन, धान्य, स्त्री, पुत्र, विद्या, शरीरका तेज, धर्म, आयुष्य, सुखकी प्राप्ति, दुःखकी निवृत्ति, नीरोग आदिक सकल अर्थोंकी सिद्धिको इस देहसे प्राप्त होकर अंत-कालमें मोक्षको प्राप्त होता है इति ॥

ग्रन्थकार प्रशंसा ।

श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकरो ह्ययं श्रीवैष्णवहिताय प्रकटीकृतः ।
श्रीमद्गोपालदासेन पंडितेन बहुश्रमतः शास्त्राणि विलोड्य च २९
गुणभूतग्रहेश्वरवत्सरे माघे सितेऽष्टम्यां पूर्णतां गतः ।
अर्थतः पाठतश्च यद्यशुद्धं क्षमध्वं ममोपरि प्राज्ञजनाः ॥३०॥

अर्थ--यह श्रीष्णवधर्मरत्नाकर नामका ग्रंथ श्रीवैष्णवोंके हितके वास्ते बहुत श्रमसे अनेक शास्त्रोंका मन्थन करके श्रीमत्पंडितगोपालदासजीने प्रगट किया है। और यह श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकर जो है सो (गुणभूतग्रहेश्वरवत्सरे) अर्थात् संवत् १९५३ की सालमें (माघे सितेष्टम्यां) माघ मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीके दिन पूर्ण हुआ है, और इस ग्रंथमें अर्थसे तथा पाठसे जो किसी ठिकाने अशुद्ध होय तो हे प्राज्ञजनो, आप मेरे पर क्षमा करना, ऐसी मेरी प्रार्थना है। और इस ग्रंथका नाम श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकर रक्खा है उसका अर्थ ऐसा है कि, जैसे रत्नोंकी खानिमें अनेक प्रकारके रत्न भरे हुये रहते हैं, वैसे इस ग्रंथ-मेंभी श्रीवैष्णवधर्मरूपी अनेक रत्न भरे हुये हैं, इसलिये इस ग्रंथका नाम श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकर है, आकर नाम खानिका है।

अथ ग्रंथकर्तुर्नाम्नोर्थाः।

गोर्जलं स्वायनभूतं तं पालयतीति गोपालः श्रीमन्नारायणस्तस्य दासो गोपालदासः। यद्वा गौः सर्पः स्वशय्याभूतस्तं पालयतीति गोपालः। यद्वा गां वेदरूपां वाणीं पालयतीति गोपालो नारायणस्तस्य दासो गोपालदासः। यद्वा गां पृथ्वीं वराहरूपेण पालयतीति गोपालो नारायणस्तस्य दासो गोपालदासः। यद्वा गावो दिशो रामादिरूपेण पालयतीति गोपालस्तस्य दासो गोपालदासः। यद्वा गावो वृषभादिरूपाः कृष्णरूपेण पालयतीति गोपालस्तस्य दासो गोपालदासः। श्रीः शोभा संपद्वा विद्यते यस्यासौ श्रीमान्। यद्वा द्वादशोर्ध्वपुंड्रेषु द्वादश श्रियो विद्यंते यस्यासौ श्रीमान्। यद्वा श्रीः लक्ष्मीः उपास्यरूपेण आचार्यरूपेण वा विद्यते यस्यासौ श्रीमान्। श्रीमांश्चासौ पंडितश्च श्रीमत्पंडितः श्रीमत्पंडितश्चासौ गोपालदासश्च श्रीमत्पंडितगोपालदास इति॥

प्रश्न–हे स्वामिन्! इस ग्रन्थमें आपने केवल भगवत् शरण होनेकेही धर्म और उपाय लिखे हैं परंतु चार वर्ण और चार आश्रम इनके धर्म क्यों नहीं लिखे?

उत्तर–वर्णानामाश्रमाणां च धर्मा न लिखिता मया।
सर्वधर्मान्परित्यज्य इति श्रीहरिशासनात्॥ ३१॥

अर्थ–हे शिष्य चार वर्णोंके धर्म चार आश्रमोंके धर्म मैंने इस ग्रंथमें नहीं लिखे हैं, क्योंकि वर्णोंके और आश्रमोंके सकल धर्मोंका परित्याग करके मेरे एक शरणकोही प्राप्त होना, ऐसी शिक्षा श्रीहरिने गीताके अष्टादशवां अध्यायमें की हुई है, इसलिये वर्णाश्रमोंके धर्म नहीं लिखे हैं, जैसे एक स्थानमें

दो तरवार नहीं रह सकते हैं,वैसे शरणागति धर्म और वर्णाश्रमोंके धर्म दोनों एक अधिकारीमें परस्पर विरुद्ध हैं ॥ इति ॥ ३१ ॥ हे शिष्य ! वर्णाश्रमोंके धर्मोंका जो त्याग है सो भगवत्शरणागत पुरुषको बाध नहीं कर सकता है. और भगवत् शरणका जो त्याग है सो तो वर्णाश्रमोंके धर्मपालक पुरुषको बाध करता है. इसमें मैं इतिहासोंको कहता हूं सो तू श्रवण कर ॥

हरिद्रोहीके इतिहास ।

चौ०—ये सब जीव स्वकुल अनुसारा । चलत चलत नहिं भये भवपारा ॥
तातें कुलके धर्म विसारी । मुक्ति हेतु भजिये भवहारी ॥
अजामील विप्राधम पापी । पुत्रमें हरिनाम अलापी ॥
निष्पाप भयो अपराधी । रामांहि पायो राम आराधी ॥
जो कोइ पुरुष रामका द्वेषी । चांडाल ताकूं कहिये विशेषी ॥
मात पिताका द्रोही जेही । अन्य वीर्यका जानिये तेही ॥
भोगै नरक मरै जव अंता । ऐसे कहैं पुराण श्रुति संता ॥
सतयुगमें एक राजा भयेऊ । ताको नाम वेन अस लहेऊ ॥
सो खलद्रोही रामका भयेऊ । मैं भगवान कहत अस फिरेऊ ॥
वेनवेन भजो परजा हमारी । हम राजा तुमको सुखकारी ॥
राजा बिना परजा दुख पावै । राजा विना धरम उठि जावै ॥
ताते राजा मैं प्रभु तुम्हारा । वेन वेन लेहु नाम हमारा ॥
योग यज्ञ जप तप मोहि अरपो । देव पितर गंधरव न तरपो ॥
जबतेही किन्ह पाखंड पसारा । तब ऋषि मिलि श्राप दे मारा ॥
आये यमदूत पकडि,ले गयेऊ । कुंभिपाकमें डारत भयेऊ ॥
हिरण्यकाशिपु रावण शिशुपाला । ये गये विमुख कालके गाला ॥
हे शिष्य सुनहु बचन हमारा । राम विमुखकें नहिं निस्तारा ॥
रामाविमुख भयो घंटाकरना । मुक्तिहेतु गयो शिवके शरणा ॥
दृढाभक्ति शिव ताकी देखी । घंटा कानमें लटकत पेखी ॥
हँसि बोले शिव करुणाकंदा । करूं सुखी काटूं सब फंदा ॥
मांग मांग जो इच्छा तेरी । तोपर वढी प्रीति अति मेरी ॥
घंटाकरण बोल्यो करजोरी । मुक्ति करो भोलाजी मोरी ॥
कहे शंभु सुन घंटाकरणा । मुक्ति मिलेगी रामके शरणा ॥
मम अपि राम भक्ति अति भावै । त्वं अपि रामकुं मत विसरावै ॥

यह विधि उपदेशे शिवराया। घंटाकरणके मन सो भाया ॥

दोहा—राम विमुखके हाल अस, सुनहु शिष्य दे कान ।
दास गोपालकी शीखते, भजऊ राम तजि मान ॥

इति हरिविमुखइतिहासाः ॥

चौपाई—चार वेद षट शास्त्र पुराना। भारत स्मृति रामायणज्ञाना ॥
सब ग्रंथनको सार निचोरी। इसही ग्रंथमें कियो इकठोरी ॥
याको पढ़े सुने जो कोई। मनवांछित फल पावे सोई ॥
इसी ग्रंथको पढ़े पढ़ावे। दास गोपाळ परम पद पावे ॥
दोहा—श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकर, सब ग्रंथनको केतु[1]।
दासगोपालने रच दियो, भवसागरको सेतु ॥

इति पठनश्रवणफलम् ॥

अथ शिष्यकृत गुरुप्रशंसा। हे संसारमहासमुद्रपारदर्शक गुरो ! आज मैं आपके वचनामृतका पान करके अमर हुआ हूं, आज मैं धन्य हूं, कृतकृत्य हूं, आज मेरे अनेक प्रकारके संशय निवृत्त हुये हैं, मैं आपको वारंवार मन वचन और काया करके साष्टांग प्रणाम करता हूं ॥

शिष्य उवाच।

धर्मधीर गंभीर बुद्धि विष्णुधर्म प्रवर्तकम्,
दिव्यरूप आनंदकारी श्रीगुरुजीको मेरा प्रणाम है ॥ १ ॥
शीलवंत दयावंत ज्ञानी नयन वाणीमें कोमलम्,
आप अनुभवी रामभक्ता श्रीगुरुजीको मेरा प्रणाम है ॥ २ ॥
ज्ञानमुद्रा युगलबाहुशोक संशयनाशनम्,
विघ्नआपद नाशकर्ता श्रीगुरुजीको मेरा प्रणाम है ॥ ३ ॥
कण्ठे तुलसीमाला शोभे ऊर्ध्वपुण्डर मस्तके,
राम राम मुखे वाणी बोले श्रीगुरुजीको मेरा प्रणाम है ॥ ४ ॥
इंद्र चन्द्र सनकादि नारद तैंतीस कोटि सर्व देवता,
सकल मुनिजन करत वन्दन श्रीगुरुजीको मेरा प्रणाम है ॥ ५ ॥
गुरुदेवसम नहीं देव सर्वे आप स्वार्थमें ते रहे,
पर उपकारी गुरु देव कहिये श्रीगुरुजीको मेरा प्रणाम है ॥ ६ ॥

---

१ केतु नाम राजाका है। केतुः पार्थिवे इत्यमरः।

अनेक जन्मोंसे भूल्यो प्राणी मार्ग गुरु विना नहीं मिले,
गुरु देव मुक्तिमार्गदाता श्रीगुरुजीको मेरा प्रणाम है ॥ ७ ॥
गुरु विना नर जन्म खोवे पशुयोनीमें अवतरे,
जन्म मरणको पार न आवै श्रीगुरुजीको मेरा प्रणाम है ॥ ८ ॥
सद्गुरु अष्टम पठन निशदिन प्राप्यते फल वांछितम्,
दासगोपाल गुरु चरण सेवे, श्रीगुरुजीको मेरा प्रणाम है ॥ ९ ॥

इति श्रीगुरुअष्टकम् ॥

रामं रामानुजं सीतां भरतं भरतानुजम् ।
सुग्रीवं वायुसूनुं च प्रणमामि पुनः पुनः ॥

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसंपदाम् ।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥

इति श्रीमद्रामानुजचरणकञ्जचंचरीकेण श्रीमत्पंडितगोपालदासेन विरचिते गुरुशिष्यसंवादे श्रीवैष्णवधर्मरत्नाकरे प्राप्यादिस्वरूपनिरूपणं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

समाप्तोयं ग्रन्थः ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

गङ्गाविष्णुश्रीकृष्णदास,
'लक्ष्मीवेंकटेश्वर' स्टीम्-प्रेस,
कल्याण-बम्बई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
'श्रीवेंकटेश्वर' स्टीम्-प्रेस,
खेतवाडी-बम्बई.

Duplicate